भुशुण्डि रामायण

तृतीय भाग

(पश्चिम-उत्तर खंड)

संपादक

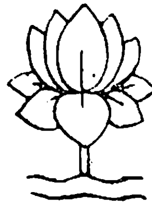
डॉ० भगवती प्रसाद सिंह

प्राक्तन आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

सहसंपादक

पं० रामाधार शुक्ल, साहित्याचार्य



अवध साहित्य मंदिर, गोरखपुर

प्रकाशक :

अवध साहित्य मंदिर

३५-बेतिया हाता

गोरखपुर–२७३००१

इस पुस्तक का प्रकाशन उत्तर-प्रदेश संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से किया गया है।

मूल्य : ७५.००

मुद्रक :

रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स

B 21/42 A, कमच्छा, वाराणसी

BHUŚUṆḌI RĀMĀYAṆA

PART III (PASCHIM-UTTAR KHAND)

Edited by :

Dr. B. P. SINGH

Retd. Professor & Head

Department of Hindi

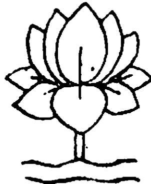
Gorakhpur University

Co-Editor :

Pt. Ramadhar Shukla

Sahityacharya

अ.सा.मं.



AVADH SAHITYA MANDIR

GORAKHPUR, INDIA

Published by :
Avadh Sahitya Mandir
35, Betiahata
Gorakhpur-273001

This book is published with the financial assistance from the Uttara Pradesh Sanskrit Academy

Price : **75.00**

Printed by :
Ratna Printing Works
B21/42 A, Kamacha, Varanasi.

आमुख

भुशुण्डि रामायण के तृतीय तथा अन्तिम भाग को रामकथारसिकों एवं अनुसंधित्सुओं के लिए सुलभ होते देखकर मैं अपार संतोष का अनुभव कर रहा हूँ। इस ग्रंथके उद्धार हेतु निरन्तर तीस वर्षों तक किये गये विनम्र प्रयास की सफलता मेरी अकथनीय आत्म-तृप्ति का कारण बनी है—'क्लेशः फलेन ही पुनर्नवतां विधत्ते'। विषम भौतिक परिस्थितियों और पग-पग पर आनेवाली बाधाओं के शमन में भगवदनुग्रह ही हमारा संबल रहा है। वह जिन माध्यमों से अवतरित हुआ उनमें उत्तरप्रदेश संस्कृत-अकादमी एवं उसके वर्तमान निदेशक श्री धर्मनारायण त्रिपाठी अविस्मरणीय हैं। इनके द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से इस ग्रन्थ की प्रकाशन यात्रा का पथ प्रशस्त हुआ। मुद्रणकार्य को ग्रन्थ के गौरवानुकूल सम्पन्न करने में रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी के स्वत्वाधिकारी श्रीविनयशंकर पण्ड्या ने जिस उदारता और धैर्य का परिचय दिया उसका 'आभार' अनुभव की वस्तु है 'प्रदर्शन' की नही।

अब दो शब्द इस भाग के कथात्मक तथा तत्त्वात्मक वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में—

पूर्ववर्ती दक्षिण खंड के प्रतिपाद्य विषय का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उसके अन्तिम अध्यायों में वर्णित रामाश्वमेध-अनुष्ठान, सीता का भूमिप्रवेश तथा राम की दिव्यधाम यात्रा के साथ ही परम्परागत रामकथा समाप्त हो जाती है। अतः जहाँ तक राम की लोकलीला का सम्बन्ध है उसके पश्चात् कुछ भी कहने को शेष नहीं रह जाता। किन्तु पौराणिक शैली में विरचित रामायणों का उद्देश्य मात्र राम का जीवनयात्रा से सम्बद्ध प्रसंगों का निर्देश नहीं रहा है। इस परम्परा के ग्रन्थों में उपबृंहण की प्रवृत्ति आद्योपान्त व्याप्त पाई जाती है। प्रवाह में बाधा की सम्भावना से जो प्रसंग मूलकथा में संक्षेप में अथवा संकेत मात्र से अभिव्यक्त किये गये थे उसकी परिसमाप्ति के अनन्तर परवर्ती खण्डों या काण्डों में उनका विशद विवरण अथवा उनसे सम्बद्ध नये सूत्रों की उद्भावना आख्यान, अवान्तर-कथाओं आदि के रूप में प्रस्तुत की जाती रही है।

इसके अतिरिक्त रामकथा अध्यात्मसाधना का भी आधार एवं प्रेरणा स्रोत होने से, युगीन धर्मदर्शन के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम रूप में भी प्रयुक्त होती रही है। सांम्प्रदायिक रामायणों की प्रशस्त परम्परा इसी का प्रसाद है। इस वैशिष्ट्य के कारण समय के साथ बदलते हुए युगमानस की अन्तर्धाराओं के विकासात्मक अध्ययन के अक्षयकोष के रूप में भी उसकी प्रतिष्ठा रही है। वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन के प्रभावस्वरूप दार्शनिक मतवादों के साथ भक्ति विशेषतः प्रेमा भक्ति, के स्वरूप, महत्व एवं साधना सम्बन्धी तत्त्वों का भी उसमें व्यापक रूप से समावेश हुआ। इस प्रकार जन-जीवन से संपृक्त होने के कारण समकालीन आध्यात्मिक विचारधाराओं, लोकविश्वासों एवं सामाजिक मान्यताओं से संपोषित रामकथा युगीन परिवेश के अनुसार नये साँचे में ढलती और समकालीन जीवन को नवीन दिशानिर्देश करती रही है। लोक की साझेदारी होने से रामकथाकारों को अपनी व्यक्तिगत धारणाओं की अपेक्षा जनरुचि को वरीयता देनी पड़ी। रामायण परम्परा के विकास और रामचरित के विस्तार में यह

तत्त्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। रामकथा के मूलस्रोत वाल्मीकीय रामायण तथा उसके आदर्श पर निर्मित परवर्ती रामायणों के कथातत्त्व की मीमांसा करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। उसकी अनन्तता तथा बहुआयामित्व का यही रहस्य है।

अबतक प्राप्त रामायणों में भुशुण्डि रामायण सर्वाधिक विशद है। इसके अन्तर्गत छत्तीस हजार श्लोकों में विस्तृत रामचरित को श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्णलीला से जिस प्रकार अनुरंजित किया गया है उसके पीछे पूर्वमध्यकालीन उत्तरभारतीय समाज में व्याप्त कृष्णलीला-सक्ति को आत्मसात् करने का सजग प्रयास लक्षित होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के असाधारण विस्तार का यही मुख्य कारण है। पूर्व तथा दक्षिण खण्ड की भाँति ही पश्चिम और उत्तर खण्ड में वर्णित रामकथा के विस्तार में सहायक एक अन्य तत्व है रामचरित तथा रामभक्ति से जुड़े हुए प्रसंगों का समावेश और उनका सविस्तर निरूपण। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

१. रामावतार के कारणों का निर्देश
२. राम जन्मोपाख्यान
३. सीता-जन्मोपाख्यान
४. सरयू-उत्पत्ति कथा
५. सहजोपाख्यान
६. वैवस्वतोपाख्यान
७. शिवगीता
८. कालदमनोपाख्यान
९. रामगीता
१०. प्रमोदवन अथवा महाधामवर्णन

इनके साथ ही पाठकों के मानस में भक्तिभाव प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से कुछ नई सामाग्री जोड़ी गई है। नीचे इसकी संक्षिप्त सूची दी जाती है—

१. रामनाम-महात्म्य
२. रामभक्ति का प्रवर्त्तन तथा प्रसार परम्परा
३. अयोध्या-सरयू-महात्म्य-वर्णन
४. कर्म, भक्ति, ज्ञान, तथा योग का स्वरूप निरूपण
५. प्रेमाभक्ति की-सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन
६. मानसो-पूजा की विधि तथा महात्म्य
७. रामतीर्थों का विवरण
८. राम सम्बन्धी व्रतोत्सवों विशेषतः रामनवमी का महात्म्य-वर्णन
९. रामकथा का संक्षेप में वर्णन
१०. राम द्वारा अयोध्यावासियों को प्रबोधन

यह ध्यातव्य है कि परवर्ती रामायणों विशेषतः रामचरितमानस पर इसका गहरा प्रभाव दिखाई देता है। कहीं-कहीं तो शब्दावली भी मिल जाती है। उदाहरणार्थ—

नहि भगवन् राम वासनानन्या विजृंभते ।
ऋते त्वच्चरणांभोज धूलधूसरतां तनोः ।।
एतावदेव नः प्रार्थ्यं नाथ जन्मनि जन्मनि ।
श्रीराम तव पादाब्जतललग्ना वयं सदा ।।

—भु० रा० उत्तरखण्ड ३३।१०,११

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निर्वान ।
जनम-जनम रति रामपद यह वरदान न आन ।।

—रामचरित मानस, अयो० दो० २०४

यही स्थिति कथा प्रसंगों की भी है । राम के परधाम गमन का वृत्त इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । रामचरित मानस में कथा का अन्त राम का भ्राताओं, पार्षदों तथा सेवकों सहित सरयू तटस्थ 'अमराई' में जाने के साथ होता है—

हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ।
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गजरथ तुरग मँगावत भए ।।
हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ शीतल अमराई ।

—रामचरितमानस, उत्तर० ५०।२,३,५

वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण में राम के स्वर्गारोहण का जो वर्णन मिलता है उसमें प्रास्थानिक कर्मोपरान्त वैदिक रीति से प्रज्वलित अग्निहोत्र और बाजपेय छत्र को आगे करके ऋषि-ब्राह्मणों, शस्त्रशास्त्र, धनुषबाण, भाइयों, अंतःपुर की स्त्रियों तथा भृत्यों के साथ उनके सरयूतट पर जाने का उल्लेख है—

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः ।
रामः कमल पत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत ।
अग्निहोत्रं ब्रजत्वग्रे दीप्यमानं सहद्विजैः ।।
बाजपेयातपत्रं च शोभमानं महापथे ।।
अध्यर्धं योजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दन ।।

—वा० रा० उत्तर० १०९।१,२; ११०।१

अग्निहोत्रं ब्रजत्वग्रे दीप्यमानं सहद्विजैः ।
बाजपेयतपत्रं च शोभमानं महापथे ।।
ततः सर्वाः प्रकृतयोः हृष्टपुष्ट जन वृताः ।
गच्छन्तमन्वगच्छतं राधवगुण रंजितः ।।

ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्वंप्रास्थानिकं कर्म महद्विधानात् ।
क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणि महाप्रयाणाय गृहीत बुद्धिः ।।
वेदाश्च सर्वे भूत विग्रहाश्च ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्याः ।
माता श्रुतीनां प्रणवेन साध्वी ययौ हरिः व्याहृतिभिः समेता ।।

ततोऽतिदूरं नगरात्स गत्वा दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम् ।
ननन्द रामः स्मृतपावनोऽतो ददर्शचाशेषमिदं हृदिस्थम् ।।

—अध्यात्म रा०, उत्तरकाण्ड ९।३८,४१. ४८

किन्तु भुशुण्डिरामायण में रामचतितमानस की भाँति ही लोकान्तरण के पूर्व राम के सरयू तटस्थ आराम कुंज अथवा 'अमराई' में जाने का स्पष्ट निर्देश है—

जगाम सरयूतीरं वहत्त्रिविधि मारुतम् ।
आरामकुंज शोभाढ्यम् हेमरत्नमया वनिम् ।।
तत्र गत्वा चिरं दध्यौ मायातीतं परं महः ।
वनोपवन शोभाढ्याम् सरयूतट भूमिगाम् ।।

—भु० रा०, उत्तरकाण्ड ५१।१७, १८, १९

ये तथ्य रामचरिनमानसकार के भुशुण्डिरामायण से परिचय और एक सीमा तक विवेकपूर्ण अनुसरण का संकेत देते हैं ।

अध्यात्म रामायण के प्रेरणा स्रोतों का विवेचन करते हुए डा० प्रबोधचन्द्र बागची तथा रामचरित मानस के उपजीव्य साहित्य की मीमांसा के प्रसंग में डा० वादवील ने उनके आदर्श रूप में किसी पूर्ववर्ती साम्प्रदायिक रामायण के अस्तित्व की संभावना व्यक्त की थी, इसकी चर्चा हम पूर्वखण्ड की प्रस्तावना में कर चुके हैं (पृ० ४२, ४३) । यह एक सुखद आश्चर्य है कि अब भुशुण्डि रामायण के प्रकाश में आ जाने से उक्त मर्मी विद्वानों की धारणा तथ्याश्रित प्रमाणित हो गयी है । विशेष रूप से इसलिए भी कि वैष्णवभक्ति के सिद्धान्त तथा आचार पक्ष का इतना विशद एवं सूक्ष्म विवेचन किसी भी अन्य रामायण में प्राप्त नहीं होता । गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अपनी कृतियों मे उसका विवेक पूर्वक विनियोग सन्त परम्परा में प्रस्तुत ग्रंथ की व्यापक स्वीकृति का द्योतक है ।

इस महाग्रन्थ के प्राकट्य के मूल में सर्वेश्वर की इच्छा ही सर्वोपरि है । निमित्त का यदि कुछ अंशदान रहा है तो उसका संस्कारजन्य क्षुद्र अहंकार, अज्ञान एवं दुराग्रह, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ । उदार अध्येता इसे भवग्रस्त जीव का स्वभाव मानकर क्षमा करें, यही प्रार्थना है ।

वसन्तोत्सव
सं० २०४१
साकेत, बेतियाहाता, गोरखपुर

भगवती प्रसाद सिंह

विषय सूची

(अ) पश्चिम खंड

(आ) उत्तर खण्ड

श्री गणेशाय नमः । श्रीरामोजयति[1] ।

श्रीमदादिरामायणम्

पश्चिमखण्डः

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एकदा भरतः श्रीमाञ्छ्रीमन्तं लक्ष्मणं प्रभुम् ।
शेषं संकर्षणं वीरं सुखासीनं शुचिस्मितम् ॥ १ ॥
श्रीमत्सीतानुजाकान्तं श्रीरामभ्रातृसुन्दरम् ।
त्रैलोक्यसारं सुभगं[2] गौरं हलधरं वरम् ॥ २ ॥

एकांस[3]धृतभूभारं श्रीरामपदसेवकम् ।
प्रावृषेण्यघनश्यामं मधुरोज्ज्वलविग्रहम् ॥
एकान्ते समुपागम्य भक्त्या नम्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

भरत उवाच

स्वच्छन्दलील सर्वेश[4] लक्ष्मण भ्रातृसत्तम ।
समस्ताधिकसौभाग्य नाममाहात्म्यपावन ॥ ४ ॥

एकान्तरामभक्तेश पृच्छामि त्वां महामते ।
सर्वतत्त्वं परं ब्रह्म परमानन्दलक्षणम् ॥ ५ ॥

त्रयीतत्त्वं सर्वगुह्यं श्रीराम इति कीर्तितम् ।
तस्यैव सकला लीलां विश्वसर्गादिलक्षणाः ॥
तत्प्रेमपात्रं परमं भवानेव न संशयः ॥ ६ ॥

न त्वां विना रमति जल्पति नो कदाचिन्नो वा क्वचिद्वसति तिष्ठति वा सजोषम् ।
शय्यासनाशनविहारविलासकादौ श्रीमान् विभाति भवतैव युतः प्रभुर्नः ॥ ७ ॥

त्वां मन्त्रयत्यविरतं पतिते विचारे प्राणाधिकस्त्वमसि तस्य सुहृत् सखा च ।
त्रैलोक्यभारमखिलं त्वयि न्यस्य रामः शेते सुखं जनकजासहितो विलासी ॥ ८ ॥

यत्कर्मवीर्यमतुलं त्रिजगत्सु वेत्तुं कः कल्पते मुनिसुरासुरमानुषेषु ।
तस्य स्वरूपमखिलं खलु तत्त्वतस्त्वं जानासि राघवकुलोद्वह वीर बाहो ॥ ९ ॥

---

१. ' ' नास्ति-रीवां । २. शुभगं-रीवां । ३. एकांश-रीवां । ४. शर्वेश-रीवां ।

सर्वे सहोदरपदस्य जुषो वयं स्म तस्योत्तमस्य पुरुषस्य रमेश्वरस्य ।
भूयस्तथापि भवतैव वशीकृतात्मा विक्रीड़ितुं[1] वितनुते भुवि राघवेन्द्रः ॥ १० ॥
तत्कारणं किमपि लक्ष्मण भिन्नमेवं भाग्याधिकं प्रभुकृपाभरभाजनं यत् ।
किंवा पुरा त्रिभुवनोत्तमसंविधाभिराराधितः स भगवान् रघुवंशरत्नः ॥ ११ ॥

लक्ष्मण उवाच

एवमेव यदात्थ त्वं भरत प्राणसम्मित ।
श्रीरामस्य दयापात्रमहमेव विशेषतः ॥ १२ ॥

अयं हि भगवान् साक्षाद्विश्वबीजप्रदः प्रभुः ।
स्वयंशक्तिः स्वयंज्योतिः पूर्णपूर्णः परात्परः ॥ १३ ॥

[2]तस्याहं परमः प्रेयान् मित्रं चैव सखा सुहृत् ।
सर्वातिगः सर्वगुप्तः सर्वात्मा विश्वतः स्थितः ॥ १४ ॥

प्रमोदवनलीलासु पर्याप्तोऽन्यरसालसः ।
तस्य सर्वासु लीलासु सदा तिष्ठामि सन्निधौ ॥ १५ ॥

लीलैव ममसर्वस्वं लीलैव मम जीवनम् ।
अहं लीलारसाभिज्ञो जानकी हनुमाञ्छिवः ॥ १६ ॥

भवांश्च भरत प्राज्ञ शत्रुहा च विभीषणः ।
यावान् यस्याधिकारः स्यात्तावत्तस्य प्रदर्शयन् ॥ १७ ॥

अवतारचरित्राणि मूलचारित्रमेव च ।
कुरुते जानकीकान्तः स्वाच्छन्द्यरसनिर्भरः ॥ १८ ॥

तत्राहमस्य परमः सचिवः सुहृच्च मित्रं जनश्च सुजनश्च दयालयश्च ।
तत्कारणं जगति केवलमेतदेव श्रीजानकीचरणपङ्कज रेणुमात्रम् ॥ १९ ॥

श्रीरामस्य प्रियाभक्तिर्भावरूपा सतां गतिः ।
तद्रूपिणी स्वयं सीता सहजानन्दरूपिणी ॥ २० ॥

सा सैव परमा तस्य रमा त्रैलोक्यसुन्दरी ।
भक्तानां वैष्णवानां च सा गुरुः समुदीर्यते ॥ २१ ॥

न तां विना भवेद्दीक्षा रामतत्त्वविभाविनी ।
तया संसृज्यते लोकः पाल्यते ह्रियतेऽपि च ॥ २२ ॥

सैव स्वयं राम इति भेदेन समुदीर्यते ।
राममेव परात्परं परं ब्रह्म रसात्मकम् ॥ २३ ॥

सीताराम इति ख्यातं त्रिषु वेदेषु कीर्तितम् ।
न ब्रह्मा न भवो नेन्द्रो नान्ये च त्रिदिवौकसः ॥ २४ ॥

---

१. विक्रीडितं–मथु०, रीवां ।
२. तस्या हं वै प्रेयान्मित्रो सखाहं हि सुहृत्तथा–मथु०, बड़ौ० ।

तस्य तत्त्वं विजानन्ति इदमित्थंतया प्रभोः ।
स्वच्छन्द एव लीलासु सर्वासु युगलात्मकः ॥ २५ ॥

युग्मनामा युग्मकेलिर्युग्मभावविनोदवान् ।
युग्मभूषाविलासाढ्यो युग्मस्थानविलासकः ॥ २६ ॥

युग्मजन्मा युग्मजल्पो युग्मप्रेक्षाविधायकः ।
प्रभुरेष विलासीनः सदानन्दपयोनिधिः ॥ २७ ॥

तन्नामामृतपानेन स्वस्थचित्ताः सनातनाः ।
ऋषयः परमहंसाश्च बहवस्त्यक्तबान्धवाः ॥ २८ ॥

श्रद्धावन्तो भक्तिवन्तो रामपादनिषेवकाः ।
मुक्तिं गताः सद्गुरुभिर्ज्ञाततत्त्वाः सुकोविदाः ॥ २९ ॥

स वै प्रपत्तिमात्रेण जनान् मोचयते भवात् ।
शत्रुस्तवास्मीति वदन् मत्समः क्रियतेऽचिरात् ॥ ३० ॥

प्रारब्धक्लेशहरिणी तस्य भक्तिर्निगद्यते ।
न तच्चरणपाथोजप्रपत्त्या विशते विना ॥ ३१ ॥

परे ब्रह्मणि स्वानन्दलीलारसविनोदिनि ।
तल्लीलास्मृतिमात्रेण नरो भवति पावितः ॥ ३२ ॥

कोटिगङ्गादितीर्थौघवाजपेयादिभिर्मखैः ।
सा तस्य सहजानन्दविग्रहा स्वैरकेलिनी ॥ ३३ ॥

नित्यलीला विनोदा च सुखप्राग्भारसम्पदा ।
तस्याश्चरणपद्मोत्थप्रसादारुणरेणुभिः ॥ ३४ ॥

पूतात्मा लभते रामं सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
रामभक्तिः स्वयं सीता तद्भक्तं विद्धि मामथ ॥ ३५ ॥

तद्भक्तं हनुमन्तं च जानीहि पवनाङ्गजम् ।
एवं प्रवर्तिता भक्तिर्भुवने रामतोषिणी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे[1] भरतलक्ष्मणसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



१. पूर्वखण्डे (?) ब्रह्मभुशुण्डसंवादे—बड़ौ० ।

द्वितीयोऽध्यायः

भरत उवाच

कदा साऽऽराधिता देवी जानकी भवता प्रभो ।
यस्याः पदाम्बुजरजःप्रसादेन त्वया मुहुः ॥ १ ॥

अनन्यभक्तिः रामस्य प्राप्ता यानन्यगामिनी ।
अनन्यकरुणा चैव प्राप्ता यानन्यगामिनी ॥ २ ॥

लक्ष्मण उवाच

प्रमोदविपिने रामश्चिक्रीडे रासलीलया ।
ब्रह्मकल्पसहस्राणि स्वच्छन्दो निरवग्रहः ॥ ३ ॥

तावत्त्रैलोक्यभारं च मयि दध्रे स्वसम्मिते ।
तामसानसुरान् सर्वान् दैत्यांश्चैवापि दानवान् ॥ ४ ॥

श्रीरामकेलिप्रत्यूहानहं जघ्ने तदाज्ञया ।
रामेण पाल्यमानाश्च धेनू रक्षितवानहम् ॥ ५ ॥

ता वै चतुर्वेदऋचो ज्ञानकर्मादिसाधिकाः ।
भक्तिरूपं वनं सद्यो विविशू रामपालिताः ॥ ६ ॥

तदाहं तस्य देवस्य लीलैकरसवर्तिनः ।
परिचर्यामकार्षं वै शयनासनभोजने ॥ ७ ॥

यथा यथा प्रभुस्तुष्येत्तथा कार्यं मया शनैः ।
प्रमोदवनलीलेशी सहजेयं तदाभवत् ॥ ८ ॥

या देवी जानकीत्यत्र कीर्तिता शुभनामिनी ।
कदाचिद्रासवलयेक्रीडन्तं व्रजशक्तिभिः ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा प्रियतमं देवी मानतप्ता बभूव ह ।
इतश्च श्रीरामचन्द्रो विरहव्याधिपीडितः ॥ १० ॥

तदाहं ऋतुराजस्य रूपं दध्रे मनोहरम् ।
रसालमञ्जरीयत्तमत्तभ्रमरनादितम् ॥ ११ ॥

मनोज्ञकोकिलालापकूजत्पुंस्कोकिलाकुलम् ।
मलयानिलसौरभ्यसम्पर्किद्रुमराजितम् ॥ १२ ॥

अनेनद्रुमसंदोहमञ्जरीरजसाकुलम् ।
कुञ्जमण्डपसानन्दनिकूजच्छुकसारिकम् ॥ १३ ॥

प्रसन्नसलिलोत्फुल्लपङ्कजालिसुगन्धिकम् ।
हंससारसचक्राह्वकादम्बप्रमदाकरम् ॥ १४ ॥

कुलाङ्गनामनोमानभञ्जनोद्धरशक्तिकम् ।
अनेकपुष्पसंदोहरजोभिश्चनिशायितम् ॥ १५ ॥

स्मरलीलावहः हेमकेतकीधूलिधूसरम् ।
तत्काललसितोद्यानरामणीयकरोचितम् ॥ १६ ॥

नवपल्लवलौहित्यसूर्यातपतिभासितम् ।
फुल्लत्किंशुकवृक्षौघलोहितीकृतदिक्तटम् ॥ १७ ॥

अथोदियाय पूर्णेन्दुः प्राचीदिङ्मुखमण्डनः ।
फुल्लत्कुवलयारण्यकरसंचारकोविदः ॥ १८ ॥

चकोरकामिनीचारुचञ्चूपुटविकासकः ।
तदा सा सहजानन्दा कलहान्तरिताभवत् ॥ १९ ॥

ईशश्च सुतरां तावद्विरहाकुलमानसः ।
प्राप्ताः प्रियासखीर्वीक्ष्य केलीमण्डपमागमत् ॥ २० ॥

तत्रैतयोः सुभगयोः प्रपञ्चोत्तरकामिनोः ।
समागमः समभवत्परमानन्दकारकः ॥ २१ ॥

आकालिकं वसन्तं च दृष्ट्वासौ भक्तवत्सलः ।
मयि पूर्णां कृपा चक्रे ज्ञातसारोऽखिलेश्वरः ।
सन्तुष्ट इदमाहासौ मम भाग्यैकवर्धनः ॥ २२ ॥

श्रीराम उवाच

भ्रातर्धन्योऽसिधन्योऽसि मम दुःखनिवारकः ।
त्वं हि मे लीलया नित्यं सन्तुष्टो भक्तिभावितः ॥ २३ ॥
एवमेव सदा तिष्ठ मम लीलैकवीक्षकः ।
गुप्ताश्च प्रकटाश्चैव यावत्यो मम केलयः ॥ २४ ॥
तावतीनां त्वमेवैकः साक्षी भव महामते ।
दृष्ट्वा प्रभोः कृपापात्रं जानकी प्राह मां ततः ॥ २५ ॥
इयं हि परिचर्या ते मम संतोषवर्द्धिनी ।
अनया परितुष्टाहं ददामि कामितं वरम् ॥ २६ ॥
यथा त्वं मम भक्तोऽसि तथेशस्यापि वै भव ।
अनन्यगामिनीयं मे कृपा भवति वर्द्धताम् ॥ २७ ॥

इति दत्तवरं मां सा वनरक्षानियोजितम् ।
विसृज्य सहजानन्दा रेमे स्वप्रेयसा सह ॥ २८ ॥
तदावधि तयोर्भूरिकृपयाऽऽनन्दितोऽस्म्यहम् ।
एतत्ते कारणं प्रोक्तं रामानुग्रहवस्तुनि ॥ २९ ॥

अचिन्त्यैव कृपा तस्य युग्मलीलाविनोदिनः ।
न कर्मभिर्न तपसा न ज्ञानेन न चेज्यया ॥ ३० ॥

सुलभा तत्कृपा क्वापि फलरूपादि सा यतः ।
तस्यां च परिलब्धायां न लभ्यान्तरमिष्यते ॥ ३१ ॥

तथापि कर्मभिर्दिव्यैः पूतात्मानं परायणम् ।
ज्ञानसंशुद्धचित्तं च भक्तिद्रुतसुधान्वितम् ॥ ३२ ॥

श्रीपादपद्मरजसा स्वाभिषिक्तं शुभोदयम् ।
सोऽनुगृह्णाति वै भक्तं नित्यलीलान्तवैभवम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मादयोऽपि यस्यान्तं न ययुर्दुर्लभात्मनः ।
अनायासेन सुलभः स लीलारसभावनात् ॥ ३४ ॥

एवं शुकादयः सर्वे प्रेमभक्तिविभाविताः ।
प्रवेशिताः स्वात्मरसे तेनैव प्रभुणा सखे ॥ ३५ ॥

सर्वसाधारणोऽप्येष स्वभक्तानां विशिष्यते ।
नैतावतास्य वैषम्यं लीलैकरसनिर्वृतेः ॥ ३६ ॥

स यदा ब्रह्मभावेन वर्तते ज्ञानवेदितः ।
तदा सर्वापि मर्यादा विद्यते तस्य नान्यदा ॥ ३७ ॥

एक एव द्विधा जातो भगवान् भावभावितः ।
ब्रह्म ब्रह्मेतिज्ञानेन ईश ईशेतिभक्तितः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे[1] भरतलक्ष्मणसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा स भरतः परमोत्कण्ठमानसः ।
ज्ञानस्य चापि भक्तेश्च विशेषं परिपृच्छति ॥ १ ॥

भरत उवाच

किं ज्ञानं का च सा भक्तिर्यया स वशतां व्रजेत् ।
एतन्मे कथय भ्रातरुभयोस्तत्त्वनिश्चयम् ॥ २ ॥

---

१. पूर्वखण्डे (?)-बड़ी० ।

लक्ष्मण उवाच

कर्मणा सत्कुले जातः संस्कारैः पावितस्तथा ।
कर्माणि तावत्कुर्वीत रामार्पणदृशाखिलान् ॥ ३ ॥

ततश्चेतसि संशुद्धे समुपासीत तत्परम् ।
प्रतीकविधिना चैव ब्रह्मास्मीतिधिया पुनः ॥ ४ ॥

ततः सगुणमाकारं भावयेत्त्रिगुणातिगम् ।
सहस्राननपादोरुं सहस्रेक्षणनासिकम् ॥ ५ ॥

सहस्रकर्णदोःपाणिं सहस्रोरः सहस्र भम् ।
विश्वतो धामनिलयं विश्वतो भासुरं परम् ॥ ६ ॥

ततस्तद्भावनाशीलो निर्गुणं परिशीलयेत् ।
निरीहं निर्गुणं शान्तं नित्याकारं निरञ्जनम् ॥ ७ ॥

निर्लेपं निष्क्रियं धाम मनोवाग्म्यामगोचरम् ।
ततस्तदाकारवृत्त्या तदाकारो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८ ॥

ज्ञानं यत्सत्त्वजं प्राहुस्ततस्तस्योदये सति ।
समुदेति परो मोक्षो ह्यविद्याया विनाशतः ॥ ९ ॥

इति ते ज्ञानमुद्दिष्टं परं तत्त्वं सनातनम् ।
ज्ञानी साक्षात् स्वयं रामो ज्ञानं तस्य निदर्शकम् ॥ १० ॥

ज्ञानिभ्यः स्वस्वरूपं स ददात्येव न संशयः ।
विना ज्ञानं न वै मोक्षो ह्यविद्यायाः प्रभावतः ॥ ११ ॥

विना ज्ञानं न वै भक्तिः परब्रह्मनिदर्शिका ।
तस्माज्ज्ञानार्थमनिशमुद्योक्तव्यं च धीमता ॥ १२ ॥

ज्ञाने हि लभते भक्तिं नात्र कार्या विचारणा ।
अथ भक्तिं प्रवक्ष्यामिसाध्यसाधनरूपिणीम् ॥ १३ ॥

पूर्वोक्तज्ञानवांस्तात श्रवणादिपरो भवेत् ।
रामलीलानित्यरसास्वादैकपरिवाञ्छकः ॥ १४ ॥

रामलीलागुणाख्यातिं नामसप्रेममानसः ।
राम धाम च पूर्वोक्तं निर्गुणं ब्रह्म वै विदन् ॥ १५ ॥

रामलीलालोकरूपाद्यखिलं तन्मयं विदन् ।
रामभक्तिं प्रकुर्वाणो रामभक्तिपरो भवेत् ॥ १६ ॥

रामप्रेमपरो भूत्वा रामसायुज्यमाप्नुयात् ।
एषा ते भक्तिरुद्दिष्टा तल्लक्षणमथोच्यते ॥ १७ ॥

क्वचिद्गच्छेत्क्वचित्तिष्ठेत् क्वचिद्धावेत्क्वचिद्धसेत् ।
क्वचित् क्रीडेत्क्वचिज्जल्पेत् क्वचिन्निन्देत् क्वचित्सुखेत् ॥ १८ ॥

नित्यलीलारसानन्दी नित्यलीलैकभावकः ।
हंसः परमहंसश्च परब्रह्ममयो हि सः ॥ १९ ॥

महाभक्तराजः साक्षात्परः श्रीरामोपासकः ।
श्रीनर्मिसीता सहजा स्वनन्दानन्दरूपिणी ॥ २० ॥

रामसम्पन्मयी शेषा शेषाशेषरसात्मिका ।
सा यत्र गुरुतां गच्छेत् ते वै श्रीरामोपासकाः ॥ २१ ॥

समस्तवैष्णवाग्र्याश्च सर्वदैवतपूजिताः ।
न तेषां तुलया कश्चित् ससुरासुरमानवे ॥ २२ ॥

तं दृष्ट्वा प्रणमन्त्येव सकला दैवतोत्तमाः ।
तद्‌गात्रच्छायया स्पृष्टाः पूयन्ते देवता अपि ॥ २३ ॥

तदागमनमात्रेण पूयन्ते यज्ञकोटयः ।
तदुच्छिष्टाशनात्सद्यो ब्रह्मज्ञो जायते नरः ॥
यत्र देशे स्थिता ह्येते स देशो गाङ्गपावितः ॥ २४ ॥

ब्रह्मादयस्तं स्पृहयन्ति सर्वे शक्रादयस्तस्य दासानुदासाः ।
ईशादयो ह्यस्य तुलां कथंचिद् वाञ्छन्ति धर्तुं पुरुषोत्तमस्य ॥ २५ ॥

भरत उवाच

स्वयं स भगवान् रामः परब्रह्मस्वरूपधृक् ।
कथं दशरथस्यैष सदने समवातरत् ॥ २६ ॥

अप्राकृतः प्राकृताकारो ह्यस्मभिः सकलैःसह ।
इति संचोदितो भ्रात्रा लक्ष्मणः प्रत्यवोचत[1] ॥ २७ ॥

पूर्वं प्रमोदवन एव विभाति देवो देव्या स्वयं परमया रमया मया च ।
युक्तः समस्तगुणमङ्गलशीलमूर्तिः स्वानन्दसिन्धुरसराजितदिव्यलीलः ॥ २८ ॥

सरय्वाः पारद्वयोर्यद्धि ब्रह्मत्रिगुणातिगम् ।
श्रीराममहसा व्याप्तं ब्रह्मानन्दरसात्मकम् ॥ २९ ॥

तदाधारीकृत्य महाप्रेमानन्दरसात्मकः ।
श्रीरामलोक इति स विख्यातः श्रीमहोमयः ॥ ३० ॥

सहजालोक इति च ख्यातः कामरसात्मकः ।
यत्र प्रमोदविपिनं सर्वर्तुकुसुमाकरम् ॥ ३१ ॥

सर्वर्तुफलशोभाढ्यं सर्वर्तुसुखसंयुतम् ।
सर्वर्तुरसभोगाढ्यं सर्वर्तुगुणभूषितम् ॥ ३२ ॥

यत्र कामदुघा नीरैः सरयू रसपूरिता ।
रामभक्तिप्रदा साक्षात्सुरसैव तरंगिणी ॥ ३३ ॥

---

१. प्रत्युवाच तम्—बड़ो० ।

तस्यास्तरंगकल्लोलपूरितः सर्वतोदिशम् ।
पवनः कुरुते लोकान् मूर्खानपि चतुर्भुजान् ॥ ३४ ॥

श्रीरामरमणीरम्यकुचचन्दनभाविनी ।
तरंगचन्दनालेपकर्त्री श्रीसरयू सरित् ॥ ३५ ॥

यत्र रत्नाद्रिरुदयत्सानुकान्तिमनोहरः ।
सौवर्णै राजतैश्चापि[1] माणिक्यसुभगैः पुनः ॥ ३६ ॥

शिखरैर्भाजिते शैलो रामक्रीडारसालयः ।
तस्मिन् सहजया युक्तो निभृतं रामचन्द्रमाः ॥ ३७ ॥

कुञ्जाभ्यन्तरकुञ्जेषु नित्यं क्रीडति विभ्रमैः ।
तत्कन्दरासु सततं मणिदीपोज्ज्वलास्वपि ॥ ३८ ॥

पुष्पशय्यासु सुरतं सेवते रामचन्द्रमाः ।
तस्य तुङ्गेषु शृङ्गेषु संध्यातपपिशंगिषु ॥ ३९ ॥

सहजारामयुगलं राजते काञ्चनोज्ज्वलम् ।
तस्य छायाश्रयान्नित्यं सरयू शीतलोदका ॥ ४० ॥

तद्रत्नशिखरच्छाया व्याप्नुते नाकमण्डलम् ।
तस्य गुह्यासु वीथीषु सीतारामौ विराजतः ॥ ४१ ॥

यत्र साकेतनगरी प्रेमानन्दरसात्मिका ।
तस्यां दशरथो राजा रामवात्सल्यवासितः ॥ ४२ ॥

प्रमोदविपिनोच्छिष्टप्रेमभाजनभावितः ।
यत्र सा काञ्चनी भूमिर्माणिक्योपलनिर्मिता ॥ ४३ ॥

यत्र रामसरो नाम विविधोत्पलसुन्दरम् ।
मत्तभ्रमरगुञ्जाढ्या यत्र ताः कुञ्जभूमयः ॥ ४४ ॥

एवं सहजसौन्दर्यं प्रमोदवनमुत्तमम् ।
स्वयं स भगवांस्तत्र सीतयापि मयापि च ।
भाति लीलारसं बिभ्रद् रामः परमसुन्दरः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे[2] भरतलक्षणीये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



---

१. चारु—बड़ौ० ।
२. पूर्वखण्डे (?)—बड़ौ० ।

चतुर्थोऽध्यायः

भरत उवाच

कथं लीलारसं तेने प्रमोदवनचन्द्रमाः ।
एतन्मम समाचक्ष्व श्रीरामप्रिय लक्ष्मण ॥ १ ॥

कथं च सहजादेव्या चिक्रीडे रामसुन्दरः ।
किमेकरूपो बहु वा प्रमोदविपिने रसः ॥ २ ॥

आविर्भावि कथं चात्र प्रमोदविपिनान्तरे ।
स्वैरस्य पूर्णकामस्य निष्कामपदभागिनः ॥ ३ ॥

किमेष सगुणो वोत निर्गुणः पुरुषः परः ।
विश्वात्मा विश्वकर्त्ता च रामो विश्वातिगो गुणैः ॥ ४ ॥

एवं प्रियकथाः शृण्वन्न तृप्यामि प्रियस्य मे ।
स्वयं भगवतो भ्रातुः सुहृदः सख्युरात्मनः ॥ ५ ॥

लक्ष्मण उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र साधु संस्मारितोऽस्मि तत् ।
प्रमोदनविश्रान्तिलीलाविलासिते सखे ॥ ६ ॥

श्रीरामनित्यसंसर्गी सर्वं चानुबभूविथ ।
तथापि तन्मायया त्वं न स्मरस्यद्भुतं हि तत् ॥ ७ ॥

नित्यमस्ति स्वयं रामः प्रमोदविपिने वसन् ।
तथापि ते प्रवक्ष्यामि कालेनाविर्भवं विभोः ॥ ८ ॥

रामस्यैव कलाव्यूहः श्रीमान् नारायणः प्रभुः ।
रमावैकुण्ठनिलयो रमया नित्यसेवितः ॥ ९ ॥

सहजांशस्वरूपिण्या प्रमोदविपिनांशके ।
वैकुण्ठे चिदचिद्रूपस्वरूपानन्दविग्रहः ॥ १० ॥

हरिः संतोषयामास ब्रह्मण्यो ब्राह्मणोत्तमान् ।
ततः सानुशयास्ते वै प्रोचुर्लज्जाननताननाः ॥ ११ ॥

सनकाद्या ऊचुः

अहो अनार्यमस्माकं कर्मैतद् दुष्टचेतसाम् ।
यदीश तावकौ दिव्यौ शप्तौ पार्षदसत्तमौ ॥ १२ ॥

इहापि चागत्य कुभाव एष रोषाधोनामीशसेवातिगानाम् ।
न यत्र माया च मदो न मत्सरो न क्षुल्लकानां गमनं च दृश्यते ॥ १३ ॥

तत्रागता वयं तावच्छ्रीकृपाभाजनत्वतः ।
अनुगृह्यापि नाविद्या श्रीमतापहृता कुतः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच

द्वारपावेव विप्रेन्द्रा इमौ दुर्मदपीडितौ ।
स्वशापहेतुतां यातौ स्वयमेव न संशयः ॥ १५ ॥

ममैवाभिमतार्थाय शाप एष भविष्यति ।
काले करिष्यत इमौ वीरलीलारसं मम ॥ १६ ॥

जन्मभिस्त्रिभिरेतौ वै विशुद्धौ च भविष्यतः ।
त्रिभिश्चैवावतारैर्मे वीरकेली भविष्यति ॥ १७ ॥

इति प्रसाद्य भगवान् महर्षीन् व्यसृजद्विभुः ।
हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षस्तथापरः ॥ १८ ॥

अभूतां भुवने तौ च देवराज्यापहारकौ ।
सर्वत्रैलोक्यदुर्धर्षौ तपोघोरतयोल्बणौ ॥ १९ ॥

यज्ञभागाशिनौ ब्रह्मविष्णुभागादिलोपिनौ ।
स्वयं सूर्यौ स्वयं चन्द्रौ स्वयमिन्द्रौ स्वयं विधी ॥ २० ॥

स्वयं विष्णू स्वयं रुद्रौ स्वयं वह्निप्रजापती ।
स्वयं यमौ स्वयं श्रीदौ स्वयं वरुणतां गतौ ॥ २१ ॥

स्वयं ग्रहौ स्वयं राशी स्वयं ज्योतिःकदम्बकौ ।
लोकपालौ दिशः पालौ देवप्रत्यधिदैवतौ ॥ २२ ॥

स्वर्भूपातालराज्येशौ ब्रह्माण्डक्षयकारकौ ।
तौ च पश्चाद्भगवता निहितौ युद्धकेलिभिः ॥ २३ ॥

एकः श्रीमद्वराहेण नकेसरिणापरः ।
कल्पद्वयं च युयुधे हिरण्याक्षेन केशवः ॥ २४ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि युयुधे हरिः ।
हिरण्यकशिपुना सार्द्धं वलिना वलिनां वरः ॥ २५ ॥

ततस्तौ पातितौ हत्वा निस्तुलेनस्वतेजसा ।
अवापतुः पुनर्जन्म कुम्भकर्णदशाननौ ॥ २६ ॥

यौ तौ लङ्काभटौ ख्यातौ वलवीर्यातिदर्पितौ ।
आर्येणैव निहन्तव्यौ कालौ धारापणधनौ ॥ २७ ॥

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य मुनेः परमतेजसः ।
कालेन ववृधे श्रीमानसुरो घोरतेजसा ॥ २८ ॥

घोरघोरं तपश्चक्रे द्वीपेषु लवणोदधेः ।
सिन्धुतीरे तपश्चक्रे पुण्यारण्येषु चापि सः ॥ २९ ॥

रेवातीरे च गौतम्यास्तीरे सीमातटे तथा ।
काबेरीपुलिने कृष्णातटे गङ्गातटे तथा ॥ ३० ॥

यमुनायास्तटे चापि पुण्यशैलतटेषु च ।
चण्डीशं समुपासीनो देव्या चण्डिकया सह ॥ ३१ ॥

वेदाभ्यासं प्रकुर्वाणस्त्रैलोक्य भयदोऽसुरः ।
आजहार महायज्ञान् वहून सोऽध्वरदीक्षितः ॥ ३२ ॥

त्रैलोक्यं तापयामास तपस्तेजोभिरुद्धतैः ।
लक्षवर्षाणि विषमं स तेपे दुश्चरं तपः ॥ ३३ ॥

शम्भुलब्धवरः प्रायः लङ्काराज्यं महोदयम् ।
त्रैलोक्यं करदीकृत्य जृम्भते राक्षसेश्वरः ॥ ३४ ॥

स याति हरसेवार्थं कैलासे नित्यमूर्ध्वगः ।
लङ्कायाः परतश्चापि देवी श्रीवरदेश्वरी ॥ ३५ ॥

सुवर्णपर्वते भाति तत्सेवार्थं च नित्यशः ।
प्रयाति लोकराज्येन्द्रो रावणो लोकरावणः ॥ ३६ ॥

कदाचिदलसोभूत्वा स इत्थं समचिन्तयत् ।
शंकरं चाम्बिकां देवीमेकीकृत्य क्षणादुभौ ॥ ३७ ॥

स्वगृहे वासयिष्यामि बलादानीय पर्वतम् ।
इत्युक्त्वा सहसोत्थाय कैलासं शिखरं बली ॥ ३८ ॥

लङ्कामागन्तुमारेभे ततः क्रुद्धोऽभवद्धरः ।
किमेष गृहचालोऽद्य नन्दिन् हेतुर्विलोक्यताम् ॥ ३९ ॥

क्रुद्धं हरं समालोक्य नन्दी पर्यचलद्धये[1] ।
ततस्तयोः समभवत् संग्रामो भृशदारुणः ॥ ४० ॥

परस्परप्रजविनोर्नन्दिनो रावणस्य च ।
पाषाणैश्च तथोल्काभिर्वज्रपोतेश्च दारुणैः ॥ ४१ ॥

द्रुमैः शिलाभिः परिघैर्नानायुधनिपातनैः ।
मूर्द्धर्ना वहन् गिरेः शृङ्गं रावणो युयुधे बलो ॥ ४२ ॥

ततः पराजितो नन्दो रावणेन महौजसा ।
महाप्रहारिणा भूयो रणदुर्मदबाहुना ॥ ४३ ॥

भृशं निष्पीडितो नन्दो मूर्छितो न्यपतद्भुवि ।
पृथिव्यां पतितं प्राह मिषन्तं नन्दिनं बली ॥ ४४ ॥

---

१. ह्यमिति वेगवाचकम् ।

रावण उवाच

कपेरिव मुखं बिभ्रत्समायातोऽसि मां युधे ।
किमर्थं पतितो वत्स प्रहारश्लथविग्रहः ॥ ४५ ॥

नन्द्युवाचः

यदा त्वां कपयो वीराः समायास्यन्ति दुर्मदाः ।
तदैव ते वधो भूयाद्यदि सत्यो गुरुः शिवः ॥ ४६ ॥

इति शप्त्वा गते तस्मिन् हरः पर्यंकरोद्धरम् ।
येनातिदुर्भरं शैलं सद्यस्तत्याज रावणः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये रामजन्मोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



पञ्चमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

लब्धशापो निववृते रावणः स्वपुरीं गतः ।
त्रैलोक्यराज्यसम्मत्तो भुजवीर्यबलोन्मदः ॥ १ ॥

कदाचित्तस्य वै दूतौ दुष्टौ सुमुखदुर्मुखौ ।
अपश्यतां सिन्धुतीरे तपस्यन्तीं सुलोचनाम् ॥ २ ॥

तडित्काञ्चनगौराङ्गीमीषद्धास विराजिताम् ।
रोचयन्तीं दिशश्चाष्टौ गौरीमिव रमामिव ॥ ३ ॥

चन्द्राननां सुनासाढ्यां भालभाग्यविभूषिताम् ।
साक्षात्कालभुजङ्गीव वहन्तीं वेणिकां पराम् ॥ ४ ॥

हेमकुम्भस्तनीं देवीं कमलाधिकसौरभाम् ।
गम्भीरकूपान्तर्नाभिर्निम्नरोमावलीलताम् ॥ ५ ॥

वलित्रयतरंगाढ्यामद्भुतां सरसीमिव ।
गण्डयोर्मुकुराकारां बाह्वोः कञ्जबिसोपमाम् ॥ ६ ॥

ऊर्वोश्च हेमकदलीं पदयोः पद्मकोमलाम् ।
नखेषु चन्द्रकलिकामङ्गुलीषु प्रवालभाम् ॥ ७ ॥

सर्वावयवशोभाढ्यां विलसन्तीं शुभैर्गुणैः ।
तौ वीक्ष्य रावणायामूमाचख्यतुरनन्तरम् ॥ ८ ॥

दूतावूचतुः

प्रभो काचन देवी वा राक्षसी मानुषी च वा।
गान्धर्वी नागकन्या वा शैली वा वनदेवता ॥ ९ ॥

सागरस्थसुतावापि सिन्धुद्वीपे तपस्यति ।
न तस्यास्तुलया काचिदृष्टा वापि श्रुताभवे ॥ १० ॥

सर्वोपमा सुरूपाङ्गी सर्वावयवसुन्दरी ।
सर्वसौन्दर्यपाथोधिवाङ्मनोगोचरप्रभा ॥ ११ ॥

सहस्रचन्द्रज्योत्स्नेव तस्या वदनचन्द्रिका ।
कोटिरत्नप्रभातुल्या तस्याः पादनखच्छविः ॥ १२ ॥

कोटिनक्षत्रमालेव तस्याः सर्वाङ्गगा छविः ।
विभाति चञ्चलापाङ्गी तपस्यन्त्यपि सागरे ॥ १३ ॥

नैतद्रूपं विजानीमः किमिच्छन्ती तपस्यति ।
प्रायो नास्याः समः कश्चित्रिषु लोकेषु वै वरः ॥ १४ ॥

ब्रह्मा द्विजो वराकश्च कर्मकाण्डपरश्च सः ।
विष्णुर्वैराग्यशाली च ज्ञानी जगति निःस्पृहः ॥ १५ ॥

रुद्रः श्मशानचारी च तपस्वी भस्मधूसरः ।
भूतसंगी त्रिनेत्रश्च जटी प्रकृतिभीषणः ॥ १६ ॥

अन्ये वराकाः किं देवास्त्वद्योग्या केवलं हि सा ।
त्वयैव गृह्यतां नाथ पाणिग्रहविधानतः ॥ १७ ॥

योषिद्रत्नं वरं दिव्यं न त्व संत्यज्यतां प्रभो ।
इत्युक्तो रावणस्ताभ्यां पातस्तत्र स्मरोद्धुरः ॥ १८ ॥

यत्र सा सुन्दरी देवी सिन्धुमध्ये तपस्यति ।
तद्रूपदर्शनोद्भूतस्मरनाराचपीडितः ॥
तामादातुं यतितवानतिदुर्धर्षविग्रहाम् ॥ १९ ॥

रावण उवाच

का त्वं तपस्यसे सुभ्रु किमर्थं च वरानने ।
कश्च ते जनकः ख्यातः किमर्थं भजसे न माम् ॥ २० ॥

त्वादृशी सुन्दरी देवि मम शोभिष्यसे गृहे ।
अहं त्रैलोक्यनाथोऽस्मि लङ्कायाः अधिपः स्फुटम् ॥ २१ ॥

त्वामहं हि ग्रहीष्यामि पाणिग्रहणलीलया ।
कोऽन्यो मयि स्थिते भूमौ भविता च पतिस्तव ॥
इत्युक्ता तेन सा क्रुद्धा सक्रोधमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

स्त्र्युवाच

स्वयं लक्ष्मीरहं तावत्तपस्यामि गरीयसे।
वराय विष्णवे सर्वत्रैलोक्यस्थितिहेतवे॥ २३॥

न हि तस्मात्परो भावः श्रुतो दृष्टोऽथवा क्वचित्।
त्रिजगज्जनितं तस्मात् पाल्यते तेन लीलया॥ २४॥

तेनैव ह्रियते भूयः स्वच्छन्दनिजकेलिना।
न तत्समश्चाभ्यधिकस्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ २५॥

स्वयं स भगवान् साक्षात् पूर्णः स्वगुणमङ्गलः।
कल्याणरूपो भक्तानामभक्तानां निषूदनः॥ २६॥

असुराणां दानवानां दैत्यानां च निषूदनः।
विश्वाधारोऽतिगम्भीरो समुद्रश्च पिता मम॥ २७॥

योऽसौ तव पुरीरक्षां करोति परिखायतः।
त्वं चासुरो नीचबुद्धिः प्रकृत्या राक्षसः खरः॥ २८॥

तत्रापि विमुखो विष्णोर्वेदब्राह्मणलोपकः।
क्व तत्र गण्यसे यत्र ब्रह्माद्या अप्यनादृताः॥ २९॥

मा मैवं संस्पृश रिपोभावदुष्टेन पाणिना।
इत्युक्तो रावणः क्रुद्धः प्रत्युवाच समुद्रजाम्॥ ३०॥

अये भ्रान्ताशये नूनं केन त्वमसि वञ्चिता।
त्रैलोक्येशमनादृत्य दीनं स्पृहयसे वरम्॥ ३१॥

एवं चेत्तर्हि सुमुखि मद्देशे किं तपस्यसि।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगन्मम वशानुगम्॥ ३२॥

यदि त्वमेका न वशे तर्हि शोच्यासि सम्प्रति।
त्वां बलेनैव नेष्यामि रुदन्तीं स्वात्मदोषतः॥ ३३॥

स्त्रीणां खलु दृढो दोषः पुरुषेण निवार्यते।
ततस्तमाह सा देवी निःश्वसन्ती रुषारुणा॥ ३४॥

दुष्ट त्वं मां तपस्यन्तीं निवारयसि किं वृथा।
कुतो न वारयसि तान् सप्तर्षीन् हि तपस्यतः॥ ३५॥

ये त्वां दहेयुः सहसा धर्मकर्मैकलोपिनम्।
किं चाप्यजनिता कश्चित्तव प्राणनिषूदनः॥ ३६॥

स एव भविता देवो मम लोकोत्तरो वरः।
मा ज्वालीर्गुरुगर्वेण तामसेनान्ध तामस॥ ३७॥

इत्युक्त्वा वचनं देवी तिरोभूता तदग्रतः।
प्रमोदविपिने रम्ये प्रादुर्भावं तदाकरोत्॥ ३८॥

आनन्दिनी नन्दनाख्यगोपराजस्य वै गृहे ।
राजिका गोपमहिषी गर्भरत्नमहोदया ॥ ३९ ॥

माघे मासि सिते पक्षे पञ्चम्यां शुभवासरे ।
अश्विनीशुभनक्षत्रे शुभयोगे शुभोदये ॥ ४० ॥

ततः प्रसन्नमखिलं जगदासीत् समंततः ।
रावणारिपराभूताः सुराश्चासन् सुनिर्वृताः ॥ ४१ ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि जगुर्गन्धर्वनायकाः ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४२ ॥

तदाधिदैविकः कालः प्रादुर्भावितवान् गुणान् ।
विकासं लेभिरे सद्यो लतास्तरव एव च ॥ ४३ ॥

सरांस्युत्फुल्लपद्मानि सुगन्धिसलिलानि च ।
दिदीपिरेऽग्नयश्चैव यज्ञशालासु दक्षिणम् ॥ ४४ ॥

ववुः सुगन्धयो वाताः सरयूवीचिशीतलाः ।
एवं जगत्प्रमोदाय तज्जन्मदिवसोऽभवत् ॥ ४५ ॥

नन्दनस्य गृहे साक्षात्स्वयं लक्ष्मीर्यदाभवत् ।
तदा समृद्धिरभवद् गोकुले रम्यसम्पदि ॥ ४६ ॥

व्रजः सर्वश्रिया युक्तः सर्वसम्पत्समृद्धिमान् ।
माङ्गल्यासुखितपोश्चापि भाविमाङ्गल्यसूचकः ॥ ४७ ॥

सा संजाता व्रजे स्वांशैर्व्रजस्त्रीभिरनेकधा ।
उभयोस्तीरयोर्ग्रामेष्वाभीराणां गृहे गृहे ॥ ४८ ॥

गोप्यः कमलपत्राक्ष्य ऊढाश्चैवापि कन्यकाः ।
रामलीलाविनोदार्थं देवानां च तथाङ्गनाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये रामजन्मोपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

❀

षष्ठोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

एवमेव मया पृष्टः श्रीरामो रसवर्द्धनः ।
यदाह तत्ते वक्ष्यामि रहस्यं रसवर्द्धनम् ॥ १ ॥

राम उवाच

नित्यं स्थितोऽप्यहं तात प्रमोदविपिनान्तरे ।
अधुनाऽऽविर्भविष्यामि भक्तानां कार्यसिद्धये ॥ २ ॥

अवतारार्थसिद्ध्यर्थे च साकेतपुरकेलये ।
इत्युक्त्वा रघुवंशेऽस्मिन् प्रादुर्भूतोऽद्य सम्प्रति ।
अस्माभिः सहितो भाति प्रमोदवनचन्द्रमाः ॥ ३ ॥

पूर्वं जातो दशरथगृहे रावणस्याथ भीत्या
श्रीमाङ्गल्या सुखितसदने रक्षितोऽस्याविशेषम् ।
स्नेहार्द्राभ्यांवसतिमधुरो भूरिभावेन ताभ्या
माभीरीभिः प्रणयखचितो भूरिभावोपयुक्तः ॥ ४ ॥

आनन्दाब्धिर्नटवरवपुर्नन्दनापत्यरत्नं
दृष्ट्वा जोवनप्रकृतिसहजां श्रीमतीं मोदिनीं ताम् ।
अन्यां लीलां स्वजनसुखदां कर्त्तुमिच्छुः स्वशक्त्या
भर्त्तेदानीं दशरथगृहे शोभते प्राप्तएषः ॥ ५ ॥

अस्यानुरोधात्सहजापि देवी प्राप्ता निजांशेन निमेश्च वंशे ।
राजाधिराज्ञोजनकस्यगेहे सुलोचनागर्भमनोज्ञरत्नम् ॥ ६ ॥
रम्यातिरम्ये मिथिलाख्यदेशे सुवर्णभूमौ खलु यज्ञवेद्याम् ।
माणिक्यदिव्यत्कलशान्तरालतः समुद्गता कोटितडिच्छदेव ॥ ७ ॥

अथाविरासन् सरितो नव शीतसुधोदकाः ।
त्रियुगा कमलेशी च गण्डक्यप्यद्यवारिणी ॥ ८ ॥

द्युम्ना घोषवती चैव वनघोषा च सप्तमी ।
अष्टमी च स्वयं लक्ष्मीः कौशिकी नवमी स्मृता ॥ ९ ॥

सुवर्णहलकृष्टायां भूमौ वेद्यां मखस्य च ।
सुवर्णकलशीमध्याज्जलधारा विनिर्ययुः ॥ १० ॥

तासां मध्ये विस्फुरन्ती कोटिचन्द्रार्कदीधितिः ।
सद्यः प्रादुरभूद्देवी सहजा जनकालये ॥ ११ ॥

रामप्रिया या प्रथमं प्रमोदवनकुञ्जगा ।
नवभिर्दिव्यधाराभिरभिषिक्ता समंततः ॥ १२ ॥

रत्नपीठस्थिता लोकमहासाम्राज्यभाजनम् ।
तस्यामभ्युदितायां तु मुमुदे जनको नृपः ॥ १३ ॥

राज्ञी सुनयना वापि हर्षोत्फुल्लाननाभवत् ।
याज्ञवल्क्यश्च भगवान् दारास्तस्य महौजसः ॥ १४ ॥

अरुन्धती वशिष्ठश्चाप्यहल्या गौतमस्तथा ।
शतानन्दश्च योगीशो नव योगीश्वरास्तथा ॥ १५ ॥

निवसन्तो नित्यमेव जनकस्यालये चिरात् ।
ददृशुस्ते शुभं तस्या जन्म कर्म गुणान्वितम् ॥ १६ ॥

धवले माधवे मासि नवम्यां मङ्गले दिने ।
शुभे भद्राख्यनक्षत्रे शुभयोगे च जानकी ॥ १७ ॥

ऊर्मिलापि ततो रत्नकलशाच्चक्र उद्भवम् ।
माण्डवीश्रुतकीर्तिश्च वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ १८ ॥

अथो जनकराजस्य सदने दुन्दुभिरवाः ।
पटहध्वनियश्चापि वितेनुर्महतीं मुदम् ॥ १९ ॥

देवदुन्दुभयश्चापि नेदुरव्याहतक्रमाः ।
सर्वं जगत्सुखमासीदानन्दामृतवर्षणात् ॥ २० ॥

कञ्जद्रुमाः पल्लविताः समंततो वसन्तलक्ष्मी समवातरद्भुवि ।
समञ्जरीकैस्तरूभी रसालैश्चम्पेयाद्यैर्विभरे पुष्पराशिः ॥ २१ ॥

धरणी सहसाऽऽगम्य पृथ्वीलोका स्मिताननना ।
सुवेशं रूपमास्थाय जनकस्यापुरःस्थिता ॥ २२ ॥

रत्नपर्यङ्किकामध्यनिवषण्णां स्वसुतां पराम् ।
कमलामर्पयन्त्यस्मैप्रोवाच मुनिमण्डले ॥ २३ ॥

धरण्युवाच

भूरहं भगवत्पादकमलस्पर्शजाङ्कुरा ।
ममेयं हृदयात्सारभूता प्रेममयाकृतिः ॥ २४ ॥

समुद्गता नाम सीता मया तुभ्यं प्रदीयते ।
इयं श्रीः श्रीरामप्रेमभाजनं रक्ष्यतां त्वया ॥ २५ ॥

अनया ज्ञानगम्यस्य प्रेम्णा पारंगतो भवान् ।
प्राप्स्यसे तत् परंब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रं रसिकं सर्वावतारसागरम् ।
स समायास्यति वै हि भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ २७ ॥

चतुर्भिरंशैः संजाता तेनेयं परमेश्वरी।
रक्ष्यतां जनकाधीश कलधौततनुः सुता ॥ २८ ॥

इत्यर्पयित्वा जनकाय मेदिनी तिरोबभूव द्रुतमेव देवी।
नैम्यः पुनर्भूमिपतिः प्रियायै समर्पयामास सुलोचनायै ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोपाख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



सप्तमोध्यायः

लक्ष्मण उवाच

ततः सुनयना देवी सम्प्राप्य नृपतेः करात्।
कन्यारत्नं प्रमुदिता बभूव महिषोवरा ॥ १ ॥
ततस्ताः सहजासख्यः सहर्षाः सरितो नव।
ऊचुर्जनकराजानं सीतासंगमलालसाः ॥ २ ॥

त्रियुगोवाच

अहमस्याः सखी नित्यं निवसामि च सन्निधौ।
अस्याः पिता त्वं संवृत्तो ममापि च तथैव हि ॥ ३ ॥

कमलेश्युवाच

अहं मन्दरशैलस्य कन्या या कमलेश्वरी।
सहजाया नियसखी प्रादुर्भूता सहानया ॥
यथा स्याः साम्प्रतं तद्वन्ममापि त्वं पिता भव ॥ ४ ॥

गण्डक्युवाच

सालिग्रामशिलाक्षेत्रे गण्डक्यस्मि महानदी।
सहजायाः सखी तेन ममापि त्वं पिता नृप ॥ ५ ॥

अघवारोवाच

अहमस्याः सखी काचिदघवाराभिधा सरित्।
तव कन्याहमधुना मत्सखी सहजा पितः ॥ ६ ॥

द्युम्नोवाच

अहं द्युम्ना नदी तात सहजायाः परा सखी।
यथा त्वमस्या जनको ममापि जनको भव ॥ ७ ॥

घोषवत्युवाच

अहं तपनशैलस्य सुता घोषवती नदी ।
सहजायाः सखी तेन ममापि त्वं पिता भव ॥ ८ ॥

वनघोषोवाच

अहमुत्तरशैलस्य तनया वनघोषिणी ।
एतस्यास्तु पिता तद्वन् ममापि त्वं पिता भव ॥ ९ ॥

स्वयं लक्ष्मीरुवाच

अहं सीतांशभूतास्मि सदा संनिधिवर्तिनी ।
आवयोर्विदितः स्वामी श्रीरामो रघुकुलप्रियः ॥ १० ॥

तदाज्ञया भूतलेऽस्मिन्नवतीर्णे निवेदय ।
यथा त्वं जनकश्चास्या ममापि च तथा भव ॥ ११ ॥

कौशिक्युवाच

अहं कुशिकराजस्य तनया कौशिकीति सा ।
अवतीर्णानया साकं ममापि त्वं पिता भव ॥ १२ ॥

जनक उवाच

कदा वः संगमो जातो राघवप्रियमानया ।
क च वः प्रेमसंवृद्धं भवतीनां पणो यतः ॥ १३ ॥
एकत्रैव निवासोऽभूद्विश्लेषो न कदाचन ।
किं कृतं सुकृतं चापि येन श्रीसख्यमीदृशम् ॥ १४ ॥
श्रीर्नाम ब्रह्मणो धर्मः परस्यानन्दविग्रहः ।
ब्रह्मानन्दस्वरूपेयं क प्राप्या प्राकृतैर्जनैः ॥ १५ ॥
यथा रामस्तथैवेयमित्याह धरणी च माम् ।
इत्युक्ता जनकेनैताः सरितो नव शीतलाः ॥
ऊचुर्जनकराजाय कथानकमनुत्तमम् ॥ १६ ॥

त्रियुगोवाच

पितॄणां मानसी कन्या मेनाया अग्रजास्म्यहम् ।
मेना हिमाद्रिं चकमे जाताहं च तपस्विनी ॥ १७ ॥

वर्षवातातपक्लेशसहा मुनिषु मानिनी ।
कायक्लेशं प्रकुर्वाणा चचार परमं तपः ॥ १८ ॥

मदुग्रतपसा राजन् सर्वे देवाश्चकम्पिरे ।
त्रैलोक्यं तापितमभूत्ततो ब्रह्मा समागतः ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थमित्थं चार्वङ्गि चरसे दुस्तरं तपः ।
ब्राह्मं वाप्यैन्द्रमथवा पदं कामयसे किमु ॥ २० ॥

तदहं ब्रह्मणो वाक्यं श्रुत्वा प्रोन्मीलितेक्षणा ।
उक्तवत्युत्तरं राजन् यथा ब्रह्मा प्रसादितः ॥ २१ ॥

नाहं ब्राह्मं तथैवैन्द्रं कामयेऽन्यस्य वा पदम् ।
रामस्य पदमिच्छन्ती यदगम्यं मुनेरपि ॥ २२ ॥

इत्युक्ते सहसा ब्रह्मा प्रसन्नोऽभूज्जगत्पतिः ।
तपोऽस्त्वित्याशिषं दत्त्वा जगाम निजमालयम् ॥ २३ ॥

वटुवेशधरो विष्णुरन्ततो मामुपागतः ।
कृष्णाजिनधरो दण्डी प्रोवाच स्थिरवद्वचः ॥ २४ ॥

वटुरुवाच

अये कमलपत्राक्षि कलधौततनुप्रभे ।
कोकस्तनि सुजघने किं कामा चरसे तपः ॥ २५ ॥

त्वादृशी हंसगमना शिरीषदलकोमला ।
कस्यचिद्धरणीशस्य योग्यासि महिषीपदे ॥ २६ ॥

यत्र ते चन्दनाढ्येन काश्मीरगुरुसौरभी ।
निर्वर्तयति संतापं (क) ते वपुर्धूलिधूसरम् ॥ २७ ॥

हंत कृष्णाजिनच्छेदो न दुःखाकुरुते किमु ।
शरीरं ते सरोजासि शिरीषादपि कोमलम् ॥ २८ ॥

हन्त ते तपनस्पर्शो ग्रीष्मकालाति दुःसहः ।
बाधते न शरीरं किं कमलादपि कोमलम् ॥ २९ ॥

हंत ते अक्षिणी धर्मव्याकुलत्वमुपागते ।
कस्य सामन्त राजस्य विषयत्वं करिष्यतः ॥ ३० ॥

अहो अधरबिम्बस्ते दिनपातातिमेचकः ।
बाहू च कृष्णाजिनतो दूषितौ किणभूषितौ ॥ ३१ ॥

हंत ते वेणिका रम्यकुसुमस्तबकोचिता ।
भस्मस्तोमेन ग्रथिता कस्य नो कुरुते व्यथाम् ॥ ३२ ॥

ईदृशं दुश्चरं घोरं सुरासुरजनाद्भुतम् ।
तपश्चरसि वामाक्षि न ते कामोऽभिलक्ष्यते ॥ ३३ ॥

ब्रह्मेन्द्रादिसुरौघास्ते आज्ञायावशवर्तिनः ।
कस्य देवस्य सापेक्षा चरसे दुश्चरं तपः ॥ ३४ ॥

एतत्स्वरूपायोग्यं ते तन्वि तीव्रतरं तपः ।
यस्य प्रिया त्वं भविता तस्य श्रीर्भविता गृहे ॥ ३५ ॥

अहं मुनिरुदासीनस्तपसा तेऽस्मि चालितः ।
इति श्रुत्वा वढोर्वाक्यमहमुक्तवती वचः ॥ ३६ ॥

नाहमिन्द्रादिपदवीं न वा तन्महिषीपदम् ।
कामये किंतु गोविन्दचरणाब्जरजो भृशम् ॥ ३७ ॥

ब्रह्मादिभिः सहेशानैर्देवैरपि सुदुर्लभम् ।
ततो मां स वटुः प्राह प्रहसन् रम्यया गिरा ॥ ३८ ॥

वटुरुवाच

हंत ते हृदयं तन्विस्वाराज्यसुखभागिनाम् ।
महिषीत्वमनादृत्य विष्णुं कामयते कथम् ॥ ३९ ॥

स्त्रीणां हि स्वपतिर्विष्णुर्येन पाणिग्रहो भवेत् ।
लब्ध्वा तं सर्वतः शुद्धं किं कार्यं विष्णुना स्त्रियः ॥ ४० ॥

एकान्तचारी विषयैर्वियुक्तो विरक्तचित्तो यतिभिः सम्परीतः ।
तत्रापि लोलां स्त्रियमेकां दधानः किं ते प्रियत्वे सुतनु विष्णुरर्हः ॥ ४१ ॥

यः साम्राज्यपदं याति धरणीमण्डलेश्वरः ।
अष्टादशद्वीपपतिः स्मरसुन्दरविग्रहः ॥ ४२ ॥

कौतुकी स्त्रीप्रियाचारो वेशालंकारभूषितः ।
प्रेमानुरागनिपुणः स ते भर्तृपदोचितः ॥ ४३ ॥

साम्प्रतं ब्रह्मणः सृष्टौ देवासुरमनुष्यकैः ।
गन्धर्वैर्ज्योतिषां चक्रैश्चन्द्रसूर्यादिभिस्तथा ॥ ४४ ॥

अहिभिर्भोगशोभाढ्यैर्मणिभूषितमस्तकैः ।
राजन्यैः क्षत्रियश्रेष्ठैर्वर्णैर्विप्रादिभिः पृथक् ॥ ४५ ॥

महती रचिता शोभा तेष्वेकं वृणु कंचन ।
वरुणं च वरं प्राप्य सुन्दरं जलदैवतम् ॥ ४६ ॥

रत्नमालाविभूषाढ्यं नित्यं मोदिष्यसे चिरम् ।
इन्द्रं वापि वरं प्राप्य सर्वदेवगणेश्वरम् ॥ ४७ ॥

ऐरावते समासीना मेघमण्डलगामिनी ।
द्वितीया दामिनीवत्त्वं भविष्यसि महाप्रभा ॥ ४८ ॥

हवींषि श्रोत्रियागारेष्वहर्निशमवाप्स्यसि ।
यथा त्वं यास्यसि प्रेम्णा न तथास्य प्रिया शची ॥ ४९ ॥

अग्नेश्चेत्त्वं वधूर्भूत्वा यास्यसि प्रेमपात्रताम् ।
तदा स्वाहास्वधातोऽपि श्रेष्ठैव त्वं भविष्यसि ॥ ५० ॥

अथवा चेत् कुबेरस्य पत्नीभावं गमिष्यसि ।
तदा गन्धर्ववर्याणां स्वरानाकर्णयिष्यसि ॥ ५१ ॥

स सखा भालचन्द्रस्य शंकरस्य महात्मनः ।
तेन सार्धं च कैलासं गन्तासि मृगलोचने ॥ ५२ ॥

तत्र द्रक्ष्यसि वैकुण्ठादधिकं रामणीयकम् ।
अथवा शङ्करस्यैव पत्नी चेत्त्वं भविष्यसि ॥ ५३ ॥

तदा गङ्गामृडानीभ्यां भविता प्रेयसी परा ।
सूर्यं वापि ग्रहाधीशं चन्द्रं वा तारकापतिम् ॥ ५४ ॥

वरं सम्प्राप्य भवती प्राप्स्यसे परमं सुखम् ।
एषामन्यतमं चैव वरं वृणु सुलोचने ॥ ५५ ॥

भोगेषु चेत् सुकामत्वं नो चेद्विष्णुं वरिष्यसि ।
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् बभाषेऽहं वटुद्विजम् ॥ ५६ ॥

नाहं वटो भविष्यामि क्षरेषु निरता क्वचित् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं क्षरमेव न संशयः ॥ ५७ ॥

अक्षरं तत्परं ब्रह्म गणितानन्दमेव तत् ।
तस्मादगणितानन्दं परं ब्रह्माभिकामये ॥ ५८ ॥

तत्पुनः कृष्णरामाख्यगोविन्देति परं महः ।
अर्वाग्यतः प्रपञ्चोऽयं नामरूपफलात्मकः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अष्टमोऽध्यायः

त्रियुगोवाच

इत्युक्ते तु मया वाक्ये भगवान् कमलेक्षणः ।
प्रादुरासीद्वटुः साक्षादादिनारायणो हरिः ॥ १ ॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारीशार्ङ्गविभूषितः ।
पल्लवारुणापादाब्जनखचन्द्रमरीचिभाः ॥ २ ॥

मणिमाणिक्यमञ्जीरराजहंसनिषेवितः ।
सरत्नकिंकिणीजालनतगुल्फयुगान्वितः ॥ ३ ॥

सुसूक्ष्मकटिनिर्वद्धपीताम्बरसमावृतः ।
रत्नकाञ्चीगुणोन्नद्धकटिसूत्रविराजितः ॥ ४ ॥
सरिदावर्तगम्भीरनाभीपङ्कजभूषितः ।
वलित्रयसुशोभाढ्यः सिंहविक्रमणोदरः ॥ ५ ॥
रामेराजिलताशालिचित्रभः सोदरोदरः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीसंगवामपार्श्वविराजितः ॥ ६ ॥
भृगुपादमहोराशिमहापादविभूषितः ।
कण्ठासक्तमहाज्योतिःकौस्तुभाख्यविराजितः ॥ ७ ॥
पीताम्बरपरीधानो वनमालाविभूषितः ।
मधुरस्नेहविस्मरपूर्णचन्द्रसमाननः ॥ ८ ॥
करुणार्णवकल्लोलदृक्तरङ्गप्रभावितः ।
रत्नमाणिक्यकुन्दादिपराभवरदप्रभः ॥ ९ ॥
सुवर्णसूत्रोपवीती स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
परिणद्धवृषस्कन्धस्तालप्रांशुर्महाप्रभुः ॥ १० ॥
कुण्डलच्छविसंदोहचुरिताच्छकपोलभाः ।
बिम्बाधरप्रभाशोणदशनेन्दुसितप्रभः ॥ ११ ॥
राकानिशागमद्योतपराभवपरायणः ।
रत्नमालासमाबद्धधम्मिलमधुराकृतिः ॥ १२ ॥
स्फुरन्मकरिकापत्रललाटार्धनिशाकरः ।
नासामणिमनोज्ञश्रीभ्रूचापशरलोचनः ॥ १३ ॥
प्रसन्नः पुण्डरीकाक्षो वामाङ्गश्रीविभूषितः ।
मुक्ताहारसमालम्बी वैजयन्तीभरान्वितः ॥ १४ ॥
मलयागुरुकाश्मीरचन्दनालेपसुन्दरः ।
ईदृशं तं समालोक्य कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥ १५ ॥
मोहिता कामभावेन नाहं वक्तुं क्षमाभवम् ।
ततो मां भगवानूचे स्मयमान इदं वचः ॥ १६ ॥
एष ते दुर्घटो भूरि मनोभिलषितो वरः ।
यन्मां कामयसे तन्वि वरत्वेन श्रियः पतिम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मादयोऽपि मां देवा दास्यत्वेन भजन्ति च ।
श्रियोऽन्या स्त्री कथं सक्ता लब्धुमीदृग्विधं वरम् ॥ १८ ॥
कथं च निष्फलो भूयान्मयि सम्प्रार्थितो वरः ।
तस्मात्सारस्वते कल्पे त्रिंशे त्रेताभिधे युगे ॥ १९ ॥
रामावतारे सम्प्राप्य कृतकृत्या भविष्यसि ।
इयं मे सहजा लक्ष्मीः साक्षाद्रामाङ्गसङ्गिनी ॥ २० ॥

तया सहितया[1] भूत्वा मम तोषं करिष्यसि ।
अस्याः सख्यं परिप्राप्य मम सङ्गमवाप्स्यसि ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः स्वयमन्तर्दधे विभुः ।
यत्र यत्र भवत्येषा तत्र तत्र भवाम्यहम् ॥ २२ ॥

प्रमोदविपिने चैषा सहजानन्दिनी स्वयम् ।
प्रमोदविपिने नाहं नन्दिनी नाम तत्सखी ॥ २३ ॥

इदानीं त्रियुगा नाम जातास्याः सख्यहं नृप ।
रक्षणीया त्वया भद्र कन्यावन्निमिभूपते ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



नवमोऽध्यायः

कमलेश्युवाच

पुरा प्रमोदविपिने गोपराजसुता त्वियम् ।
तत्र रामेण कामेन रतिवन्मोदतेतराम् ॥ १ ॥

रमणीयः सदा रामो रमणीनां रमापतिः ।
भजते कोटिरूपेण या साक्षात्सहजेश्वरी ॥ २ ॥

इयं हि सहजा नाम रामस्यात्मा चिदाकृतेः ।
सामरस्यानन्दसिन्धुलहरीगणनिर्वृता ॥ ३ ॥

सम्पूर्णपुरुषो देवः पुरुषोत्तम ईश्वरः ।
प्रमोदविपिने कुञ्जे शृङ्गारसुरपादपः ॥ ४ ॥

तेनाहं संगता तद्वच्छ्रूयतां राजपुङ्गव ।
अहं शातातपमुनेः संगवो नाम बालकः ॥ ५ ॥

अश्रौषं रामचारित्रं गीयमानं पुरातनैः ।
कपिलो देवलो व्यासो वसिष्ठः पुलहः क्रतुः ॥ ६ ॥

अत्रिश्चाङ्गिरसः कण्वश्च्यवनो नारदो भृगुः ।
अष्टावक्रः पुलस्त्यश्च कुम्भजः शंकरो रविः ॥ ७ ॥

---

१. महानया इति पाठभेदः ।

स्वयंभूर्वै तथा ब्रह्मा तथैवान्ये प्रजेश्वराः ।
पृथक् पृथक् संहिताभिरेकं राममधीयते ॥ ८ ॥

तेषां ताः संहिताः श्रुत्वा रामे मतिरजायत ।
ऋक्सामयजुषामन्तेष्वेको रामः प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

पदैर्वाक्यैर्महावाक्यैर्ग्रन्थेन च समंततः ।
श्रीरामः केवलं ब्रह्म समासव्यासतः स्मृतः ॥ १० ॥

इत्येवं जायमाना सा श्रीरामविषया मतिः ।
परं प्रेमाणमासाद्य व्यजृम्भत हृदन्तरे ॥ ११ ॥

ततो वियोगात् परमस्य पुंसः पत्युर्वियोगादिव सुन्दरीणाम् ।
दशा ममाजायत भावपूर्णा प्रमोदकुञ्जैकविहारशीला ॥ १२ ॥

ततस्तपःसमाधिभ्यां कर्मभिर्ज्ञानसम्पदा ।
रहितो विच्युतः स्वस्य वर्णाश्रमविधेरपि ॥ १३ ॥

अभ्रमं पृथिवीं सर्वां जडोन्मत्तपिशाचवत् ।
व्यचरं नाचरं किंचित् सदसद्वा स्खलन्मतिः ॥ १४ ॥

श्रीमत्प्रमोदकुञ्जस्थः श्रीरामप्रेमविह्वलः ।
आयुःशेषं वीक्षमाणो रामनामपरायणः ॥ १५ ॥

रत्नशैलैकदेशे तु मुक्तवान् पाञ्चभौतिकम् ।
ततो मन्दरशैलस्य कन्यात्वं समुपेयिवान् ॥ १६ ॥

तत्र दृष्टवती रामं क्रीडन्तं शिखरोत्तमे ।
कदाचित् स्वपितुर्मूर्द्ध्नि क्रीडन्तीदिव्यविग्रहा ॥ १७ ॥

उद्दामकौस्तुभविराजितकण्ठदेशं भाले स्फुरन्मृगमदा मकरीमनोज्ञम् ।
सीतासहायमनुजेन निषेवितांसं पीताम्बरं मधुरमेचकमेघवर्णम् ॥ १८ ॥

उत्फुल्लपङ्कजदलायतलोचनान्तर्निर्यत्कटाक्षशरपातविदीर्णधैर्यम् ।
माद्यत्पुलिन्दशवराचरभिल्लभार्यामध्यस्थितकृतमदामृगयाविनोदम् ॥ १९ ॥

तं वीक्ष्यचकमे पश्चात् कामतत्त्वेन कामिनम् ।
स मां कामश्लथां दृष्ट्वा अन्तरज्ञो महाशयः ।
उवाच वचनं देवः स्मयमानः शनैः शनैः ॥ २० ॥

श्रीराम उवाच

अहं जानामि ते भावं भावज्ञोऽखिलचेतसाम् ।
न पुनः सुलभोऽयं ते मनसा कामितो वरः ॥ २१ ॥

पुरा यत्ते कृतं मह्यं कीर्तनश्रवणादिकम् ।
तत्प्रभावादिदं प्राप्तं मद्दर्शनमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

ब्रह्मादयोऽपि यत्प्राप्त्यै तेपिरे दुःसहं तपः।
इयं हि सहजानन्दा मम वामाङ्गसङ्गिनी ॥ २३ ॥

सीता रावणवाणाद्या मुमुहुर्यद्विलोकनात्।
नेतां विना रमे क्वापि कामतत्वेन योषिति ॥ २४ ॥

इयं परब्रह्मणो मे परब्रह्मस्वरूपिणी।
एकमेव द्विधा रूपं क्रीडया विद्धि मां परम् ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे रामः प्रियया सह तत्क्षणात्।
अन्तर्हिते परे पुंसि बभूव महती व्यथा ॥ २६ ॥

रिक्तयामास च मयि तूणीरं पञ्चसायकः।
कामबाणोद्भवां पीडां बिभ्राणा मूर्छितापतम् ॥ २७ ॥

ततो मां पर्वतपतिर्विचिन्वन् मन्दरो गतः।
यत्राहं संस्थिता घोरे कानने शिखरोत्तमे ॥ २८ ॥

तत्र मां पतितां भूमौ निःश्वसन्तीं सुमूर्छिताम्।
उत्थाप्य दोर्भ्यां दीर्घाभ्यां परिरेभे दयातुरः ॥ २९ ॥

मूर्ध्न्याऽऽघ्राप सुधाविन्दून् पातयामास मत्तनौ।
संजातचेतना भूयः पितरं वीक्ष्य लज्जिता ॥ ३० ॥

ततो गद्गदकण्ठेन पिता प्रोवाच मन्दरः।
किमर्थं मूर्छिता तन्वि धर्षिता वासि केनचित् ॥ ३१ ॥

दष्टा वा भुजगेनासि भीषिता वासि केनचित्।
सम्मोहिता वा विजने रहिता स्वसखीजनैः ॥ ३२ ॥

त्रासिता हसिता वापि तथा किंवापमानिता।
इमामवस्थां सम्प्राप्ता किमर्थमसि पुत्रिके ॥ ३३ ॥

न हि ते दुर्लभं किंचिन्मम पुत्र्या जगत्त्रये।
ये देवास्त्रिदशश्रेष्ठास्ते मच्छिखरवासिनः ॥ ३४ ॥

पुरा समुद्रमथने वृत्तोऽहं दण्डतां गतः।
मन्थदण्ड इति ख्यातस्त्रिषु लोकेष्वहं ततः ॥ ३५ ॥

मम मूलोपमूलानि सुधाक्तानि समंततः।
दत्तश्च मे सुरैर्भागः पूर्णकुण्डं सुधामयम् ॥ ३६ ॥

अहं पादैः क्षितितलं शिखरैश्च नभस्तलम्।
व्याप्य तिष्ठामि सततं कर्मपृष्ठैकसंश्रयः ॥ ३७ ॥

यत्ते मनोऽभिलषितमहं पूरयितास्मि तत्।
तदाहं पितरं साक्षादेवमुक्तवती वचः ॥ ३८ ॥

मम श्रीरामचन्द्रेण लोकानन्देन कामिना ।
आदिनारायणेनैव दर्शनं दत्तमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

वामाङ्गसङ्गिनीं तस्य श्रियं दृष्ट्वा मनोहराम् ।
स्त्रीस्वभावेन चकमे कामतत्त्वेन कामिनम् ॥ ४० ॥

प्राग्जन्मतपसा दृष्टः प्रभुरन्तर्हितोऽधुना ।
तददर्शनमोहोत्थमहादुःखेन मूर्छिताम् ॥ ४१ ॥

जानीहि मां शैलराज किं तत्र त्वं करिष्यसि ।
नहि रामस्तपोध्यानकर्मज्ञानसमाधिभिः ॥ ४२ ॥

सुलभो विद्यते तात तेनाहं वञ्चितास्मि भोः ।
वञ्चितास्मि च तेनाहं रूपेणा प्रतिमेन च ॥ ४३ ॥

मन्दर उवाच

या श्रीर्वामाङ्गसंस्थास्यतामाराधय सुव्रते ।
ततस्तस्याः प्रसादेन लप्स्यसे रामसंनिधिम् ॥ ४४ ॥

रामो हि परमं ब्रह्म कालमायाक्षरातिगम् ।
सम्पूर्णमक्षरातीतं पुरुषोत्तमशब्दितम् ॥ ४५ ॥

इत्युक्त्वा सान्त्वयित्वा च मां निनाय गृहं गिरिः ।
ततः कालेन चाल्पेन नारदोऽभ्याययौ ततः ॥ ४६ ॥

यत्राहं संस्थिता कन्या पितुः पार्श्वे दृढव्रता ।
पूजितो नारदः पित्रा ततः प्रोवाच मत्कृते ॥ ४७ ॥

शृणु शैलेन्द्र पुत्री ते महाभागा यशस्विनी ।
साक्षाच्छ्रीरामजायायाः सखीभावमुपैष्यसि ॥ ४८ ॥

तदर्थं तद्व्रतं कर्तुमुचितेयं शुचिस्मिता ।
इत्येवमुक्त्वा प्रोवाच व्रतराजं मनोहरम् ॥ ४९ ॥

साक्षाच्छ्रीसहजानन्दाश्रीरामप्रियकारकम् ।
भाद्रशुक्लाष्टमीं प्राप्य यावदाश्विनकृष्णगाम् ॥ ५० ॥

अष्टमीं विधिवत्कुर्याद्व्रतं संकल्पपूर्वकम् ।
श्रीसीतारामतुष्ट्यर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥

ताम्रपट्टे लिखित्वा तु मूर्तिं सीताभिरामयोः ।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥

जानक्यै रामचन्द्राय सहजायैप्रियाय च ।
सीतायै रघुनाथायनित्यमेव नमो मम ॥ ५३ ।

जानक्यै विद्महे दिव्यै सहजायै च धीमहि ।
तन्नः सीते प्रचोदयात् संध्यामन्त्रोऽयमीरितः ॥ ५४ ॥

रामचन्द्रायधीमहि पुनःप्रियाय धीमहि।
त्रिसंध्यं प्रजपेत्तनो रघुनाथः प्रचोदयात् ॥ ५५ ॥

एताभ्यां राजते पात्रे निधाय घुसृणादिकम्।
कर्पूरचन्दनं तोयमर्घं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥

ततः पद्मपलाशान्तः कल्पयेन्मिष्टपिण्डिकाः।
ताः सप्तैव द्विजे दत्त्वा स्वयमश्नीत सप्त च ॥ ५७ ॥

सीतासूक्तिं जपित्वा च दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम्।
तिलपायसपद्माक्षघृतैश्च जुहुयाच्छतम् ॥ ५८ ॥

दिने दिने गृणेद्गाथाः सीतारामप्रियस्तवाः।
एवं पञ्चदशाहेन व्रतेन परितुष्यति ॥ ५९ ॥

श्रीसीतारामयुगलं दुर्लभं घटयेत्तराम्।
इत्याभाष्य पितुः पार्श्वे बभूवान्तर्हितो मुनिः ॥ ६० ॥

तच्छ्रुत्वानुष्ठितवती व्रतराजमहं पुनः।
समाप्ते व्रतराजे तु साक्षान्मे दर्शनं ददौ ॥ ६१ ॥

सीतारामाख्ययुगलं रतिकाम युगं यथा।
दत्त्वा मां दिव्यदेहं तु स्वलीलारसमण्डले ॥ ६२ ॥

स मां प्रवेशयामास भौतिकं चाद्रवद्वपुः।
द्रवीभूय नदी भूत्वा नित्यं प्रवहतेतराम् ॥ ६३ ॥

मदात्मा तु स्वयं तस्याः सखीत्वं समुपेयिवान्।
प्रमोदवनकुञ्जेषु रमे सहजया सह ॥ ६४ ॥

यत्रेयं गोपराजस्य तनया सहजाभिधा।
तत्राहं कमला नाम सहजायाः प्रिया सखी ॥ ६५ ॥

इदानीमवतीर्णेयं प्रभुं ज्ञात्वावतारिणम्।
तत्सार्द्धमहमप्याशु प्रादुर्भूतास्मि कुम्भतः।
यथेयं ते प्रिया कन्या तथाहमपि गृह्यताम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने कमलेश्वरीप्रादुर्भावो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

❋

दशमोऽध्यायः

गण्डक्युवाच

अहं ब्रह्मतनोर्जाता गण्डकी नाम या नदी।
ममास्याः संगमो नित्यं प्रभुपादनिषेवणे ॥ १ ॥

पुरा श्रीपुष्पदन्तस्य गन्धर्वेन्द्रस्य कन्यका।
ईशं परिचरन्त्यास्मिस्तत्रैवाहं चिरं स्थिता ॥ २ ॥

रामतारकमन्त्रस्य पठ्यमानस्य शम्भुना।
श्रुत्वा पारायणं राजन् बभूवाहं समुत्सुका ॥ ३ ॥

सर्वथा वर्तमानापि बाल्ये वयसि मुग्धवत्।
स्वबुद्ध्याहं धृतवती रामेऽनन्यात्मिकां मतिम् ॥ ४ ॥

तया मत्या दृढप्रज्ञा ज्ञातसारा शिवाननात्।
राममेकं प्रभुं बुद्ध्वा सेवां तस्य व्यधासिषम् ॥ ५ ॥

प्रतिसंचरसम्प्राप्तौ तत्संस्कारैकसंस्कृता।
अत्रेर्ब्रह्मसुताज्जज्ञे तुंडिला नाम कन्यका ॥ ६ ॥

जन्मप्रभृति रामस्य प्रियलीलाविनोदवित्।
तदर्थं तपसा ज्ञानात् कर्मणा च समाधिना ॥ ७ ॥

नित्यं हिमवतः पृष्ठे चरन्ती व्रतमुत्तमम्।
अन्वभूवं घनश्यामं कदाचित्कोमलं परम् ॥ ८ ॥

श्रीरामं कौस्तुभमणिभासितोरस्कमीश्वरम्।
व्यचलत् कामभावेन मनो मे तदनन्तरम् ॥ ९ ॥

ततः सोऽन्तर्हितो भूत्वा सकृद्दर्शननिष्ठुरः।
आकाशवाण्या मां प्राह न मामेवमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

विषयासक्तचित्तानां मायया विकृतात्मनाम्।
न वै गम्योऽहमेवापि सदसत्परमः प्रभुः ॥ ११ ॥

किंतु मे परमा काचित्प्रेयसी सहजाभिधा।
आराधनीया सततमेवं सिद्धिर्भविष्यति ॥ १२ ॥

तच्छ्रुत्वा दिव्यवागर्थं तथैवाकरवं पुनः।
ततश्चिरेण सा देवी प्रसन्ना सहजेश्वरी ॥ १३ ॥

वरेण छन्दयामास मन्मनोरथसिद्धिदा।
सारस्वते नाम्नि कल्पे रमिष्यामि प्रमुद्वने ॥ १४ ॥

प्रकटा रामचन्द्रेण रमणाय रमावता ।
तत्राहं नन्दनाख्यस्य गोपस्य तनया सती ॥ १५ ॥

रमयिष्ये रामचन्द्रं तत्र त्वं मत्सखी भव ।
ततोऽहं भौतिकं देहं द्रवीकृत्य जडात्मकम् ॥ १६ ॥

संत्यज्य स्वात्मना प्राप्ता प्रमोदविपिने जनिः ।
लीलावती नाम सखी सहजासन्निधौ स्थिता ॥ १७ ॥

इदानीं पुनरुत्पन्ना विभाव्य जनकालये ।
जातास्मि रत्नकलशीमध्यभागात्तया सह ॥ १८ ॥

यथा च पालनीये ते तथाहमपि पाल्यताम् ।
साहं पर्वतशृङ्गाग्रा नदीरूपेण प्रस्थिता ॥ १९ ॥

विष्णुशैलं विनिर्भिद्य प्रवाहजलगामिनी ।
शालग्रामं परिप्राप्य सुप्रतिष्ठितमा भुवि ॥ २० ॥

यद्यप्यन्येष्वपि स्थानेषूपलब्धिः श्रिता हरेः ।
शालग्रामे चक्रतीर्थे ग्राह्य एव न संशयः ॥ २१ ॥

इत्येवं विधिना मन्तो गृह्यते श्रीशिलातनुः ।
रघुनाथराघवेन्द्रसीतारामादिभेदतः ॥ २२ ॥

जनकस्यालये नित्यं वसामि च सुपावने ।
ततस्त्वं जनको राजन् कृपया परिपालय ॥ २३ ॥

विष्णोर्विराट्स्वरूपस्य गण्डदेशे स्थिता त्वहम् ।
ततश्च गण्डकीनाम्ना विख्यातास्मि जगत्त्रये ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने गण्डकीऽसम्भवो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



एकादशोऽध्यायः

अघवारोवाच

पुराहं सोमपीथस्य भार्गवस्य मुनेः सुता ।
तपश्चरन्ती विपुलं विषयैर्निःस्पृहान्तरा ॥ १ ॥

पर्वते विपुलेऽरण्ये सुनासीरध्वजे वने ।
पित्रा कदाचिदुक्ताहं भवेः परिणयोन्मुखी ॥ २ ॥

विगणय्य पितुर्वाक्यं स्थिताहं तेन मे पिता ।
शशाप जलरूपैधि सततं त्वमचेतना ॥ ३ ॥

भूत्वा ततोऽम्मयी नित्यं प्रवहामि तदाश्रमे ।
अथ दीर्घेण कालेन साध्यमानः स्वभार्यया ॥ ४ ॥

अनुकलितः स मे मात्रा तुतोष तां प्रति क्वचित् ।
तुष्टं विज्ञाय योगीन्द्रं तमृषिं शंशितव्रतम् ॥ ५ ॥

मदर्थं शापमुक्त्यर्थं ययाचे भार्गवं द्विजम् ।
तामाह भार्गवः साक्षाज्जनकस्य गृहे प्रथाः ॥ ६ ॥

आद्या सीता स्वयं प्रीता तदा त्वं मोच्यसेऽमुतः ।
पूर्वंकल्पे त्वियं जाता प्रमोदविपिने क्वचित् ॥ ७ ॥

क्रीडन्ती तत्र कान्तेन गवेन्द्रस्य च सूनुना ।
ततस्तव गृहे जातां विभाव्यैनां महीपते ॥ ८ ॥

जातास्मि साकमनया तव कन्यास्मि साम्प्रतम् ।
अघवारेति मन्नाम तद्धेतुः श्रूयतां प्रभो ॥ ९ ॥

भार्गवस्य पितुः साक्षादाश्रमे प्रवहज्जला ।
नित्यं तिष्ठामि राजर्षे कदाचित्समजायत ॥ १० ॥

ब्राह्मणस्य पितुर्गेहे सोमो नाम ममाध्वरः ।
तस्मिन् मखे द्विजश्रेष्ठा नावादेशनिर्वासिनः ॥ ११ ॥

आर्षेणः समुपागच्छन् भार्गवाश्चैव भूरिशः ।
यज्ञे तत्र समेतेषु बहुष्वेव द्विजातिषु ॥ १२ ॥

स्वान् गणान् समुपादाय ब्राह्मणास्तस्थिरेऽध्वरे ।
पश्वालम्भनकार्येषु गौतमा ब्राह्मणाः स्थिताः ॥ १३ ॥

तानाविश्य हविर्जक्षे दुकुक्षिर्नाम राक्षसः ।
जग्धेषु यज्ञपशुषु भार्गवो द्विजसत्तमः ॥ १४ ॥

शशाप रक्षसा साकं विप्रान् गौतमगोत्रजान् ।
यावन्ति पशुदेहेषु रोमाणि प्रतिभान्ति वै ॥ १५ ॥

ब्राह्मणाः काकतां यात तावत्सहस्रकं समाः ।
ततस्ते रक्षसा साकं ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १६ ॥

काकयोनिमवाप्यैव तस्थुर्मुनिवराश्रमे ।
अथो चिरेण कालेन मम कूले बिलेशयः ॥ १७ ॥

केनचिद्दीर्घश्रृङ्गेण महोक्षेणातिगजता ।
निहतः स तु दुष्टात्मा क्षणात्तेषां प्रपश्यताम् ॥ १८ ॥

शिवो भूत्वा समारूढो वृषभं नन्दिरूपिणम् ।
वृतो गणसमूहेन कैलासं समगात्ततः ।। १९ ।।

तदृष्ट्वा गौतमा विप्राः काकयोनिमवापिताः ।
ममज्जुर्मंज्जले दिव्ये तत्क्षणादघहारिणि ।। २० ।।

कोटिवर्षोपभोग्यं तं शापं मुक्त्वा तु गौतमाः ।
पुनः स्वरूपतां प्रापुस्तद् दृष्ट्वा भार्गवो मुनिः ।। २१ ।।

सम्भ्रमाविष्टचित्तस्तु नाम चक्रे तदा मम ।
अघं वारयते सद्यो दर्शनस्पर्शनादिभिः ।। २२ ।।

अघवारेति नामासौ भविष्यति जगत्त्रये ।
तेनाहमघवारेति प्रसिद्धास्मि सरिद्वरा ।। २३ ।।

मृगयां विहरन् रामः कदाचिदनया सह ।
क्षुत्क्षामादिपरिक्लान्तो मम तीरमुपागतः ।। २४ ।।

अहं हि दिव्येन वेशेन वेशयित्वा निज वपुः ।
चिरं परिचचारास्मै रामाय च महात्मने ।। २५ ।।

बिसैर्जलरुहैः कन्दैर्मधुरेणाम्बुना तथा ।
वन्यैः फलैः सुपक्वान्नैः स्वेच्छाशक्तिसमुद्भवैः ।। २६ ।।

चिरमाराधितो रामस्तुतोष रमया सह ।
सम्यग्भक्तासि मे स्तुत्या चिरमाराधितस्त्वया ।। २७ ।।

क्षुच्छ्रामौ च विनीतौ मे भृशं तुष्टोऽस्मि कूलिनि ।
आगामिनि महाकल्पे सारस्वतसमाह्वये ।। २८ ।।

सर्वोद्धारार्थमनघे भवितास्मि रघोः कुले ।
इयं च भवितासीता मिमिवंशे त्वयोनिजा ।। २९ ।।

भूत्वा तत्रानया साकं मम सांनिध्यमेष्यसि ।
इत्युक्त्वा प्रययौ रामो रामया सहितो वनम् ।। ३० ।।

साहं कालं प्रतीक्षन्ती जातास्मि जनकाधुना ।
अनया सह गन्तास्मि पुरुषोत्तमसंनिधिम् ।। ३१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने अघवारासम्भवोनामैकादशोध्यायः ।। ११ ।।

द्वादशोऽध्यायः

द्युम्नोवाच

सुकलो नाम गोपालः प्रमोदविपिने महत्।
कुलं रूपं च बिभ्राणो धनं चाभिजनं तथा ॥ १ ॥

रामं नटन्तं संश्रुत्य प्रमोदविपिनान्तरे।
गणैः स्त्रीणां मृगाक्षीणां प्रत्येकं श्लिष्टबाहुभिः ॥ २ ॥

बभूव गोपवंश्यस्य हृदये परमा स्पृहा।
ईदृशाय मनोज्ञाय नायकाय महात्मने ॥ ३ ॥

सुन्दरी चेद्भवेत्पुत्री ध्यात्वा सोयपतिं भजेत्।
तदा तस्याः प्रसंगेन वयं यास्याम धन्यताम् ॥ ४ ॥

अयं हि पूर्णपुरुषो रामः कमललोचनः।
कामतत्त्वैकलीलाभिः सेवते स्वात्मसम्पदम् ॥ ५ ॥

इति विज्ञाय रामस्य सहजं गोपराट् स्वयम्।
रामलीलामुपासीन आरराध परां श्रियम् ॥ ६ ॥

परा श्री रामसौन्दर्यमोहितापूर्वमेव सा।
उद्यमाद्गोपराजस्य तपोव्रतसमाधिभिः ॥ ७ ॥

तोषिता त्वरिता प्राह भूत्वा साक्षात्त्वमिन्दिरा।
अहमेव भविष्यामि गोपराज गृहे तव ॥ ८ ॥

वशीकृत्य तथा रामं दास्यामि करयोस्तव।
ततः सर्वसुखोपेते समये स्त्रीग्रहोदये ॥ ९ ॥

अजायत सुता तस्य गोपवर्यस्य वेश्मनि।
वामाङ्गी विद्युदाकारा प्रभापुञ्जनिभाकृतिः ॥ १० ॥

उत्फुल्लपद्मवदना तथेन्दीवरलोचना।
तस्यां संजातमात्रायां रक्तबिम्बाधरत्विषा ॥ ११ ॥

प्राची रागो दिशां जातः प्रमोदश्च व्यवर्द्धत।
द्युम्नेति नाम चक्रेऽस्याः स्वयं तत्रप्रजापतिः ॥ १२ ॥

दिने दिने वर्धमाना व्यपुषाकान्तिधोरणी।
सहजेनैवदेहेन व्यधोतन्त दिशोऽखिलाः ॥ १३ ॥

दुन्दुभीनां निनादश्च देवलोके व्यजायत।
कदाचित्सप्तमं वर्षमतीत्याष्टममागता ॥ १४ ॥

ईषद्विभक्तावयवा दृष्टा रामेण संसदि ।
मूर्छितोन्यपतद् रामो मुग्धवद्धरणीतले ॥ १५ ॥

सुखितस्य गवेन्द्रस्य कुमारं रूपसुन्दरम् ।
धावित्वा गोकुलात्सद्यः पर्यरक्षन्मुनीश्वराः ॥ १६ ॥

सुखितश्चैव माङ्गल्या गोपीनां च तथा गणाः ।
धनं निर्मञ्छयांचक्रुः स्वात्मानमपि दुर्लभम् ॥ १७ ॥

केनचिद्भौतिकी छायाभूतावेशेति केनचित् ।
दृष्टिप्रचारेति परैः कूटमुष्टीति केनचित् ॥ १८ ॥

बहुधा तर्कयामासुः प्रभौ मायामयी गतिम् ।
यस्यादिदं समुद्भूतं तत्र केचन जज्ञिरे ॥ १९ ॥

ततः पूर्वानुरागाख्यं प्रेम संववृधेतराम् ।
बाल्यशेषं समुल्लङ्घ्य वर्तमानौ दिने दिने ॥ २० ॥

कैशोर्ये लोकसुखदे सर्वानन्दौ बभूवतुः ।
अहो द्युम्नाख्यया गोपकन्यया हृदयं हृतम् ॥ २१ ॥

रामस्य स्वाभिरामस्येत्येवं स मुमुदेतराम् ।
सुकलोनामगोपालोमन्यमानो जनुः फलम् ॥ २२ ॥

इति श्रुत्वा तु सहजा न सेहे व्यभिचारिताम् ।
रामस्य विश्वारामस्य द्युम्नां दग्धुं मनो दधे ॥ २३ ॥

ततः कदाचिन्निविदे निकुञ्जे द्युम्नावतीं रामसहप्रसक्ताम् ।
श्रुत्वा सपत्नीं स्वसखीमुखेभ्यो जवेन तं देशमुपाजगाम ॥ २४ ॥

अये त्वमस्यत्प्रियमीड्यरूपं भूपं यथा श्रीःपरराजधानी ।
का त्वं वशीकृत्य रहोऽभिभुङ्क्षे व्यक्तं तवेदं प्रबभूव चौर्यम् ॥ २५ ॥

इत्युदीर्य रुषारक्ता संरब्धा सहजेश्वरी ।
स्थावरीं योनिमायद्यस्वेत्येवं सहसाशयत् ॥ २६ ॥

अहं च तस्याः सौन्दर्यं सहजानन्दिनी श्रियः ।
संवीक्ष्य द्रवतांयाता नदीरूपा ततोऽभवम् ॥ २७ ॥

कदाचिन्मज्जले शीते चन्द्रचन्दनसौरभे ।
ग्रीष्मे समाप्लुतो रामः प्रससाद चिरं स्थितम् ॥ २८ ॥

रामं प्रसन्नमालक्ष्य समुत्थाय नदीजलात् ।
अहं पुरःस्फुरद्रूपा प्रार्थयामास तं प्रभुम् ॥ २९ ॥

राम राम गुणाराम स्वाराम सुखसम्पदाम् ।
विरामय स्थावरत्वं मदीयमिदमीश्वर ॥ ३० ॥

श्रीराम उवाच

व्यक्तं गता स्थावरता तवेयं स्त्रीरूपमासाद्य पुरो विभासि ।
महार्हंमाणिक्यमयीं विशालां मालां समंतादुरसा वहन्ती ॥ ३१ ॥

तदाहं रामसौन्दर्यसंदोहप्रवशीकृता ।
प्रत्युवाच प्रभुं स्मित्वा लोकोत्तरगुणाकृतिम् ॥ ३२ ॥

त्वमेव पूर्ववद् राम कान्तो भव ममानिशम् ।
प्रमोदवनवीथीषु रस्यावो दिव्यरंतिभिः ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच

इदं तु सहजानन्दा प्राणेशी वेत्ति सर्वशः ।
विना तस्या अनुमतिं प्रतिजानामि नैव च ॥ ३४ ॥

यावत्सारस्वतं कल्पं सहजाऽऽराध्यतां त्वया ।
प्राप्ते सारस्वते कल्पे कृतकृत्या भविष्यसि ॥ ३५ ॥

साहमेतावदाराध्य प्रमोदवनकेलिनीम् ।
सहजां साधितवती रामकान्तवराप्तये ॥ ३६ ॥

इदानीं श्रीव्रजेशानीसहजाकरुणादृशा ।
रामं कान्त समासाद्य गमिष्यामि कृतार्थताम् ॥ ३७ ॥

दानेन ज्ञानकर्मभ्यां ध्यानेन तपसा तथा ।
समाधिनार्पणेनापि रामे भक्तिः प्रसाध्यते ॥ ३८ ॥

सिद्धायां फलभक्तौ तु स्वयं रामोऽपि साधितः ।
तेनाहं सहजामन्दासार्धं जनक ते गृहे ।
अवतीर्णास्मि कन्येति पालनीयास्मि साम्प्रतम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने द्युम्नासम्भवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥



त्रयोदशोऽध्यायः

घोषवत्युवाच

अस्ति सांतपनः शैलो रत्नसानुसमाकृतिः ।
नानाद्रुमवनाकीर्णो लतामण्डपमण्डितः ॥ १ ॥

रामनामाङ्कितशिलो महाप्रस्तरदुस्तरः ।
अनेकरत्नधात्वादिविचित्रितदरीगृहः ॥ २ ॥

पारिजातद्रुमलतामण्डपैर्गह्नाकृतिः ।
गायद्गन्धर्ववनिताविलासरहःसंस्थलः ॥ ३ ॥

स्रवन्निर्झरसंदोहसंसिक्तदृषदुत्पथः ।
पदे पदे स्खलन्मुक्तामणिसिंहपदाङ्कितः ॥ ४ ॥

मदेभमारणोद्युक्तमृगाधिपनिकेतनः ।
देवदारुद्रुमवनी कूजत्कोकिलकाहलः ॥ ५ ॥

कोलाहलितवर्हीकयाचिताम्भोदघर्घरः ।
कश्यपस्य मुनीन्द्रस्य तनूजः पर्वताकृतिः ॥ ६ ॥

सुमेरोस्तनयां हैमीमुपयेमे नगेश्वरः ।
विजहार तया सार्द्धं सुमेरुगिरिकन्यया ॥ ७ ॥

धनुर्बाणादिभगवच्चिह्नमण्डितगात्रया ।
स्वयं च भगवच्चिह्नमण्डिताखिलविग्रहः ॥ ८ ॥

महाभागवतः शैलो विजह्रे बहुमङ्गलैः ।
तस्य चैवं विहरतो भोगैः संसरणात्मकैः ॥ ९ ॥

तस्यामेव धर्मपत्न्यां गर्भे शुद्धोऽभ्यजायत ।
तस्मिन्नेव तु कालेऽहं क्रीडन्ती सहजालिभिः ॥ १० ॥

रसालकुञ्जविपिने मदमत्ता व्यचीचरम् ।
तदैव त्रिदशानीकैः पौलस्त्यभयविप्लुतैः ॥ ११ ॥

उपासांचक्रे भगवान् विष्णुः क्षीरपयोनिधौ ।
स्तुतिभिः पुष्कलाख्याभिः संहिताक्रमसूक्तिभिः ॥ १२ ॥

स्तुतोऽनिरुद्धो भगवान् प्रादुरास स्वयं हरिः ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गविभूषितकराम्बुजः ॥ १३ ॥

नीलनीरदनीलाभो मकरीचन्दनोक्षितः ।
पीताम्बरपरीधानः प्रद्युम्न इव कान्तिभिः ॥ १४ ॥

कमलाभूषितोरस्कोऽरुणपङ्कजलोचनः ।
गम्भीरनाभिसंस्थानस्त्रिवलीललितोदरः ॥ १५ ॥

श्रीरत्नमेखलाकूजत्किंकिणीगणसंकुलः ।
शृङ्गारपादपनिभः कुसुमाकृतिसुस्मितः ॥ १६ ॥

वैजयन्तीयुतोरस्को वृहत्कौस्तुभमण्डितः ।
सोद्रेकं स्निग्धया वाचा प्रोवाच संस्मिताननः ।
ब्रह्मादींश्चैव मृगादीन् देवांश्चैव मुनींस्तथा ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं वोऽग्रे हितं देवाः पौलस्त्यौः पीडितात्मनाम् ।
विरंचिना च रुद्रेण पौलस्त्यास्तपसोर्जिताः ॥ १८ ॥

प्रतिलब्धवराः सर्वे ननिर्जेया रामं विना ।
सोऽहं वः प्रविधास्यामि हितं देवत्वमीयुषाम् ॥ १९ ॥

प्रमोदविपिनं गत्वा साकेतस्य समंततः ।
रामधाम परं गुह्यं नित्यं तज्जनमण्डितम् ॥ २० ॥

तत्राहं विक्रमं कृत्वा करिष्ये वो हितं महत् ।
देवद्रुहां धर्मरुजां त्रयीप्रोज्झितवर्त्मनाम् ॥ २१ ॥

सतां च स्थापनं कार्यं करिष्यामि न संशयः ।
रामस्य सम्मुखे स्थित्वा करिष्ये विनयं बहु ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मभृग्वादिकान् गणान् ।
विसृज्य त्रिदशान् सर्वान् प्रमोदविपिनं गतः ॥ २३ ॥

विधिमेकं पुरस्कृत्य परं धाम व्रजालयम् ।
दधिमन्थन दण्डोत्थनिर्घातमधुरध्वनिम् ॥ २४ ॥

अदृष्टपारं वेदेष्वप्यखिलागमवेदिभिः ।
श्रीरामचन्द्रपूर्णेन्दुचन्द्रिकोदयनिर्भरम् ॥ २५ ॥

संयोगविप्रयोगाख्यसुधाविषमहामृतम् ।
खेलच्छजजनानेकरत्नपुञ्जसुमञ्जुलम् ॥ २६ ॥

उद्यद्भावोर्मिलहरीप्रेमवीचीविराजितम् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं रामस्यालयमुत्तमम् ॥ २७ ॥

गवेन्द्रसुखितानन्दं नित्यं माङ्गल्यकासुखम् ।
श्रीरामप्रेमव्याघूर्णद्गोपगोपीजनाञ्चितम् ॥ २८ ॥

श्रीरामप्रियसख्युक्तकलवाक्यदिमाञ्चितम् ।
दूतदूतीसखिसखीनायकाख्यरसाकरम् ॥ २९ ॥

क्वचित्सरोवगाहाख्यदिव्यकेलीकलालयम् ।
क्वचिद्वसन्तसमयश्रीविलासविभूषितम् ॥ ३० ॥

क्वचिल्लसत्प्रावृषेण्यं रसमत्तशिखावलम् ।
क्वचिद्रामगुणोद्गानमन्त्रगोपवधूगणम् ॥ ३१ ॥

यत्र कामः कदाचित् स्वं क्रीणीतुमातुमतुलं वपुः ।
आगतः स पुनर्नैव दासेनापि व्यगण्यत ॥ ३२ ॥

यत्र सूर्यश्च चन्द्रश्च वेशयित्वा निजं वपुः ।
दिव्येन मणिवेशेन न मूल्यमलभन्तमाम् ॥ ३३ ॥

माङ्गल्यकारमादासीपादाब्जनखनिर्जितः ।
प्रपञ्चरचनातीतं यत्र शिल्पं विधेर्न च ॥ ३४ ॥

चिदानन्दमयं धाम तद्दृष्ट्वा चकितावुभौ ।
रसालकुञ्जविपिने क्रीडन्तीं मां विलोक्य तौ ॥ ३५ ॥

क्व रामः पुण्डरीकाक्षः सहजानन्दिनीसखः ।
इत्यूचतुः सविनयं नत्वा च ब्रजभक्तितः ॥ ३६ ॥

अहं श्रीरामसत्प्रेमरसोन्मत्ता व्रजाङ्गना ।
न किंचिदुत्तरितवत्येतौ विनयतत्परौ ॥ ३७ ॥

तदा तु रजसा ब्रह्मा प्राविर्भूतरुषान्वितः ।
स्थावरत्वं प्रपद्यस्वेत्येवं शापमदात्प्रभुः ॥ ३८ ॥

शापोद्यतं विधिं दृष्ट्वा विष्णुः क्षोभं तदाकरोत् ।
ब्रह्मन्नत्यन्तमज्ञोऽसि न जानासि व्रजस्थितिम् ॥ ३९ ॥

कोटयो ब्रह्मणां यत्र लुटन्ति रजसाप्लुताः ।
कोटयश्चापि विष्णूनां यत्र मुह्यन्ति विभ्रमैः ॥ ४० ॥

कोटयश्चैव रुद्राणां यत्र नृत्यन्ति मत्तवत् ।
का कथेतरदेवानां पलालप्रायताजुषाम् ॥ ४१ ॥

कस्त्वं वराकः कश्चाहं यतः शब्दो निवर्तते ।
न च यत्र मनोवृत्तिस्तदानन्दपदं हि तत् ॥ ४२ ॥

तदिदं धाम रामस्य चिदानन्दस्य मूर्तिमत् ।
इयं रामप्रेममत्ता गेपिका कापि भाविनी ॥ ४३ ॥

आवां कौ चेति जानाति कौ चावां चिन्मये पदे ।
एतद्ध्यनुचितं ब्रह्मन् यच्छापोऽभूदिमां प्रति ॥ ४४ ॥

अपूज्यत्वं प्रयाहि त्वमस्मान्महदतिक्रमात् ।
इति शप्त्वा स्वयं विष्णुर्ब्रह्माणं लोकपूजितम् ॥ ४५ ॥

अगात्ततस्तेन सार्धं श्रीरामं पुरुषोत्तमम् ।
[1]दृष्ट्वा रामं व्रजपतिं मोहितो ब्रह्मणा सह[1] ॥ ४६ ॥

आज्ञामादाय भगवान् स्वयं विष्णुरुदारधीः ।
[2]सखीभावं समाश्रित्य ज्ञातयं वितवान् स्वयम्[2] ॥ ४७ ॥

तत्राविष्टः स्वयं रामो रसिकः पुरुषोत्तमः ।
सहजानन्दिनी चापि तत्प्रियार्थमवातरत् ॥ ४८ ॥

एव लीलारसानन्दः स्वाधतां प्रतिपद्यते ।
अहं च स्थावरं भावं नदीरूपं मनोहरम् ॥ ४९ ॥

१., २. नास्ति-बड़ौ० ।

समास्थाय सुताजातातपनाद्रेस्तनूद्भवा ।
साहं शापविमोकस्य कालं प्राप्य तवान्वये ।। ५० ।।

स्वात्मानं प्रकटीकृत्य जाता सीताभितुष्टये ।
एवं नदीरूपमेत्यततोऽपि सहजासखी ।
पुनर्जातास्मि राजर्षे कन्यावत्परिपाहि माम् ।। ५१ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये सीताजन्मोपाख्याने घोषवतीसम्भवोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।



चतुर्दशोऽध्यायः

वनघोषोवाच

शाण्डिल्यस्य महर्षेस्तु सुताहं गुणवत्तमा ।
श्रियं समराधयतःसंजाता श्रीकलाभिधा ।। १ ।।

अनुत्तमानवद्याङ्गी कामयाना (रमा) सीतापतिम् ।
तमेकाग्रेण मनसा श्रीरामं पर्यतोषयम् ।। २ ।।

कर्मणा ज्ञानयोगेन ध्यानेन यजनेन च ।
तपसा भक्तियोगाभ्यां दृढमभ्यासमाचरम् ।। ३ ।।

एवं दिवानिशं देवः प्रपत्रैः परिशीलितः ।
स्त्रीस्वभावादविज्ञातमाहात्म्य पतिभावतः ।। ४ ।।

नित्यमाराधयामास नाविर्भूतो रमापतिः ।
ततो मां मुनिशार्दूलः शाण्डिल्यः स पिता मम ।। ५ ।।

आगत्य तपसा क्लिष्टामिदमाह दयाप्लुतः ।
दुश्चरं च रसित्वं वै तपो वत्सेऽतिदारुणम् ।। ६ ।।

किमर्थंमतिकष्टेन देहं नेक्षितवत्यसि ।
कस्ते हृदिस्थः कामश्च न तं जानामि पुत्रिके ।। ७ ।।

मत्प्रभावाच्च सकलः कामस्ते भवितानघे ।
सूर्याद्वापि यमाद्वापि शक्राद्वा वरुणादपि ।। ८ ।।

पावकाद्वा कुबेराद्वा वरं कामयसे किमु ।
किं वा सुरगणेशानाद्विष्णोः कामयसे वरम् ।। ९ ।।

सोऽपि मत्तपसो वीर्याज्जानीहि करसंस्थितः ।
निवर्तस्वातितपसां क्लेशेभ्यः शर्मवत्यसि ।। १० ।।

इत्युक्ता च ततः पित्रा प्रोवाचाहं च तं प्रति ।
नाहं देवगणत्तात देवाद्वा पुरुषोत्तमात् ॥ ११ ॥

कामये कंचन वरं विषयान् वापि लौकिकान् ।
राममेव रमानाथं कामयेऽहं निजं वरम् ॥
कन्यकारूपमास्थाय तेनाहं व्यचरं तपः ॥ १२ ॥

शाण्डिल्य उवाच

ऋषेः कुशसमित्पाणेः कन्यका त्वं तपस्विनी ।
कामयस्व ऋषेः कंचित्कुमारं सुतपस्विनम् ॥ १३ ॥

सहजापदमिच्छन्ती लज्जसे किं न पुत्रिके ।
तस्याः प्रसादात्सम्प्राप्ता कथं तामतिवर्तसे ॥ १४ ॥

ततस्त्वं रामपत्नीत्वभावं मा कुरु भाविनि ।
सहजा हि स्वयं सीता रामपत्नी मनोरमा ॥ १५ ॥

कथमन्या हि तत्साम्यं प्राप्तुं प्रकुरुते मनः ।
इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं लज्जमाना मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

न किंचिदूचे पितरं ज्ञातसारा प्रयोजने ।
निर्वन्धं च विदित्वा मे शाण्डिल्यो मुनिपुङ्गवः ॥ १७ ॥

प्रयातः शनकैस्तस्मात् थानात्स्वाश्रममुत्तमम् ।
प्रयाते मुनिशार्दूले प्रादुरासीत्ततो रामः ॥ १८ ॥

धनुर्वाणधरो रामो द्विभुजो मधुराकृतिः ।
श्रीवत्समण्डितोरस्को वनमाली सकौस्तुभः ॥ १९ ॥

पीताम्बरपरीधानो रक्तपङ्कजलोचनः ।
नीलमेघनिभाकारो वैजयन्तीविभूषितः ॥ २० ॥

चूडामणिसमुद्भासिबृहच्चूडाविराजितः ।
मनोमोहनमाधुर्यो मन्मथस्यापि मोहनः ॥ २१ ॥

विलोक्य स्वपतिं चाहं किंचिदुक्तवती वचः ।
विस्मृता कुत्र कमला कामुकी कमलापते ॥
या ते वक्षःस्थले लग्ना त्रैलोक्यस्यापि मोहिनी ॥ २२ ॥

श्रीराम उवाच

कमला तव रूपेण निर्जिता श्रीकले ततः ।
लज्जिता सम्मुखे नैति भग्नमानेच भामिनी ॥ २३ ॥

अहं चोक्तवती मानान्मा मृषा वद हे प्रभो ।
अर्द्धाङ्गसङ्गिनो सा ते साम्राज्यश्रीनिकेतन ॥ २४ ॥

श्रीराम उवाच

भक्त्यानया ते दृढया चिरं प्रीतोऽस्मि भामिनि ।
आत्मानं दुर्लभं चापि तुभ्यं दास्ये मनोरथम् ॥ २५ ॥

भाविन्यनन्तरे काले प्रमोदविपिनेश्वरी ।
भविता वै स्वयं सीता जनकस्यालये सती ॥ २६ ॥

अहं सुखिनयोपस्य रामो नित्यं महामनाः ।
भविष्यामि प्रियस्तस्याः सर्वसौन्दर्यभूषितः ॥ २७ ॥

त्वं च तत्र सखी भूत्वा सहजायाः प्रिया मम ।
अवतीर्यं मया सार्द्धं समेष्यसि प्रमुद्वने ॥ २८ ॥

रूपं चाप्रतिमं तत्र प्राप्स्यसि त्वं मदाज्ञया ।
इत्युक्त्वान्तर्हिते नाथे तदालोकनमात्रतः ॥ २९ ॥

स्त्रीस्वभावाहतैवाहमुत्तराद्रेः सुताभवम् ।
अधुनाहं प्रविज्ञाय सावतीर्णाभवद्गृहे ॥ ३० ॥

सहजासीताप्रियार्थमवतीर्णास्मि ते गृहे ।
यथेयं तावकी कन्या तथाहमपि भूपते ।
एतस्या अविशेषेण पालनीयास्मि ते सदा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने वनघोषासम्भवो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥



पञ्चदशोऽध्यायः

स्वयं लक्ष्मीरुवाच

इयं चाहं च भेदेन सा द्विधा प्रोच्यते वुधैः ।
ज्ञानभक्तिस्वरूपाहं प्रेमभक्तिमयी त्वियम् ॥ १ ॥

कर्मभिः शुद्धचित्तस्य ज्ञानसंसाधितात्मनः ।
भवेद्भक्तिरसश्चित्ते कस्यचित्पुण्यभागिनः ॥ २ ॥

ममैव सा कला काचिद्भक्तिरित्युच्यतेतराम् ।
कुलं शीलं स्वरूपं च क्रियाशुद्धिविशुद्धयः ॥ ३ ॥

अप्रकाशः प्रकाशश्च विवेको ज्ञानमेव च ।
वैराग्यं च वशीकारो विज्ञानभाव एव च ॥ ४ ॥

भक्तिः प्रेमेति विज्ञेयाः कलाः षोडश मे श्रियः ।
ज्ञाने तु ब्रह्म मर्यादं निर्मर्यादं तु भक्तितः ॥ ५ ॥

ब्रह्मधर्मान् परित्यज्य यदा तु प्रकटो हरिः ।
लौकिकं स्वीकरोत्येव काममोहादिभावगम् ॥ ६ ॥

निर्मर्यादं तदा ज्ञेयं शुद्धभावविभावनात् ।
विभावैश्चानुभावैश्च व्यभिचरिभिरेव च ॥ ७ ॥

समुद्धर्ता रसाकारः परब्रह्मेति शब्दितः ।
स एव कीर्त्यते सर्वैर्भक्तिर्मम विशारदा ॥ ८ ॥

एकीकरोम्यहं ज्ञानाज्जीवांस्तु ब्रह्मणा सह ।
समुद्र आपः संविष्टा एकीभूता न संशयः ॥ ९ ॥

एकीभूय परे शान्ते मोदन्ते जीवराशयः ।
इयं तु सहजानन्दा प्रेमभक्तिप्रकाशिनी ॥ १० ॥

चिद्घनानन्दिनी भोगैर्भक्तान् संयोजयत्यहो ।
तातेति भ्रातृपुत्रेति कांतेति स्वीकृतो हरिः ॥ ११ ॥

परिपोष्यरसं तं च प्रपञ्चं हरति ध्रुवम् ।
निष्प्रपञ्चं समासज्य स्वरूपानन्दसागरे ॥ १२ ॥

रसरूपं चिरं भोगैर्विनोदयति सेवकान् ।
कदाचिदात्मारामत्वं स्वीकरोति यदा हरिः ॥ १३ ॥

तल्लयो हि प्रपञ्चस्य जायते चतुराननेे ।
सृष्ट्यादयः परेशस्य लीला एव न संशयः ॥ १४ ॥

ताभिर्लीलाभिराबद्धो रसिकः क्रीडति स्वयम् ।
मुक्तिलीलाक्रमं प्राप्त आत्मारामेति कीर्त्यते ॥ १५ ॥

देवो निरोधलीलायां वशीकृत्य हितान्निजान् ।
प्रेमसर्वस्वदानेन भुङ्क्ते भोगै रसात्मकः ॥ १६ ॥

मुक्तिलीलामनुप्राप्तः स्वस्मिन् वेशयति ध्रुवम् ।
पुनः स्वाविर्भावकाले तानाविर्भावयत्यसौ ॥ १७ ॥

तैरेव नित्यलीलानां स्थिरैः परिकरैः स्फुटैः ।
भुङ्क्ते भोगावलीमीशः पूर्वोक्तां रसविग्रहः ॥ १८ ॥

प्रवेशे निर्गमे चैव भक्तेषु रमते प्रभुः ।
ज्ञानप्राप्तांस्तु वै जीवान् प्रवेशयति केवलम् ॥ १९ ॥

न तु निर्गन्तुमुचिता भोक्तुं वा भोगराशिभिः ।
स्वाविर्भावस्यावसरे स्वस्मिन्नेव स्थिताः परम् ॥ २० ॥

तेषां निराकारमिति मासते ब्रह्म सत्त्वतः ।
कदाचित्साकारतायां वस्तुबुद्धिर्न वेशिवत् ॥ २१ ॥

ज्ञानमज्ञाननाशाय स्वरूपस्फुरणाय च ।
तथैवान्तः प्रवेशाय न तु लीलारसाप्तये ॥ २२ ॥

सेयमिच्छैव पूर्णस्य चिदानन्दस्य साकृतेः ।
ज्ञानेन मोक्षं दास्यामीत्येवं र्यार्हि व्यवस्यति ॥ २३ ॥

तदा तथैव घटयेत्साधने न च फलं तथा ।
[1]ज्ञानमुक्तेः साधनं ज्ञानं फलं चान्तःप्रवेशनम् ॥ २४ ॥

सत्त्वात्संजायते तच्च सत्त्वं चित्तविशुद्धिजम् ।
हरेराविर्भावजं वाऽऽविर्भावः स्वेच्छया पुनः ॥ २५ ॥

एवं प्रमेयबलतो नूनं ज्ञानेऽपि मुच्यते ।
अव्यक्तासक्तिजं कष्टं शुद्धस्य भजनं परम् ॥ २६ ॥

कर्मण्यायासबहुले यद्वत्तद्वदिहापि च ।
उपासनाविभूतीनां भजनं परमेशितुः ॥ २७ ॥

कालकर्मस्वभावादिदेवताविग्रहास्तथा ।
स्फुटमक्षरपर्यन्तं परस्येव विभूतयः ॥ २८ ॥

विष्णुश्च प्रकृतिर्ब्रह्मा प्राणानां चापिदैवतः ।
ब्रह्माणी भारती चैव चन्द्रशेषो मृडस्तथा ॥ २९ ॥

स्त्रियः षट्प्रवरा विष्णोः सौपर्णी वारुणी तथा ।
पर्वतेन्द्र सुता चेन्द्रः कामस्तत्प्राण एव च ॥ ३० ॥

अनिरुद्धो रतिमनू गुरुर्दक्षः शची तथा ।
एतास्वपि विभूतीषु समाविष्टो रमापतिः ॥ ३१ ॥

प्रपञ्चे क्रीडति स्वैरं नित्यमक्लिष्टकर्मभाक् ।
देवान् समाश्रिता लोका देवा रुद्रं समाश्रिताः ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणं संश्रितो रुद्रो ब्रह्मा मामाश्रितोऽनिशम् ।
अहं समाश्रिता श्रीमत्सहजानन्दिनीपदम् ॥ ३३ ॥

कोमलं कमलप्रख्यं प्रेमभक्त्यैकदायकम् ।
सहजानन्दिनी श्रीमद्रामचन्द्रपदाश्रिता ॥ ३४ ॥

तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्वरूपपरमो भवन् ।
कर्मोपास्तिज्ञानफलमहिमानः परावरे ॥ ३५ ॥

शुद्धं भजनमन्विच्छन् प्रेमभक्तिपरो भवेत् ।
यावन्न जायते भावस्तावद्भक्तिः कुतो भवेत् ॥ ३६ ॥

---

१. पोदऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

यावन्न ज्ञानसंस्पर्शस्तावद्भावः कथं भवेत् ।
यावन्न शुद्धं करणं तावज्ज्ञानं न दीप्यते ॥ ३७ ॥

तस्मात्करणशुद्ध्यर्थं श्रवणादिपरो भवेत् ।
श्रवणादीनि तान्येव कर्माणि कर्ममार्गिणाम् ॥ ३८ ॥

ज्ञानानि ज्ञानमार्गे तु सोपास्तौ स्युरुपास्तयः ।
भक्तौ भक्तिमयान्येव प्रेम्णि प्रेममयानि च ॥ ३९ ॥

यथा जलेऽखिलं रूपं तत्तत्संगेन जायते ।
फले फलात्मकानि स्युः साधने साधनात्मिका ॥ ४० ॥

कदाचिदेकैव रमे स्वामिना सह सोत्कला ।
कदाचित्प्रेमभक्त्याहं रमे पत्या करम्बिता ॥ ४१ ॥

उभे अपि प्रभुर्ये ये गृह्णतां वा सुलोचनः ।
ज्ञानिनां चैव भक्तानां ददाति विपुलंफलम् ॥ ४२ ॥

य एतत्सकलं वेत्ति ज्ञानभक्तिरहस्यकम् ।
स लब्ध्वा परमं ज्ञानं भक्तिमप्याशु वै लभेत् ॥ ४३ ॥

यं लाभमुत्तमं लब्ध्वा लब्धव्यं नावशिष्यते ।
इति श्रीमच्चिदानन्दस्वरूपस्थानसम्प्रदम् ॥ ४४ ॥

मार्गद्वयमनुप्राप्य कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
प्रमोदवनमालासु सहजानन्दिनीप्रभुः ॥ ४५ ॥

अवतारार्थचारित्रं स्वयंलक्ष्मीरहं प्रभुः ।
अमर्यादमयी लीला प्रमोदवनमध्यतः ॥ ४६ ॥

भृशं मर्यादया युक्ता सावतारार्थकारिणी ।
अस्यामाविश्य क्रीडामि प्रमोदवनकुञ्जगा ॥ ४७ ॥

मयाऽऽविश्य क्रीडतीयं साकेत राज्यभोगदा ।
अविनाभावः प्रभुणा नित्यमेव मयानया ॥ ४८ ॥

अस्यां तु मय्याविष्टायां प्रमोदवनवीथिषु ।
रसानुकूला मर्यादा सद्भिर्ग्राह्या समंततः ॥ ४९ ॥

आविष्टायां तु मय्यस्यां मर्यादा शुद्धिमागता ।
अतएव प्रभुस्तत्र मर्यादापुरुषोत्तमः ॥ ५० ॥

एवमुक्त्वास्वयंलक्ष्मीः सहजानन्दिनीतनौ ।
प्राविशत् परमोदारा एकैवाभूत्ततस्तु सा ।
साकेतलीलावसरे भूय आविर्भविष्यति ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये सीताजन्मोपाख्याने स्वयंलक्ष्मीसम्भवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

कौशिक्युवाच

कुशिको नाम राजाभून्मान्धातृकुलभूषणः ।
पृथिवीं पालयामास धर्मेण नयविक्रमी ॥ १ ॥

चिरेण लब्ध्वा तनयं विषयेषु व्यरज्यत ।
तपस्येव मनश्चक्रे सहस्राणि समा दश ॥ २ ॥

अन्तर्वृत्तिरुपासीनो ब्रह्माक्षरमहर्निशम् ।
विशुद्धपाणिपादाङ्गोजितवाक्कायमानसः ॥ ३ ॥

शारीरं केवलं कर्म कुर्वाणो योगतत्परः ।
तपः संचरतस्तस्य भूपतेर्मुनिवर्त्मनि ॥ ४ ॥

तपस्तेजःप्रभावेण तापितं विश्वतो जगत् ।
तत इन्द्रश्चिन्तयान्तर्भयकम्पितमानसः ॥ ५ ॥

स्थानभ्रंशं शङ्कमानो मन्त्रयामाससंस्थितः ।
ततस्तु भगवान् जीवो वाचस्पतिरुदारधीः ।
मन्त्रमूचे महेन्द्राय शङ्कमानाय भूरिशः ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरुवाच

मा भैषोः सुरशार्दूलकुशिकान्मुनिसत्तमात् ।
एष हि ब्रह्मनिष्ठोऽस्ति नितान्तं तपसि स्थितः ।
प्रत्यूह्यतां तपश्चास्य त्वमेधि च निरामयः ॥ ७ ॥

इन्द्र उवाच

मयास्मै प्रोषितास्तात तपःप्रत्यूहसिद्धये ।
देवकन्याः स्मरोन्मत्ताः प्रवराप्सरसस्तथा ॥ ८ ॥

कुरंगाक्ष्यश्चन्द्रमुख्यः स्मितपूर्वाभिभाषिणीः ।
राजहंसाभगतयो जङ्घाकाण्डविराजिताः ॥ ९ ॥

दिव्याम्बरधरा देव्यो दिव्यगन्धानुलेपनाः ।
पारिजातप्रसूनाढ्यमाल्यभूषणभूषिताः ॥ १० ॥

दिव्याः सुलाञ्छना नार्यो वशमोहनकारिणीः ।
कम्बुकण्ठ्यः शातकुम्भकुम्भस्तनमनोहराः ॥ ११ ॥

उर्वशी तुर्वंशी रम्भा मेनका पुंजिकस्थली ।
तिलोत्तमा धृताचीचेत्याद्यास्ता वामलोचनाः ॥ १२ ॥

तत्र गत्वा वनोद्देशे स वै यत्र तपस्यति ।
नृत्यगीतास्मितालापैश्चक्रिरे तस्य मोहनम् ॥ १३ ॥

न चचाल स तैर्भावैः पवमानैरिवाचलः ।
ततस्ता विफलायासा भूत्वायुर्मम संनिधौ ॥ १४ ॥

जातश्चैव ततोऽत्यर्थं चिन्तयाहं समाकुलः ।
नूनं स्थानं मे कुशिको ग्रहीष्यति तयोबलात् ॥ १५ ॥

बृहस्पतिरुवाच

काम आमन्त्र्यतां शीघ्रमस्मिन् कार्ये मनोभवः ।
रतिश्चैव वसन्तश्च तवाज्ञावशगा ह्यमी ॥ १६ ॥

यदा तस्मिन् वने रम्ये वसन्तः कुसुमाकरः ।
आत्मानमादधीतोच्चैस्तदा कामोविजृम्भताम् ॥ १७ ॥

रतिर्भगवती देवी स्वं रूपं काममोहनम् ।
पृथक कृत्य निजांशेन दर्शनं यातु तं प्रति ॥ १८ ॥

क्रीडतात्संनिघौ तस्य शमिष्टस्य तपस्विनः ।
हावभावानुभावाद्यैर्मोहयत्वत्तरं मुनेः ॥ १९ ॥

एवं कृते तपोविघ्नाद्भविष्यति हितं तव ।
इत्युक्तो देवगुरुणा देवराजः प्रतापवान् ॥ २० ॥

सस्मार रहसि स्थित्वा स्मरं प्रकृतिमोहनम् ।
स्मृतमात्रः स कन्दर्पः आजगाम सुराधिपम् ।
ववन्दो शिरसा शक्रं प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥ २१ ॥

काम उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोस्मि यदहं भवता स्मृतः ।
तदेवभाग्यं भृत्यानां प्रभूणां यदपेक्षिता ॥ २२ ॥

आज्ञाप्यतां प्रभो मह्यं मदर्हं यत्प्रयोजनम् ।
प्रायस्तव प्रसादेन देवेषु सायुधोऽप्यहम् ।
त्वदाज्ञावशगो भूत्वा करिष्ये विश्वतो जयम् ॥ २३ ॥

इन्द्र उवाच

अहं हि शङ्कमानोऽस्मि कुशिकस्य तपोबलात् ।
अत्युग्रं हि तपस्तस्य मदासनमभोप्सतः ॥ २४ ॥

शतं क्रतूनां यः कुर्यात्ततः शङ्केतरामहम् ।
एवंविधस्तपस्वी यस्ततः शङ्केतमां स्मर ॥ २५ ॥

प्रायः सम्प्रेषितास्तत्र कति चाप्सरसो मया ।
कुशिकस्य तपोविघ्नसिद्धये धृतचेतसः ॥ २६ ॥

ततस्ता विफलायासा भूत्वा प्राप्ता मदन्तिकम् ।
तदर्थं त्वं स्मृतोऽस्यद्य स्मरस्त्रैलोक्यनिर्जयी ॥ २७ ॥

भवान् विदितः पूर्वं रुद्रो येन विनिर्जितः ।
शरीरं दाहयित्वापि देवकार्यं प्रसाधितम् ॥ २८ ॥

तस्मात्त्वं कुशलः कामः कार्ये चैवंविधे मम ।
तारकाख्यः पुरा दैत्यः कार्तिकेयेन निर्जितः ॥ २९ ॥

तदर्थं कार्तिकेयस्योत्पत्त्यै गौरी प्रयोजिता ।
स एव त्वं भवान् वीरो मत्कार्य परिसाधकः ॥ ३० ॥

अधुना ह्यस्य राजर्षेश्चित्तं मोहय दर्प्पक ।
इतो गत्वाऽऽश्रमं तस्य राजर्षेः सत्तपस्विनः ॥ ३१ ॥

मधुराज्ञापनीयस्ते विकासाय महीरुहाम् ।
लतामण्डपगुञ्जानां द्रुमगह्वरवेश्मनाम् ॥ ३२ ॥

विकासितेषु वृक्षेषु मधुना मधुरश्रिया ।
गुञ्जत्सु मत्तभृंगेषु प्रवाति मलयानिले ॥ ३३ ॥

कोकिलेषु च कूजत्सु फुल्लत्सु कमलेषु च ।
मञ्जरीषु लसन्तीषु वासन्तीषु च निर्भरम् ॥ ३४ ॥

रतिस्तत्र निजांशेन तव भार्या प्रदीव्यतु ।
संनिधौ तस्य राजर्षेर्विविधोत्सवकारिणी ॥ ३५ ॥

वेशयित्वा निजात्मानं क्रीडतां चित्तमोहिनी ।
त्वं च तस्मिन्नेव काले सज्जीकृत्य निजं धनुः ॥ ३६ ॥

एकदैवाखिलान् वाणान् मुञ्चेथाः श्लक्ष्णकोपतः ।
एवं कृते तपोविघ्नो भवितास्य तपस्विनः ॥ ३७ ॥

भविता च हितं मह्यं त्वत्कृतं मनसोद्भवम् ।
ओमित्युक्त्वा ततः कामः कुशिकस्य तपस्विनः ॥ ३८ ॥

आश्रमं प्रययौ वीरो रत्या च मधुना सह ।
मधुमाज्ञापयामास विकासाय महीरुहाम् ॥ ३९ ॥

ववासिरे पलाशानि शोणितानि समंततः ।
मृगेन्द्रनखसंकाशद्वितीयाचन्द्रकान्तिभिः ॥ ४० ॥

केतकीकाननान्युच्चैः पुष्पितानि समंततः ।
तदीयरजसोद्भूतोववौ वायुः सुधूसरः ॥ ४१ ॥

मलयानिलसंस्पर्शाज्जना मुमुदिरे भृशम् ।
जुगुञ्जुर्भ्रमरा मत्ताश्चुकूजुश्चैव कोकिलाः ॥ ४२ ॥

शुकसारिकहंसाद्याः प्रमत्ताः परितोऽभवन् ।
सरांसि फुल्लपद्मानि प्रसन्नोदकभांजि च ॥ ४३ ॥

चञ्चरीकचयक्षिप्तरजांसि कमलानि च ।
सहकारद्रुमवती सद्यो मञ्जरिताभवत् ॥ ४४ ॥

माधवो विकसत्पुष्पसौरभ्यरजसान्विता ।
कुशिकाश्रमवीथीषु प्रववौ वातघोरणी ॥ ४५ ॥

मृगाः खगा वराहाश्च मातंगाश्च मृगाधिपाः ।
स्वस्वकान्ताः समालिङ्ग्य वने सुखमशेरत ॥ ४६ ॥

एवं सम्प्रसृते मधौ रतिपतिः स्वांशेन मायां रतिं
तत्रैवावतरीतुमद्भुततमामाज्ञापयामास ताम् ।
सात्यर्थं विपुलस्तनोन्नतिमती मन्दं चरन्ती मुनेः
पार्श्वे भावतरंगिणी समलसत्क्रीडामनोज्ञाकृतिः ॥ ४७ ॥

कामश्चावततार सज्यधनुषा संवीज्य पञ्चाशुगां
स्तत्रत्यान् कुशिकाश्रमोपवनगान् विप्रान् मुनीन् मारयन् ।

तत्साहाय्यवशादभूद्रतिरपि प्रव्रीडनम्रेक्षणा
वक्रेन्द्रीकलितावगुण्ठनपटा साकूतमन्दस्मिता ॥ ४८ ॥

ततो मुनिः पूर्णितमानसोऽभवत्कन्दर्पं वाणाहतमर्मचाञ्चलः ।
कथं कथंचित्प्रविधाय निग्रहं शेके न कर्तुं मनसः प्रतिक्रियाम् ॥ ४९ ॥

ततः समुन्मूल्य धृतिं धृतीश्वरो दृशौ समुन्मील्य रतिं व्यलोकयत् ।
पुरः स्फुरत्काञ्चनविद्युदाकृतिं साक्षान्मनोमोहनमञ्जुलोज्ज्वलाम् ॥ ५० ॥

दृष्ट्वा तपस्वी स तु पर्यतप्यत प्रभूतयञ्चेषुविनोदविह्वलः ।
धृतिं विधातुं न शशाक पंकिलो रसेन रागेण च रंजितो बलात् ॥ ५१ ॥

ऊचे शनैस्तां सुभगाऽमनिन्दितां वालां मनोज्ञाऽचरितां तडिल्लताम् ।
कासि त्वमम्भोजदलायतेक्षणेमदक्षिकपूर्ररजीविमोक्षिणी ॥ ५२ ॥

अनेन तव रूपेण तत्क्षणात्कवलीकृतम् ।
धैर्यं मम वराभोगे तपश्च प्रविनाशितम् ॥ ५३ ॥

पुनरङ्कुरिता नेवे भविष्यति मतिर्मम ।
हावैर्भावैस्तव ग्रस्ता दवदग्धा लता यथा ॥ ५४ ॥

कृपय कृपय मह्यं कासि चार्वङ्गि भूयाः
किमपि सुखवती त्वं भूरिकल्याणिनी च ।
इह हि तव पदाभ्यां शोणिताभ्यां किलाभ्यां
मम गृहवसुधेयं मार्जिता रञ्जिता च ॥ ५५ ॥

कलय-कलय कामिन्युत्कलां दृष्टिमेतां
मयि गगनसुमध्ये कुम्भवक्षोजकुम्भे ।
दलय दलय भामिन्यातुरत्वं मदीयं
परिहर मम दुःखं मान्मथं दुश्चिकित्सं ॥ ५६ ॥

तनुरियमनवद्या तावकी कोमलाङ्गि
स्फुटममिततपोभिः क्वापि दुष्प्रापरूपा ।
मम जनुषि समस्ते नानुभूतेदृशीयं
मधुरिमपरिसम्पत्कम्बुकण्ठित्रपाढ्ये ॥ ५७ ॥

इह हि तव मनोज्ञायत्रपा पद्मपत्रप्रतिमसुनयनन्यक्कारिणी नो तदर्हा ।
जहिहि जहिहि कान्ते नूनमेनां विमोघां प्रविश ननु मदङ्कं वर्ष्मणा कोमलेन ॥ ५८ ॥

एवं वदन् मुनिस्तत्र चस्खाल निजवीर्यतः ।
ततस्तया चिरं रेमे साक्षाद् रत्या स्मरो यथा ॥ ५९ ॥

चिरेण रममाणस्य विधूतस्यतयोबलात् ।
बहुशोऽगुः समास्तस्य राजर्षेः प्रतिभावतः ॥ ६० ॥

तयोः संयोगतो जाता कन्यैका रतिरूपिणी ।
जातमात्रां तु तां न्यस्य रतिरन्तर्दधौ ततः ॥ ६१ ॥

साहं कुशिकराजस्य कन्या जनकभूपते ।
मतृहीनां तु मां दृष्ट्वा स मुनिः पर्यपालयत् ॥ ६२ ॥

दिने दिनेऽहं ववृधे वर्तमाना तदाश्रमे ।
कदाचित्प्रौढ वयसि स्थिताहं दिव्यरूपिणी ॥ ६३ ॥

अपश्यमग्नितनयांस्तदाश्रमसमीपतः ।
सहजापरितोषाय चिरेणैव तपस्यतः ॥ ६४ ॥

अमी अग्निकुमारा हि षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ।
रामरासपरिप्राप्त्ये सहजाराधनोत्सुकाः ॥ ६५ ॥

तानपृच्छं ततो गत्वा के यूयमिति बालकान् ।
ते मामूचुः कृपावन्तो भक्तवत्सलमानसाः ॥ ६६ ॥

रामरासपरिप्राप्त्यै कुर्मः श्रीसहजास्तवम् ।
तच्छ्रुत्वाहं च राजेन्द्र तदुक्ते साधने रता ॥ ६७ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि पर्यतोषयमीश्वरीम् ।
सहजानन्दनीं नाम रामशक्तिं मनोहराम् ॥ ६८ ॥

क्रमेण सा ततस्तुष्टा प्रत्यक्षा दर्शनं ययौ ।
शवरीरूपमास्थाय चरन्ती गहने वने ॥ ६९ ॥

गुंजाहारवृतोरस्का शिखिपिच्छावतंसिनी ।
राङ्कवं निर्मलं चर्म वसाना सुभगाकृतिः ॥ ७० ॥

मृगपोतं गुणैर्बद्धं वहन्ती शुकशालिनी ।
सुवर्णमञ्जरीरत्नमञ्जरीगुंफितालका ॥ ७१ ॥

रसालमञ्जरीमञ्जुकर्णाभूषणभूषिता ।
श्रीरामसख्यनिरता मृगयाक्रीडयत्परा ॥ ७२ ॥

फलपुष्पलतापत्रसर्वस्वैर्मण्डिताकृतिः ।
मां निरीक्ष्य स्मयन्ती सा द्रुमशाखावलम्बिनी ॥ ७३ ॥

श्रीसहजोवाच

रामरासपरिप्राप्तिर्दुर्लभा तव भामिनि ।
तथापि मां समाराध्य तुलभा भविता तव ॥ ७४ ॥

भाविन्यनन्तरे यर्हि गोपः श्रीनन्दनाभिधः ।
तस्य पत्न्यां तु राजिन्यां भवितास्मि न संशयः ॥ ७५ ॥

रामरासविनोदाय तर्हि त्वं मामुपैष्यसि ।
कौशिकी मत्सखी भूत्वा रमयिष्यसि रामिणम् ॥ ७६ ॥

अभिरामं रामचन्द्रं रामा भूत्वा सीतापतिम् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे सद्यः श्रीमती सहजेश्वरी ॥ ७७ ॥

तद्रूपदर्शनोद्भूतकन्दर्पविवशाकृतिः ।
अहं च द्रवतां याता नदीरूपेण संस्थिता ॥ ७८ ॥

सहजानन्दिनीशक्तिक्रीडास्थानं महावनम् ।
क्षालयन्ती भुजाकौरस्तरंगैर्वायुनेरितैः ॥ ७९ ॥

त्रिसंध्यं मुनिशार्दूलं तोषयन्ती क्रियाविधौ ।
चिरमेवं स्थिता राजन् कुशिकस्याश्रमं प्रति ॥ ८० ॥

तस्मादहं श्रीसहजाख्यशक्तेः सखीचिरं रामरसात्यभिज्ञा ।
इमामिहोत्तीर्णवतीं विचिन्त्य गृहेऽवतीर्णास्मि तव क्षितीन्द्र ॥ ८१ ॥

नूनमेतदभेदेन पालनीयास्मि वत्सल ।
श्रीरामानन्दरसिका सार्थिनी सहजासखी ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने कौशिकीसम्भवो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



सप्तदशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

यस्माद्रत्नकलशादियमजनि परा लक्ष्मीः सहजा नाम तत एव तिस्रोऽन्यास्तादृग्रूपवयोवेशशीलगुणस्वभावास्तादृश्य एव प्रादुरासुः। नवशीतसुधोदकानां धाराजवोत्क्षिप्तरत्नपर्यङ्किलायां मध्ये द्वे एवसोता चोर्मिला च तयोर्वामदक्षिणायोर्माण्डवी श्रुतिकीर्तिश्चाभवत् ॥

जातमात्रा एव ताः (चतस्रः कन्यकाः) सद्यः प्रादुर्भूय धरणी सोत्साहसाकृतसानन्दमन्दमधुरस्मितदशनदीधितिद्योतदीपितदिक्चक्रवालामहतो विवरान्तरालतः प्रसृत्वरमाणानां सीताजन्ममहोत्सवावसरकौतुकविलोकनं समागतभोगिशिखामणिकिरणकदम्बकानां छटाभिश्छुरिता छविग्रहा कति कति नरेन्द्रगणैरुपभुज्यमानोपभुक्तोपभोक्ष्यमाणापि तेषां जनन्येव महामधुरतारुण्याञ्चित तनुरपि पुराणानां पुराणातमा जरोयसी शनैर्लाघवेन जवाद्रत्नकलशोद्भूतपर्यङ्किकामादायदोर्भ्यं जनकनरेन्द्राय प्रददौ।

तस्यामेव रत्नपर्यङ्किकायांपरितोऽमूश्चतस्रः प्रावृत्य नवापि ताः सरिद्वराः स्थिताः। तेषां मध्य एका स्वयंलक्ष्मीर्नाम या सा पूर्वमेवास्यास्तनुमाविष्टवर्ता। अष्टौ शेषास्तस्याः सखीभावमङ्गीकृत्याख्यातनिजनिजस्वरूपास्तस्य राज्ञो निकेतनं मण्डयांचक्रुः। एवं प्रसूतायां तस्यां जनकनरेन्द्रराजधानी मधुरचन्द्रिकायां राज्ञी सुनयना सुप्राप्तसमस्तमनोरथफला पुत्रजन्मोत्सवादधधिकमुत्सवं चकार ॥

स्थानं तन्मिथिलानामसर्वर्तुविटपिसम्पन्न प्रभूतपत्रपुष्पफलसम्पत्सुशोभाढ्यं कमलेश्वरीजलसमास्वादप्रभूतधिषणैर्जनैराकीर्णं नानाशास्त्रार्णवावारपारीणविद्वज्जन मण्डलीमण्डितं निखिलगुणगणाकीर्णं सो(दुहिता) ताजन्ममहोत्सवप्रमुदितसिद्धविद्याधरोरगाप्सरोगन्धर्वगीतिध्वनिपेलवं स्थाने स्थाने समाहन्यमानानां पटहानां दुन्दुभीनां मृदंगानां घोषैरापूर्यमाणं दिने दिने समुज्जायमानानेकमङ्गलप्रकरणं प्रसन्नान्तःकरणानां जनानां कदम्बकैराकीर्णं प्रतिक्षणपल्लवप्रसवोद्गममनोहारिगृहारामाटवीनिकुञ्जमहोरुहसंस्पर्शमन्दमलयद्रुमसंस्पर्शसुगन्धिनिर्मलसरोजजलसंस्पर्शशीतलमधुरमारुतोपसेवितं वेदशास्त्रपुराणोपनिषद्रहस्यप्रपाठप्रवणमुनिजनखंजनमिथुननिधुवननिर्णीतनिधिस्थानं निरतिशयतपोबल समुत्सारितकालप्रभावैर्निर्जरैर्जानपदैराकीर्णं राज्ञो नैम्यचन्द्रस्य धर्मातिशयेन निरीतितमं सुधर्माभोगवतीप्रख्यं समस्तसुखसम्पदाढ्यंमहामणिमाणिक्यमुक्तागणजटितकाञ्चनेष्टिकामथैर्नृत्यत्सुराङ्गनाकरतालध्वनिसमुद्भूत - प्रतिध्वनितैर्जलदैरिवोन्नतैर्लहलहायमानपताकाध्वजपटावकीर्णशिरोभिः प्रासादगणैः शोभितं नवनिधिकदम्बकाधिकप्रथितद्रविणराशिसनाथनैगमजनप्रमोदपणनकोलाहलितहलहलायमानहट्टागणाकीर्णमहापणपथं त्रैलोक्यलक्ष्म्यैकनिधानं तया नितरां शुशुभे ॥

तत्रावतीर्णां सहजानन्दिनीं रहसि सुनयनादेव्याः। प्रासादे रत्नपर्यंकिकाया-मान्दोल्यमानां जातमात्रामेव विधिरागत्यास्तौषीत्।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते सहजानन्दिन्यै श्रीरामरामेश्वर्यै प्रमोदवनवीथीनिकुञ्जान्तराविहरणानन्द-स्वरूपायै निखिलनिगमोपनिषद्गोपगीतचरित्रायै पूर्णनिशाकरमण्डलमण्डली-विजयप्रभूततमज्योत्स्नाजालविभासितमुखचंद्रमन्दमधुरस्मितलवनिरसितव्रजसीमन्तिनी सौभाग्यगर्वाङ्कुरायै निजमहामन्त्रसाधनप्रसादसुलब्धनिजचरणकमलपरायण-नानामुनिजन मनोरथपूरणार्थप्रदत्तनिजरमणनित्यलीलान्तः प्रवेशायै प्रमुद्वनकुन्द-वनकुमुद्वनसुधावरूढनवशाद्वलविलग्नचरणालक्तकनिरीक्षणप्रभूतपञ्चेषुविकारावसन्नराधा चन्द्रावलीप्रभृतिगोपवालिकाहृदयविरहहुताशनोद्दीपिकायै श्रीमद्रत्नगिरिदरीसानु-मध्योपत्यकानिकुञ्जाटवीनिर्झराभिषेकनिर्मलविग्रहविचित्रितानेकधातुद्रवशोभितायै रत्न-मुक्तावतंसाग्रलग्नमहामणिमरीचिमालामहोद्योतितनिविडतमालकाननतिमिरतिरस्कार-कारिण्यै। कोटितड़िच्छटावभासिविग्रहायै कन्दर्पकोटिलावण्यलक्ष्मीमुपो रामचन्द्रस्य मनोमोहिन्यै श्रीमज्जनकनरेन्द्रनन्दिन्यै॥

यः सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्ततोऽपि परः पुरुषोत्तमो नाम सच्चिदानन्दैकरसनिजनित्यलीलाशालिविग्रहः स एव प्रभुः स्वरूपानन्दमयतादृश-लीलाप्रसाधनाय रामचन्द्रो दृश्यते गवेन्द्रस्यश्रीसुखितनाम्नो गोपराजस्य भवने श्रीमाङ्गल्यकायां स्वयं च भवती च व्रजेन्द्रस्य श्रीनन्दननाम्नो गोपराजस्य भवने श्रीराजिन्याम्।

अविनाशिभूतमेवेदं मिथुनं तस्यैव सहजासीतारामचन्द्रयुगलस्यांशांशो मन्दरे च श्वेतद्वीपे चक्रावस्थाने च सूर्यमण्डले च रमावैकुण्ठे च गोलोके च व्यापिनि वैकुण्ठे च गोवर्द्धने च वृन्दावने च गोकुले च नन्दग्रामे च संकेतरटे च मथुरायां च द्वारावत्यां च साकेतपुरे च मिथिलायां च चित्रकूटे च स्फटिकशिलायां च द्वादशवनेषु च प्रमोदवने च स्वयमेव सहजारामचन्द्रौनित्यकेलिनौ रमेते

नमस्ते प्राणोपजीव्याय प्रावृषेण्य निविडजलवाहपटलप्रकटाभिरामाय रामाय

नमश्च ते तस्य प्राणोपजीव्यायै संभूय प्रकटीभूतकोटितडित्पुञ्जमाञ्जुल्पहारि-स्वरूपायै निजरमणवर्ष्मनिकेषोपलघर्षणनितान्तमधुरसुवर्णरेखायमाणलावण्यसहजायै श्रीसहजायै।

वाङ्मनसयोरप्यगम्यं युवयोर्माहात्म्यं युवामेव जानीथो यत्र विधिशिवादयो वागीशा अपि मन्दप्रज्ञा बभूवुः। एवंविधेऽपियुवयोर्माहात्म्ये छन्दनाय वाग्मिरूपचरतो मम न किं हास्यास्पदता तथापि श्रद्धा भक्तिश्च प्रह्वान्तःकरणता च तावकी निरूप-धिकृपा च समर्थयिष्यत्येवेति महालम्बनं स्तुति पदार्थस्य स्तव्वैकविषयस्य।

नमस्ते पूर्णारूपायै सच्चिदानन्दवर्ष्मणे।
सहजानन्दरूपिण्ये प्रमोदवनदेवते॥ १॥

रासलीलापरौ नित्यं परं ब्रह्म सनातनम् ।
सहजानन्दिनीं रामं कामं वन्देतरामहम् ॥ २ ॥

नमो लीलारसानन्दरूपिण्यै नित्यरूपिण्यै ।
माधुर्यरसमाधुर्यरूपायै पररूपायै ॥ ३ ॥

लीला रूपं गुणाः स्थानं चरित्रं नाम धाम च ।
मायासंयोगराहित्यात् सर्वमप्राकृतं तव ॥ ४ ॥

औत्पत्तिकः स्वभावोऽयं वस्तुतः खलु वास्तवः ।
यत्स्वयं निर्गुणं नाम तादृग्लीलारसात्मकम् ॥ ५ ॥

विभावैरनुभावैश्च तथा संचारिभिः सह ।
रसो वै स इति प्राह सर्वशास्त्रप्रमा श्रुतिः ॥ ६ ॥

अद्यापि विधि शर्वाद्यास्त्वद्रूपंदैवतोत्तमाः ।
क्वेदं कुतः क केनेति सगुणा नैव जानते ॥ ७ ॥

अनुभूतिः स्मृतिश्चैव त्वमेव सकलोत्तमे ।
प्रमाविपर्ययश्चैव विकल्पो निद्रया सह ॥ ८ ॥

विश्वसर्गविसर्गादौ त्वमेवाखिलरूपिणी ।
वैषम्यं चापि नैर्घृण्यं त्वयि तन्नोपपद्यते ॥ ९ ॥

सामरस्यानन्दरसो युवयोः समुपास्यते ।
सामन्तैर्ब्रह्मशक्राद्यैर्विश्वपाधारभूतये ॥ १० ॥

ज्ञानं यत्तद्विशुद्धात्मविषयं प्राकृतेतरम् ।
उपचारक्रमेणैव त्वद्रूपमवलम्बते ॥ ११ ॥

माधव्यास्ताः शुभा वाचो विस्मयं किमु तन्वते ।
तवैव प्रेरणामात्रान्मनसि प्रकटीकृताः ॥ १२ ॥

स्तुतिश्चेदन्यविषया गुणानामवलम्बिनी ।
तदप्यसौ त्वद्विषया निर्गुणैव भवेत्तमाम् ॥ १३ ॥

गुणातीते नित्यपदे सच्चिदानन्दरूपिणी ।
रमसे त्वं नित्याकारे स्वेनैव सहजाभिधा ॥ १४ ॥

निजलीलारसानन्दानुभवार्थं विरहिणौ(विहारिणोः?)।
द्वन्द्वो वां नित्यकैवल्यं सहजेति त्वमीश्यतः ॥ १५ ॥

प्रपञ्चोऽपि भवन्निष्ठो नित्यनिष्केवलात्मकः ।
न संसार इवाभाति जीवनिष्ठो हि संस्मृतः ॥ १६ ॥

कदाचिदात्मनिरतौ युवयोः सहजात्मनोः ।
लीयते स प्रपञ्चोऽपि नामरूपचिदात्मकः ॥ १७ ॥

सत्कारणमसत्कार्यमेक एके विपर्ययम् ।
कार्यकारणकर्त्रेक आहुर्नित्यं भवद्वपुः ॥ १८ ॥

गुणातीततयास्तव्यं प्राकृतप्रतियोगि यत् ।
गुणानां प्राकृतत्वं तु न स्यादप्रतियोगिनाम् ॥ १९ ॥

जातमात्रोऽहमैश्वर्यं न किंचिद्वेद कस्यचित् ।
न हि जीवस्य मे मानं स्वाश्रयं खलु युज्यते ॥ २० ॥

अथ मुक्तिरपि प्रायः स्वाश्रया नैव युज्यते ।
न ह्यणोरस्य महिमा स्वेमहिम्न्यमहीयत ॥ २१ ॥

अतः श्रुतिर्विप्रतिषिध्य सर्वं यद्दृश्यजातं वरिवर्ति लोके ।
दृङ्मात्रशेषं परमं स्वरूपमापादयन्ती फलगोचराभूत् ॥ २२ ॥

स्वरूप एव भ्रमसंशयादिवृत्याकुलैः परतन्त्रैश्च जीवैः ।
न ह्रीश्चरे त्वय्युपपन्नमन्य दृते कर्तुं न मनाच्चैव लापात् ॥ २३ ॥

अतो नतोऽस्मि प्रयतोभूय भक्त्या श्रद्धासम्पत्संजनिताखिलार्थः ।
त्वां च त्वदीशं च रसात्मकं तल्लीलावपुर्नित्यनितान्तकान्तम् ॥ २४ ॥

इत्यभिष्टूय पुरुषीं सहजानन्दरूपिणीम् ।
अवाङ्मनोगोचरत्वाद्विरंचिर्विरराम ह ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



अष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

नतोऽस्मि नित्यं जगदीश्वरेश्वरि त्वदङ्घ्रिसंतानकपुष्पयुग्मकम् ।
चिरं यदाखाद्य रसोऽप्यहं सदा भवामि नित्योदयि दिव्यचेष्टितः ॥ १ ॥

असौ विधिः सर्गविसर्गयोः क्षमस्तथाहमेतत्परिपालनप्रभुः ।
हरस्तथा संहरणेऽस्य कोविदस्तदेतदाराधनमीशि तावकम् ॥ २ ॥

अथ तत्रैत्य भगवान् नारायण उदारधीः ।
निजांशिनीं श्रीसहजां तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥ ३ ॥

विभासि नित्यैव च चरित्रधोरणीविचिन्वतां वेदपथेषु वास्तवीम् ।
वितन्वती ब्रह्मशिवादिचिन्तनप्रमोददां नित्यमुदारमानसे ॥ ४ ॥

अचिन्त्यरूपापि तथा गुणातिगाप्यवाच्यरूपापि गिरामधीश्वरैः ।
विचिन्तनीयासि गुणैर्मनोरमाप्यहो स्वभक्तैर्नितरां प्रगीयसे ॥ ५ ॥

संख्यातुमर्हाणि न ते जगन्नुते नामानिरूपाणि च विश्वपाविनि ।
यज्ज्ञानमात्रेण भृशं जनोऽश्नुते त्रिवर्गलभ्याधिकमर्थमुज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

आदिस्त्वमेवासि च मध्यमस्थ वै त्वमेव चान्तस्त्रिदशाधिपाधिये ।
त्वत्तोऽखिलं विश्वमिदं त्वयि स्थितं त्वय्यैव च ब्रह्मणि सम्प्रलीयते ॥ ७ ॥

त्वमेव लोकेश्वरिभासि सर्वगा त्वमेव चाहं धिषणैकगोचरः ।
त्वमेव वित्तिस्त्वमहंपदार्थयोः सशब्दशब्दार्थपरिच्छिदाकृतिः ॥ ८ ॥

यान्येव नामानि खिलस्य वस्तुनस्तान्येव ते सर्वपदार्थरूपिणि ।
न हि त्वदन्यं कलयन्ति कोविदाः शब्देन चार्थेन च भाविताकृतिः ॥ ९ ॥

उपासनं ते जगदीशि कर्मभिर्ज्ञानेन भक्त्या च विशुद्धरूपया ।
यस्त्वां भवे द्वेष्टि समस्तरूपिणीं सर्वं परादादमुतो हि तत्त्वतः ॥ १० ॥

अतस्त्वमेवाखिलवर्त्मसु स्थिता करोषि कल्याणकदम्बकं भवे ।
तेजःसु यद्वत्सकलेषु संस्थितो विभाति भासा रविरेव केवलः ॥ ११ ॥

माया प्रधानं प्रकृतिस्तथैव चाव्यक्तकल्पेत्यादिपदार्थरूपिणीम् ।
ब्रुवन्ति ये त्वां जगदीशि तेऽबुधा न तत्त्वतस्त्वां किमपीह जानते ॥ १२ ॥

ब्रह्मेति ये त्वां प्रवदन्ति निर्गुणं तेऽप्यञ्जसा नैव विदन्ति वस्तुतः ।
यतः प्रतिष्ठासि परस्य तस्य चिन्मात्रस्यसच्चित्सुखधर्मधर्मिणि ॥ १३ ॥

सर्वं खलुत्वय्युपपन्नमञ्जसा गुणांश्च नैर्गुण्यमपि प्रभावितम् ।
यथा घने सैन्धवखण्ड उज्ज्वले बहिस्तथाभ्यन्तरमेकवस्तुता ॥ १४ ॥

त्वमेव धर्मस्य प्रसरस्य धर्मिणी न भेदतोऽस्ति त्वयि धर्मधर्मिता ।
अथापि चेदस्तु यतोऽखिलात्मके भिदा पदार्थोऽपि न भिद्यते परम् ॥ १५ ॥

त्वयीदृशेवस्तुनि सच्चिदात्मके विरुद्धभावप्रसरोऽपि नेष्यते ।
अस्त्युष्णता तेजसि वार्यनुष्णता समुच्चितं त्वय्युभयं निरीक्षते ॥ १६ ॥

ध्वनिश्च वर्णश्च पदं च सुप्तिङौ वाक्यं महावाक्यमथागमोऽखिलः ।
त्वमेव हि व्याससमासरूपतः प्रपञ्च्यमे वाक्प्रसरेण विश्वतः ॥ १७ ॥

अनादिरेष द्रुम उद्ययौ यतो न मृग्यते मूलममुष्य तत्क्वचित् ।
त्वां तु प्रविज्ञाय विनिश्चितं भवेद्यत्रानिशं सन्दिहते बुधा अपि ॥ १८ ॥

साक्षात्कदाचित्कुरुषेऽखिलं स्वयं त्वं पूरुषद्वारतया कदाचन ।
निजैच्छयैवेशि कदाचिदन्यथा कदाचिदात्मैव समस्तमाबभौ ॥ १९ ॥

वितत्य सर्वं च कदाचिदात्मना करोषि मातस्त्वमनुप्रवेशनम् ।
इत्थं प्रपञ्चे रमसे स्वनिर्मिते यतः समस्तो रमणार्थमेव ॥ २० ॥

तवैव चेष्टात्मक एष एधते कालः कलाकोटिकदम्बकप्रभुः ।
ये वस्तुमात्रोपरि लेढि त तद्गुणान् स लिह्यते चित्कलया किल त्वया ॥२१॥

अथ स्वरूपेण चरित्रधोरणीमधिप्रमोदाटवि यद्वितन्वती ।
अत्युद्भुतैः क्रीडसि विश्वमङ्गलैर्गुणैर्महोदारतरैः परात्परैः ॥ २२ ॥

विजृम्भतेसा करुणात्मता तव स्वभक्तवर्गेषु तदेकजीविषु ।
विचिन्तयेयुः खलु ते किमन्यथाभवापवर्गेच्छुतया विरक्ताः ॥ २३ ॥

(युग्मं) कालः स्पृशत्येव न ते विचेष्टितं सच्चित्सुखैकात्मतया परात्परम् ।
अतोऽस्य मूर्द्ध्नि स्वपदं निधाय ते क्रीडन्ति सर्वस्वभुजो भवज्जनाः ॥ २४ ॥

नमामि ते रूपमदभ्रविभ्रमं कर्णावतंसीकृतरत्नमञ्जरि ।
महाच्छनासामाणीशोभिताननं स्फुरत्कपोलालकवल्लिमञ्जुलम् ॥ २५ ॥

परार्द्ध्यरत्युत्कटरूपसम्पदा विरोचमानाङ्घ्रिनखप्रभाभरम् ।
लीलालसालोलगतिक्रमोद्भवत्रपाविनम्रीकृतराजहंसकम् ॥ २६ ॥

सकेलिकूजन्मणिनूपुरध्वनिच्छात्रीकृतोद्यत्कलहंसनिक्वणम् ।
मञ्जीरिकाधोऽञ्चितहेमकिङ्किणीगणोपधिस्वैरवगुञ्जषट्पदम् ॥ २७ ॥

मन्दानिलान्दोलिदुकूलकान्तरप्रसृत्वरज्योतिरुदग्रपीडिकम् ।
ताम्बूलिकामत्रमनोजघुण्टिकानिरीक्षणोन्मादितमन्मथान्तरम् ॥ २८ ॥

करीन्द्रशुण्डाकदलीकलामुषोः सुजङ्घयोः कान्तिभरेण चिन्तयत् ।
वासोत्तरीयं तनुसूत्रनिर्मितं हेमाम्बुनिर्णिक्तमिवाच्छमद्भुतम् ॥ २९ ॥

नितम्बबिम्बद्वितयद्युतिच्छटाविनिर्जितार्केन्दुसुपूर्णमण्डलम् ।
अधस्तरोयाम्बरपट्टदोरिकाविलम्बिगुच्छाकृतिमौक्तिकव्रजम् ॥ ३० ॥

गम्भीरनाभीह्रदमाधुरीरसप्रमग्नरामेन्दुरसीन्द्रमानसम् ।
तदुद्भवानेकबलीतरंगिणीतरंगनीरोत्तरलीकृतान्तरम् ॥ ३१ ॥

रोमावलीतद्गतशैवलावलीविलीनहृच्छ्रीरसिकेन्द्रपक्षिराट् ।
तनूदरस्थाननितान्तसंशयज्ञानस्थदोलादुलिताखिलाशयः ॥ ३२ ॥

उत्तुङ्गवक्षोरुहभारभावितश्रीविग्रहात्यन्तविनम्रतारुचि ।
अनेकमुक्तामणिहारभासुरग्रीवाविलग्नत्रिसरातिसौभगम् ॥ ३३ ॥

पञ्चाशुगोद्भावितलोकनिर्जयध्वानोद्भवव्यञ्जनकण्ठकम्बुमत् ।
अनेककोटिस्फुटचन्द्रमण्डलश्रीचौरवक्त्रच्छविसारभासुरम् ॥ ३४ ॥

मुखेन्दुपूर्णामयसर्ववासरप्रमोदिदृक्चारुचकोररोचितम् ।
धमिल्लमल्लीसुमनोऽभिगुंफितमधुव्रतासादितमाधुरीरसम् ॥ ३५ ॥

तदेतसीमन्तितदिव्यमौक्तिकप्रकृष्टतारावलिकान्तकीर्तिमत् ।
अमन्दवेणीमणिचन्द्रचन्द्रिकाप्रकाशसन्तोषितनेत्रकैरवम् ॥ ३६ ॥

दन्तावलिद्योतविमिश्रनिर्मलश्रीमन्दहासामलमञ्जुकान्तिमत् ।
दोर्वल्लिवल्गुस्फुरितांसयुग्मकप्रकाण्डनित्योंद्धुरताविराजितम् ॥ ३७ ॥

नखौघमारभ्यशिखान्तमुच्चकैरेकैकमेभिर्नयनैरुपासितम् ।
कटाक्षसंजीवितसर्वमारितस्मरप्रवीरप्रवरप्रमोददम् ॥ ३८ ॥

यद्यप्यदोङ्गं तव सर्वमद्भुतं तथापि मन्मानसबन्धनाय ते ।
सदास्तु पादाम्बुजयुग्ममुल्लसन्नखौघकिंजल्कसमूहरञ्जितम् ॥ ३९ ॥

ध्यानाय गानाय च भक्तचेतसां प्रमोददानाय च नित्यमेधताम् ।
तवेदृशं सौभगमङ्गमाधुरीविमिश्रमत्यर्थमनोहरं प्रभो: ॥ ४० ॥

प्रमोदनामाङ्कितमद्भुतं वनं लीलालयं मे हृदये विराजताम् ।
यदंशमात्रेव विभाति माधुरी वैकुण्ठवृन्दावनगह्वरादिषु ॥ ४१ ॥

लीलाधामविशिष्टमद्भुततमं श्री सम्पदां मन्दिरं
सच्चिद्रूपमनन्तमक्षरमयं यद्व्यापकं विश्वत: ।
तत्ते धाम विराजतां मम हृदि श्रीरामरामेरमे
प्रेमानन्दमयं मनश्च वचनं सुश्रुन्निवृत्तं यत: ॥ ४२ ॥

लीलास्तास्तव राससंनिधिमिता भक्ताखिलास्वादिता
व्यक्ताव्यक्ततया प्रमोदविपिने संजायमाना: परा: ।
भक्तानां हृदयैकचिन्तनरसप्रेमप्रवृद्धप्रदा
भूयासुर्ममजीवनाय सहजानन्दे गुणग्रामणी: ॥ ४३ ॥

परं ब्रह्म रामचन्द्र: सच्चिदानन्दमात्रक: ।
यदीदृशं न प्रभवेद्भक्तानां जीवनं कथम् ॥ ४४ ॥

प्रमोदपात्रीकृतभक्तमानसं ब्रह्मादिदेवैरपि सृष्टु भावितम् ।
लीलारसानन्दत्रयं विराजितं समेधतां मद्धृदयैकजीवनम् ॥ ४५ ॥

नम: श्रीनन्दनाख्याय गोपराजाय धीमते ।
नमस्तथा श्रीराजिन्यै याभ्यां त्वं नित्यलालिता ॥ ४६ ॥

नमस्तदावेशयुङ्भ्यां वात्सल्यरसपुष्टाभ्याम् ।
भाग्यवदभ्यां त्रिभुवनसौख्यकाभ्यां निरन्तरम् ॥ ४७ ॥

दशरथकौसल्याभ्यां सुखितश्रीमाङ्गल्यकाभ्यां च ।
त्रिभुवन सौराज्यपदप्रभाविताभ्यां नमो नित्यम् ॥ ४८ ॥

नमस्ते नित्यपूर्णायै लीलायै मधुरश्रियै ।
यदावेशवशादेतन्मिथुनं नित्यं भासते ॥ ४९ ॥

इति स्तुत्वास्फुरल्लीलारसावेशितया मुहु: ।
रोमाञ्चिततनुर्विष्णुर्दण्डवत्प्रापतद्भुवि ॥ ५० ॥

मुहुर्मुहुः स्तुतिं कृत्वा नतिं कृत्वा मुहुर्मुहुः ।
कृतार्थीकृत्य चात्मानं स्वधाम समगात्ततः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥



एकोनविंशोऽध्यायः

महादेव उवाच

अहं हरिः पद्मभवस्तथान्ये देवा पदङ्घ्रिद्वितयं प्रपन्नाः ।
भवन्ति लोके महतामपीशास्त्वां रामरामां प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ १ ॥

गुह्यं च ते नाम यदास्ति नित्यं गृह्णन्ति यद्वै सहजेति वेदाः ।
मातः स्फुटं तत्प्रतिपाद्यरूपां त्वां देवतां कामपि संश्रयामि ॥ २ ॥

वनं प्रमोदाख्यमनन्तकोटिश्रीजुष्टमानन्दमयं समंतात् ।
त्वद्वल्लभो यत्र च रामचन्द्रो विभाति कन्दर्पपरार्घ्यवेषः ॥ ३ ॥

भक्त्या प्रयुक्तं तदहं श्रयामि भूत्वा कदाचित् खलु कोऽपि गोपः ।
चिरं यदानन्दसमुद्रमग्नो ब्रह्माक्षरं वेद न किंचिदेतत् ॥ ४ ॥

तव स्वरूपं श्रुतिभिर्विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैरपि नैव गम्यम् ।
अधिप्रमोदाटविकुञ्जवीथिष्वदो विसर्पत्यभितः पदाभ्याम् ॥ ५ ॥

शृङ्गारनामा रसराज उच्चैस्तवैव देहे कलितप्रतिष्ठः ।
यदंशमात्रेण जगत्समस्तं विमोहितं स्थावरजंगमाढ्यम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मीः स्वयं या हरिसंगमेन प्रमोदयन्ती हृदयं विभाति ।
सा त्वत्कटाक्षामृतभूरिवर्षैः प्रभाविनीति ध्रुवमेव वेद्मि ॥ ७ ॥

विना त्वदङ्घ्रिप्रभवप्रभावं कुतो भवेदृद्धिरिति प्रतीतम् ।
यतस्त्वदाराधनवञ्चितानां भवोदधौ दुःखपरम्परैव ॥ ८ ॥

दिने-दिने यत्र तवोदयेच्छुः सखीसमूहो यतते त्वदीशम् ।
वशे विधातुं बहुभावदूत्यैः स ते विलासो हृदये ममास्ताम् ॥ ९ ॥

यथा पुमर्थाः पुरुषाय भोगा यच्छन्ति चत्वार उदीर्णरूपाः ।
तथा स्वतन्त्रः खलु ते विलासः फलात्मकश्चैव फलार्पकश्च ॥ १० ॥

तवैव नित्यं वशवर्तिनी सा मायाभिधा शक्तिरनन्तरूपा ।
यथाखिलं मोहितमेवदुच्चैर्जगत्स्वरूपं परतन्त्रमेव ॥ ११ ॥

अचिन्त्यरूपा करुणा भवत्याः शक्ता समुद्धर्तुमुदेतिजीवान् ।
नो चेत्कथं दुस्तरमोहजालं विभिद्य पारं परमं प्रयान्ति ॥ १२ ॥

पितामहो यद्वितनोतिविश्वं रक्षन् हरिर्द्रावयते च दैत्यान् ।
अहं तथा संहरणं करोमि तदेतदाभाति भवत्प्रसादः ॥ १३ ॥

यतोऽभवद्वाङ्मनसं निवृत्तं यदाप्यनावाप्यमिहास्ति किंचित् ।
यदेव सर्वैर्मुनिभिर्गृहीतं तदेव रूपं परमं भवत्याः ॥ १४ ॥

अनन्तशक्तिप्रभवप्रभावमनन्तसंख्याकापुमर्थमूलम् ।
अनन्तकालक्षपणाक्षयं ते विचेष्टितं मे हृदये चकास्तु ॥ १५ ॥

तडिल्लतावच्च सुवर्णवर्णं रामाभ्रसम्पर्कसदामनोज्ञम् ।
ध्यातं न यैस्ते जननि स्वरूपं तेषां भवेऽस्मिन् जनुरेव मोघम् ॥ १६ ॥

तावन्मुखे जाड्यमुदेति भूयस्तावद्दरिद्रो भवतीह लोकः ।
तवन्न कान्तिप्रसरोऽस्मिन् देहे यावन्न तेऽजायत दृष्टिपातः ॥ १७ ॥

अधिप्रमोदाटविकुञ्ज मध्ये श्रीरामयोगेन सदा स्फुरन्ती ।
इन्दीवरश्यामललोचनां त्वां सम्पत्तिसंवित्तिकृते भजामि ॥ १८ ॥

यद्वाग्भवं नाम निरूढवीजं परात्मकं वेदसमूलमूलम् ।
तत्तद्वपुः संनिहितं समस्ततन्त्रेषु मन्त्रात्मतया भजामि ॥ १९ ॥

कदाचिदुन्मीलितमानभावोन्नतै भ्रुवौ मन्मथचापचारू ।
श्रीरामचन्द्रैकरसीन्द्रभाव्ये भजामि ते मुक्तकृपाकटाक्षे ॥ २० ॥

वेदान्तवाक्येषु निगूढमुच्चैर्यत्तत्परं ब्रह्म चिदेकमात्रम् ।
तस्यापि चेत्थं परमाप्रतिष्ठा तदा कथं वाग्विषयत्वमेषि ॥ २१ ॥

नित्ये महिम्नि प्रथितप्रतिष्ठा त्वेके महागाथगुणैकजुष्टा ।
अगोचरा ब्रह्मशिवादिभिस्त्वमधिप्रमोदाटवि दृश्यसे वै ॥ २२ ॥

कदापि पञ्चत्वमियाद्विरंचिस्तथा विरामं भजते रमेशः ।
भजाम्यहं चैव विनाशभावं तदा त्वमीशः स्वयमेव चासि ॥ २३ ॥

त्वदङ्घ्रिपङ्केरुहगर्भधूलीं त्रिवेदमल्लीसुमनोमधूलीम् ।
विचिन्वतां ज्ञानयथेष्वगम्यामधिप्रमोदाटवि किं न लप्स्ये ॥ २४ ॥

वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थैर्योगेन कष्टेन गृहीतमन्यैः ।
तत्त्वतस्वरूपं प्रमुदाटवीनामाभीरकन्याभिरहो सुखापम् ॥ २५ ॥

यथाकथंचिद्विषयैर्विमुक्ता नृणां मनोवृत्तिरुदीर्णरूपा ।
त्वामप्रमेयामविलभ्य सीते कदर्थनीया किमु मुक्तिमार्गे ॥ २६ ॥

ये स्वाश्रयां च प्रवदन्ति मुक्तिं तेषामहंभाविनष्टमात्रा ।
ब्रह्मास्त्ररूपाखलु चित्तवृत्तिरत्यर्थमेवप्रविभाति मोघा ॥ २७ ॥

ये त्वत्पदाब्जं प्रभजन्ति सन्तस्तेषां परानुग्रहमात्रवश्या ।
त्वं ब्रह्मधर्मं प्रविहाय मातः करोषि साश्चर्यचरित्रचर्याम् ॥ २८ ॥

रजांसि भूमेः प्रमिमातु कश्चित्तथा तरंगान् जलधेर्बिभर्तुं ।
तथापि मातस्तव दिव्यकेलीगुणान् न संख्यातुमसौ समर्थः ॥ २९ ॥

नमस्त्रिवेदीशिरसि स्थितायै ततोऽपि दौर्लभ्यतमान्वितायै ।
स्वभक्तिमात्रैकसुलभात्मने ते श्रीसच्चिदानन्दपदोन्नतायै ॥ ३० ॥

प्रमोदवनवीथीषु सहजानन्दिनी तु या ।
सा त्वं जनकभूपस्य गृहे मातः समागता ॥ ३१ ॥

भक्तानुग्रहकारिण्याः को जानाति तव क्रियाम् ।
फलानुमेयमात्रत्वात्तथापि खलु गीयते ॥ ३२ ॥

इत्युच्चार्यं शिवः स्तोत्रं सीतायाः परमश्रियः ।
सानन्दाश्रुमिलन्नेत्रं दण्डवन्न्यपतद्भुवि ॥ ३३ ॥

इति श्री मदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मस्तुतावेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



विंशोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

मदाधिपत्यं कियदेतदस्ति यस्मिन्नहं नाम तथापि मातः ।
सेयं भवत्याः सुदुरन्तमाया नो चेत्कथं वै प्रभजामि न त्वाम् ॥ १ ॥

ब्रह्मादयो लोकपालाः समग्रास्त्वदङ्घ्रिपङ्केरुहधूलिधूसराः ।
लुठन्ति ते धाम्नि शुभे प्रमुद्वने गवां पुरीषेषु रजःसु चैव ॥ २ ॥

तत्रापि मातः प्रविभासि नित्यं प्रमोदवल्लीवनगह्वरेषु ।
अत्रापि चांशेन ततोऽवतीर्णा रामेण साकं रमितुं रमाभिः ॥ ३ ॥

यान्या अपि ब्रजभुवि प्रमदाः सहस्रं श्रीरामचन्द्ररमणोत्सवलब्धकामाः ।
तास्त्वत्प्रसादमधिगम्य न चेदभूषां क्वेदं सुखं हरिविरंचिशिवाद्यलभ्यम् ॥ ४ ॥

व्यक्ता विभाति सततं बहुमूर्तिता ते एकैव यद्रमसि रामरसोन्द्रयुक्ता ।
कुमुद्वने प्रमुदवीथिषु नित्यधाम्नि संकेतकुञ्जमिथिलापुरि कोसलायाम् ॥ ५ ॥

श्रीराधिकासिकिलकीर्तिसुतेतिगीतासीतासिकोसलपुरेमिथिलापुरे च ।
व्यक्तं तदंशसहिता सहजेति चासि श्रीमत्प्रमोदवनवीथिषु पूर्णरूपा ॥ ६ ॥

पूर्णैव सर्वविषयेषु वितीर्णदृष्टिर्नित्यं तथापि रमसे रसिकेन्द्रयुक्ता।
श्रीमत्प्रमोदवनवीथिषु नित्यमग्ना स्वानन्दसिन्धुलहरीगणसंगमेषु ॥ ७ ॥

साकेतधाम्नि सुभगे सरयूतटान्तरिंगन्तरंगशिशिरोपवनाभिरामे।
नत्यं स्थितैव जगतोऽन्तकरणाय मातर्भूयोऽपि सम्प्रकटितासि निजांशुभासा ॥ ८ ॥

कल्याणिनी सुखदकल्पलता जनानां स्वाङ्घ्रिप्रसादभवभव्यसमूहभाजाम्।
भक्ति तनोषि कृपया खलु रामचन्द्रहस्तग्रहं विदधती भवसिन्धुमध्ये ॥ ९ ॥

न स्यास्त्वमीशि यति दत्तकरावलम्बा भक्तावलेर्विदधतीकुशलानि नित्यम्।
श्रीमन्महारसिकराजवरोऽपि किं तु कुर्वीत तेषु करुणामरुणाङ्घ्रिपद्मे ॥ १० ॥

स्वरूपभूता तव या प्रकाशशक्तिः परं सा सुविशुद्धसत्त्वा।
उदीर्णबोधा विरजस्तमस्का न यत्र मायागुणसम्भूतओघः ॥ ११ ॥

अज्ञानिनां ये गमकास्ते न सन्ति लोभादयस्तव देहानुबन्धाः।
तथापि दर्पं शमयस्यासुराणां धर्मावगुप्तिं कुरुषे च स्वभावात् ॥ १२ ॥

त्वं कालरूपा त्वमसि श्रीः सुधा त्वं माता पिताजगतस्त्वं हि तेषु।
लीलावतारैर्जयसि क्रीडसि त्वं नानास्वरूपैः सह पत्या रमेत ॥ १३ ॥

त्वं भक्तिरूपाखिलजीवजुष्टा प्रवर्तयस्यार्यपथं कृपाढ्ये।
वेदार्थसारज्ञबुधावलीभिः प्रायः प्रपन्ना निजरूपलब्धये ॥ १४ ॥

ब्रह्माण्डवर्गे मद्विधाः कोटिशस्ते गायन्ति कीर्तिं विपुलप्रणादम्।
दृष्ट्वा विभूतिं तव भूरिभाग्ये न कस्य जायेत हि मानभङ्गः ॥ १५ ॥

आविर्भवन्ती भुवने भ्राजसे त्वं शमाय दैतेयजभूभरस्य।
तथैव पादाम्बुजमाधुरीजुषां भवायवर्गाय सतां मुनीनाम् ॥ १६ ॥

तुभ्यं नमो भगवत्यै पुरुष्यै श्रीजानक्यै श्रीसहजाधिकायै।
अप्राकृतं सत्वमुपाददाना या क्षेममेतस्य करोषि तस्यै ॥ १७ ॥

यः कृष्णनामा भगवान् यशोऽदागर्भैकरत्नं भविता द्वापरान्ते।
सोऽपि त्वदंशेन समृद्धकामो भवायवर्गं स्वजुषां संविधाता ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रोऽजनि राजमौलेरघुप्रवीराद्दशवक्त्रादिहन्ता।
सो वै त्वदीयाधरपीयूषधारावशीकृतः क्रीत एव त्वयाम्ब ॥ १९ ॥

स्वच्छन्दलीलावपुषे विशुद्धविज्ञानमूर्त्यै करुणात्मिकायै।
सर्वात्मिकायै सर्वबीजप्रदायै नमो नमः सर्वभूतात्मने ते ॥ २० ॥

न ज्ञायते ते जनैर्न स्वरूपमस्मादृशैस्तव भाव्यानुबद्धैः।
तेषां कृपाहेतव एतदेव प्रकाशितं निजरूपं भवत्या ॥ २१ ॥

त्वयानिजानुग्रहभाजनीकृताः सुरेश्वरा मादृशाः कोटिशोऽद्य।
न चेत्कथं दृश्यरूपास्यमीभिर्निरंजना निर्गुणा त्वं निरीहा ॥ २२ ॥

त्वं जानकी जनकस्यालयेऽद्य त्वं श्रीः परा सहजा त्वं कलेश्वरी ।
स्वयोगशक्त्या बहुधा त्वं विभासि त्वया सनाथा वयमद्धा समस्ताः ॥ २३ ॥

त्वमीश्वरीदेवि चराचरस्य त्वं नः पतीनां पतिरप्रमेया ।
धराधर्मश्रुतिकोविप्रदेवरक्षाकरी जयतात्केवलैव ॥ २४ ॥

लक्ष्मण उवाच

इत्युक्त्वा देवराजस्तां सुरभीस्तननिर्गतैः ।
अभ्यषिञ्चत्सरभसं पयोभिरमृतोपमैः ॥ २५ ॥

ऐरावतकरानीतव्योमगङ्गापयोभरैः ।
मन्दारकुसुमस्तोममकरन्दसुगन्धिभिः ॥ २६ ॥

सौराज्यं चैव साम्राज्यं सर्वैश्वर्यमहापदम् ।
आधिराज्यं महाराज्यं दत्वा तस्यैपरश्रिये ॥ २७ ॥

तदीयचरणाम्भोजमकरन्दसुनिर्वृतः ।
कृतार्थं मन्यमानं स्वं निजलोकमुपाव्रजत् ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



एकविंशोऽध्यायः

अग्निरुवाच

तव नखरुचिद्योत्तैः पारेपरार्द्धरविप्रभा भवति सततं मन्दीभूता प्रमोदवनेश्वरि ।
अथ यदि भवत्कारुण्याब्धेरुतञ्चतिवीचिका शिथिलप्रायप्राणोऽप्यशोभत सूर्यवत् ॥१॥

जननि मयका प्राप्तं तेजस्त्वदीयनखत्विषस्त्रिभुवनमहाराज्यमप्यणुमासते ।
यदिदमखिललोके पूर्णं महः प्रविलोक्यते तदपि तव चेद् दृष्टं रूपं भवत्यणुमात्रकम् ॥२॥

दिनमणिः स्वो मुक्तामाणिक्यहीरमाणिप्रभा हिमकरकलाकान्तिस्तोमः सुवर्णमरीचयः ।
यदिहभुवने दिव्यं भौमं तथा करजं महः सकलमपि तन्मन्ये तावन्मदङ्गकलोद्भवम् ॥३॥

मयि पुनरदस्तेजोमात्रं त्वदीयतनुप्रभा वितरणभव मातः का ते रुचामियतीस्तुतिः ।
परमपुरुषप्राणप्रेयस्तमे भवतीपरं कलयसि कलाकलापं यत्सत्वं तदूर्जितमात्मना ॥४॥

इयतिविभवे तासां भासामहो सुमहापदे जयति भवती सीतेमूर्द्धाभिषिक्त पदागमैः ।
तदपि च न ते दृष्टःकापिध्रुवंमनसिस्मयो न भवति यतःकाचित्कोटिर्भवत्प्रतियोगिनी॥५॥

प्रमुदविपिनक्रोडक्रीडापरा परपूरुषप्रणयपदवीसीमा सामानुग्रहभाजनम् ।
कलयकलयप्रेम्णा श्रीमत्पदाम्बुजयोः परं विधिहरिहरश्रीशेषेन्द्राद्युपासितमात्रयोः ॥६॥

परमपुरुषार्थस्ते लीलारसात्मकविग्रहेप्रमुदविपिनान्तश्रीः संयोगविप्रयुजात्मिका ।
विधिहरिहराद्यन्तर्निष्ठैः सुरैः समुपासिता प्रकृतिमधुराकारा धारामृतद्रवरूपिणी ॥७॥

रसिकमणिना युक्ता रामेन्दुनाप्रमुदाटवी प्रकटविलसद्रूपा गोपालिकापटुवोशिनी ।
उदयसिकलाकोटिज्योत्स्नामयीमधुराकृतिर्निजरसमहामग्नानन्दोदधेःस्वसखीगणैः ॥८॥

तव हि रमणः प्रोक्तः श्रीरामचन्द्र इति श्रुतौ तदुदयपदंश्रीमर्यादाख्या श्रुताभवतीपुनः ।
त्वपि सतिभवेत्सद्बुद्धिश्चेज्जनो न विमुच्यतेनियतमथ तज्जायेतज्ञानंयदीश्वरगोचरा ॥९॥

नमो महाचिदानन्दिनीशक्तिसमेताय विश्वोदयस्थितिसंहरणामितलीलाशालिने महाभागैकरसिकाय प्रमोदवनविलासिने प्रमोदवननिकेतनचमत्कारकस्वानन्दभयनित्यनिरवधिविलासप्रेमास्पदस्वरूपाय रामाय ॥ १० ॥

तुभ्यं च नमस्तदेकविहारिण्यै ब्रह्मानन्दैकप्रतिष्ठायै संयोगसुधातरङ्गिण्यै वियोगहुताशकवलीकृताशेषव्यतिरिक्तभावायै ज्वालामालिन्यै प्रज्वलन्महाभावानलज्वालानुरागरसिकायै गोपश्वर्यै जनकनरेन्द्रतनयायै तत्र श्रीनन्दनदुहित्रे श्रीराजिनीगर्भैकमहांशु मालिमाणीक्यमालायै श्रीसुखितगवेन्द्रनन्दनप्रेमैकभाजनायै श्रीमाङ्गल्यकालालनललितविग्रहायै निरवग्रहानुग्रहपात्रीकृतनिजजनपरिवेष्टितयै परमपुरुषीरूपप्रकटिताशेषपुमर्थधोरिण्यै सुधारसद्रवशीतायै सीतायै ॥ ११ ॥

इत्थमुक्त्वा स्तुतिं तस्यास्त्रिवेदीरूढसत्पदाम् ।
दण्डवन्न्यपतश्चाग्निराधिदैविकरूपधृक् ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे देवस्तुतावेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



द्वाविंशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच

नमोऽस्तु ते धर्मवसुन्धरायै धर्मात्मिकायै धर्मफलात्मिकायै ।
समस्तधर्मातिगदैत्यवंशमूलच्छिदे रामपरप्रियायै ॥ १ ॥

समस्तजीवाभ्युदयैकहेतुर्धर्मः परस्त्वं फलदा च तस्य ।
विभासि चेत्तस्य प्रतियोगिनी त्वं तदा भवेदद्‌ुःखततिर्जनानाम् ॥ २ ॥

समासतो व्यासत एव चापित्वमेव धर्मः श्रुतिलक्षणो यः।
सर्गाय विश्वस्य तनोषि रूपं मर्यादाख्यं यत एवास्य बन्धः॥ ३॥

प्रवाहमार्गोऽप्यखिलस्त्वयीशि प्रतिष्ठितो यत्र भवः पुनः पुनः।
निजेच्छया रामरमे कदाचिदनुग्रहं चेत्कुरुषे विमुक्त्यै॥ ४॥

कर्त्ता क्रिया कर्मगणः समस्तस्त्वयीशि सर्वं करणप्रतिष्ठितम्।
सर्वस्याधिष्ठानमयैकशक्त्या विचिन्त्य भोगेच्छतयास्त्वधोजुषे॥ ५॥

कुतर्कमोहोपहतस्वभावाः कुतः क वा नेति वदन्ति त्रिश्वम्।
अध्यात्मविद्याकुशलाः पुनस्त्वां सर्वस्य मूलं परमामनन्ति॥ ६॥

दण्डं भवे धारयाम्युग्रमद्धा पापात्मसु त्वत्स्वरूपद्रुहेषु।
सोऽहं यदा स्यां परमोशमानी तदा मयि त्वं विदधासिदण्डम्॥ ७॥

लिखाम्यहं सदसच्चेतरेषां भवप्रवाहोपगतात्मनां नृणाम्।
न तु त्वदीयोन्नतपादपद्मपरायणानां पुरुषेश्वराणाम्॥ ८॥

कदाचिदानेतुमभूत्प्रवृत्तो मद्भूतवर्गः प्रमुदाटवीस्थम्।
कंचित्त्वदीयं जनमात्ममोहाद्बहिः कदाचित्कलितात्यधर्मम्॥ ९॥

तथा ह्यम्ब कश्चिदन्त्यजः पापाचार आजन्मकृतमांसाशनो मदिरामत्तो मत्स्यान् घ्नन् संततततिपिशितैकपरिपोषितनिजकुटुम्बः शिश्नोदरपरायणः केनचित्कर्मणा प्रमोदाटव्यां चातुर्मास्यप्रसङ्गे समागतानां परमहंसानां मुनीनां श्रीरामभक्तानामङ्ग-सङ्गिनं पवमानं सेवमानः स्वपत्न्याऽऽनीतं तदुच्छिष्टं जुषाणः श्रीहरिचरणसरोज-संगितुलसीदलसौरभमम्भः पिबन् कालमतिवाहयामास। ततः कदाचिन्मृगयां गतो वराहान्महिषान्मृगांश्चोद्वेजयमानः केनचित्केसरिणाकालितः प्राणात्ययमगात्। ततस्तमानेतुं यमदूतास्तीक्ष्णदंष्ट्राः करालवदनाः सुदीर्घनासा भयानकाः कल्माष-विग्रहाः पिशंगोग्रोर्ध्वप्ररूढकेशाः कठिनकशाभिघातिन उच्चावचदशनाः प्रेता इव संयमनीं नेतुं प्रवृत्ताः।

तांश्चार्द्धपथ एव तर्जयन्तस्तर्जयन्तइव सधनुर्वाणाम्बुजकराः
पीतवाससो वेत्रधराः श्रीरामराघवेन्द्रस्य दूता मिलिताः।
ते च तैः पराभूतामन्निदेश्या असमर्था इव जाताः।
किमर्थंमसकौवर्णाधमो धर्मविमुख आजन्मयचितपिशितो मृगाशनः
श्रीरामचन्द्र दूतैः श्रीरामपार्श्वमेव नीयत इति
शोचमानास्ततः परावृत्ता बभूवुरागत्य च मामूचुः॥ १०॥

यमदूता ऊचु

भगवन् वैवस्वत श्राद्धेऽव कश्चिन्दन्त्यजः प्रमोदवनस्य पार्श्वे लुब्धको भूत्वा विचरन् केशरिणाहतः। सोऽस्मयात्केरभ्य आच्छिद्य श्रीरामचन्द्रदूतैः श्रीरामपार्श्वमेव मीयत इति महदाश्चर्यं नः संवृतं यतोऽयं दुराचारः पापिष्ठतमोऽन्त्यजः सन्यासिनामूर्द्धरे-

तसां योगीश्वराणामात्मज्ञानामपि दुरापं रामपदं केन कर्मातिशयेन नीयत इति भवानेव वेदेति । तानहं विमृश्य तस्याचिन्त्यगतितामवोचम् ॥ ११ ॥

अहो दूता न ज्ञायत एष भवद्भिः प्रमोदवनैकतिष्ठन्सकलभाग्यवतां मूर्द्धानमधिरूढस्तत्र खलु कदाचिद्रामभक्ताः परमहंसा मुनयोऽभ्युपेतास्तेषामुच्छिष्टमनेन भक्षितमभूत्सारवं चाम्बुश्रीचरणसुगन्धितुलसीतरुमञ्जरीमञ्जुलसोवहं स्फुटमाजन्म पीयूषतमभूत्तदङ्गसङ्गीशीतलमन्दसुगन्धिः पवमानश्चसेविततमस्तेन कर्मणाध्वस्तरजस्तमोमलः सुविशुद्धमानसोऽयं देहात्यये रामदूतैरेव नीयते श्रीकुञ्जाख्यंधाम नातः परमीदृग्विधोऽप्यन्योऽपि भवद्भिरिहानीयतां तत्रैता गाथाः स्मर्तव्याः येषां प्रमोदवनवासजुषां जनानां पापात्मनामपि सुखार्थमतीतमायुः । स्वेच्छाक्रियाश्च हरिनामपराङ्मुखाश्च तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १२ ॥

ये सारवं सलिलमिन्दुसुधावलक्षं श्रीपादसंकलितमञ्जलिभिः पिबन्ति ।
तत्तीरऽभूरुहगतातपगात्रतापास्तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १३ ॥

येषां च कुक्षिगतमन्नमतीव पूतमुच्छिष्टभूतममृतोपममेकसिक्थम् ।
श्रीरामचन्द्रमधुराधरसंगमिष्टं तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १४ ॥

श्रीरामसेवककेरेर्विपुलप्रसादेरुच्छिष्टदत्तममृतोपमिष्टमन्त्रम् ।
ये भक्षयन्ति नितरामपि नीचजातास्तान्नैव संस्मृशत दूतवरामदीया ॥ १५ ॥

ये रामचन्द्रचरणाम्बुजलग्नचारुनित्योल्लसत्तुलसिकारजसाभिषिक्ताः ।
श्रीरामनामगदनैर्वदने पवित्रास्तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १६ ॥

चाण्डालयोनिपतिता अपि येऽन्तकाले श्रीमत्प्रमोदवनभूतुलसीतरूणाम् ।
मूलोद्भवां कर्हिचिन्मृदमुद्वहन्ति तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १७ ॥

ये चित्रकूटरमणाद्रिशिलातलोत्थां मृत्स्नामतीवरुचिरां च समुद्वहन्ति ।
मन्दाकिनीपुलिनघूलिसुधूसराङ्गास्तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ १८ ॥

ये कोसलानगरराजपवित्रवीथीधूलीसुपृक्तवपुषो मनुजा म्रियन्ते ।
आजन्म पातकक्रुतोऽपि नृशंसयोऽपि तान्नैव संस्पृथत दूतवरा मदीयाः ॥ १९ ॥

येषां प्रमोदवनवीथिषु काककोलपेर्वादयः कवलयन्ति वपुः कदाचित् ।
पिण्डादिकर्मरहितानपि चातिपापांस्तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ २० ॥

ये कोसलापरिसरत्सरयूतरङ्गासम्पृक्तमारुतसमागममात्रपूताः ।
देशेषु तेषु निवसन्ति च मानवा ये तान्नैव संस्पृशत दूतवरा मदीयाः ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्तास्ते मदीया अत्युग्रयातनाकारिणोऽपि दूता कोसलापुरोपान्तभूमिषु प्रमोदवनवीथिषु चित्रकूटपरितः प्रदेशेषु सरयूतीरप्रदेशेषु तदुपान्तदेशेषु च मृतान्नैवाधुनाऽऽनयन्ति पक्षिणो मृगान् मशकान् कीटानपि किमुत मानवान् । सोऽयं तवैव महिमा श्रीमज्जनकनरेन्द्रनन्दिन्याः साकेतपुराधीशमहिष्या मिथिलापुर कुमारिकायाः । प्रमोदवननित्यवासिन्याः श्रीप्रमुदाटवीसाम्राज्यसुखितश्रीराघवचन्द्र-

चन्द्रिकायाः श्रीनन्दननन्दिन्याः श्री सहजानन्दिन्यास्त्रिभुवनसुखसमूहबितरणाय नित्य मुज्जृम्भतेस्म। ॐ नमस्तस्यै सुवर्णहलाकृष्टजनकनरेन्द्रयज्ञावनीयावनीकरणप्रवणायै रत्नसिंहासनपरिसरपृसृत्वरनवनवीननदीतरङ्गच्छटाचाखोज्यमानाद्भुतविग्रहायै ऊर्मिला माण्डवीश्रुतकीर्तिमण्डितमहामहासनप्रतिष्ठितायै धरणीदेवताकरकमलवितीर्णायैजनक-नरेन्द्रसादरगृहीतायैसुनयनादेवीनयनानन्दिचन्द्रिकायैचलच्चकोरीनयनाञ्जलिनिपीतमुख-चन्द्रसुधायै श्रीसहजानन्दिन्यै ॥ इत्युक्त्वा वैवस्वतो भगवान् मुहुर्मुहुरूपहृतोपढौकनीय-कृतनिजविग्रहः साष्टाङ्गं प्रणम्योपरराम ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोपाख्याने यमकृतजानकीस्तुतिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥



त्रयोविंशोऽध्यायः

निर्ऋतिरुवाच

अभूदधर्मप्रसरः पुरा यत् पापात्मिका सृष्टिरभूत्तरामम,
ततोऽपि संरक्षित आत्मनो जनस्तस्मै नमस्तेऽखिलधर्ममूर्तये ॥ १ ॥

कलिः कलंकी कठिनः कलाहरः सर्वात्मना पापरुचिर्जनुष्मताम्।
यन्नामनोदेन विलुप्तवैभवस्तस्मे प्रमोदावनिसुश्रिये नमः ॥ २ ॥

भावाश्रये काममदादयोऽनिशं महोर्जिताश्चैव महाबला नृषु।
त्वकीर्ततस्ते विफलात्मतामगुस्तस्मै समस्तोद्धरणात्मने नमः ॥ ३ ॥

नमो नमस्ते जनकेन्द्रनन्दिनी प्रमोदकुन्दावनकुञ्जवासिनि।
नमो नमस्ते रसिकेन्द्रसंगते स्फुरन्महाभोगसमूहभोगिनि ॥ ४ ॥

शृङ्गारमूर्तः स्मर आधिदैवकः श्रीरामचन्द्रस्य मनोविमोहनः।
तदंशमात्रा स्फुटमुद्गतो भवे चक्रे मुनीनां महतां विमोहनम् ॥ ५ ॥

एवं त्वदीयाखिल लीलारसार्थं सम्पुष्टरूपाः क्रोधमोहादिभावाः।
तेषामंशा विषयानन्दयोगाज्जनं निबघ्नन्तिनिजेन कर्मणा ॥ ६ ॥

पञ्चेन्द्रियाणां खलु याश्चवृत्तयस्त्वद्भुक्तिभाजामकूलतां दधुः।
ता एव लग्ना विषयेषु भूयसिश्वभ्रे लोकं पातयित्वा प्रवृद्धाः ॥ ७ ॥

त्वं शैशवे जानकीति प्रगीता सीतेति चाद्यैः कविभिः सुधीभिः।
तारुण्यमभ्येत्य च मोदिनीति प्रमोदारण्ये सहजानन्दिनीति ॥ ८ ॥

एकैकं ते नाम सर्वेषु वेदेष्वाख्यातं चेदेष लोको गृणाति।
तस्यानुभावाद्याति भावं परं ते प्रेमाख्यं यः कोटिजन्मातिपूतः ॥ ९ ॥

यज्ञैर्दानैस्तपसाचातिमात्रैर्वृतः सुपुण्यातिशयेन कश्चित् ।
त्वत्पादाब्जं भजते देवि सीते तस्य क्षणात्सुलभो रामचन्द्रः ॥ १० ॥

शेषो रविर्वायु पुत्रोऽथ रुद्रः साक्षात्स्वयंभूर्भगवान् विरञ्चिः ।
इन्द्रश्चन्द्रः सनकाद्याश्च सर्वे जानन्ति त्वांमीशि भजन्ति भक्त्या ॥ ११ ॥

ज्ञानात्मको भगवान् श्रीहयास्यस्त्वद्भक्तिमात्रादुत्पुलकः सदैव ।
गृणाति त्वां कुम्भजाप प्रसादाद्यत्कुभजस्त्वां भजते नित्यमेव ॥ १२ ॥

स्वायंभुवो मनुराख्यातधर्मः सर्वं ते चाब्रूत राद्धान्तमेकम् ।
त्वद्भक्त्याख्ययेनरामः प्रसन्नो नित्यानन्दं स्वपदं संददाति ॥ १३ ॥

नान्यः पन्था विद्यते स्वात्मलब्ध्यै नान्यो भावो विद्यते चापि लोके ।
नान्यजानं विद्यते सर्ववेदेष्वेकं सीतानाममात्रं विहाय ॥ १४ ॥

ज्ञानं सीतानामतुल्यं न किंचिच्छास्त्रं सीतानामतुल्यं न किंचित् ।
कृत्यं सीतानामतुल्यं न किंचिद्वेघं सीतानामतुल्यं न किंचित् ॥ १५ ॥

एकं शास्त्रं गीयते यत्र सीता एका लोके देवता चापि सीता ।
एको मन्त्रश्चापि सीतेति नाम कर्माप्येकं पूज्यते यत्र सीता ॥ १६ ॥

सर्वे देवा यत्पराः सम्बभूवुः सर्वे यज्ञा यत्पराः सम्बभूवुः ।
सर्वे मार्गा यत्पराः सम्बभूवुः सा त्वं सीतानाम लोके प्रसिद्धा ॥ १७ ॥

सीता नित्या जानकी मोदिनीति प्रेमा क्षेमा सहजानन्दिनीति ।
ध्यायञ्छृण्वन् संगिरन् कीर्तयंश्च जन्तुर्नित्यं मुच्यते सर्वबन्धात् ॥ १८ ॥

पाहि त्राहि त्रिभुवनमिदं स्वाश्रयं नित्यसिद्धे
पाहि त्राहि त्रिभुवनजनान् स्वाश्रयान् देवि सीते ।
पाहि त्राहि स्वरमणकरं रामचन्द्रस्थ लोकं
भूयो भूयो जगति भवती भ्राजतां नित्यमेव ॥ १९ ॥

जगत्स्वामिनी भामिनी कामिनी त्वं जगत्तोषिणी पोषिणी रामयो वा ।
जगद्वन्दिता नन्दिता नन्दिनीत्वं चिरं देवि दीप्यत्स्वभक्तानवन्ती ॥ २० ॥
अये रामचन्द्रप्रिये पूर्णरूपे परा चेन्दिरा त्वत्कटाक्षोप्थरूपा ।
परा भारती भ्राजमानाभवे त्वं प्रिया रामचन्द्रस्य नित्यं रमस्व ॥ २१ ॥
स्वाराज्यसाम्राज्यराज्याधिदेवी स्वानन्दसम्पत्समूहाधिराज्ञी ।
प्रेमानुभावप्रभावप्रसन्नाक्रीडस्व नित्यं जनानां मनस्सु ॥ २२ ॥
चिदानन्दाकारं तव वपुरशेषागमगणैः स्तुतं वन्द्यं ब्रह्मादिभिरतुलभक्तिप्रवणताम् ।
प्रयातैः संसेव्यं गुणरहितया प्रेमकलया चिरं चित्ते मातः स्वयमुपरमेद्येन च भवः ॥२३॥
त्वदीयं लावण्यं निखिलनिगमैरादिकविभिः
प्रगीतं यल्लेशोऽभ्युदयतिशशाङ्कप्रभृतिषु ।
श्रिया जुष्टेषूच्चैः प्रकृतिषु जगद्वस्तुषु यतो
जनानां दृङ्मोहो भवति भवतो विस्मृतिरपि ॥ २४ ॥

अहो भाग्यं नरेन्द्रस्य जनकस्य यदालये ।
प्रमोदवनतोऽभ्येत्य परा लक्ष्मीर्विराजते ॥ २५ ॥

किं भाग्यं मिथिलापुरीगृहजुषां भावोद्धुराणां नृणां
येषां दृष्टिपथं प्रयाति सुषमा लोकोत्तरं तावकी ।
ब्रह्माद्यैरपि वा स्मृता क्षणमपि स्वाराज्यलक्ष्मीमदं
दूरीकृत्य तनौ तनोति पुलकान् प्रेमाङ्कुरं चेतसि ॥ २६ ॥

अद्यापि त्वं प्रमुदविपिने क्रीडसि स्वैर्विलासै
स्तेनैवाविर्भवसि वपुषा दृश्यसेऽत्रापि चैवम् ।
कुन्दारण्ये कलयसितरां चैव लीलां विशालां
तेनैवासि श्रुतिषु गदिता व्यापिका ब्रह्मरूपा ॥ २७ ॥

अहो ईदृशी श्रीरिहाभून्नपूर्वं स्फुटं याजनि व्यक्तमेवावतारे ।
पुरे चापि देशे वने वीथिकासु प्रभाते यथा सूर्यरोचिःप्रसंगात् ॥ २८ ॥

तमो विनष्टं सकलं भवेऽस्मिन् प्रफुल्लतां मानसपङ्कजानि ।
साताम गुः सम्प्रति तद्द्रुहां च शिरोऽवतंसान्यपतन् पृथिव्याम् ॥ २९ ॥

आब्रह्मलोकं जगदेतदद्धा प्रसन्नतां यन्नितरां जगाम ।
तेनैव भावानि सुमङ्गलानि महानुभावैर्विदितानि लोके ॥ ३० ॥

जय जय जाह्नवीविमलकीर्तिकदम्बरी जय जय सज्जनावलिमनोज्ञशुभाचरिता ।
जय जय भावनामयसुमङ्गलादिव्यतनो जय जय जानकीत्वममिताद्भुतमाङ्गलिके ॥३१॥

पाहि पाहि जगत्सर्वं रमय स्वामिकं निजम् ।
श्रीरामं चिद्घनानन्दं लीलां विस्तारयामुना ॥ ३२ ॥

यथा पूर्वं रमयसि प्रमोदविपिनान्तरे ।
तथाद्युनापि रमय रामचन्द्रं रमापतिम् ॥ ३३ ॥

प्रमोदविपिने यस्ते लीलापरिकरोऽखिलः ।
अधुनापि स एवात्र जायतां मनसो मुदे ॥ ३४ ॥

एवं स्तुत्वा निर्ऋतिर्देवतात्मा तस्या अग्रेन्यपतदण्डवत्सः ।
भूयो भूयस्तनुसंजातरोमा नत्वानत्वाहृदि हर्षं चकार ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे निर्ऋतिकृतस्तुतिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥



चतुर्विंशोऽध्यायः

वरुण उवाच

कूप्याः सरस्याः सरितां यथायः समुद्रमेव प्रविशन्ति सर्वाः ।
उच्चावचास्त्वयि सर्वेऽपि भावाः प्रविश्यास्तं यान्ति नित्यस्वरूपे ॥ १ ॥

यथा जलोत्थं मलमातृणोति जलस्वरूपं सर्वतः सम्प्लुतं यत् ।
त्वदुद्भूवा देवि तथैव माया त्वामावृणीते व्यापिकां ब्रह्मरूपाम् ॥ २ ॥

क्षारांस्तथा मधुराः सत्य आपो न माधुर्यं कचन व्यभिचरन्ति ।
एवं भावाः सदसद्रूपिणोऽपि न ते सत्तां व्यभिचरन्ति कुत्रचित् ॥ ३ ॥

स्वतन्त्रंच ते धाम नित्याव्ययं यत् सत्त्वान्तःस्थं भाति सर्वावतारे ।
तदेवेदं भासते शुद्धसत्त्वमन्तर्हितं तावकं शुद्धरूपम् ॥ ४ ॥

त्वमात्मभूता जगतामन्तरङ्गा माया गुणैर्लक्ष्यसे नो पृथक्त्वम् ।
एकत्वे सद्विदुषां ज्ञानगम्या प्रकाशसे बहिरङ्गेऽपि चार्थे ॥ ५ ॥

विशन्नयोगोलकमन्तरानलः स्वरूपशक्तिं वितरति लोहपिण्डे ।
तथा त्वमन्तः प्रविशन्ती जनानां स्वावेशेन स्फुरमाणं करोषि ॥ ६ ॥

त्वदाविष्टं मानसं सज्जनानां कल्याणैस्त्वद्गुणावर्गैरुपैति ।
त्वया विवर्ज्यं हृदयं दुर्जनानां मायागुणैराक्रमितं भवेच्च ॥ ७ ॥

कारुण्यं ते प्रकृतिः सर्वजीवेष्टाभद्रहृद्भ्राति सामान्यतोऽपि ।
तथाप्यमी दुखस्थां भजन्ते स्वकर्मभिः सदविद्याविलासाः ॥ ८ ॥

निर्गुणा सगुणा च त्वं निष्क्रिया चापि सक्रिया ।
असौम्या चापि सौम्या त्वमेकैवानेकरूपिणी ॥ ९ ॥

परा त्वं च पश्यन्तिका मध्यमा त्वं त्वं वैखरी सृष्टिरनन्तरूपा ।
त्वं वर्णरूपा पदवाक्यार्थरूपा त्वं तद्वृत्तिः स्फोटरूपा त्वमेका ॥ १०॥

यथा नभो दूरतौ नीलवर्णं शुद्धादर्शे प्रतिबिम्बत्वमेति ।
तथैव त्वं प्रविकर्षेण दृष्टेर्मायागुणेषु प्रतिरूपं करोषि ॥ ११ ॥

त्वद्बोधकं वाक्यमेकं वदन्ति ओंतत्सदित्युच्चकैः सम्प्रयुक्तम् ।
तेनाशेषा वेदयज्ञाः क्रियाद्याः सद्वस्तुवर्गाः प्रभवन्त्यर्थदाने ॥ १२ ॥

जयं तपश्चापि यज्ञादिकाः क्रियाः प्रकुर्वतां फलवाञ्छापराणाम् ।
श्रद्धारूपा त्वं मनस्यभ्युपैषि यथा शेषः सिध्यति कार्यवर्गः ॥ १३ ॥

जीवन्नैवासौ परेतो मनुष्यो यस्त्वद्रूपं क्वापि जानाति नैव ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिरनाशकाद्यैर्यस्यांभक्तिं स्पृहयन्ति प्रवीणाः ॥ १४ ॥

निन्दावादस्तावको यत्र मातः संजायेताज्ञानिनामासुराणाम् ।
ततो गच्छेद्देवि कर्णौ पिधाय तिष्ठेद्वापि स्वामिर्न यस्त्वदीयः ॥ १५ ॥

त्वन्नामनादामृतसिन्धुमध्ये कृतावगाहो मनुजः श्रद्धया यः।
तमुग्रसंसारसमुद्र एष सदोत्तरंगोऽपि न संस्पृशव्यहो ॥ १६ ॥

सर्वानु धर्मान् ये परित्यज्य मातस्त्वदङ्घ्रिपोतं संश्रयन्तीह भक्त्या।
ते संसाराब्धिं शनकैरुत्तरन्ति ते वै जना ज्ञातशास्त्रैकसाराः ॥ १७ ॥

यावन्न ते जायते सम्प्रपत्तिर्हस्तग्राहं नैव तावत्करोषि।
त्वयाङ्गीकृतमेनं मनुष्यं श्रीरामोऽपि प्रभुरुत्तारयेत्किम् ॥ १८ ॥

विश्वास एवाश्रयिणां ते जनानां संसाराब्धौनावमज्ञाम एव।
यज्जानकीचरणसरोजयुग्मे आत्मोपहारीकृत आदाय सर्वम् ॥ १९ ॥

भारोऽप्य शेषस्त्वयि चेत् समर्पितो यो वैदिको लौकिकश्चाप्यशेषः।
न वै तेषामिह चामुत्र किंचित्कर्तव्यं स्याज्जनकनरेन्द्रकन्ये ॥ २० ॥

नृपोऽप्यसौ भाग्यवतां शिरोमणिर्न ज्ञायते किं कृतवान् पुण्यजातम्।
यदालयालंकरणाय जातया लोकत्रयं शश्वदलंकृतं त्वया ॥ २१ ॥

अहो मातर्वयमिन्द्रादिदेवास्त्वत्सेवकानां नितरामिन्द्रियाणि;
प्रविश्य नित्यं निभृतं पिबामस्त्वदीयलीलाश्रवणादिकाः सुधाः ॥ २२ ॥

अहो इयं मिथिलानामभूमेरनन्यशोभाकरणी वभूव।
आविर्भूता यत्र रामस्य रामा त्वं वै साक्षात्प्रकृतेः पूरुषात्परा ॥ २३ ॥

कीर्तिस्त्वदीया जनकेन्द्रसम्भवे गङ्गादितीर्थावलिपावनोचिता।
येषामन्तः सम्प्रविष्टा जनानां त आवलीपावनपावनास्युः ॥ २४ ॥

यस्याः कटाक्षस्पृशिमात्रेण लक्ष्मीर्नारायणस्याङ्कगा सम्भूवः।
ब्रह्माणी च ब्रह्मण उमा शिवस्य तां त्वां श्रयामः सर्वसौभाग्यलक्ष्मीम् ॥ २५ ॥

एकैव त्वं बहुधाऽऽकारयुक्ता रामेन्दुना रमसे रासमध्ये।
तां त्वां परां भक्तियुक्ताः प्रपद्य स्वात्मानमत्यर्थकृताश्च यामः ॥ २६ ॥

त्वदाननेन्दुप्रभवज्योत्स्नया वयं यद्वत्प्रमोदाटविगाश्चकोराः।
स्वानन्दसम्पत्तिसमुद्रगमग्नाः शश्वत्कृतार्थाः सुभगे देवि सीते ॥ २७ ॥

अधिप्रमोदोटवि देवि यद्वदद्विरेफमाला सुखिताङ्गसौरभैः।
तथा मदीयेन्द्रियवृत्तिराजी त्वद्भक्ति सम्पृक्तयास्तु मोदिनी ॥ २८ ॥

इदं परं संतते कामयामो वयं निजं स्थानमभ्येत्य मा क्वचित्।
दर्पाचिताः किंचिदभूम यस्त्वत्पराङ्मुखा क्वापि न स्याम सीते ॥ २९ ॥

सहजानन्दिनीं तां त्वां प्रयत्नाः शरणं वयम्।
ब्रह्माण्डानां कोटयोऽपि यस्यां शात्पुरुषाद्वभुः ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा वरुणस्तात दण्डवत्प्रायतद्भुवि।
रोमाञ्चिताशेषतनुर्भक्तिपीयूषपूरितः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मस्तुतौ वरुणस्तुतिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

वायव ऊचु

कल्पान्ते यत्कलितसुमहा वृद्धयो वेगवन्तः
सप्ताकूपारगजलभरं क्षोभयामः समंतात् ।
सम्प्रेरयामो नवजलधरान् पुष्करावर्तकान्
सोऽयंमातस्तव बलभरः कीदृशो वर्णनीयः ॥ १ ॥

स्थैर्यं तावत्कनकगिरिणा यत्प्रकाशीकृतं सद्
यस्मिन् वाति प्रलयसमये स्वैरमेवास्तमेति ।
जालान्तस्तेऽप्यणुकणसमास्सन्ति चोड्डीयमानाः
सोंऽयं वेगो न किमपि भवेद्रूपितायां भवत्याम् ॥ २ ॥

पापस्तोमप्रलयकरणी विश्वमेतत्पुनीते
यद्वज्ञानं विषयरहितं जीवमज्ञं चिरेण ।
सा ते शक्तिः पवनमसकौ शब्दिता स्पर्शहेतो
र्यस्याभावाच्छव इति धृता शौचमुक्तं श्मशाने ॥ ३ ॥

गङ्गाद्यास्ते चरणरजस्योद्भूतमाहात्म्यभाजो
यच्चैतन्यं तदपि परमं प्राणनेनैव मर्त्याः ।
इत्थं मातस्तव गुणगणः कीर्त्यमानस्त्रिवेद्यां
सोऽपि श्रुत्या श्रवणपुटयोः कल्मषं निर्धुनीते ॥ ४ ॥

जनकनरेन्द्रनन्दिनि भवत्प्रणयैकवशः ।
सुखितगवेन्द्रधाम्न्युदियाप स ते रमणः ।
अथ रतिखिन्नं सुप्तमदृकं मिथुनं भवतोः
क्वचिदपि बीजयाम सरयूजलसंगमिनः ॥ ५ ॥

नमो युवाभ्यां ताभ्यां यौ सहजासुखितात्मजौ ।
तयोरेका त्वमत्रासि द्वितीयो दशरथालये ॥ ६ ॥

तवावगाहनक्रियावितीर्णतीर्थता मया-
त्यचिन्त्यशक्तिभाविते प्रसज्य साखोदके ।
महाघनष्टचेतनं नितान्तकल्मषाकृतिं
समस्तमुक्तमुच्चकैर्नरं प्रपावयामहे ॥ ७ ॥

मातः सम्प्रति चित्रकूटशिखरिश्रेष्ठप्ररुढान् वयं
सच्छिद्रान्तरवेणुभूरुहवरानापूर्य निष्कामिणः ।
मन्द्रध्वानकणाः सदैव निभृतं गायामहे त्वद्गुणान्
श्रीमन्नन्दनराजिनीसुजनिते येऽधिप्रमोदाटवि ॥ ८ ॥

त्वद्भक्तिवर्जितहृदां भववेदनाभिः संतप्तसर्ववपुषां सुमहोष्मरूपैः ।
अन्तः प्रविश्य निभृतं वयमाश्वसन्तः प्रज्वालयाम भवदुःखहुताशराशिम् ॥ ९ ॥

वयमेकोनपञ्चाशन्मातस्त्वच्चरणाब्जयोः ।
रजांस्यादायशिरसा लोकेषु विकिरामहे ॥ १० ॥

भक्त्यर्थं भविकार्थं च भूत्यर्थं भूपमानिनाम् ।
भक्तानामभ्युदयार्थं दाहार्थं चाप्यघैधसाम् ॥ ११ ॥

त्वत्कीर्तिपुण्डरीकेभ्यो वयमादाय सौरभम् ।
प्रसादयामः सर्वत्र पूतं येन जगद्भवेत् ॥ १२ ॥

त्वद्विलासाटवीमम्ब वयं तेऽनन्यसेवकाः ।
शोभाविशेषसम्पत्त्यै मन्दमान्दोलयामहे ॥ १३ ॥

सम्प्रेरयामः सरयूतीरभूमीतलस्पृशौ ।
परस्परादत्तहस्तौ युवां वैयत्र तिष्ठथः ॥ १४ ॥

कदा मातस्तीरत्रिदशतरुपुष्पप्रकारिणीं
सरय्वभोवेणीं मधुरमकरन्दद्रववतीम् ।
ददामः पाद्यार्घाचमनमधुपर्कैस्तपनधीः ।
युताः शुद्धात्माने वयमिह युवाभ्यां सविनयम् ॥ १५ ॥

अयोध्याप्रासादोपरि विहरतोरम्ब युवयोः
प्रकामं दम्पत्योर्विहृतिभवसस्वेदवपुषोः ।
वहन्तः सौरभ्यं त्रिभुवनजनोन्मादनकरं
कृतार्था यास्यामः क्व नु परित्यज्य सविधम् ॥ १६ ॥

वयं वै तिष्ठामः प्रगुणवति तत्रैव सविधे
वने वा हर्म्ये वा यदि यदि युवां यत्र भवथः ।
नमस्यन्तो नित्यं कृतमति युवाभ्यां फलभरै
र्नमद्भिः श्रीखण्डप्रभृतितरुभिर्मूर्द्धवपुषा ॥ १७ ॥

इति निगद्य समीरणपुङ्गवा जनकभूपसुताचरणाब्जयोः ।
जगृहुरुद्गतभक्तिविशेषजप्रणयवन्मनसो विनयोन्मुखाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे वायुकृतस्तुतौ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥



षड्विंशोऽध्यायः

कुबेर उवाच

धनाधिपतिरस्म्यहं जननि भक्तवर्यस्य ते-
सखा हृदिनिरन्तरं किमपि भावयानः स्थितः।
कदा खलु भवत्यहो जनकभूपतेर्मन्दिरे
शुभैरखतरेत्तरां भवति यन्निधीनां फलम् ॥ १ ॥

गायकेभ्यो नर्तकेभ्यस्तथैव च स्तावकेभ्यस्तथा।
स्वस्तिवाचकेभ्यो ददे निधीन् ॥ २ ॥

अथ जन्मोत्सवदिने मातस्तव फलं गताः।
आकरेषु चिरं रुद्धा निधयो मम हस्तगाः ॥ ३ ॥

भवत्या ये पत्यावुदयमुपयायाते दशरथ
क्षितीन्द्रस्यागरे व्यपितपरिशिष्टा विनिहिताः।
निधीन् संस्कुर्वे तानहमधिकमद्य त्वदुदये
जगन्मांगल्यार्थे गुणवति वितीर्य द्विजगणे ॥ ४ ॥

अद्यास्माकमहोभाग्यं यक्षाणां बहुकालतः।
सुसाध्यस्थापिता विद्याः करिष्यामः फलान्विताः ॥ ५ ॥

ता एव विद्याश्च गुणास्त एव तान्येव रत्नानि धनानि चैव।
येषां खलु स्यादुपयोगयोगः प्रभौ प्रसादोन्मुखतामुपेते ॥ ६ ॥

अद्याहं रिक्तयिष्यामि निधिस्थानान्यशेषतः।
तव जन्मोत्सवं प्राप्य दानैर्मानैश्च बन्धुषु ॥ ७ ॥

पुनस्तव विवाहादिकौतुके समुपस्थिते।
त्वद्भाण्डागाराधिकारिमहद्भूतं भरिष्यति ॥ ८ ॥

न खल्वक्षयवस्तूनां विनाश उपपद्यते।
भृतं भृतं रिच्यतेऽथो रिक्तं रिक्तं पुनर्भरेत् ॥ ९ ॥

सकुटुम्बोऽद्यनृत्येयं गायेयं च गुणांस्तव।
विहरेयं हरेयं स्वं दद्यामद्यामथादपे ॥ १० ॥

त्रिभुवनमङ्गलकारि त्वदीयमिदमद्भुतं।
जन्मनो चेत्कथमव्यक्तं भवति व्यक्तं परं ब्रह्म ॥ ११ ॥

नमो निष्करणोपाधिकरुणारसवारिधे।
तुभ्यं त्रिभुवनोद्भासि कीर्तये ब्रह्ममूर्तये ॥ १२ ॥

नमश्चैतन्यसाक्षिण्यै स्वानन्दवपुषे भृशम्।
स्वप्रकाशस्वरूपायै नीरूपायै सुरूपिणि ॥ १३ ॥

भक्तचेतश्चमत्कारिप्रेमानन्दैक मूर्तये।
भुवनोद्भासिभाग्यौघभरितायै नमो नमः ॥ १४ ॥

स्वैरलीलाविनोदिन्यै वशिताधिकमूर्तये ।
तत्संगामृतपानेनाप्यतृप्तमनसे नमः ।। १५ ।।

श्रीभूलीलाद्यनन्तप्रकटगुणगणाख्यानरूपात्मिकायै ।
साक्षाच्छ्रीरामचन्द्रामितरतिसुखितस्वादितस्वान्तरायै ।
भक्तैकानुग्रहार्थंप्रसृमरविमलापूर्णकारुण्यलक्ष्म्यै
जानक्यै जन्मवत्यै खलु भुवि सहजायै परब्रह्मणे ते ।। १६ ।।

इत्युक्त्वा पदयोः पपातः भगवान् राजाधिराजः प्रभु-
र्भूयोवैश्रवणः स्थितः सविनयं बद्ध्वा तदग्रेञ्जलिम् ।
पद्माद्यैर्निधिभिः कृताञ्जलिपुटैर्जन्मोत्सवे सम्भ्रमं
कर्तुं भूरि समागतेः सहयुतः श्रीमैथिलेन्द्रालये ।। १७ ।।

एवं सर्वे सुरौद्याः स्तुतिमतुलतरां श्रौतवाक्यैः प्रमाणै
र्निर्मायानन्तकोटिप्रचुरगुणगणाख्यायकैर्भूरि वारम् ।
ब्रह्मेशानौ रमेशं सुरपतिमपि चोच्चैः पुरस्कृत्य याताः
प्रेमानन्दाब्धिवीचिसमुदयनिभृतोद्धूतचित्तावगाहाः ।। १८ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे कुबेरकृतस्तुतौ षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

सप्तविंशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

ततो गतेषु देवेषु स्तुत्वा कृत्वा च कौतुकम् ।
जन्मोत्सव निमित्तं तत्तत्रावर्तत मङ्गलम् ।। १ ।।

प्रावर्तत महोत्साहो जनकक्षितिपालये ।
कन्यारत्ने प्रजातेऽस्मिन् भाविसीतेतिनामनि ।। २ ।।

विप्रानामन्त्रयांचक्रे विधिज्ञान् जनको नृपः ।
पुत्रवच्चोत्सवं चक्रे जातकर्मपुरःसरम् ।। ३ ।।

पुरग्रामव्रजादौ सा मिथिला समलंकृता ।
काश्मीरचन्दनरसैः सिक्ताश्च पुरवीथयः ।। ४ ।।

प्रासादसौधशिखरेषु विचित्रवस्त्रचञ्चत्पताकरुचिरध्वजकेतुमाल्यैः ।
शोभातुलाजनि सुमन्दसमीरलोलैर्जन्मोत्सव प्रमुदितौरिव नैम्यपुत्र्याः ।। ५ ।।

द्वाःसु प्रभूततरकाञ्चनकुम्भयुग्मैः शोभा च काप्यजनि सा प्रतिवेश्म नृणाम् ।
पूर्णामृतोदकसपल्लवपञ्चरत्नदध्यक्षतक्रमुकदूर्वसनारिकेलैः ।। ६ ।।

स्तम्भैः प्रभूतकदलीप्रभवैः सुपत्रैः सत्पत्रपुष्पफलतोरणवस्त्रमाल्यैः ।
आमोदिभिर्मलयजैर्दहनप्रदग्धैः कालागुरुप्रभवधूमघनाघनैश्च ॥ ७ ॥

कस्तूरिकाकहिमबालुकया प्रदिग्धैः श्रीचन्दनाकहरिचन्दनपङ्कभारैः ।
[1]अन्योन्यमतिमहोत्सवमुक्ष्यमाणैरभ्युद्गतैश्च जलयन्त्रजचन्दनोदैः ॥ ८ ॥

उत्साहिभिश्चटुलनागरलोकजल्पैः सम्मर्दिभिश्चनटमागधवन्दिसूतैः ।
उद्गायकैश्च गुणवद्भिरतिप्रवीणैर्वीणामृदंगपणवानकतालवाद्यैः ॥ ९ ॥

जन्मोत्सवः स गुणवान् प्रबभूव तस्याः सानन्दनर्तनसगानसतूर्यघोषः ।
यद्वत्पितुर्दशरथस्य सुते प्रजाते कौसल्यया जनविलोचनचारुचन्द्रे ॥ १० ॥

रामे वरे रसिकरत्नशिरोऽवतंसे ब्रह्माक्षरप्रकृतिकालगुणातिगायिनि ।
रामो दिवाकरकुले रघुवीरसंज्ञः सहजा पुर्निमिकुले खलु जानकीति ॥ ११ ॥

सेयं श्रीरामचन्द्रप्रतिमगुणवयोनामरूपप्रभाव
प्रेमानन्दस्वभावप्रभुविभुपटिमालं कृतिश्लोकशीला ।
लीलालावण्यलक्ष्मीर्लयनिभृतदृशां योगिनामप्यचिन्त्या
नित्यंसंचिन्तनीया जनकजसहजाशक्तिसीतेति नाम्ना ॥ १२ ॥

अथ जनकनृपः प्रमोदमत्तः प्रणयरसप्लुतधीः सकण्टकाङ्गः ।
अतिसुवितीर्णवान् जनेभ्यो भुवि तदपत्यभवोत्सवागतेभ्यः ॥ १३ ॥

अलंकृताः काञ्चनरत्नमालादुकूलमुक्ताभरणाङ्गरागैः ।
ताम्बूलवल्लीदलवीटिकाभिः संतोषिता भोजनपान[2]शक्तया ॥ १४ ॥

समुज्जगुः सुस्वरमुक्तकण्ठाः सुगायनाः कोकिलवच्चुकूजुः ।
सुवाद्यशब्दैर्ननृतुः परे जनाः समुद्युदानन्दसमुद्रमग्नाः ॥ १५ ॥
चकार जातकर्मास्या ब्राह्मणैर्विधिपारगैः ।
नालच्छेदावसाने स कृत्तश्मश्रुरशोभत ॥ १६ ॥

स पुत्रिणामग्रगण्यं स्वमात्मानममन्यत ।
योगी जनकराजेन्द्रो दृष्ट्वापत्यमुखाम्बुजम् ॥ १७ ॥

प्रेमानन्दसमुद्रान्तर्मग्नो राजेन्द्रसत्तमः ।
ब्रह्मानन्दं व्यगणयदनर्हं षोडशीं कलाम् ॥ १८ ॥

संतोष्य ब्रह्मक्षत्रादीन् निजबन्धून् नृपोत्तमः ।
तेषां करेभ्य आदाय दूर्वादलफलाक्षतान् ।
अलंकृत्य सुसम्भाष्य चक्रे प्रस्थापयां ततः ॥ १९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन् न्यूनाक्षरमार्षः ।

२. भक्तया—मथु० ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

भरत उवाच

श्रुत्वेदं श्रीप्रजावत्याः सहजायाश्चिदाकृतेः ।
श्रीरामचन्द्रप्रेयस्याः परमं जन्ममङ्गलम् ॥ १ ॥

प्रेमप्रमादसंयुक्तः संजातो मे महोत्सवः ।
एको मे संशयो जातस्त्वं च तं छेत्तुमर्हसि ॥ २ ॥

भ्रातर्लक्ष्मण भोगीन्द्र श्रीरामप्रियकारक ।
यतीन्द्र जगदाराम पराक्षर चिदाकृते ॥ ३ ॥

सर्वं जानासि तत्त्वं त्वं सीतारामचन्द्रयोः ।
यथा तथा स्वरूपं यदेकधानेकधा स्फुरत् ॥ ४ ॥

भूमेः सुताभवत्सीता हेमलांगलसीतया ।
कथं तस्यां निमिश्चक्रे पुत्रिप्रेमविवर्द्धनम् ॥ ५ ॥

राज्ञी सुनयना चापि कन्यारत्ने परोद्भवे ।
अनन्यतनयप्रेम प्रेयसी निमिभूपतेः ॥ ६ ॥

एतद्बीजं ममाचक्ष्व भ्रातरग्रजनेऽक्षर ।
कौतुकाविष्टचित्तस्य त्वद्भाषितसुधामनु ॥ ७ ॥

लक्ष्मण उवाच

शृणु भ्रातः प्रवक्ष्यामि प्रणयिन् भरत प्रभो ।
सावधानमना भूत्वा यथावदवधारय ॥ ८ ॥

सीतायाः समभूज्जन्म जनकस्य गृहे यथा ।
पूर्वं तु जनकस्यैव गेहेऽभूत्सा लक्ष्मीभिधा ॥ ९ ॥

प्रेयसी रामचन्द्रस्य स्फुरन्ती तडिदाकृतिः ।
देवी सुनयनागर्भरत्नं मूर्तिमती रमा ॥ १० ॥

या पूर्वंक्षीरपाथोधेस्तनया विष्णुसंगता ।
रुचेः ख्यात्यां च या जाता ततोऽन्येष्वपि जन्मसु ॥ ११ ॥

द्वारकायां रुक्मिणी या वैकुण्ठे च तथा रमा ।
अविनाभावसम्बन्धात्तेन सर्वत्र योगिनी ॥ १२ ॥

सा तु संजातमात्रैव जनकस्यालये पुरा ।
दिशः प्रकाशयामास दीधितिर्भास्वतो यथा ॥ १३ ॥

चन्द्रानना चकोराक्षी गण्डमण्डलभास्वरा ।
विशालभालसंशोभिभूरिभाग्यार्णवोपमा ॥ १४ ॥

शरदिन्दोश्चन्द्रिकेव सुधास्नपितविग्रहा ।
चाम्पेयनिर्जयितनुः कल्पवल्लीव चेतना ॥ १५ ॥
सद्यः प्रसूतमात्रापि प्रभामण्डलमण्डिता ।
कुमुद्वतीनाथकोटिसुप्रकाशस्मितानना ॥ १६ ॥
सर्वाश्चर्यकरी साक्षात्कल्याणगुणभूषिता ।
तस्या मुखेन्दुं नेत्राभ्यां पिबन् जनकभूपतिः ॥ १७ ॥
योगानन्दाधिकं योगी परानन्दमवाप सः ।
तस्मिन्नेव क्षणे तत्र सुवर्णहलकर्षिते ॥ १८ ॥
यज्ञवेदीस्थले सद्यः प्रादुर्भूता वराङ्गना ।
त्रैलोक्यातीतलावण्या रूपमाहात्म्यमञ्जुला ॥ १९ ॥
यथोक्तसुसमुद्भासिरत्नसिंहासनस्थिता ।
सरिद्रूपसखीवृन्दस्तूयमानगुणोत्करा ॥ २० ॥
चामराभ्यां वीज्यमाना महासिंहासनोपरि ।
चन्द्रमण्डलसंदोहसुवर्णच्छत्रशोभिता ॥ २१ ॥
स्वाकारसदृशाकाररूपलावण्यमूर्तिभिः ।
तिसृभिर्वरयोवाभिः सौभाग्यासनमण्डिता ॥ २२ ॥
मूर्तिमद्भिश्च निगमैः सशब्दं समुपासिता ।
तन्त्रैश्चतुःषष्टिसंख्यैः स्तूयमाना समंततः ॥ २३ ॥
अनन्तकोटिमन्त्रैश्च तात्पर्येण सुसंस्तुता ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च दैवतैः समुपासिता ॥ २४ ॥
स्मयमानमुखाम्भोजमहासौरभ्यसंगतैः ।
मत्तभ्रमरसंदोहैर्दूरतः पर्युपासिता ॥ २५ ॥
मूर्तिमद्भिश्च निधिभिर्महापद्मादिभिश्चिरम् ।
अन्वीयमाना सुमुखी सुदती च सुलोचना ॥ २६ ॥
कर्पूरसौरभोद्गारिताम्बूलोदलचर्विणी ।
श्यामा षोडशवर्षीया पूर्णतारुण्यभूषिता ॥ २७ ॥
नारीभिः पन्नगीभिश्च देवीभिश्च समंततः ।
सिद्धगन्धर्वपत्नीभिर्नागराजसुतादिभिः ॥ २८ ॥
अनन्तकोटिसंख्याभिः शक्तिभिः समुपासिता ।
महासाम्राज्यसम्पद्भिरविकम्पमुपासिता ॥ २९ ॥
अनेककोटिब्रह्माण्डप्रसन्नश्रीभराश्रिता ।
एका नित्यापि बहुधा जायमानेव लक्षिता ॥ ३० ॥

तां पूर्वोक्तप्रकारेण राजा समुपलभ्य तु।
अनिनाय गृहे स्वस्य महिष्यै तां समर्पितुम् ॥ ३१ ॥

ततः सम्पश्यतां तेषां देवगन्धर्वरक्षसाम्।
मनुष्याणां मुनीनां च बभूवातीव कौतुकम् ॥ ३२ ॥

पूर्वं जाता तु सा तस्यां सद्य एव व्यलीयत।
सा चासीदद्य संजाता शिशुरूपा मनोहरा ॥ ३३ ॥

एतच्चरित्रमतुलं निरीक्ष्य जनको नृपः।
अतीव विस्मयाविष्टो बभूव सुमहामतिः ॥ ३४ ॥

जनक उवाच

किमिदं खलु संजातं दैवतं चरितं महत्।
उभे अपि परे दृष्टे रूपसारविभूषिते ॥ ३५ ॥

अन्यूनानतिरिक्तश्रीसम्भावितवपुर्लते।
एका विवेश चैतस्यां साप्येषा समभूच्छिशुः ॥ ३६ ॥

अहो अत्यद्भुतं दृष्ट्वा मनो मे विस्मयाकुलम्।
चिरं समाधिनाप्येनामहं ज्ञातुं न पारये ॥ ३७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥



एकोनत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

एवं चिन्तयतस्तस्य मुनीन्द्रः समुपागतः।
शुकः सर्वार्थतत्त्वज्ञो वैयासकिरुदारधीः ॥ १ ॥

तमपृच्छत्ततो राजा तद्दैवचरितं स्मरन्।
प्रजातामनुजातायां लीनां तस्याश्च शैशवम्।
स्मारं स्मारं बभूवासौ विमूढ इव योगवित् ॥ २ ॥

राजोवाच

जाता मे परमा कन्या देवतात्मा कलानिधिः।
तस्याः प्रकाशमात्रेण निस्तमस्कमभूज्जगत् ॥ ३ ॥

नूनमेषा स्वयं लक्ष्मीर्या विष्णोरुरसि स्थिता ।
किंचित्कारणमासाद्यप्राकट्यं समुपागता ॥ ४ ॥

अहो अत्यद्भुतं चास्या रूपं तत्सुमनोहरम् ।
पायं पायं दृशा ब्रह्मन्नहं मग्नः सुखोदधौ ॥ ५ ॥

ब्रह्मानन्दादपि महदन्वभूवमहं सुखम् ।
अथान्या देवता जाता तस्मिन्नेव क्षणे मुने ॥ ६ ॥

सुवर्णंहलकृष्टायां यज्ञवेदीमहाभुवि ।
तरुणी तरुणेन्द्वाभा साक्षाच्छ्रीरिव रूपिणी ॥ ७ ॥

सर्वावयवशोभाढ्या तेजःसद्मानुभाविनी ।
उत्फुल्लपङ्कजमुखी कोटिचन्द्रप्रभातनुः ॥ ८ ॥

तां गृहीत्वाहमायातो ब्रह्मघोषपुरःसरम् ।
तडिच्चन्द्रार्कतुल्याभां यावद्राज्ञ्यै समर्पये ॥ ९ ॥

तावत् सम्पश्यतां नृणां तत्क्षणेनैव पूर्वजा ।
स्वयं भुव्यनुजातायां समाविश्य व्यलीयत ॥ १० ॥

रुदन्ती भूमिगा कन्या सा चासीदद्य जातवत् ।
अजातनालच्छेदा सा जातकाख्येन कर्मणा ॥ ११ ॥

महान्तमुत्सवं कृत्वा पुत्रवत् संस्कृता मया ।
तत्किमेतन्मुनिश्रेष्ठ संजातं चरितं तपोः ॥
पूर्वजानुजयोर्मातृगर्भरत्नस्वयंभुवोः ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो योगीन्द्रः शुकनामकः ।
उवाच जनकं भूपं तपोर्याथात्म्यसारवित् ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि याथात्म्यं कन्ययोस्तयोः ।
एकैव सा महालक्ष्मीर्या परा परमा कला ॥ १४ ॥

अविनाभावसम्बन्धान्नित्यमेव प्रतिष्ठिता ।
हरौ लीलारसानन्दसर्वसाम्राज्यभाजने ॥ १५ ॥

सा तु पूर्णस्वरूपेण प्रमोदवनमध्यगा ।
पूर्णं नित्यं परं ब्रह्म रसरूपं निजं वपुः ॥ १६ ॥

रामाख्यं चिद्घनानन्दं रमपत्येय भायिनी ।
नित्यप्रेममयैः केलिरसैः कौतुककारिभिः ॥ १७ ॥

क्रीडनैश्चरितैः सर्वकल्याणगुणयोगिभिः ।
तच्च प्रमोदविपिनं तस्याः स्थानं मनोरमम् ॥ १८ ॥

रामवैकुण्ठमुद्दिष्टं सीतावैकुण्ठमद्भुतम् ।
कालाक्षरातिगं मायागुणसंदोहदुर्गमम् ॥ १९ ॥

अप्राकृतं चिदाकारं प्रेमानन्दरसात्मकम् ।
नायिका तस्य स्थानस्य नाम्ना श्रीसहजेश्वरी ॥ २० ॥

वशीकृत्य निजैर्नित्यैः प्रेमानन्दमयैर्गुणैः ।
नित्यं स्वरमणं रामं रमते सा निरन्तरम् ॥ २१ ॥

यथा रामस्तथैवेयं तथा रामो यथा ह्यसौ ।
उभयोर्नैव भेदोऽस्ति विदुषां तत्त्वदर्शिनाम् ॥ २२ ॥

मुमुक्षूणां च मुक्तानां साधकानां परायणम् ।
युगलं नाम तद्ब्रह्म परात्परमुदाहृतम् ॥ २३ ॥

स भूमा पुरुषोऽस्यांशः किमुतान्ये सुरादयः ।
सर्वावतारमूलं तत्कालमायागुणातिगम् ॥ २४ ॥

अस्यैव कीर्तिताः सर्वे आविर्भावा अनेकधा ।
देवताः पितरश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ २५ ॥

मनुष्याः पशवश्चान्ये समुद्भूता इतोंऽशतः ।
किं बहूक्तेन सर्वोऽपि प्रपञ्चो निमिभूपते ॥ २६ ॥

इत एवोदयं प्राप्तस्तथैवास्मिन् प्रलीयते ।
अस्मिंश्च तिष्ठते नित्यं कोटिब्रह्माण्डरूपतः ॥ २७ ॥

समासव्यासयोगेन समस्तो निगमः स्फुटम् ।
अमुमेव सदा गायत्यन्तस्तत्त्वसमाख्यया ॥ २८ ॥

उद्गायोद्गाय बहुधा नेतिनेतीत्युवाच ह ।
लक्ष्मीरस्याः प्रभूतोंऽशो या वैकुण्ठे विराजते ॥ २९ ॥

श्रीमन्नारायणयुता सर्वभक्तेष्टदायिनी ।
नारायणोऽपि रामांशः शङ्खचक्रगदाब्जभृत् ॥ ३० ॥

चतुर्भुजस्वरूपेण वैकुण्ठे च प्रकाशते ।
सीतारामौ नित्यलीलौ रमेते श्रीप्रमुद्वने ॥ ३१ ॥

प्रमोदवनमभ्येत्य महावैकुण्ठमुत्तमम् ।
पूर्णरूपे तिरोभूय लीलाः सम्भावयिष्यति ॥ ३२ ॥

तदर्थं पूर्णरूपेण प्रादुर्भूतेयमद्भुता ।
प्रमोदवनलीलानां सिद्धये परमा रमा ॥ ३३ ॥

अवतारमयी लीला साकेतनगरे पृथक् ।
मूलरूपमयी लीला प्रमोदवनमध्यगा ॥ ३४ ॥

अयं भेदः समुद्दिष्टो रूपद्वयविभावने ।
प्रमोदविपने चैषा नित्यमेव हि क्रीडति ।
श्रीराजिन्यां गोपवध्वां गोपाच्छ्रीनन्दनाभिधात् ।। ३५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये सीताजन्मोत्सवे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।



त्रिंशोऽध्यायः

जनक उवाच

प्रमोदवनवैकुण्ठं यदुद्दिष्टं त्वया प्रभो ।
तन्मे वद विशेषेण कीदृग्रूपं परं पदम् ।। १ ।।

श्रीशुक उवाच

कथयामि तव प्राज्ञ निमिवंशविभूषण ।
प्रमोदवनरूपं यद् रामवैकुण्ठमुच्यते ।। २ ।।

अतीत्य कालमायादीनक्षरानन्दमध्यगम् ।
प्रेमानन्दमयं धाम नित्यस्थानं मनोहरम् ।। ३ ।।

चिदानन्दौ शवलितौ तदाकारसमर्पकौ ।
अतः साकारमुद्दिष्टं रामवैकुण्ठमद्भुतम् ।। ४ ।।

सर्वर्तुसंफुल्ललसत्कुसुमामोदकाननम् ।
आमोदमत्तभ्रमरराजीगुञ्जितमञ्जुलम् ।। ५ ।।

कल्पद्रुमसमानेकद्रुमवाटीमनोहरम् ।
रत्नमाणिक्यसोपानवापिकाकूलशोभितम् ।। ६ ।।

मायादिदोषासम्बन्धि महाशीतलमारुतम् ।
रसालमञ्जरीवृन्दपरागभरमेदुरम् ।। ७ ।।

नवपल्लवशोभाढ्यविटपारुढकोकिलम् ।
हरिन्मणिमयाकाररामणीयकपत्रकम् ।। ८ ।।

मकरन्दामृतस्राविप्रसूनभरसंकुलैः ।
सपल्लवोत्तुङ्गशाखावलम्बिबहुवल्लिभिः ।। ९ ।।

पीयूषपाकमधुरैः फलैरानमुमूर्तिभिः ।
वृक्षैर्बहुविधैश्छन्नं बहुकुञ्जमनोहरम् ।। १० ।।

माधुरीवल्लरीछन्नतुङ्गभूरुहशोभितम् ।
लतामन्दिरविश्रान्तनिकूजच्छुकसारिकम् ॥ ११ ॥

नृत्यन्मयूरनिवहं तापिच्छतरुशोभितम् ।
लवंगलतिकाच्छन्नकुञ्जव्यापिमहीरुहम् ॥ १२ ॥

क्वचित्कनकपत्राढ्यैः क्वचिन्नीलदलान्वितैः ।
क्वचित्क्वचिच्च सिन्दूररागरञ्जितपत्रकैः ॥ १३ ॥

क्वचिन्नीलदलैः क्वापि यावकोद्भासिपत्रकैः ।
क्वचिद्विचित्रपत्रैश्च भूरुहैः परिशोभितम् ॥ १४ ॥

वसन्तचित्रकारेण चित्रशालीकृतं यथा ।
अनेकरत्नकूलाभिः सरसोभिर्विराजितम् ॥ १५ ॥

फुल्लत्कमलिनीवृन्दजुष्टानेकसरोजलम् ।
कमलोत्पलसंसर्गिसौरभाञ्चितमारुतम् ॥ १६ ॥

अनेकवनसंशोभिरामकेलीरसास्पदम् ।
प्रमोदमानलोकाढ्यं प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ १७ ॥

उज्जागरं प्रभाभोरैः सूर्येन्दुकोटिभासुरम् ।
यत्र सौगन्धिको नाम पर्वतः सुमहोन्नतः ॥ १८ ॥

सुगन्धजलसंस्रावनिर्झरान्वितकन्दरः ।
सुगन्धभूरुहवृतः सुगन्धलतिकाञ्चितः ॥ १९ ॥

सुगन्धधातुप्रसवः सुगन्धरजसाञ्चितः ।
सुगन्धयाषाणतलनिषादिविहगव्रजः ॥ २० ॥

यत्र चोद्भाति सततं नाम्ना रत्नगिरिर्गिरिः ।
मणिमाणिक्यरत्नौघमयूखगणसंवृतैः ॥ २१ ॥

शिखरैर्गगनस्पृग्भिर्व्याप्नुवन् सकला दिशः ।
अधित्यकावनतरुनिषादिपिकनादितः ॥ २२ ॥

श्रीरामकेलीभवनकन्दराशतशोभितः ।
उपत्यकाशिलावेदिनिषण्णहरिणीकुलः ॥ २३ ॥

सदावर्तितरोमन्थमत्तशंवरशोभितः ।
भाभिरुज्जागरीकुर्वन् गगनं दीर्घसानुनः ॥ २४ ॥

यत्र प्रवहते नित्यं विलोचनजला नदी ।
रत्नबद्धोभयतटविश्रान्तमुनिसत्तमा ॥ २५ ॥

गोपिकाकुचकाश्मीरकर्पूरमलयद्रवैः ।
कस्तूरीचन्दनरसैः क्षोदैः कालागुरूद्भवैः ॥ २६ ॥

विचित्रितजला नित्यं सुगन्धिततरंगवाट् ।
राजहंसकुलच्छन्ना कलहंसकलकणा ॥ २७ ॥
मत्तकारण्डवकुलचक्रवाकचयान्विता ।
शीतलाम्भःसुधासारा शीतलानिलसंगिनी ॥ २८ ॥
पाविनी सर्वलोकानां गङ्गातोऽप्यधिका गुणैः ।
वसिष्ठमुनिसंसेव्या वासिष्ठीति श्रुता भुवि ॥ २९ ॥
रामगङ्गा चमत्कारिनीरा प्रेमस्वरूपिणी ।
तमसाकलिता नित्यं द्विर्वहा द्विप्रवाहिका ॥ ३० ॥
पावयन्ती नाममात्रात्सहस्रयोजनोपरि ।
तरंगसंसर्गिमरुत्पूतजानपदावलिः ॥ ३१ ॥
यत्र चोत्सवदं नित्यं विशालं कामिकावनम् ।
संदीपनं नाम वनं यस्यान्तः सुमनोहरम् ॥ ३२ ॥
सर्वर्तुद्रुमशोभाढ्यं नानाघोषमनोहरम् ।
मन्थानशब्दमधुरप्रभूताभीरपल्लिकम् ॥ ३३ ॥
यत्र गावो दीर्घश्रृङ्गाश्चन्द्रवर्णा मनोहराः ।
ऊधोभारनताः साक्षात्कामधेनव उद्धुराः ॥ ३४ ॥
यासां खुररजोभारैर्भूषिता व्रजमेदिनी ।
क्रीडनार्हा रमेशस्य सुखिताभीरवासभूः ॥ ३५ ॥
यत्र श्रीसुखितग्रामः सदा लक्ष्मीनिवासभूः ।
श्रीनन्दनमहागोपप्रासादवरसुन्दरः ॥ ३६ ॥
श्रीराजिन्या च तत्पत्न्या साक्षादभिनवश्रिया ।
मात्रा श्रीसहजेशान्या शोभमानो दिवानिशम् ॥ ३७ ॥
कूर्दद्वत्सतरव्रातः कूर्दद्वत्सतरीयुतः ।
नन्दीश्वरसमानेकमहावृषभशोभितः ॥ ३८ ॥
यत्र क्रीडापरो रामो लक्ष्मणेन सदा हरिः ।
सच्चिदानन्दरूपोऽसौ परब्रह्मरसाकृतिः ॥ ३९ ॥
विश्वामित्रनिदेशेन चारयन् गा वने वने ।
आभीरकन्यकाचक्रचन्द्रचारुचकोरदृक् ॥ ४० ॥
नित्यलीलारसानन्दी नित्यरासरसोत्कटः ।
शारदैश्चैव वासन्तैर्विहारैर्विहरन् सदा ॥ ४१ ॥
महाश्रीसहजानन्दारतिकेलीपरायणः ।
कोटिकल्पावसानेऽपि अविश्रान्तमहारतिः ॥ ४२ ॥

सहजानन्दिनी यत्र क्रीडति स्ववनेऽनिशम् ।
युक्ता नर्मसखीवृन्दै श्रीनन्दन सुनन्दिनी ॥ ४३ ॥

माङ्गल्याभाग्यविभवौ यत्र दिव्यकिशोरकौ ।
तावेव नित्यं रेमाते रमणैः प्राकृतैरिव ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥



एकत्रिंशोऽध्यायः

जनक उवाच

अथाख्याहि मम ब्रह्मन् सरय्वाः सम्भवं शुभम् ।
कथमेषा समुत्पन्ना केनचेति वद प्रभो ॥ १ ॥

कथं विलोचनजला नामास्याः प्रवदन्ति च ।
किं स्वरूपेयमुद्दिष्टा सरयूः सरितां वरा ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

पुरा भूम्नः पुरुषस्याग्रतोऽभूल्लोकालोकात्यरतऽ संस्थितस्य ।
जिज्ञासूनां ब्रह्मविदां मुनीनां तत्त्वार्थस्यागोचरत्वात्प्रवादः ॥ ३ ॥

कर्मेति केऽपि जगदुःखलु कालमन्ये ।
केऽपि स्वभावमपि कोऽपि तथैव दैवम् ।
केऽप्यक्षरं प्रकृतिपूरुषभेदभिन्नं केऽप्यूचुरन्दुतचरित्रकरीं तदिच्छाम् ॥ ४ ॥

केचिन्नारायणं पूर्णमूचुः सत्त्वैकविग्रहम् ।
परे शिवं शंकराख्यं केचिदन्ये स्वयंभुवम् ॥ ५ ॥

अपरे तद्रूपमयं सर्वोपादानरूपिणम् ।
महापुरुषमभ्यूचुर्वेदतात्पर्यगोचरम् ॥ ६ ॥

आचख्युः केऽपि वेदार्थं संक्षेपव्यासयोगतः ।
इत्थं तेषां प्रवादेषु जायमानेषु संसदि ॥ ७ ॥

सनत्कुमारो भगवानाजगाम महामुनिः ।
बालवेषधरो योगी सर्ववेदार्थसारवित् ।
तमूचुर्मुनयः सर्वे संदिहानाः परस्परम् ॥ ८ ॥

ऋषय ऊचुः

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्तेषां त्वं प्रवरो मतः ।
तपसा विद्यया चैव शीलेन च मनीषया ॥ ९ ॥

ज्ञानेन कर्मणा चैव भक्त्या च श्रद्धया तथा ।
बालोऽपि बहुकल्पज्ञस्त्वमनूचानपुङ्गवः ॥ १० ॥

आम्नायसकलोपेतः करामलकवत्स्फुटः ।
तत्र त्वया किं निर्णीतं समासव्यासयोगतः ॥ ११ ॥

वदैकं दैवतं लोके यत्र वेदः प्रवर्तकः ।
नृणां मुनीनां देवानां वरेण्यानां विशेषतः ॥ १२ ॥

किमेकं सेवनीयं च जप्यं स्मर्तव्यमेव च ।
सिद्धान्तितं यद्भवता तन्नो ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥

इति तेषां मुनीन्द्राणां श्रुत्वा सुविमलं वचः ।
सनत्कुमारो भगवान् प्रत्युवाच मुदान्वितः ॥ १४ ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच

साधु पृष्टं महाभागा मुनयो लोकमङ्गलाः ।
यतो वितत आम्नाये ज्ञातुमेतन्न शक्यते ॥ १५ ॥

यदेकं परमं सारं तद्वो वक्ष्ये यथामति ।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रः सर्वकल्याणदायकः ॥ १६ ॥

वेदानां सारभूतोऽसौ स्वात्मचैतन्यदीपकः ।
उद्गीथः सर्ववेदानां सर्वोपनिषदां निधिः ॥ १७ ॥

दहनः सर्वपापानां पावकार्चिर्यथैधसाम् ।
पावनः सर्वतीर्थानां भावनः शुभकर्मणाम् ॥ १८ ॥

दूषणो दुरदृष्टानां भूषणो जनचेतसाम् ।
जननः श्रुतिसौख्यानां मोक्षाणां च प्रदायकः ॥ १९ ॥

वरेण्यं सर्वधर्माणां रामनामानुकीर्तनम् ।
कोट्यश्वमेधफलदं सद्यः प्रत्ययदायकम् ॥ २० ॥

आसुरैः पाप्मभिः कामक्रोधाद्यैरुपतापिते ।
सतां चित्ते रामनाम सर्वशान्त्यै सुधोपमम् ॥ २१ ॥

एतत्सारं विनिर्दिष्टं वैदिकीनां गिरा मयि ।
स्वाद्यंहृद्यं च रस्यं च गेयं पेयं च साधुभिः ।
मायामोहमदादीनां शमनं समनन्तरम् ॥ २२ ॥

श्रीरामनाम्ना सदृशं न तीर्थं श्रीरामनाम्ना सदृशं न पुण्यम् ।
श्रीरामनाम्ना सदृशं न कर्मं श्रीरामनाम्ना सदृशं तपो न ॥ २३ ॥

श्रीरामनाम्ना सदृशो न योगः श्रीरामनाम्ना सदृशो न भोगः ।
श्रीरामनाम्ना सदृशो न मोदः श्रीरामनाम्ना सदृशो न मोक्षः ॥ २४ ॥

श्रीरामनाम्ना सदृशी न भक्तिः श्रीरामनाम्ना सदृशी न शक्तिः ।
श्रीरामनाम्ना सदृशी न सेवा श्रीरामनाम्ना सदृशी न चार्चा ॥ २५ ॥

इदमेकं हि सर्वस्वं भक्तानां योगिनां सताम् ।
कर्मिणां ज्ञानिनां चैव तथोपास्तिमतां नृणाम् ॥ २६ ॥

यज्ञे दाने तथा तीर्थे स्वाध्याये च तपःसु च ।
रामनाम गृणन् सर्वं साङ्गं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २७ ॥

सकलाङ्गैः साधितमप्यनल्पद्रव्यदक्षिणम् ।
अरामनामकं कर्मं व्यङ्गमेव न संशयः ॥ २८ ॥

निरङ्गमल्पहृतकमत्यल्पद्रव्यदक्षिणम् ।
रामनामयुतं कर्मं साङ्गमेव न संशयः ॥ २९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥



द्वात्रिंशोऽध्यायः

ऋषय उचु

रामस्य यत्परं तत्त्वं वेदेभ्यः सारमुद्धृतम् ।
तन्नो ब्रूहिमहायोगिन् यच्छ्रुतं विश्वमङ्गलम् ॥ १ ॥

किं रूपं किं च तद्धाम क्व चाविर्भाव ईरितः ।
एतन्नः श्रद्दधानानां ब्रूहि ब्रह्मन्नशेषतः ॥ २ ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच

श्रूयतां तत्परं तत्त्वं रामस्य परमात्मनः ।
यत्सारं सर्ववेदानां शास्त्राणं च विशेषतः ॥ ३ ॥

चिदानन्दमयं रूपं महः प्रावृड्घनच्छवि ।
वामाङ्गे सहजानन्दाविद्युल्लेखासमन्वितम् ॥ ४ ॥

सीनासीरमणिप्रख्यं प्रकाशं तिमिरोपमम् ।
फुल्लारविन्दपत्राक्षं करुणामृतवर्षणम् ॥ ५ ॥

पीताम्बरप्रभातप्ततपनीयसुनिर्मलम् ।
गण्डमण्डलसंक्रान्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ६ ॥

श्रीवत्साङ्कधरोरस्कं महाकौस्तुभभूषितम् ।
रत्नाङ्गदलसद्बाहुस्वर्णकङ्कणभूषितम् ॥ ७ ॥

विशालवनमालाढ्यं रत्नग्रैवेयकान्वितम् ।
चूडामणिशिरोभासि नासामौक्तिकभूषितम् ॥ ८ ॥

स्वर्णसूत्रसमालम्बिकिङ्किणीमध्यभूषितम् ।
गम्भीरनाभिललितं त्रिवलीपिहितोदरम् ॥ ९ ॥

रोमराजीसमुद्भासि नीलरत्नच्छविच्छटम् ।
निर्णिक्तमुकुराकारकपोलालकसंकुलम् ॥ १० ॥

कदम्बकिंजल्कनिभं कौशेयपरिवीतिमत् ।
षट्कपद्मासनं देवं तत्त्वमुद्राधरं हृदि ॥ ११ ॥

कटाक्षैर्लोलनयनं सुवृत्तास्यं सुनिश्चलम् ।
योगमुद्राधरं वीरमुरोविष्टम्भभूषितम् ॥ १२ ॥

रत्नसिंहासनासीनं भक्तानामभयंकरम् ।
योगिनां ध्यानपथगमगम्यं च कुयोगिनाम् ॥ १३ ॥

परेपरार्द्धकन्दर्पलावण्यामृतसागरम् ।
उज्जागरप्रभावृन्दमुखेन्दुसुविराजितम् ॥ १४ ॥

मन्दस्मितरुचिज्योत्स्नाजालद्योतितदिक्तटम् ।
कमलायाङ्गवीक्षैकसंसेव्यसुभगाकृतिम् ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वरेखादिसच्चिह्नचरणोद्भासितासनम् ।
दीनदारिद्रशमनं साक्षात्कल्पद्रुमोपमम् ॥ १६ ॥

एकं निरसिकं शुद्धं कालमापाद्यगोचरम् ।
एवं रूपं महो नीलं महामहिमवैभवम् ।
यो ध्यायेच्चित्तकमले स स्वयं परमेश्वरः ॥ १७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

❀

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीसनत्कुमार उवाच

अथास्य देववर्यस्य वक्ष्ये धाम मनोहरम् ।
यद्गत्वा वेदितव्यान्ते निवर्तन्ते न योगिनः ॥ १ ॥

धामैतदीयं शृणुतामहर्षयस्तत्कालमायागुणलौकिकातिगम् ।
नित्यं परं निष्प्रतिमं निरञ्जनं सच्चित्सुखाकारमनन्तमद्भुतम् ॥ २ ॥

यत्केवलानुभवानन्दमात्रं पराक्षरब्रह्मविबोधमध्यगम् ।
पुराविदां वाङ्मनसाद्यगोचरं समंततो व्यापकमद्वितीयकम् ॥ ३ ॥

यत्र कल्पद्रुमैर्भाति प्रमोदवनमद्भुतम् ।
अन्यैः कामदुघैर्वृक्षै परीवीतं सुवाटिकम् ॥ ४ ॥

रम्यानेकनिकुञ्जाढ्यं सर्वर्तुकुसुमाकरम् ।
फलप्रसूनपत्रर्द्धिरामणीयकमन्दिरम् ॥ ५ ॥

चतुर्विंशतिसंख्याकमुख्यदिव्यवनान्वितम् ।
यत्र रत्नाद्रिरुद्भाति रत्नसानुमनोहरः ॥ ६ ॥

अनेकनिर्झरस्राविसुगन्धिजलपूरितः ।
अनेकरत्नरुचिरो नानाधातुगणश्रयः ॥ ७ ॥

सुवर्णशिखरश्रीमान् राजहंसनिनादितः ।
सहजानन्दिनीकेलिसरसीसमलंकृतः ॥ ८ ॥

कूजत्कारण्डवकुलचक्राह्वयसमाकुलः ।
कुञ्जपुञ्जमनोहारिगह्वरान्तर्निरातपः ॥ ९ ॥

तथा सौगन्धिको नाम गिरिर्यत्र मनोहरः ।
श्रीखण्डद्रुमसंशोभी मलयाद्रिरिवोन्नतः ॥ १० ॥

यत्र पीयूषसलिला सरयूः सरिदुज्ज्वला ।
सुवर्णकूलिनी दिव्यमणिसोपानमण्डिता ॥ ११ ॥

राजहंसकुलोन्नादिसंगीतसुयशोगणा ।
प्रेमभक्तिमहायोगिसमुपासितसरित्तटा ॥ १२ ॥

कुमुद्वती कमलिनी फुल्लत्कोरकपूजिता ।
पद्मकह्लारसौगन्धिफुल्लत्कोकनदोत्करा ॥ १३ ॥

यत्र श्रीसहजानन्दासयूथ्याव्रजयोषितः ।
विहरन्तिपदोर्नादिमञ्जीरास्ता इतस्ततः ॥ १४ ॥

रामरासरसोल्लासिप्रेममत्तान्तराः परम् ।
नित्यं षोडशवार्षिक्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ १५ ॥

कुरङ्गनयनाः सर्वाः सर्वकेलिकलाविदः ।
लास्यताण्डवनृत्यादिसंगीतकविशारदाः ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रवदनचन्द्रचारुचकोरिकाः ।
तासां मण्डलमध्यस्थो माङ्गल्यानेत्रनन्दनः ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रमाः श्रीमद्राजदशरथात्मजः ।
नटवेशधरो मुग्धः श्रीरामो रासमण्डले ॥ १८ ॥

विहरत्यनिशं साक्षात्परब्रह्मरसाकृतिः ।
कन्दर्पकोटिदर्पघ्नः सहजानन्दिनीसखः ॥ १९ ॥

चरणाम्भोजदिव्याङ्कैः कुर्वन् भूमिं सुपावनीम् ।
किशोराकृतिरानन्दी नित्यलीलाविशारदः ॥ २० ॥

यस्यांशमात्रविभवः श्रीमन्नारायणः स्वयम् ।
यस्यांशांशाः प्रजायन्ते अवतारा ह्यनेकधा ॥ २१ ॥

भूमापि पुरुषो यस्य सहस्त्रवदनः स्वराट् ।
अंश एव प्रकथितो विष्णुर्ब्रह्माण्डविग्रहः ॥ २२ ॥

उत्पद्यन्ते विलीयन्ते ब्रह्माणां कोटयः किल ।
न तु रामविहारस्य तिरोभावो भवेत् कचित् ॥ २३ ॥

इदं श्रीरामवैकुण्ठं नित्यं धाम प्रकीर्तितम् ।
सहजानन्दिनीलोको व्यापकश्चित्सुखाकृतिः ॥ २४ ॥

रक्षकाः परितस्तस्य कोटयश्चक्रधारिणः ।
चतुर्मुखाः कोटयश्च कोटयश्चैव शंकराः ॥ २५ ॥

पञ्चाननाः शूलकरा विभान्ति परितः स्थिताः ।
सरसीव महापद्मं लोकोऽयंधरणीतले ॥ २६ ॥

न तु भूमितलस्थार्थैः संस्पर्शोप्यस्य विद्यते ।
कालमायोद्भवैर्दोषैः संस्पर्शो नास्य विद्यते ॥ २७ ॥

तद् रामस्य परं स्थानं धिया पश्यन्ति सूरयः ।
अतिसूक्ष्मार्थदर्शिन्या भक्तियोगविशुद्धया ॥ २८ ॥

चिदानन्दस्य रामस्य चिदानन्दमयं वपुः ।
चिदानन्दमयी लीला चिदानन्दमयोऽखिलः ॥ २९ ॥

लीलापरिकरो ज्ञेयश्चिदानन्दमयं पदम् ।
एवं यो वेद तद्धाम प्रमोदवननामकम् ॥ ३० ॥

स विमुच्येत मनुजो रामभक्तिपरायणः ।
स्मरंल्लोकममुं तत्स्थं भावयेद् रामदैवतम् ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो दधत्प्रेममयं वपुः ॥ ३१ ॥

न तस्य कृत्यान्तरमस्ति लोके सदा विमुक्तस्य नरोत्तमस्य ।
श्रीरामचन्द्रे रसिके स्थितोजनोभक्त्योकयुक्तो हृदि नित्ययुक्तः ॥ ३२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे श्रीरामचन्द्रप्रमोदवनपरत्वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥



चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीसनत्कुमार उवाच

आविर्भावमथो वक्ष्ये श्रीरामस्य विशेषतः ।
मुख्यः प्रमोदविपिने तस्याविर्भावईरितः ॥ १ ॥

ततः परमयोध्यायामाविर्भावोऽस्य सर्वदा ।
चित्रकूटमहाशैले नित्याविर्भाव उच्यते ॥ २ ॥

वर्षे किंपुरुषाख्ये च नित्याविर्भूत उच्यते ।
तथैव वेंकटगिरौ सांनिध्यं तस्य सर्वदा ॥ ३ ॥

पञ्चवट्यां जनस्थाने दण्डकारण्य एव च ।
कष्किन्धायां रामगिरौ तथा हनुमदालये ॥ ४ ॥

एष्वन्येषु च देशेषु नित्याविर्भूतता प्रभोः ।
सेतुबन्धेश्वरो नाम यत्र रुद्रः सनातनः ॥ ५ ॥

तथा श्रीशैलमध्ये च सान्निध्यं सर्वदा प्रभोः ।
जनकस्य पुरे चैव विश्वामित्राश्रमे तथा ॥ ६ ॥

वसिष्ठाश्रम एवापि नित्यं भाति रघूद्वहः ।
सुमित्रातनयो देवो यत्र यत्र प्रतिष्ठितः ॥ ७ ॥

तथैव वायुपुत्रश्च तत्र तत्र रघूत्तमः ।
मथुरायां च मायायां काश्यामुज्जयिनीपुरि ॥ ८ ॥

द्वारवत्यां च काञ्चयां च नित्यं रामःसुसंस्थितः ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले सर्वक्षेत्रेषु सर्वदा ॥ ९ ॥

न तत्स्थानं प्रपश्यामि यत्र रामो न विद्यते ।
यत्र रामायणं नाम गीयते शास्त्रमुत्तमम् ॥ १० ॥

तत्र रामः सदा भाति श्रीमज्जनकजान्वितः ।
सहजानन्दिनी यत्र गीयते विविधैर्गुणैः ॥ ११ ॥

तत्र रामः सदा तिष्ठेन्नात्र कार्या विचारण ।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो यत्र संकीर्त्यते बुधैः ॥ १२ ॥

तत्राविर्भूय श्रीरामः सर्वदुःखं विनाशयेत् ।
सीतया सहितं यत्र रामनाम प्रकीर्त्यते ॥ १३ ॥

न तत्र कलिदोषाणां प्रवृत्तिः स्यात्कथंचन ।
साङ्गाः सरहस्याश्च पठिता वेदराशयः ॥ १४ ॥

कृताश्च सकला यज्ञा येन रामेति कीर्तितम् ।
कृतानि कोटिपुण्यानि व्रतानि च तपांसि च ॥ १५ ॥

सुस्नातानि च तीर्थानि येन रामेति कीर्तितम् ।
अज्ञानतिमिरोद्भेदं कोटिसूर्येन्दुभासुरम् ॥ १६ ॥

ज्ञानामृतपयोवाहं रामनाम सदा जपेत् ।
कलिदोषापहं नित्यं गङ्गास्नानातिपावनम् ॥ १७ ॥

मनसस्तापशमनं राम नाम सदा जपेत् ।
किं कार्यं वैदिकैः शब्दैः किं वा मन्त्रैश्च तान्त्रिकैः ॥ १८ ॥

किं कर्मणा च ज्ञानेन किमन्यैस्तपसां श्रमैः ।
स्मर्तव्यं रामनामैकं श्रोतव्यं चैव सर्वदा ॥ १९ ॥

पठितव्यं कीर्तितव्यं श्रद्धायुक्तैर्दिवानिशम् ।
विधिरुक्तः सदैवास्य न निषेधः क्वचिद्भवेत् ॥ २० ॥

सर्वदेशे सर्वकाले सर्वैश्च नरजातिभिः ।
इदमेकं सदा कार्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥ २१ ॥

चतुर्वर्गप्रदानेऽपि समर्थो रघुपुङ्गवः ।
ध्यानाद्गानाच्च सततं नाममात्रस्य कीर्तनात् ॥ २२ ॥

इत्युक्तं वः प्रियं सर्वं मया देवर्षिपुङ्गवाः ।
नातो विवदितव्यं स्याद्भक्तां तत्त्वमीयुषाम् ॥ २३ ॥

सिद्धान्तः सर्वशास्त्राणां भवतां समुदाहृतः ।
श्रुत्वैतत्कृतकृत्यः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

✻

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं सनत्कुमारस्य मुखादाकर्ण्य सर्वशः ।
श्रीमतो राघवेन्द्रस्य महिमानं महाद्भुतम् ॥ १ ॥

नाम धाम स्वरूपं च लोकोत्तरमुदीरितम् ।
तस्य भूम्नः पुरुषस्य विष्णोर्ब्रह्माण्डवर्ष्मणः ॥ २ ॥

संजातः सुमहान् प्रेमा उत्तरंग इवाम्बुधिः ।
महाभावः सुसम्पन्नः सीतारामैकगोचरः ॥ ३ ॥

ततः सुस्रुवतुस्तस्य नयने प्रेमजं जलम् ।
ब्रह्मणश्चैव रुद्रस्य ब्रह्मर्षीणां तथैव च ॥ ४ ॥

देवर्षीणां च सर्वेषां तत्रस्थानां सभासदाम् ।
ब्रह्मणो मानसानां च सनकादिमहात्मनाम् ॥ ५ ॥

सहजानन्दिनीरामगुणलीलानुवादतः ।
परमेणोत्तमप्रेम्णा दृशौ तेषां पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

विरहार्त्या सुस्रुवतुः साक्षात्प्रेममयं जलम् ।
तावत्तेषां वपुरभूत्प्रेमसंस्तब्धमुच्चकैः ॥ ७ ॥

स्वेदोदकैः समापूर्णं रोमाञ्चप्रकरावृतम् ।
स्वरभङ्गश्च सर्वेषामभूद्गद्गदकण्ठतः ॥ ८ ॥

वेपथुश्च प्रादुरभूत्तत्क्षणाद्विह्वलात्मनाम् ।
विवर्णता च संजाता विरहार्तिमतां सताम् ॥ ९ ॥

क्षणं ते मुग्धवच्चासन् विलीनेन्द्रियवृत्तयः ।
रामप्रेमाविष्टचित्ता बभूवुर्मत्तमत्तवत् ॥ १० ॥

तेषां संरुदतां प्रेम्णा पुरुषस्य सदःसदाम् ।
अश्रुजैर्वारिभिरभूत् सुविशालतमं सरः ॥ ११ ॥

तस्मादाविरभूदेषा सरयूर्विश्वपावनी ।
पीयूषवर्णसलिला शरज्ज्योत्स्नेव भास्वती ॥ १२ ॥

योगीन्द्रमानसमुदे प्रेमानन्दमयोदका ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां दायिनी सुखदायिनी ॥ १३ ॥

ब्रह्मद्रवस्वरूपा च द्रवद्रव्यमयी परा ।
वारुणी देवता दिव्या सर्वतीर्थमहानिधिः ॥ १४ ॥

तस्माज्जलसमूहात्तु समुद्भूता वराङ्गना ।
सुधासुवर्णवसना चन्द्रकोटिसुशीतला ॥ १५ ॥

चन्द्रास्या पङ्कजमुखी नीलनीरजलोचना ।
चम्पकाङ्गी तडित्कान्तिः सर्वावयवसुन्दरी ॥ १६ ॥
स्वर्णदोलासमारूढा स्मयमानमुखाम्बुजा ।
गङ्गया चैव कालिन्द्या पार्श्वद्वयविराजिता ॥ १७ ॥
सरस्वत्या धृतच्छत्रा स्वर्णदण्डावलम्बया ।
गायत्र्या चैव सावित्र्या चामरद्वयवीजिता ॥ १८ ॥
प्रेमानन्दमयी साक्षाद् रामलीलाविशारदा ।
तां जातमात्रां प्रययुर्लोपामुद्रादयस्तदा ॥ १९ ॥
अरुन्धती च गार्गी च मैत्रेयी चैव योगिनी ।
पार्वती च महालक्ष्मी रतिश्चैव तथा शची ॥ २० ॥
अनसूया भगवती दितिश्चैवादितिस्तथा ।
देवहूतिश्च मेधा च प्रभा विद्या च धीमती ॥ २१ ॥
प्रीतिः कीर्तिश्च कान्तिश्च तुष्टिःपुष्टिस्तथैव च ।
दिव्यैः स्तवैः स्तुवन्त्यस्ताः परितोऽस्याश्चकासिरे ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे सरयूत्पत्तिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥



षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

साऽब्रवीज्जातमात्रैव भूमानं पुरुषं ततः ।
रामप्रेमोद्गमोद्भूतरोमाञ्चव्याप्तविग्रहम् ॥ १ ॥

सरयूरुवाच

किं नु कुर्यामहे भूमन् किं च मे नाम निश्चितम् ।
भवत्पार्श्वेऽथवान्यत्र कुत्र मेऽवास्थितिर्भवेत् ॥ २ ॥

पुरुष उवाच

रामप्रेमोद्भवानन्दात्सुस्रुर्नेत्राणि नः पृथक् ।
तुदत्थवाष्पवारिभ्यः सम्भूता त्वं तरंगिणी ॥ ३ ॥
सरयूरिति ते नाम तस्मान्निश्चितमेव मे ।
नयनोत्थैर्जलैर्जाता तस्मान्नेत्रजलेति च ॥ ४ ॥

वसिष्ठश्च भवत्तीरे तपसा सिद्धिमेष्यति ।
वासिष्ठीति भुवि ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ५ ॥

साकेतनगरे गत्वा रामस्य सुखवर्द्धिनी ।
रामगङ्गेति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति ॥ ६ ॥

पूर्वं तु तमसा जाता ऐरावतरदाहतात् ।
महाशैलस्य शिखरात्पश्चात्त्वं विश्वपाविनी ॥ ७ ॥

द्विर्वहेति च ते नाम लोके ख्यातं भविष्यति ।
प्रेमानन्दात्समुद्भूतां तस्मात्प्रेमजलेति च ॥ ८ ॥

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि नामसाहस्रकं शुभम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण प्रेमानन्दः प्रवर्द्धते ॥ ९ ॥

सरयूः प्रेमसरयूः प्रेमानन्दसरोजला ।
प्रेमपूर्णा प्रेममयी प्रेमतोया महोदका ॥ १० ॥

रामगङ्गा रामनदी रामप्रेमा महानदी ।
सुधावर्णा चन्द्रवर्णा धनसाररसोदका ॥ ११ ॥

रसात्मिका रसमयी रसपूर्णा रसोदका ।
रसा रसप्रिया रस्या रसारम्या रसावहा ॥ १२ ॥

सुधामा वसुधा लक्ष्मीर्वसुधामा वसूद्भवा ।
सरिद्वरा सरिच्छ्रेष्ठा सरिद्रूपा सरोमयी ॥ १३ ॥

रामकेलिकरी रामा रामचित्तप्रसादिनी ।
लोकसंतापहरिणी हनुमत्सेवितोदका ॥ १४ ॥

मरीचिर्मरुदाराध्या रामचन्द्रतनुप्रभा ।
द्रवदव्यमयी देवी दोलारूढामृतद्रवा ॥ १५ ॥

द्राविणी द्रविणावासा द्रवामृतमयी सरित् ।
सरणी सारिणी सारा साररूपा सरोवरा ॥ १६ ॥

पुरुषाश्रुमयी मोदा प्रमोदवनवाहिनी ।
कल्लोलिनी कलिहरा कल्मषघ्नी कलाधरा ॥ १७ ॥

कलामयी कलापूर्णा चन्द्रिका रामचन्द्रिका ।
वैकुण्ठवाहिनी वर्या वरेण्या वारिदेवता ॥ १८ ॥

गुडूची गुडसुस्वादुर्गौडी गुडसमुद्भवा ।
वासिष्ठी च वशिष्ठश्रीर्वसिष्ठाराध्यदेवता ॥ १९ ॥

वसिष्ठावशिनी वश्या वश्याकर्षणकारिणी ।
सुवर्णा चैव सौवर्णीसुवर्णसिकतावहा ॥ २० ॥

सुवर्णतटिनी चैव सुवर्णस्रवणोदका ।
विधिनेत्रजला वैधी विधिप्रेमा विधिप्रिया ॥ २१ ॥

उत्तरंगा च तरला तारकापतिनिर्मला ।
तमसा तामसहरा तमोहर्त्री तमोवहा ॥ २२ ॥

तीक्ष्णा तीक्ष्णगतिस्तुङ्गा तुङ्गवीचिर्विनोदिनी ।
तुङ्गतीरा तुङ्गभवा तुङ्गतीरप्रसारिणी ॥ २३ ॥

तुङ्गतोया तुङ्गवहा तुङ्गगा तुङ्गगामिनी ।
तडित्प्रभा तडिद्रूपा तडिद्वीचिस्तडिज्जला ॥ २४ ॥

तप्तोदका तप्ततनुस्तापहा तापसाश्रया ।
तपःसिद्धिकरी तापी तपनातापहारिणी ॥ २५ ॥

तापसंतापहरिणी तपनोत्था तपोमयी ।
तापिनी तपनाकारा तपर्तुः सुखकारिणी ॥ २६ ॥

तरंगिणी तरलिनी तरणी तारिणी तरिः ।
स्थेमा स्थिरगतिः स्थात्रीस्थावरोत्था स्थिरोदका ॥ २७ ॥

स्थैर्यकर्त्री स्थिराकारा स्थिरा स्थावरदेवता ।
पूता पूतगतिः पूतलोकपावनकारिणी ॥ २८ ॥

पाविनी पवनाकारा पवमानगुणप्रदा ।
शीतला शीतसलिला शीतलाकृतिवाहिनी ॥ २९ ॥

मन्दा मन्दगतिर्मन्दा मन्दलस्वरपूरणी ।
मन्दाकिनी मदाघूर्णी मन्दमन्दगमोदका ॥ ३० ॥

मीनाढ्या मीनसुखदा मीनकेलिविधायिनी ।
महोर्मिमालिनी मान्या माननीयमहागुणा ॥ ३१ ॥

मरुत्सेव्या मरुल्लोला मरुत्तनृपसेविता ।
इक्ष्वाकुसेविततटा ईक्षाकृतमहोत्सवा ॥ ३२ ॥

ईक्षणीया इक्षुमती इक्षुखण्डरसोदका ।
कर्पूरनीरा कर्पूरा कर्पूरधवलोदका ॥ ३३ ॥

नागकन्या नगारूढा नगराजविभेदिनी ।
पातालगङ्गा पूताङ्गी पूजनीया परापरा ॥ ३४ ॥

पारावारैकनिलया पारावारविहारिणी ।
पारंगता परप्रेमा परप्रीतिविवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥

फल्गूजलाफल्गुजला फाल्गुनस्य वरप्रदा ।
फेनावृता फेनसिता फेनोद्गमनकारिणी ॥ ३६ ॥

फलकारा फलकरी फलिनी फलपूजिता ।
फणीन्द्रफणसंसेव्या फणिकङ्कणभूषिता ॥ ३७ ॥

खराकारा खरतरा खरराक्षसहारिणी ।
खगेन्द्रभजनीया च खगवंशविवर्द्धिनी ॥ ३८ ॥

खगारुढाखगैः स्तुत्या खगजा च खगामिनी ।
[1]खसाराध्या खसवृता खसवंशैकजीवना ॥ ३९ ॥

खेलागतिः खलहरा खलतापरिहारिणी ।
खदिनी खादिनी खेद्या खेदहा खेलकारिणी ॥ ४० ॥

गणनीया गणैः पूज्या गाणपत्यमहाफला ।
गणेशपूजिता गण्या गणदुःखनिवारिणी ॥ ४१ ॥

गुणाढ्या गुणसम्पन्ना गुणगुंफितविग्रहा ।
गुणनीया गुरुगुणा गुरुपूज्या गुरुद्रवा ॥ ४२ ॥

गुर्वी गीष्पतिसंसेव्या गिराचार्या गिराश्रया ।
गिरीन्द्रकन्दरावासा गिरीशसेवितोदका ॥ ४३ ॥

कोटिचान्द्रमसज्योतिः कोटिचान्द्रिमहोज्ज्वला ।
कटाहभेदनपरा कठोरजवगामिनी ॥ ४४ ॥

कठशाखापाठरता काठकानां वरप्रदा ।
काष्ठापरा काष्ठभेदा काष्ठाष्टकविनोदिनी ॥ ४५ ॥

करवीरप्रसूनाढ्या करवालसितिच्छविः ।
कम्बुश्वेता कम्बुकण्ठा कम्बुभृत्प्राणवल्लभा ॥ ४६ ॥

धर्माढ्या धर्मशमनी धर्मपाठविनोदिनी ।
धर्मयोगसुसंतुष्टा घटाकारा घटोदका ॥ ४७ ॥

घट्टिनी घट्टसुखदा घट्टपालवरप्रदा ।
घटकोटिसुसम्पन्ना घटाटोपजलोर्मिभृत् ॥ ४८ ॥

चाञ्चल्यदारिणीन्द्राणी चाण्डालगतिदायिनी ।
चण्डातपक्लेशहरा चण्डा चण्डिममण्डिता ॥ ४९ ॥

चाम्पेयकुसुमप्रीता चपला चपलाकृतिः ।
चम्पूग्रन्थविधानज्ञा चञ्चूपुटहृतोदका ॥ ५० ॥

चंक्रमा चंक्रमकरी चमत्कारविवर्द्धिनी ।
चर्मकारकुलोद्धारा चर्मा चर्मण्वती नदी ॥ ५१ ॥

भूमेक्षणसमुद्भूता भूगता भूमिपापहा ।
भूतलस्था भयहरा विभीषणसुखप्रदा ॥ ५२ ॥

भूतप्रेतपिशाचघ्नी दुर्गतिक्षयकारिणी ।
दुर्गमा दुर्गनिलया दुर्गाराधनकारिणी ॥ ५३ ॥

---

१ खसाः = पार्वतीयाः – बड़ौ० ।

दुराराध्या दुःखहरा दुर्गभूमिजयप्रदा ।
वन्या वनप्रिया वाणी वीणारवविनोदिनी ॥ ५४ ॥

वाराणसीवासरता वासवी वासवप्रिया ।
वसुधा वसुधामा च वसुदात्री वसुप्रिया ॥ ५५ ॥

वसुतेजा वसुपरा वसुवासविधायिनी ।
वैश्वानरी विश्ववन्द्या विश्वपावनकारिणी ॥ ५६ ॥

वैश्वानररुचिर्विश्वा विश्वदीप्तिर्विशाखिनी ।
विश्वासना विश्वसना विश्ववश्यत्वकारिणी ॥ ५७ ॥

विश्वावसुप्रियजला विश्वामित्रनिषेविता ।
विश्वाराध्या विष्णुरूपा वषट्काराक्षरप्रिया ॥ ५८ ॥

पानप्रिया पानकर्त्री पातकौघप्रहारिणी ।
नानायुधा नवजला नवीनगतिभूषिता ॥ ५९ ॥

उत्तरंगगतिस्तारा स्वस्तरुप्रसवार्चिता ।
तुहिनाद्रिसमुद्भूता तुहिना तुहिनोदका ॥ ६० ॥

कूलिनी कूलमिलिता कूलपातनतत्परा ।
कालातिगामिनी काली कालिका कालरूपिणी ॥ ६१ ॥

कीलालिनी कीलहरा कीलिताखिलपातका ।
कमला कमलाकारा कमलार्चितविग्रहा ॥ ६२ ॥

करालकमलावेशा कलिकोल्लासकारिणी ।
करिणी कारिणी कीर्णा कीर्णरूपा कृपावती ॥ ६३ ॥

कुलीना कुलवन्द्या च कलनादा कलावती ।
खगेन्द्रगामिनि खल्या खलीना खलतापहा ॥ ६४ ॥

स्खलद्गतिः खमार्गस्था खिलाखिलकथानका ।
खेचरीमुद्रिकारूपा खखेगातिगामिनी ॥ ६५ ॥

गङ्गाजला गीतगुणा गीता गुप्तार्थबोधिनी ।
गीयमानगुणग्रामा गीर्वाणा च गरीयसी ॥ ६६ ॥

ग्रहापहा ग्रहणकृद्गृह्या गृह्यार्थदायिनी ।
गेहिनी गिलिताघौघा गवेन्द्रगृहगामिनी ॥ ६७ ॥

गोपीजनगणाराध्या श्रीरामगुणगायिनी ।
गुणानुबन्धिनी गुण्या गुणग्रामनिषेविता ॥ ६८ ॥

गुहमाता गुहान्तस्था गूढा गूढार्थबोधिनी ।
घर्घरारावमुदिता घर्घराघटनाकृतिः ॥ ६९ ॥

घटीबन्धैकनिलया घटा घंटालविग्रहा ।
घनाघनस्वना घोरा घनसारसमाकृतिः ॥ ७० ॥

घोषा घोषवती घुष्या घोषेश्वरसुतप्रिया ।
घोराघनाशनकरी घर्मार्तिभयहारिणी ॥ ७१ ॥

घृणाकरी घृणिमती घृणिर्घ्राणेन्द्रियप्रिया ।
घ्राता घर्मांशुदुहिता घातिताघा घनाघना ॥ ७२ ॥

चान्द्री चन्द्रमती चन्द्रा चन्द्रिका चन्द्रिकाकृतिः ।
चन्द्रका चन्द्रकाकारा चन्दनालेपकारिणी ॥ ७३ ॥

चन्दनद्रवसंशीता चमत्कृतजगत्त्रया ।
चित्ता चित्तहरा चित्या चिन्तामणिसमाकृतिः ॥ ७४ ॥

चिन्ताहरा चिन्तनीया चराचरसुखप्रदा ।
चतुराश्रमसंसेव्या चतुराननसेविता ॥ ७५ ॥

चतुरा चतुराकारा चीर्णव्रतसुखप्रदा ।
चूर्णा चूर्णौषधसमा चपला चपलाकृतिः ॥ ७६ ॥

छलिनी छलहर्त्री च छलिताशेषमानवा ।
छद्मिनी छद्महरिणी छद्मसद्मविधायिनी ॥ ७७ ॥

छन्ना छन्नगतिश्छिन्ना छिदाकर्त्री छिदाकृतिः ।
छन्नाकारा छन्नजला छन्नपातकहारिणी ॥ ७८ ॥

जयघोषा जयाकारा जैत्रा जनमनोहरा ।
जन्मिनी जन्महरिणी जगत्त्रयविनोदिनी ॥ ७९ ॥

जगन्नाथप्रिया लक्ष्मीर्जम्बूद्वीपसुखप्रदा ।
जम्बालिनी जवगतिर्जपाकुसुमसुन्दरी ॥ ८० ॥

जम्बीररससंतुष्टा जाम्बूनदविभूषणा ।
जटाधरा च जटिला जम्भारिकरपूजिता ॥ ८१ ॥

जंगमा जितदैतेया जित्वरा जयवर्द्धिनी ।
जीवान्तरगतिर्जीव्या जीवाकर्षणतत्परा ॥ ८२ ॥

ज्यानिनादैकमुदिता जरानाशनतत्परा ।
जलाश्रया जलकरी जालिनी जालवर्तिनी ॥ ८३ ॥

जीमूतवर्षिणी जारा जारिणी जारवल्लभा ।
झञ्झारवा झणत्कारा झर्झरारावकारिणी ॥ ८४ ॥

झिल्लीनिनादमुदिता झल्लरीनादतोषिणी ।
झरी झर्झरिकारूपा झांकाररवकारिणी ॥ ८५ ॥

टांकारिणी टंकहस्ता टापिनी टापगामिनी ।
टंटंनिनादमुदिता ठंठंशब्दप्रबोधिनी ॥ ८६ ॥

ठकुरा ठक्कुराज्ञा च ठंठंनिनदकारिणी ।
डमरूवादनपरा डक्काडांकारकारिणी ॥ ८७ ॥

डाकिनी डामराचार्या[1] डमडुमरवोत्कटा ।
ढक्का ढक्कारवाढ्या च ढुंढाढुंढरवासिनी ॥ ८८ ॥

ढुंढिपूरणदक्षा च ढुंढिराजप्रपूजिता ।
तत्ताता महाताता तेजिनी तेजसान्विता ॥ ८९ ॥

तोयान्विता तोयकरी तटपातनकारिणी ।
तरुणी तरुसंछन्ना तलशीतलनीरिणी ॥ ९० ॥

तुलसीसौरभाढ्या च तुलारहितरूपिणी ।
तन्त्री तवममाकारा तपस्या तपसि स्थिता ॥ ९१ ॥

थेईथेईशब्दरता थंथुंशब्दसुखावहा ।
दयावती दुःखहरा द्राविणी द्रवदेवता ॥ ९२ ॥

दीनदारिद्र्यहरिणी दमिनी दमकारिणी ।
दूरागता दूरगता दूरिताशेषपातका ॥ ९३ ॥

दुर्वृत्तघ्नी दैत्यहरा दारिणी दावहारिणी ।
देवदारुवनप्रीता दोषघ्नी दीप्तिकारिणी ॥ ९४ ॥

दीपमाला द्वीपचारा दुरिता दुरितापहा ।
धन्या धनवती धीरा धीमती धेनुमण्डिता ॥ ९५ ॥

धयिनी धारिणी धात्री धात्रीतरुफलाशिनी ।
धाराधारा धराकारा धराधरविचारिणी ॥ ९६ ॥

धाविनी धावनकरी धनेश्वरवरप्रदा ।
धर्मप्रदा धर्मरता धार्मिका धार्मिकप्रिया ॥ ९७ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्या धमनी धमनीगतिः ।
धत्तूरफलसम्प्रीता धृताध्यानपरा धृतिः ॥ ९८ ॥

धारणा धीर्धराधीशा धीगम्या धारणावती ।
नम्या नमोनमःप्रीता नर्मा नर्मगतिनर्वा ॥ ९९ ॥

नीरजाक्षी नीरवहा निम्नगा निर्मलाकृतिः ।
नारायणी नरप्रज्ञा नारी नरकहारिणी ॥ १०० ॥

नवीना नवपद्माभा नाभीष्टगतिदापिनी ।
नगोद्भवा नगारूढा नागलोकातिपाविनी ॥ १०१ ॥

---

१. डामरस्तन्त्रविशेषः टि०—बड़ौ० ।

नन्दिनी नादिनी नादा निन्दानादविवर्जिता ।
नागरी नागरप्रीता नागराजप्रपूजिता ॥ १०२ ॥

नागकेसरमालाढ्या नागेन्द्रमदगन्धिनी ।
पूर्णिमा परमाकारा परापर विवेकिनी ॥ १०३ ॥

प्रभातिनी प्रभावन्धा (न्ध्या) प्रभासा पुरुषेष्टदा ।
पुरुषार्थप्रदा पूता पंक्तिपावनकारिणी ॥ १०४ ॥

फलाढ्या फलदात्री च फणीन्द्रवरदायिनी ।
फालिनी फलपुष्पाङ्का फाल्गुनस्फीतकीर्तिदा ॥ १०५ ॥

बलिपूज्या बलिहिता बलदेवप्रपूजिता ।
बाला बालरविप्रख्या बालरामगुणप्रदा ॥ १०६ ॥

बलाकिनी बहुलगा बहुला बहुलाभदा ।
बाहुक्रीडामहोर्मिश्च बह्लीबाहुलमासगा ॥ १०७ ॥

भाविता भाबुककरी भर्मदा भर्गपूजिता ।
भवहर्त्री भवप्रीता भवानी भुवनोद्धता ॥ १०८ ॥

भूतिकर्त्री भूतिहर्त्री भूतिनी भूतसेविता ।
भूधरा भूधरोद्भेदा भूतनार्थार्चितोदका ॥ १०९ ॥

भूरितोया भूचरी च भूपतिप्रियकारिणी ।
मनोरमा महोत्साहा महनीया महात्मिका ॥ ११० ॥

माहात्म्यवर्द्धिनी मोहा मोदिनी मोहनाशिनी ।
मुग्धा मुग्धगतिर्मध्या मध्यलोकप्रियावहा ॥ १११ ॥

मधुरा मधुरालापा मधुरापतिवल्लभा ।
माधुर्यवारिधिर्माध्वी माध्वीककुसुमोत्कटा ॥ ११२ ॥

मधूकपुष्पमुदिता मदिरारसघूर्णिता ।
मादिनी मालतीमालामल्लीमाल्यप्रपूजिता ॥ ११३ ॥

मन्दारपुष्पपूज्या च मन्दा मन्दाकिनीप्रिया ।
मन्दराचलसंस्थाना मन्दिरान्तरमोदिनी ॥ ११४ ॥

यवसावलिसम्भिन्ना यमुनाजलकेलिनी ।
यमभीतिप्रशमिनी यमिनीयमिनां हिवा ॥ ११५ ॥

योगमार्गप्रदा योग्या योगाचार्य प्रपूजिता ।
योक्त्री योगबलप्रीता यौगिकार्थप्रकाशिनी ॥ ११६ ॥

यादवेन्द्रमनोरम्या यादोवरविभूषिता ।
यत्तत्पदार्थरूपा च यास्काचार्यहितप्रदा ॥ ११७ ॥

यस्या यशःप्रदा यम्या यज्ञा यज्ञविवर्द्धिनी ।
रमा रामा रता रम्या रमणी रमणीयभूः ॥ ११८ ॥

रामणीयकराशिश्च राशीशरुचिदायिनी ।
रामप्रिया रामरता रामरामा रमारुचिः ॥ ११९ ॥

रुच्या रुचिप्रदा रोचिप्रदा रोचितविग्रहा ।
रूपिणी रूपनिरता रूपकार्थसुखावहा ॥ १२० ॥

रञ्जिनी रजनीरूपा रजताचलसुन्दरी ।
रजोगुणवती रक्षा रक्षोघ्नी राजसी रतिः ॥ १२१ ॥

लावण्यकूल्लवणहा लक्ष्मीर्लक्ष्यानुबन्धिनी ।
लक्ष्मणस्य प्रीतिकरी लक्ष्मणा लक्ष्मणाश्रया ॥ १२२ ॥

ललामा लोचनभवा लीला लोलोर्मिमालिका ।
लीलावती लाभकरी लोभनीयगुणावहा ॥ १२३ ॥

लज्जावती लोकवती लोकालोकपरस्थिता ।
लोकनीया लोकहिता लोकेशवरदायिनी ॥ १२४ ॥

लालित्यकारिणी लीला लोपामुद्रासुखप्रदा ।
वनजा वनरम्या च वानीरवनगामिनी ॥ १२५ ॥

वानरेश्वरसुप्रीता वाग्वती विन्ध्यवासिनी ।
वाराणसोपुण्यकरी वारिगा वारिवाहिनी ॥ १२६ ॥

वारिवाहगणश्यामा वारणेन्द्रसुखप्रदा ।
वातरंहा वातगतिर्वामाराज्यसुखप्रदा ॥ १२७ ॥

वलिता वनिता वाणी वाणील्लभवल्लभा ।
वाहिनी वहनौद्धत्या वदावदविवादभूः ॥ १२८ ॥

शमिनी शामिनी श्यामा श्यामायाम प्रबोधिनी ।
शमीकमुनिसंसेव्या शमीवृक्षोद्भवा शमा ॥ १२९ ॥

शनैश्चरा शनिहरा शनिग्रहभयापहा ।
शमनार्तिहरा शम्पा शतह्लदहविलासिनी ॥ १३० ॥

शेषाशेषगतिः शोष्या शेषपुत्री शशिप्रभा ।
श्मशानचारिणी शून्या शून्याकाशनिवासिनी ॥ १३१ ॥

शरार्तिहा शरीरार्तिहारिणी शरभेश्वरी ।
शल्यापहा शलभहा शलदानवनाशिनी ॥ १३२ ॥

षण्मुखी षण्मुखहिता षडक्षीणा षडङ्गभूः ।
षष्ठीशनाथसंसेव्या षष्ठीपूजनकारिणी ॥ १३३ ॥

षड्वर्गजायिनी षट्का षड् वषट्कप्रपूजिता ।
सिता सीता सुता सूता सतां पूज्या सतां गतिः ॥ १३४ ॥

सदाहास्यक्रिया सत्या सती सत्यार्थदायिनी ।
सरणिः सरयूः सीरा सलिलौघप्रवाहिनी ॥ १३५ ॥

सद्धर्मचारिणी सूर्मिः सूपास्या सूपपादिता ।
सुलभा सुखदा सुग्रा संग्रामभयहारिणी ॥ १३६ ॥

सूत्तरा सुतरा सोमा सोमनाथप्रपूजिता ।
सामिधेनी समित्प्रीता समिधा च समेधिनी ॥ १३७ ॥

समा समाना समगा सम्मत्ता सुमता सुभा ।
सुमार्च्या सुषुमाधारा सरोजाबलिपूजिता ॥ १३८ ॥

हरिप्रिया हिमवहा हिमानी हिमतोयगा ।
हरिदष्टकसंकीर्त्या हरिदश्वप्रपूजिता ॥ १३९ ॥

हंभारवैकसुप्रीता हिन्दोलाकेलिकारिणी ।
हिंसादोषप्रशमिनी हिंस्रमुक्तिप्रदायिनी ॥ १४० ॥

हारिणी हरसंस्तुत्या हकाराक्षरसंस्तुता ।
हत्याहरा हठरिपुर्हरचापप्रभञ्जिनी ॥ १४१ ॥

क्षेम्या क्षेमकरी क्षेमा क्षुधाक्षोभविनाशिनी ।
क्षुण्णा क्षोदा क्षीरनिधिः क्षीरसागरवासिनी ॥ १४२ ॥

क्षीवा क्षुतिक्षुरप्रख्या क्षिप्रा क्षिप्रार्थकारिणी ।
क्षोणिः क्षोणिहिता क्षामा क्षपाकरनिभोदका ॥ १४३ ॥

क्षारा क्षाराम्बुनिधिगा क्षपासंचारकारिणी ।
अमला अम्लसलिला अदःशब्दार्थरूपिणी ॥ १४४ ॥

अकाराक्षररूपा च ह्याकाराक्षररूपिणी ।
आर्द्राम्बरा आमजला आषाढी आश्विनात्मिका ॥ १४५ ॥

आग्रहायणरूपा च आतुरत्वविनाशिनी ।
आसुरी आसुरिसुता आशुतुष्टा इलेश्वरी ॥ १४६ ॥

इन्द्रिया इन्द्रसम्पूज्या इषुसंहारकारिणी ।
इत्वरी इनसंसेव्या इरा इनवरेन्दिरा ॥ १४७ ॥

ईश्वरी ईतिहन्त्री च ईरिणी ईस्वरूपिणी ।
उदकौघप्रवहिणी उत्तङ्कमुनिपूजिता ॥ १४८ ॥

उत्तराद्रिसुता उन्ना उत्तीर्णा उत्तरप्रदा ।
उत्तप्तकाञ्चननिभा ऊहिनी ऊहकारिणी ॥ १४९ ॥

ऊषरा ऊषरक्षेत्रा ऊतिरूपी ऋभूस्तुता ।
ऋतप्रवर्तिनी ऋक्षा ऋक्षेन्द्रकुलपूजिता ॥ १५० ॥
ॠकाराक्षररूपा च ॠकारी ॠस्वरूपिणी ।
लृतका लृतकाचार्या लृकाराक्षरवासिनी ॥ १५१ ॥
एषा एषितवेदार्था एवमेवार्थरूपदा ।
एवकारार्थगम्या च एतच्छब्दार्थरूपिणी ॥ १५२ ॥
एता ऐता ऐकृतिश्च ऐन्द्री ऐंकाररूपिणी ।
ओता ओकाररूपा च औषधीशप्रपूजिता ॥ १५३ ॥
औन्नत्यकारिणी अंबा अंबिका अंकवर्जिता ।
अंतकप्रेयसी अंक्या अंतका अंतवार्जिता ॥ १५४ ॥
अ:कारमुदिता चैव सर्वर्णस्वरूपिणी ।
सर्वशास्त्रार्थरूपा च सर्वकल्याणकारिणी ॥ १५५ ॥
इदं श्रीसरयूदेव्या नामसाहस्रमुत्तमम् ।
मया निगदितं श्रुत्वा सर्वपापैर्विमुच्यते ॥ १५६ ॥
बहूनि तव नामानि अनन्तान्येव सर्वशः ।
त्वं गङ्गा यमुना चैव गोदा चैव सरस्वती ॥ १५७ ॥
नर्वदा चैव कावेरी भीमा कृष्णा च पार्वती ।
सिन्धुः सिन्धुसुता चैव सर्वदेवस्वरूपिणी ॥ १५८ ॥
यस्त्वां स्मरति वै नित्यं मनुजो रामसेवकः ।
सर्वविघ्नहरा तस्य भविष्यसि न संशयः ॥ १५९ ॥
प्रातरुत्थाय च नरो योऽवगाहेत वै त्वयि ।
तस्य सर्वाघहन्त्री त्वं रामभक्ति प्रवर्तयेः ॥ १६० ॥
दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
रामप्रेमप्रदा नित्यं त्वं सर्वशुभकारिणी ॥ १६१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे प्रमोदवनवर्णने सरयूनामसहस्रकं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥



सप्तत्रिंशोऽध्यायः

पुरुष उवाच

ये मज्जनं करिष्यन्ति तव प्रेममये जले।
तेषां रामपदाम्भोजे भवित्री रतिरुत्तमा ॥ १ ॥

गच्छ त्वं रामनगरीमयोध्याख्यां शुभान्विताम्।
पावयन्ती शुभान् देशात् निजवारिसमीरणी ॥ २ ॥

गङ्गया सह भूपस्त्वं लवणोदं गमिष्यसि।
ब्रह्माण्डाधारवासिन्या बिरजायाः शुभं जलम् ॥ ३ ॥

एकीकृत्य निजैस्तोयैर्गमिष्यसि महीतलम्।
उपरिस्थमहाव्योमब्रह्माण्डद्वारमार्गतः ॥ ४ ॥

ब्रह्मलोकं समागत्य ब्रह्माणं स्नपयिष्यसि।
तपोलोके सतीर्मातॄस्तापसान् सिद्धपुङ्गवान् ॥ ५ ॥

[1]पावयित्वा पितॄन् सर्वान् जनकलोकमुपैष्यसि।
जनलोके पावयित्वा तत्रस्थान् देवतागणान् ॥ ६ ॥

महर्लोके ध्रुवस्थाने पूजितौत्तानपादिना।
सप्तर्षिमण्डले भूपो वन्दिता तैर्मुनीश्वरैः ॥ ७ ॥

अरुन्धत्या स्तुता चैव स्तुत्वाचत्वमरुन्धतीम्।
परस्परं सुखंभूपस्तत्र नित्यं करिष्यथः ॥ ८ ॥

ततः स्वर्लोकमागत्य देवैर्देवीभिरीडिता।
पूजिता देवराजेन भुवर्लोकमुपैष्यसि ॥ ९ ॥

तत्र दिव्यैर्देवगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः।
पूजिता संस्तुता चैव भूर्लोकं प्लावयिष्यसि ॥ १० ॥

दिव्ये हिमालयवने विचरन्ती समंततः।
आश्रमान् मुनिवर्याणां विशेषात्प्लावयिष्यसि ॥ ११ ॥

दिव्यवर्षसहस्रं तु विशिष्टेन तपस्विना।
आराधिता ततो देवि मर्त्यलोकमुपैष्यसि ॥ १२ ॥

अयोध्यानगरे रम्ये तव वासो भविष्यति।
नित्य संनिहिता तत्र कामान् सम्भूरयिष्यसि ॥ १३ ॥

इदं ते कार्यमुच्छिष्टं स्थानं चैव शुभान्वितम्।
आविर्भावस्तव सदा शुभाय धरणीतले ॥ १४ ॥

नृणां श्रीरामभक्तानां विशुद्धमनसां सताम्।
अन्येषां चापि लोकानां पावनी त्वं सदा मता ॥ १५ ॥

---

१. इतः परं यावत् नास्ति—बड़ौ० (तत्रलिखितं ६०-६१ मूल पुस्तकेनास्तीति)

आपदो विपदश्चैव दारिद्र्यमशुभं तथा ।
कुष्ठाद्याश्च महरोगा दुश्चिकित्स्या भिषग्वरैः ॥ १६ ॥

अभिचारा ग्रहाः कृत्याः संक्षये यान्ति तत्क्षणात् ।
पश्यतां स्मरतां चैव मज्जतां तव वारिणि ॥ १७ ॥

इत्थं शुभाय मर्त्यानां प्रकटा त्वं महीतले ।
भविष्यसि वसिष्ठस्य तपसा सुखकारिणी ॥ १८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे प्रमोदवनवर्णने सरयूत्पत्तौ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥



अष्टात्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टा सरयू पुरुषेण भूम्रा तत्रस्थैर्महा योगिभिश्च भूयो ।
भूपो वन्दिता गङ्गया च कालिन्द्या चाप्यर्चिता दिव्यभावैः ॥ १ ॥

तामुवाच ततो गङ्गा श्रीमद्विष्णुपदोद्गता ।
प्रश्रयावनता भूत्वा विनयेन कृताञ्जलिः ॥ २ ॥

गङ्गोवाच

धन्यासि भवती मातः श्रीरामप्रेमरूपिणी ।
ये च त्वयि निमज्जन्ति तेऽपि धन्या नरा भुवि ॥ ३ ॥

त्वमयोध्यापुरे स्थित्वा प्रमोदवनमण्डिते ।
रामलीलारसं नित्यं द्रक्ष्यसि प्रतिवासरम् ॥ ४ ॥

त्वं चेन्मां निजसार्थेन कृपयिष्यसि भाविनी ।
तदाहमपि वै रामलीलां दृष्टास्मि चिन्मयीम् ॥ ५ ॥

यमुनोवाच

नमस्ते सरयूरूपे श्रीरामप्रेमसम्पदे ।
त्वत्संगादहमप्यवगन्तास्मि परमं पदम् ॥ ६ ॥

यदामनन्ति मुनयः प्रमोदवनसंज्ञकम् ।
चिदानन्दमयं नित्यं रामलीलामहास्पदम् ॥ ७ ॥

तन्मां दर्शय कारुण्यान्निजसंगं च देहि मे ।
यथाहमपि पश्येयं रामलीलां मनोहराम् ॥ ८ ॥

सरस्वत्युवाच

प्रेमानन्दमयी साक्षाद् रामलीलाविशारदा।
प्रसीद मपि मातस्त्वं सरयूर्विश्वपाविनी ॥ ९ ॥

निज सार्थे स्थापयास्मान् यथा पश्येम तत्पदम्।
रामलीलारसागारं प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ १० ॥

कथं तद् दृश्यतां मातर्विना त्वत्करुणाभरम्।
तस्माद्यत्र स्थास्यसि त्वं तत्रस्थास्यामहे वयम् ॥ ११ ॥

गायत्र्युवाच

अहं वै छन्दसं माता वाञ्छामि तव संनिधिम्।
प्रमोदविपिने रामलीलारससुखाप्तये ॥ १२ ॥

सावित्र्युवाच

यत्ते विज्ञापितं मातर्गायत्र्या सुरसेव्यया।
तदेव मम विज्ञाप्यं श्रूयतां करुणावति ॥ १३ ॥

अरुन्धत्युवाच

असारं जगदेवेदं सारं ब्रह्मपरं महः।
तच्च रामस्वरूपं तत्प्रेममात्रेण लभ्यते ॥ १४ ॥

तत्प्रेम चित्सुखाकारं भवत्याः परमं वपुः।
तस्मात्त्वत्सार्थगा नित्यं निवत्स्यामि महोदके ॥ १५ ॥

लोपामुद्रोवाच

अहं जानामि ते रूपं रामप्रेमैकविग्रहम्।
तस्मात्त्वां न विहास्यामि साररूपां सनातनीम् ॥ १६ ॥

प्रमोदवनमभ्येत्य स्थास्यामि तव संनिधौ।
द्रक्ष्यामि तां प्रभोर्लीलां श्रीरामस्य परात्मनः ॥ १७ ॥

गार्ग्युवाच

अहं भर्तुः प्रसादेन ब्रह्मानन्दमहोदधौ।
निमग्ना त्वत्प्रसादेन प्रेमानन्द प्रकामये ॥ १८ ॥

मैत्रेय्युवाच

कृपयस्व परं मातर्यथाहमपि संततम्।
श्रीरामप्रेमपाथोधेर्लभे किमपि विप्रषः ॥ १९ ॥

पार्वत्युवाच

अहं वंशीरवं श्रुत्वा रामस्य सुमनोहरम्।
पत्युः शिवस्याङ्कस्थापि जहामि मनसो धृतिम् ॥ २० ॥

तदहं द्रष्टुमिच्छामि रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ।
त्वत्सार्थेन गमिष्यामि प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मीरुवाच

अहं वैकुण्ठगा नित्यं विष्णोर्वक्षसि संस्थिता ।
तथापि कामये रामं लीलानन्दरसात्मम् ॥ २२ ॥

तस्मात्त्वत्सार्थगा भूत्वा यास्यामि प्रमुदाटवीम् ।
कृपया मां निरीक्षस्व श्रीरामप्रेमसिद्धये ॥ २३ ॥

रतिरुवाच

अहं ते दासिका काचित्पादाब्जपरिचारिका ।
न मां त्वं त्यक्तुमर्हासि रामप्रेमाभिलाषुकाम् ॥ २४ ॥

शच्युवाच

यथा रतिस्तथैवाहं दासी ते प्रेमरूपिणी ।
न मां वैरोचते लोको यत्रैन्द्रयदभूतयः ॥ २५ ॥

नय मां निजसार्थेन प्रमोदवनभूमिकाम् ।
अगम्यामितरैर्लोकैः श्रीरामरतिवर्जितैः ॥ २६ ॥

अनसूयोवाच

भर्ता मे भगवान् साक्षाच्चित्रकूटे यदाश्रमः ।
श्रीरामप्रेमसंयुक्तस्तस्याहं परमा प्रिया ॥
त्वत्संनिधौ स्थातुमर्हा न मां त्वं त्यक्तुमर्हसि ॥ २७ ॥

दित्यादिती ऊचतुः

आवां प्रजापतेर्भार्ये देवतासुरमातरौ ।
तव संगेन वै मातर्भविष्यावो हरौ रते ॥ २८ ॥

तस्मादावां नेष्यसि त्वं कृपया श्रीकृपावती ।
प्रमोदवनमत्यर्थं रामलीलामनोहरम् ॥ २९ ॥

देवहूतिरुवाच

अहं कपिलदेवस्य जननी कर्दमस्य च ।
प्रजापतेः प्रिया भार्या रामप्रेमाभिलाषुका ॥ ३० ॥

तदर्थं त्वामहं प्राप्ता यास्यामि प्रमुदाटवीम् ।
हस्तावलम्बं वितर त्वं परप्रेमरूपिणी ॥ ३१ ॥

मेधाद्या दशपीठस्थाः शक्तयः सरयूं प्रति ।
ऊचिरे वचनं सर्वाः सानुरागाः पृथक् पृथक् ॥ ३२ ॥

मेधाद्या ऊचुः

पार्वत्यो देवता दिव्या विष्णुरुद्रादिरूपिणीः ।
तासां वयं पीठशक्तिरूपेण खलु संस्थिताः ॥ ३३ ॥
अधुना त्वामभ्युपेताः श्रीरामप्रेमकामुकाः ।
दोलान्तसंस्थिता नित्यं याने पीठान्तसंस्थिताः ॥ ३४ ॥
नित्यं त्वां सेवयिष्यामो यत्र यत्र गमिष्यसि ।
प्रमोदवनमभ्येत्य स्थास्यामस्तव संनिधौ ॥ ३५ ॥
इति विज्ञाप्य सरयूं सकलास्ताः पृथक् पृथक् ।
द्रवरूपेण सम्भूय विविशुस्तन्महोदके ॥ ३६ ॥
गङ्गा च यमुना चैव तथा देवी सरस्वती ।
द्रवरूपं समास्थाय विविशुः सरयूजले ॥ ३७ ॥
अन्याश्च देवताः सर्वा लोपामुद्रादयस्तदा ।
द्रवीभूय सरय्वां ता विविशुः सुखितान्तराः ॥ ३८ ॥
ततः सा सरयूर्दृप्ता महाकल्लोलनिःस्वनैः ।
तरंगबाहुसाहस्रैर्लिम्पती कनकावनीम् ॥ ३९ ॥
सुसंगता विरजया ब्रह्मनद्या महोर्जया ।
ततश्च तामभिप्राप्ता सरयू प्रेमरूपिणीम् ॥ ४० ॥
अभिजग्राह विरजा ब्रह्मलोकमहानदी ।
अत्यादरेण मिलिता सम्मुखीभूय सा ततः ।
तरंगबाहुप्रसरैरालिलिङ्ग सरिद्वरा ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे प्रमोदवनवर्णने सरयूसम्भवे ऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥



एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुकउवाच

तया सम्मानिता देवी सरयूर्विश्वपाविनी ।
विश्रान्ता तन्तटे सार्धं मेधाद्याभिश्च शक्तिभिः ॥ १ ॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे भक्तिमन्तो भवार्चिताः ।
जाताः प्रसन्नमनसो विरजापारवासिनः ॥ २ ॥

तत्र बध्नाति परमं ब्रह्माक्षरमनुत्तमम् ।
पुरुषोत्तमस्य यद्दिव्यं कीर्तितं पदमुच्चकैः ॥ ३ ॥
स लोकस्तस्य विमलश्चिन्तामणिमयी मही ।
कल्पद्रुमा द्रुमाः सर्वे पूर्णपीयूषकं सरः ॥ ४ ॥
ज्ञानिनां तन्निराकारं निरीहं निर्गुणं तथा ।
तदेव भक्तैः साकारं दृश्यते सगुणं महत् ॥ ५ ॥
तत्र प्रवर्तयामास[1] रामभक्तिमनुत्तमाम् ।
सरय्वाः सलिलं पीत्वा तत्रत्यास्ते महर्षयः ॥ ६ ॥
श्रीरामभक्तिसम्पन्ना बभूवुर्हृष्टचेतसः ।
ततस्तां विरजा देवी प्रोवाच विगतस्मया ॥ ७ ॥
दर्शनेनैव हृष्टात्मा सद्यः प्रेमवती सती ।

विरजोवाच

इह ब्रह्मैव परमं गीयते श्रुतिकोटिभिः ।
ज्ञानगम्यं सदा ज्ञेयं रूक्षवद्भाति तत्सुखम् ॥ ८ ॥
अधुना तु परं प्रेम भवत्या प्रकटीकृतम् ।
श्रीरामचन्द्रविषयं ब्रह्मानन्दाच्छताधिकम् ॥ ९ ॥
सहस्रलक्षकोट्यंशैः स्फुरदभ्यधिकाधिकम् ।
त्वं गुरुः परमास्माकं श्रीरामप्रेमशिक्षणे ॥ १० ॥
सदास्माकं गृहेतिष्ठ ब्रह्माक्षरमहायदे ।
अत्र स्थित्वा ज्ञानवतां मुनीनां ब्रह्मवर्चसाम् ॥ ११ ॥
प्रवर्तय परांभक्ति रसास्वादैकहेतवे ।
नामी विदन्ति प्रेमाणं परब्रह्मरसोत्तरम् ॥ १२ ॥
व्यर्थमेषां ततो ज्ञानं गणितानन्दभागिनाम् ।
मानुषेभ्योऽधिकानन्दाः सम्राजः शतसंख्यया ॥ १३ ॥
सम्राड्नोयक्षगन्धर्वाः कर्मदेवास्ततोऽपि च ।
देवाश्च कर्मदेवेभ्यस्तेभ्य इन्द्रस्तथैव च ॥ १४ ॥
इन्द्राच्छताधिकानन्द आङ्गिरस उदारधीः ।
आङ्गिरसाधिको ब्रह्मा ब्रह्मणो ब्रह्म चाधिकम् ॥ १५ ॥
एषाऽऽनन्दस्य गणना श्रुत्या मीमांसितापुरा ।
तस्मादगणितानन्दं परं ब्रह्म प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥
अक्षरात्परतः स्थानं यत्र श्रीपुरुषोत्तमः ।
परं ब्रह्म तदेवोक्तं साकारं रसरूपधृक् ॥ १७ ॥

१. इतः पूर्वं खण्डितः पाठः—बड़ौ. ।

परं ब्रह्म प्रेमगम्यं प्रेमा भक्तिरुदाहृता ।
सोऽत्र प्रवर्तितो मातस्त्वया प्रेमस्वरूपया ॥ १८ ॥
तस्मात्तवात्र संस्थानं सततं कामयेऽस्मि च ।
नो चेद्यत्र प्रयासि त्वं तत्र मां नय सार्थगाम् ॥ १९ ॥

सरयूरुवाच

अहं निदेशात्पुरुषस्य भूम्नस्तत्र प्रयास्यामि विभाति यत्र ।
पुरो परानन्दपदव्ययोध्या श्रीरामसीतारसकेलिपात्रम् ॥ २० ॥
तत्र प्रमोदवनमध्यगता सदाहं स्थास्यामि नित्यमुदयं दधती शुभोच्चैः ।
सत्या महावनिविहारकरी सदैव वर्ते प्रमुद्वनभुवि प्रमुदं दधाना ॥ २१ ॥

विरजोवाच

नय मामपि तत्रैव प्रमोदवनमद्भुतम् ।
अयोध्यापुरपर्यन्तस्थानमानन्दमन्दिरम् ॥ २२ ॥
गायन्ती त्वद्गुणांस्तत्र स्थास्यामि तव सन्निधौ ।
श्रीरामकेलीसम्भूतपरमानन्दभाजनम् ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच

तथेत्युक्त्वा सरयूस्तां स्वसार्थे सरिद्वरां विरजां जातसख्याम् ।
कृत्वा ततः साः प्रययौ मन्दमन्दं संशृण्वती स्तवं स्वस्यपुण्यम् ॥ २४ ॥

मुनय ऊचुः

नमो नमस्ते सरयू प्रकामं निजैस्तरंगैर्भुवनं पावयन्त्यै ।
संस्पर्शनाद्दर्शनाच्चाम्बुपानादनेकवक्त्रेक्षणतांददासि ॥ २५ ॥
त्वं देवि मायाविषमज्वरघ्नी सुधारसादभ्यधिकं गुणाढ्या ।
अशोकतामातनुषे जनानां भवायवर्गं स्वभिलाषुकाणाम् ॥ २६ ॥
तवाम्बुसंस्पर्शनतो भवन्ति पुण्यानि यानि प्रभवं गतानि ।
न सोमपानां न च वाजपेयिनां न वाश्वमेधावभृथाप्लुतात्मनाम् ॥ २७ ॥
समीरसंगात्तव पाथसः कणैर्गत्वा सुदूरं पशुपक्षिभूरुहाः ।
विधीयन्ते ब्रह्मभूयाय योज्याः किं वाच्यस्ते महिमा स्नानजन्यः ॥ २८ ॥
पायं पायं चुलुकैस्तावकीनं पीयूषाभं वारिनिर्णिक्तरूपम् ।
तृप्तो ब्रह्माणं तृणवन्मन्यमानः स्वस्थः शेते तीरदेशे तवैव ॥ २९ ॥
न तस्य मृत्युर्न तथापमृत्युर्न कामदीप्तिर्न च माया मदश्च ।
यस्ते पाथस्यवगाहं तनोति सुधासवर्णे सर्वतापामयघ्ने ॥ ३० ॥
द्रुतो भूया पुरुषो रामचन्द्रः प्रेमद्रवः सोऽभवदिन्दुवर्णः ।
तस्यावगाहाज्जनिभाजो भवन्ति प्रेमप्लुताः सहजानन्दिनीशे ॥ ३१ ॥

त्वं रामगङ्गा भवमुक्तिहेतुः समस्तकल्याणपरं परात्मा ।
शुभाय लोके प्रकटत्वमागाः श्रीरामभक्त्येकजुषां जनानाम् ॥ ३२ ॥

नमोऽम्ब रामगङ्गायै तुभ्यं कल्याणमूर्तये ।
वासिष्ठ्यै प्रेमगङ्गायै पावयन्त्यै जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

इति स्तुवन्तो मुनयः सरयूं विश्वपावनीम् ।
मुक्ता अपि जना जाताः प्रेमभाजोरघूद्वहे ॥ ३४ ॥

ततः सा स्वर्गभूमीषु तत्रस्थैर्विहितस्तवा ।
प्लावयन्ती शुभान् स्वर्गान् क्रमेणागाद्धिमालयम् ॥ ३५ ॥

हिमाद्रेः पूर्वशिखरे संस्थिता शुभरूपिणी ।
स्तूयमाना देवसंघैर्यक्षगन्धर्वपुङ्गवैः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे सरयूसम्भवे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥



चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

ततो वसिष्ठो योगीन्द्रस्तपश्चक्रे पुरा महत् ।
तपसा तेन संतुष्टा सरयूरागता महीम् ॥ १ ॥

जनक उवाच

कथं मुनिस्तपश्चक्रे वसिष्ठः सरयूकृते ।
एतन्मे वद योगीन्द्र रामगङ्गा यथाऽऽगता ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सरयूत्पत्तिमुत्तमाम् ।
अयोध्यायाश्च निर्माणं पूर्वं वैवस्वतान्मनोः ॥ ३ ॥

वक्ष्ये प्रसंगतः प्राप्तां वैवस्वतमनोः कथाम् ।
पावनीं श्रवणादेव चित्तशुद्धिविधायिनीम् ॥ ४ ॥

वैवस्वतो मनुरभूद् भगवान् सर्वदर्शनः ।
मनीषी चैव सर्वज्ञः प्रजाकर्मण्यतन्द्रितः ॥ ५ ॥

पारगः सर्ववेदानां सर्वदैवतपूजितः ।
आज्ञया ब्रह्मणो नित्यं भुवमेतां शशास सः ॥ ६ ॥

स इदं प्रथमं चक्रे ब्रह्मक्षत्रमनारतम् ।
ततश्चैव तु विट्शूद्रं स्वे स्वै कर्मणि संस्थितम् ॥ ७ ॥

वृत्तीश्च प्रथमं चक्रे लोकयात्राविधायिकाः ।
कालं कर्म स्वभावं च समाश्रित्य सनातनम् ॥ ८ ॥

भगवान् सर्वहेतुत्वात्स्वयं तद्वशगः स्थितः ।
दिव्येन चक्षुषा सर्वमपश्यद्भगवान् स्वयम् ॥ ९ ॥

भूतं भवच्च भव्यं च स्थावरं चैव जङ्गमम् ।
सरहस्यां साङ्गगणां सोत्तरां सपदक्रमाम् ॥ १० ॥

सशाखाभाविविस्तारं बीजरूपां व्यवस्थिताम् ।
त्रयीं सोऽधिजगे देवः सेतिहासपुराणकाम् ॥ ११ ॥

ससंहिता सतन्त्रां च सकाण्डाध्यायविस्तराम् ।
विवस्वतो भगवतश्चिकीर्षत इद जगत् ॥ १२ ॥

सर्वं विज्ञातवान् विश्वं शब्दरूपेण संस्थितम् ।
शब्दो नामा परं ब्रह्म परमे व्योम्नि संस्थितम् ॥ १३ ॥

वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूर्ब्रह्मकारणम् ।
तस्याज्ञया पितुश्चैव नियोगाच्छ्रीविवस्वतः ॥ १४ ॥

पृथक्तन्त्रां वेदमयीं वाचं विज्ञातवान् स्वयम् ।
सोऽग्लासीत्प्रथमं सर्गे प्रजाकर्मण्युपारतः ॥ १५ ॥

रुद्रस्यैवोपदेशेन प्रजासंहारकारिणः ।

जनक उवाच

भगवानीश्वरो रुद्रः कथं तमुपदिष्टवान् ।
येन ग्लानोऽभवद्देवः प्रजासर्गे मनुः स्वयम् ॥ १६ ॥

श्रीशुक उवाच

एतत्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शृणु राजर्षिसत्तम ।
वैवस्वतो मनुः पूर्वं पित्रा युक्तः प्रजाकृतौ ॥ १७ ॥

अकरोदखिलं विश्वं संक्षेपेण पथोदितम् ।
चातुर्वर्ण्यं गुणांश्चैव कर्माणि च विभागशः ॥ १८ ॥

पृथक् पृथक् प्रवृत्तीश्च यज्ञं पर्जन्यकारणम् ।
संस्थाश्चापि पृथक् चक्रे यज्ञस्य ब्रह्मकर्मणः ॥ १९ ॥

पशूंश्चापि पृथक् चक्रे वायव्यानग्निदैवतान् ।
वारुणानिन्द्रदैवत्यां स्तथाग्नी वोमदैवतान् ॥ २० ॥

मैत्रावरुणदैवत्यान् सर्वदैवत्यकांस्तथा ।
प्राजापत्यांश्च बहुशो यैर्यज्ञः सम्प्रवर्तते ॥ २१ ॥

देशं कालं तथा द्रव्यं मन्त्रं कर्तृंश्च भेदशः ।
अङ्गानि चापि भूरीणि क्रियाश्चापि विधिक्षमाः ॥ २२ ॥

आवार्यं च तथोद्वार्यं तन्त्राणि च पृथक् पृथक् ।
जुह्वादीनि च यात्राणि तथावभृथमुत्तमम् ॥ २३ ॥

अपूर्वाणि च भिन्नानि साङ्गोपाङ्गस्य कर्मणः ।
ततः प्रववृते लोको यज्ञात्संवत्सरादिकात् ॥ २४ ॥

इष्टवान् भगवान् देव भगवन्तं महेश्वरम् ।
ईशः पर्जन्यरूपेण महीमाप्लावयद्रसैः ॥ २५ ॥

रसाप्लुता मही चापि बीजानि सुषुवे पृथक् ।
संजात ओषधीभारः प्रजावृत्तिप्रकल्पकः ॥ २६ ॥

अन्नं ब्रह्म स्वयं भूत्वा पालयामास वै जगत् ।
ततः प्रववृधे लोकश्चातुर्वर्ण्यसमाह्वयः ॥ २७ ॥

पूर्वपूर्वक्रमात्सर्वं उत्तरोत्तरतोऽधिकः ।
प्रजायतेः कश्यपस्य द्वे अभूतां वरस्त्रियौ ॥ २८ ॥

दितिश्चैवादितिश्चैव तयोर्देवासुरोऽभवत् ।
स्वरसान्मानुषः सर्गः सर्व एव व्यवर्धत ॥ २९ ॥

एवं प्रवृद्धे सकले प्रपञ्चे लोकसंज्ञनि ।
लोकैरुद्वेजितो रुद्रो भगवांस्तपसि स्थितः ॥ ३० ॥

प्रजासंहारनिरतो वरदो वरलब्धये ।
ततो रोषं स्वयं चक्रे संजातो भैरवः स्वयम् ॥ ३१ ॥

रुद्ररोषसमुद्भूतो भैरवो भीषणः प्रभुः ।
विध्वंसयन् जगत्सर्वं व्यचरत् पावको यथा ॥ ३२ ॥

ततो वैवस्वतमनोर्जनकेन विवस्वता ।
प्रार्थितो भैरवो देवः स्तवेनानेनसंस्तुतः ॥ ३३ ॥

विवस्वानुवाच

नमस्ते भगवन् रुद्ररोषतेजःसमुद्भव ।
लोकसंहारनिपुण नीलपिङ्गलवर्चसे ॥ ३४ ॥

नमस्ते धूमधूम्राय नीलजीमूतरोचिषे ।
जटापिंगलरूपाय विरूपाक्षाय भीष्णवे ॥ ३५ ॥

क्रोधाय क्रोधरक्ताय क्रोधरक्तेक्षणाय च ।
क्रोधसंहाररूपाय भैरवाय नमो नमः ॥ ३६ ॥

क्रोधभैरवभूतेश सम्पूर्णजगदन्तक ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रदुष्प्रेक्ष महाकाल नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥

तडित्पिशंगप्रोद्भासिकपर्दकविभीषण ।
शूलभ्रमणवित्रासिन् भैरवाय नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥

खड्गशूलधरायोर्ध्वं वरदाभयपाणये ।
चतुर्भुजाय भीमाय भैरवाय नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥

उल्कासहस्रविस्रस्तजगत्त्रयभयालवे ।
ज्वालामालाकरालाय भैरवाय नमोऽस्तु ते ॥ ४० ॥

दीप्ताय दीप्तनेत्राय विद्युद्दीधितिदीप्तये ।
प्रदीप्तवह्निज्वालाय जटिलाय नमोऽस्तु ते ॥ ४१ ॥

व्यालमालापरीताय धूलिधूसरवर्ष्मणे ।
गिरीन्द्रशिखरोच्चाय महोग्राय नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥

पादप्रहारविध्वस्तसप्तपातालभूमये ।
किरीटोल्लिखिताभ्राय विशालाय नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥

दिगम्बराय वीराय श्मशानामिषभोजिने ।
शोणितारक्ततुण्डाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥

चण्डाय चण्डवीर्याय चण्डविक्रमकारिणे ।
भूतान्तकरणोग्राय त्र्यम्बकाय नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥

वेतालौघपरीताय डाकिनीतृप्तिहेतवे ।
चण्डिकागुणयुक्ताय भीषणाय नमोऽस्तु ते ॥ ४६ ॥

अत्युद्भटजटाटोपक्षोभिताम्बुदमण्डल ।
विकराल महाकाल चन्द्रभाल नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥

एतत्तव जगत्सर्वं कृपादृष्ट्याभिवीक्ष्यताम् ।
न त्वस्य ध्वसनं युक्तं विनैवावसरं प्रभो ॥ ४८ ॥

अन्य एव स कालोऽस्ति यत्र संहरसे जगत् ।
सृष्टिकालोऽयमधुना कृपां विस्तारय प्रभो ॥ ४९ ॥

विष्णोराज्ञा भगवतो महापुरुषसंज्ञिनः ।
काले काले यतोऽस्याभिः क्रियते विश्वमीदृशम् ॥ ५० ॥

तस्य नाभिस्थलोद्भूतपद्मभूर्भगवान् विधिः ।
अरीरचज्जगत्सर्वं नियुज्यास्यांश्चतुर्दश ॥ ५१ ॥

तस्मै त्वं कृपयास्मासु मा द्रुह क्रोधभैरव ।
त्वया विध्वंस्यमानं तन्नङ्क्ष्यते नष्टमेव च ॥ ५२ ॥

करोषि ताण्डवं यर्हि भुजौ सम्भ्रामयन् मुहुः ।
पातालं पादन्यासेन स्वर्गो मुर्द्धा च भज्यते ॥ ५३ ॥

इदं ते नाण्डवं भीमं विश्वसंहरणक्षयम् ।
संवर्तावसरे योग्यं न सर्गावसरे क्वचित् ॥ ५४ ॥

इत्थं विवस्वता भूयः संस्तुतः क्रोधभैरवः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ ५५ ॥

क्रोधभैरव उवाच

स्तवेनानेन तेऽत्यर्थं प्रसन्नोऽस्मि ततोभृशम् ।
वरं वृणीष्वभद्रं ते विवस्वन् दैवतोत्तम ॥ ५६ ॥

विवस्वानुवाच

विश्वसंहरणाद्देव विरमस्वाधुना प्रभो ।
एष एव वरो देयः क्रोधं संहर भैरव ॥ ५७ ॥

स्तवेनानेन ये नित्यं स्तोष्यन्ति त्वां भवे जनाः ।
तेषां त्वं सुखदो भूपा एष चापि वरोऽस्ति मे ॥ ५८ ॥

श्रीशुक उवाच

तथास्त्विवति वरं दत्वा प्रणताय विवस्वते ।
प्रजगाम प्रशान्तात्मा कैलासाख्यं निजास्पदम् ॥ ५९ ॥

तमागतमभिप्रेत्य भगवान् रुद्र ईश्वरः ।
आज्ञाविघातदोषेण चुक्रोध हृदये भृशम् ॥ ६० ॥

श्रीमहादेव उवाच

कस्मान्न ध्वंसितं विश्वं मदाज्ञा विहता कुतः ।
अव्यवस्थितचित्ताय तुभ्यं कुप्यामि भैरव ॥ ६१ ॥

मत्तोऽसि क्षणतुष्टोऽसि विहितं न वचो मम ।
तस्मात्सर्वेषु देवेषु कुत्सितस्त्वं भविष्यसि ॥ ६२ ॥

सुरामांसप्रियो लोके भविष्यसि विशेषतः ।
पुरुषाणां बलीन् खादन् पुरुषादो भविष्यसि ॥ ६३ ॥

न खलु त्वां भजिष्यन्ति सात्त्विका अपि राजसाः ।
तामसाः क्रूरकर्माणः सततं त्वामुपासते ॥ ६४ ॥

ततो निर्गच्छ मत्पार्श्वात् सात्त्विकं पदमीदृशम् ।
गच्छ त्वं तामसांल्लोकान् यत्र मांससुराबलिः ॥ ६५ ॥

इत्थं निर्भत्सितस्तेन देवदेवेने भैरवः ।
जगाम रक्षसां लोकान् महातामसरूपिणः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

शिवस्तु दुःसहं मत्वा प्रज्ञासर्गमनारतम् ।
वैवस्वताय यनवे ज्ञानं वक्तुमुपागतः ॥ १ ॥

ब्रह्मचारी यथा भूत्वा धृताषाढो मृगाजिनी ।
धौतोज्ज्वलाम्बरधरः सुपूतः सुदृढव्रतः ॥ २ ॥

महार्हराज्यासनगं देवं वैवस्वतं मनुम् ।
अभ्यगच्छन्नभोदेशादवतीर्य लसद्द्युतिः ॥ ३ ॥

तं सूर्यप्रतिमं दृष्ट्वावतरन्तं नभस्तलात् ।
उत्तस्थौ स्वासनं हित्वा भक्त्या वैवस्वतो मनुः ॥ ४ ॥

सर्वदाभ्यागतः पार्श्वे ब्रह्मचर्यनिधिर्द्विजः ।
वैवस्वतो विस्मितोऽभूद्दृष्ट्वा तद्ब्रह्मवर्चसम् ॥
प्रत्युत्थाय ननामास्त्रै मूर्द्ध्ना नम्रेण धार्मिकः ॥ ५ ॥

स तं प्रयुज्याशिषमद्भुतां मुनिर्विमुक्तिमार्गं सहसा व्रजेति भोः ।
निशम्य तस्याशिषमेष निर्वृतः संसारचक्रभ्रमणाह्लानचित्तः ॥ ६ ॥

पाद्यादिभिः प्रपूज्यैनं कृत्वा च बहुलादरम् ।
महार्हमासनं दत्त्वा शिरश्चरणयोर्न्यधात् ॥ ७ ॥

स तस्य शिर उत्सार्य महामुकुटमण्डितम् ।
प्रसन्नहृदयो भूत्वा प्रोवाच मनुजेश्वरम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच

धन्योऽसि धारणीपाल प्रजापालनतत्परः ।
विविधाश्च प्रजाः कृत्वा कृतकृत्योऽसि साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

पारं प्राप्तोऽसि वेदानां समस्तानां महामते ।
साङ्गानां सरहस्यानां सोत्तराम्नायभूयसाम् ॥ १० ॥

अधीत्य साङ्गमाम्नायं पितुर्देवाद्विवस्वतः ।
किमेतत्कृतवान् यत्त्वं भूयः समसृजः प्रजाः ॥ ११ ॥

न हि प्रवृत्तिरुदिता वेदेषु निखिलेष्वपि ।
निवृत्त्येकपरा वेदा ब्रह्मैकं ज्ञापयन्तिहि ॥ १२ ॥

समासतो व्यासतश्च वेदैरेकोऽर्थ ईर्यते ।
बह्वर्थत्वे वाक्यभेदः सर्वाम्नाये प्रसज्यते ॥ १३ ॥

पूर्वकाण्डे यज्ञमात्रं परत्र ब्रह्म केवलम् ।
आम्नायेन च सर्वेण तस्य ज्ञानमुदीर्यते ॥ १४ ॥

पूर्वकाण्डोदितो यज्ञश्रितशुद्धयर्थमिष्यते ।
कथं ज्ञानकलोदेति शुद्धयभावे तु चेतसः ॥ १५ ॥

विचार्यं भवतैवैतद्यतः स्वस्य स्वयं गुरुः ।
प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा किमशोकं पदं दिशेत् ॥ १६ ॥

प्रवृत्तिः खलु भूतानां बन्धनैकसप्रसाधिनी ।
निवृत्त्या विरजोभूत्वा लभते शाश्वतं पदम् ॥ १७ ॥

वैराग्यं चैव विज्ञानं स्वात्मज्ञानैकसाधनम् ।
प्रवृत्तिस्तत्प्रातिकूल्ये निवृत्तिरनुकूलता ॥ १८ ॥

अशान्तिदमशान्तं च कामक्रोधमदावहम् ।
असाररूपं संसारमशुभं क उपासते ॥ १९ ॥

सदारं धनपुत्रादिलालसाशोकसम्भृतम् ।
परिणामैकविरसं कः संसारं प्रवर्तयेत् ॥ २० ॥

बहुभिर्भुज्यते भोग एकः खलु निबध्यते ।
ईदृशं गृहमुत्सृज्य स्वात्मानं किं न साधयेत् ॥ २१ ॥

दूरेण खलु तत्तत्त्वं यल्लब्धं त्यक्तगृह्यकैः ।
गृहिणां गृहकृत्येन व्यग्राणां ग्राम्यवृत्तिभिः ॥ २२ ॥

भवेषु क्लिश्यमानानामपूर्णोदरचेतसाम् ।
दधतां महतीं चिन्तां ग्लानिः कस्मान्न जायते ॥ २३ ॥

ग्लायतामपि दुःखेन क्रोशतां भववेदनैः ।
न जायते निवृत्तिर्वै हन्तेयं मूर्खता नृणाम् ॥ २४ ॥

कालं न विश्वसेज्जातु भीषणं क्षणचापलम् ।
वर्द्धयित्वा हरेज्जन्तुं तत्क्षणादेव पश्यतः ॥ २५ ॥

हरितः पुष्पितः पूर्णः फलितो ज्वलितो वने ।
भस्मान्तं च गतो भूमौ मिलितोऽङ्कुरितः पुनः ॥ २६ ॥

अहो कालस्य लीलेयं बलिनोऽखिलभेदिनः ।
निजशक्तिं प्रविस्तार्य विश्वं विपरिणामयत् ॥ २७ ॥

क्रीडते संततं कालो गुणक्षोभं समाश्रितः ।
दिनमासर्तुवर्षादिप्रलयान्तो महोर्जितः ॥ २८ ॥

निगृह्णीयान्मनो नित्यं विषयेषु न चोत्सृजेत् ।
विमुक्तानिग्रहे चित्ते पुरुषः स्यात्कदर्थितः ॥ २९ ॥

प्रकृतेः परिणामित्वादनेकधा गुणोद्भवः ।
पुरुषः सुखदुःखानि भुङ्क्तेऽयं यत्समाश्रयः ॥ ३० ॥
गुणप्रवाहपतितो यत्र यत्रानुधावति ।
ततस्ततो निगृह्णीयाद्यदीच्छन्मुक्तिमात्मनः ॥ ३१ ॥

अथाधुना ब्रह्मचर्यं श्वो गार्हस्थ्यं भविष्यति ।
ततो वानप्रस्थमथो ग्रहीष्ये दण्डमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

एवं क्रमेण मुक्तोऽहं भविष्यामि ततः परम् ।
इत्थमाशावशो लोको लीयते कालवक्त्रगः ॥ ३३ ॥

श्वःसाधनीयमर्थं तु विद्वानद्यैव साधयेत् ।
कालेन बलिना तत्र दीर्घसूत्री विहन्यते ॥ ३४ ॥

यावदिन्द्रियसामर्थ्यं यावदूर्जस्वलं वपुः ।
तावत्कुर्यान्नरो धीमान् संसृतेरात्मसाधनम् ॥ ३५ ॥

देहं न विश्वसेज्जातु निगीर्णं कालशक्तितः ।
अचेतनं भौतिकं तत्केन चैतन्यमाप्यते ॥ ३६ ॥

परमात्मा चिदानन्दो यस्य जीवा वशे स्थिताः ।
स द्विधेयं जगद्वृक्षमाविश्य क्रीडते पृथक् ॥ ३७ ॥

तत्संयोगाद्भूतमयं चेतनं वपुरुच्यते ।
तेन प्रसाधयेत् कार्यं शाश्वतं हितमात्मनः ॥ ३८ ॥

जगद्विनश्वरं सर्वं तत्स्थोऽयं चापि तादृशः ।
इति विज्ञाय न नरो विषयेषु प्रसज्जते ॥ ३९ ॥

विषयासंगयुक्तस्य रागस्तेषु प्रजायते ।
स्वरूपानन्दसंदोहस्तेन नित्यं तिरोहति ॥ ४० ॥

अयं ते दोष आख्यातः प्रजासर्गसमुद्भवः ।
तस्मादतो निवर्तस्व यदीच्छसि शुभं मनो ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने दोषनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जनक उवाच

इत्युक्तः शंकरेणासौ देवो वैवस्वतो मनुः ।
नियुक्तोऽपि प्रजासर्गे सद्य एव व्यरज्यत ॥ १ ॥

वैराग्यवशगं चित्तं कृत्वा वैवस्वतस्य वै ।
उवाच रुद्रो भगवान् स्मयन् मधुरया गिरा ॥ २ ॥

ब्राह्मण उवाच

भवादृशा हि बहवो राजन् प्राक् संस्कृतान्तराः ।
आत्मतत्त्वं प्रतिज्ञाय ब्रह्मसाधर्म्यमागताः ॥ ३ ॥

तस्मादेव ते नृपते विशुद्धकुलयोनये ।
श्रद्धालवे च विदुषे प्रोक्तवानिदमस्म्यहम् ॥ ४ ॥

सारं वेदान्तवाक्यानामात्मतत्त्वैकदीपकम् ।
गुह्यं ज्ञानमिदं प्रोक्तं सावधानोऽवधारय ॥ ५ ॥

श्रवणं श्रवणं नैव श्रवणाभ्यां तु यच्छ्रुतम् ।
तदेव मननान्तं चेच्छ्रवणं परिकीर्तितम् ॥ ६ ॥

तस्मान्मदुक्तं मनसा नरेन्द्र निश्चित्य भूयो मननं कुरुष्व ।
ततो निदिध्यासनमेव कृत्वा कृतार्थमात्मानमवेहि राजन् ॥ ७ ॥

पूर्वं जगत् सुसंयम्य पश्चात्कर्मफलं त्यज ।
ततः कर्माणि संन्यस्य ब्रह्मतत्त्वं विभावय ॥ ८ ॥

अचिरान्मनस्येकाग्रे ब्रह्मतत्त्वं परिस्फुरेत् ।
प्रकाशिते परे तत्त्वे कृतकृत्यः प्रजायते ॥ ९ ॥

विमुक्तो जीवन्मुक्तश्च विनिर्धूतपुनर्भवः ।
तादृशस्त्वं भव नृप सिद्धानां नः शुभाशिषा ॥ १० ॥

अञ्जसैवागतग्लानिः प्रजासर्गं च संत्यज ।
अनुजानीहि मां भद्र यथेच्छं तपसे गिरिम् ॥ ११ ॥

हिमालयं महोत्तुङ्गं स्पृहणीयं तपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वा प्रगते देवे महादेवे महेश्वरे ॥ १२ ॥

वैवस्वतो मनुरभूत्संनिवृत्तः प्रजाकृतेः ।
यदभूत्तदभूत्पूर्वं संनिवृत्तं ततो जगत् ॥ १३ ॥

अथाल्पमानं तेनाथ विरक्तेन महात्मना ।
दिने दिने क्षीयमाणं बभूव च ततो जगत् ॥ १४ ॥

प्रजासर्गादुपरतं मनुं दृष्ट्वा विशेषतः ।
विवस्वान् भगवानेत्य प्रोवाच मधुरं वचः ॥ १५ ॥

कस्माद्वत्स प्रजासर्गात्सम्प्रत्युपरतो भवान् ।
वयं हि परमेशस्य विष्णोर्मायापतेर्हरेः ॥ १६ ॥

निदेशकारिणः सर्वे तदुक्तं कुर्महे वयम् ।
स आदौ भगवानस्मान् प्रजासर्गे नियुक्तवान् ॥ १७ ॥

तस्य नाभिह्रदादासीद्ब्रह्मा वेदविदां वरः ।
स तस्य हृदये स्थित्वा परां प्राचोदयद्गिरम् ॥ १८ ॥

सा जाता तत्क्षणादेव निगमागमरूपिणी ।
तस्यां खलु प्रजातापां शब्दमय्यां हि संसृतौ ॥ १९ ॥

तेभ्य एव च शब्देभ्यः सृष्टिर्जातार्थरूपिणी ।
अनुवर्तामहे सर्वे तामेव भगवत्कृतिम् ॥ २० ॥

यथा तदिच्छा समभूत्तथा सर्वं भविष्यति ।
भवान् कस्य निदेशेन प्रजासर्गाद्युपारतः ।
प्रतिकूलमिदं पुत्र देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ २१ ॥

वैवस्वत उवाच

आत्मनो बन्धुरात्मासौ गुरुश्चैव सखा सुहृत् ।
किं कृतं तेन पापेन येनात्मैवैष वञ्चितः ॥ २२ ॥

तस्याद्धि सर्वोपायेन जनः स्वात्मानमुद्धरेत् ।
कालं नैव प्रतीक्षेत यस्य वैराग्यमुत्कटम् ॥ २३ ॥

यावन्न जायते जन्तोर्वैराग्यं भवखेदतः ।
तावत्प्रसज्जता सर्गे न तु जातु विरक्तिमान् ॥ २४ ॥

कोऽर्थः प्रसाधितोऽनेन देहं प्राप्य कुबुद्धिना ।
सामर्थ्ये सति यद्देवो नेश्वरः समुपासितः ॥ २५ ॥

इति विज्ञाय सततं समुपासीत तं परम् ।
नो चेदात्मैव सततममुना वञ्चितः स्वयम् ॥ २६ ॥

यथा ममगुरुस्तात पृच्छ्यते चेत्त्वया विभो ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि न तस्मै द्रोग्धुमर्हसि ॥ २७ ॥

योऽसौ देवो हरिः साक्षात्त्रिलोकमहितो विभुः ।
स एव गुरुरूपेण सर्वत्र प्रकटः स्वयम् ॥ २८ ॥

यस्मै कृपयते देवो बुद्धिरूपस्तदाशये ।
प्रकटीभूय कुरुते तत्त्वार्थस्योपदेशनम् ॥ २९ ॥

कश्चित् खलु द्विजवरो मुनिराड् विजितेन्द्रियः ।
स मह्यमूचिवान् गुह्यमात्मयोगमुदारधीः ॥ ३० ॥

निःस्पृहो ब्राह्मणवरो वेदवेदाङ्गपारगः ।
भवदुःखेनखिद्यन्तं ज्ञात्वा मामुपदिष्टवान् ॥ ३१ ॥

उक्त्वा गुह्यतरं ज्ञानं द्विजो यातो हिमालयम् ।
यत्र नित्यं तपस्यन्ति मुनयः शुद्धबुद्धयः ॥ ३२ ॥

सोऽहं तत्रैव यास्यामि तपस्तप्तुं हिमालये ।
आत्मानमात्मयोगेन साधयिष्याभिभूयसा ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् पुत्रे वैवस्वते मनौ ।
उवाच दीर्घं निःश्वस्य विवस्वान् भगवान् विभुः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने वैवस्वतोपरमो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥



त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

विवस्वानुवाच

नैवं त्वं कर्तुमर्होऽसि परेच्छाप्रातिकूल्यतः ।
निदेशकारिणः सर्वे वयमत्र न संशयः ॥ १ ॥
प्रातिकूल्यस्य करणात्कुप्येदीशः कदापि चेत् ।
अस्मानधः पातयित्वा अन्यानेव नियोजयेत् ॥ २ ॥
तदिच्छानुकूल्यकरणादीश्वरश्चेत्प्रसीदति ।
भवदुःखभवोद्वेगो नैव बाधिष्यते तदा ॥ ३ ॥
तदुक्तमेव कर्तव्यं प्रतिकूलं च नाचरेत् ।
तेनैव नृणां कल्याणं भवतीति विनिश्चयः ॥ ४ ॥
इति विज्ञाय वत्स त्वं प्रजासर्गं प्रवर्तय ।
इदं प्रवर्तितं चक्रमादावीशेन केनचित् ॥ ५ ॥
नोल्लङ्घितुं वयं शक्तास्तन्मायाप्रोतविग्रहाः ।
अहो बलवती तस्य माया सर्वविमोहिनी ॥ ६ ॥
तपःस्थं चालयेत्कश्चिद्गृहस्थमपि संत्यजेत् ः
नूनं सर्वेष्वाश्रमेषु गार्हस्थ्यं प्रवरं मतम् ॥ ७ ॥
मोचयत्याशु बन्धेभ्यस्तत्सम्यक् प्रतिपालितम् ।
न्यायागतधनो नित्यं दैवे पित्र्ये च तत्परः ॥ ८ ॥
भुञ्जानो यज्ञशिष्टान्नं गृहस्थः किं न मुच्यते ।
सर्वेषामाश्रमाणां च गृहमेधी समाश्रयः ॥ ९ ॥
तदभावे न सुलभं ब्रह्मचर्यं च भिक्षुता ।
गृहस्थानां मनो नित्यं वेजितं भववेदनैः ॥ १० ॥
वैराग्यमेवाश्रयते ऐहिकामुत्रिकार्थगम् ।
यतीनां च मनो नित्यं शीतवातातपादिभिः ॥ ११ ॥

उद्वेजितं संश्रयेत तृष्णां भोग्यार्थवस्तुषु।
द्रागेव न त्यजेद्गेहमभुक्तविषयव्रजः ॥ १२ ॥

[1]कदाचिदनिग्रहं चित्तं चलेद्भोग्यार्थदर्शनात्।
भुक्तभोगोगृहं त्यक्त्वा न पुनस्तत्र वाञ्छति ॥ १३ ॥

वान्ताशिता महादोषं मन्यमानो विरक्तिमान्।
अत्युत्कटेऽपि वैराग्ये न त्यजेज्जातुचिद्गृहम् ॥ १४ ॥

स्वात्मानं साधयत्येष इहैवाप्रतिकूलके।
गृहं संन्यस्य मनसा कर्मणां च फलस्पृहाम् ॥ १५ ॥

प्रजासर्गं प्रकुर्वाणः केन पापेन हन्यते।
तस्मात् सर्वात्मना पुत्र नित्यं वर्तस्व मन्मते।
उपदिष्टे भगवता साक्षात्कथयता स्वयम् ॥ १६ ॥

वैवस्वत उवाच

कदोपदिष्टं भगवन् भवते शार्ङ्गपाणिना।
एतन्मे तात कथय येन स्यां मुक्तसंशयः ॥ १७ ॥

विवस्वानुवाच

अहं यथा भवान् पुत्र ग्लानः पूर्वं प्रजाकृतौ।
संनिवृत्तोऽभवं सर्गान्नियुक्तोऽपि विरंचिना ॥ १८ ॥

अकस्माद्गृहमुत्सृज्य वैराग्याविष्टमानसः।
सर्वसंन्यसनापाहमुद्युक्तो पतिनांकुले ॥ १९ ॥

उपदिष्टोऽपि विधिना देवेनाम्भोजयोनिना।
प्रजासर्गमनादृत्य सम्प्रवृत्तो यतिव्रते ॥ २० ॥

तदा मां पुण्डरीकाक्षो भगवान् दर्शनं ददौ।
पीताम्बरधरः श्रीमान् वनमालाविभूषितः ॥ २१ ॥

श्रीवत्सभासितोरस्कः कौस्तुभी सुभगाकृतिः।
मुखचन्द्रसमुद्भासिमधुरस्मितदीधितिः ॥ २२ ॥

द्विभुजो वै समुद्भासिधनुर्बाणधरो विभुः।
महामारकतश्यामो नीलनीरदसुन्दरः ॥ २३ ॥

करुणालोलनयनः पुरुषो भक्तवत्सलः।
हनुमदादिभिर्दिव्यपार्षदैः परिवेष्टितः ॥ २४ ॥

स्वभावोदारचरितो रत्नाभरणभूषितः।
दिव्येन वपुषा नित्यं भ्राजमान उदारधीः ॥ २५ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः।

श्रवणस्थसमुल्लासिश्रीमन्मकरकुण्डलः ।
सरलाङ्गददोर्दण्डो लसत्कङ्कणभासुरः ॥ २६ ॥

काञ्चीगुणसमुद्बद्धपीताम्बरविभूषितः ।
गुडालकावृतमुख उदारसदयेक्षणः ॥ २७ ॥

चरणाब्जनखद्योतनिर्मञ्छननिशापतिः ।
कोटिसूर्येन्दुकिरणविनिर्जैत्रतनुप्रभः ॥ २८ ॥

तस्यालोकनमात्रेण निर्वृतोऽहं विशेषतः ।
तमस्तौषं ततो देवं विज्ञाय परमेश्वरम् ।
सद्यः संजातधिषणो विविधैर्वैदिकैः स्तवैः ॥ २९ ॥

नमस्तुभ्यं पुरुषाग्र्याय रामचन्द्र श्रीमन् भगवन् राघवेन्द्र ।
तवैव शक्त्या दृश्यसे देवदेव न त्वस्माकं दृष्टिशक्त्या पराच्या ॥ ३० ॥

यत्त्वद्रूपं सर्वतःपाणिपादं सर्वात्मकं सर्वतोमूर्द्धनेत्रम् ।
सर्वप्रभाविस्फुरच्चातिदिव्यं तद्विश्वरूपं कवय आमनन्ति ॥ ३१ ॥

माया तवाशेषविश्वप्रसूत्यै बीजात्मिका तामधिश्रित्य शश्वत् ।
भेदात्मिकां तनुषे जोवदृष्टिं तया सर्वो जायतेऽसौ प्रपञ्चः ॥ ३२ ॥

यथा नटो मोहयंल्लोकदृष्टिमनेकधा क्रीडमानो विभाति ।
एवं त्वमीश त्रिजगन्मोहयानो विभासि नैतच्चित्रमालम्बते त्वाम् ॥ ३३ ॥

शुद्धो बुद्धो निर्गुणस्त्वं निरीहस्तथापि विश्वं तनुषे नाथ चित्रम् ।
स्वमायपानेकरूपप्रसक्त्या स्वास्पर्शिन्या तमसेव प्रकाशे ॥ ३४ ॥

कोऽहं कस्मै कुत आगतश्च क्व स्थास्यामि त्रिजगत्संहृतौ च ।
इत्येवं ते मायया व्याकुलोऽहं दृष्ट्वाद्य त्वां निर्वृतोऽस्म्येष राम ॥ ३५ ॥

जीवोऽहं ते क्रीडनार्थं प्रजातस्त्वत्तः पूर्णाद्ब्रह्मणस्त्वत्प्रतिष्ठः ।
इत्थं ज्ञात्वा मुच्य चिन्तां दुरन्तां कृपादृष्टिं तावकीं संविभर्मि ॥ ३६ ॥

नमः सहस्राननपादबाहवे सहस्रशीर्षश्रुतिनासिकादृशे ।
सहस्रधोद्भासितदिव्यमूर्त्तये सहस्रजीवात्मगताय ते नमः ॥ ३७ ॥

इति स्तुवन्तं प्रणतं दीनचित्तमनन्यभक्तं भक्तवात्सल्यवार्धिः ।
ईषत्स्मितद्योतितवक्त्रचन्द्रो दयादृष्ट्या वीक्ष्यमां सम्बभाषे ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच

विवस्वन् भवता विश्वं क्रियतां सचराचरम् ।
नियुक्तोऽसि पुरैव त्वं मयैतत्कार्यहेतवे ॥ ३९ ॥

भवतो हि न खल्वेषा मम माया प्रबाधते ।
दयादृष्ट्या वीक्षितस्य मया भक्तदयालुना ॥ ४० ॥

अकस्मात्संनिवृत्तोऽसि विश्वसर्गविसर्गतः ।
नैतत्तवोचितं देव मम मुख्याधिकारिणः ॥ ४१ ॥

विवस्वानुवाच

एषा माया गुणमयी सृष्टिर्दुःखैककारणम् ।
इति विज्ञाय भगवन् ग्लानोऽहं लोकसर्गतः ॥ ४२ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्यक्त्वा सर्वत्र संसक्तिं प्रजासर्गं प्रवर्तय ।
इत्येवं वर्तमानं त्वां मम माया न बाधते ॥ ४३ ॥

विवस्वानुवाच

कथं प्रवर्तमानेन ततः शक्यं निवर्तितुम् ।
त्याज्या कथं च संसक्तिरेतन्मे वद राघव ॥ ४४ ॥

श्रीभगवानुवाच

यथा प्रवर्तमानोऽपि प्रवृत्त्यो नैव सज्जते ।
असंसक्तिश्च भवति तथा चोपदिशाम्यहम् ॥ ४५ ॥

जीवो नाम ममैवांशश्चित्तवृत्त्याभिवेष्टितः ।
न तस्य क्वापि संगोऽस्ति गौणीभिश्चित्तवृत्तिभिः ॥ ४६ ॥

एतज्जीवस्य जीवत्वं यदन्तःकरणे स्थितिः ।
करणं वृत्तिवृन्देन छादयत्येनमद्भुतम् ॥ ४७ ॥

यथा गोलस्थितं चक्षुरिन्द्रियं देवतात्मिकम् ।
न तस्य कामलासंगो गोलमेवोपहन्यते ॥ ४८ ॥

यथा च मेघपटलैर्लोकदृष्टिर्विहन्यते ।
न त्वर्कमण्डलं दूरे तथा जीवोऽपि वृत्तिभिः ॥ ४९ ॥

मायावृत्तिरविद्याख्या स्वरूपाज्ञानरूपिणी ।
देहेन्द्रियप्राणमनःस्वात्माध्यासात्तथाज्ञता ॥ ५० ॥

तस्मादध्यास एवास्याः स्वरूपं मुख्यमुच्यते ।
तं वर्जयेद्विशेषेण सर्वत्र स्वात्मभावनात् ॥ ५१ ॥

शनैः शनैः शब्दनिष्ठः स्वात्मयोगं समभ्यसेत् ।
वृत्तिरोधनमार्गेण कुर्याच्चित्तं सुनिश्चलम् ॥ ५२ ॥

आत्मनिष्ठे तु मनसि वृत्तिरोधः प्रजायते ।
निर्वृत्तिकः सदा तिष्ठेज्जाग्रत्येव सुषुप्तिवत् ॥ ५३ ॥

अथान्तर्हृदयाम्भोजे मत्स्वरूपं विभावयेत् ।
यादृशं रोचते यस्य तादृशं स विभावयेत् ॥ ५४ ॥

यतो यतश्चलेच्चित्तं निरुध्येत ततस्ततः ।
मद्भावनापरं कुर्याद्भवेद्बुद्धं यथा यथा ॥ ५५ ॥

वृत्तिरोधनमार्गोऽयं मया तुभ्यं प्रकीर्तितः ।
एवं स्थितं तु पुरुषं मम माया न बाधते ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने वृत्तिनिरोधनो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥



चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

योगो बहुविधः प्रोक्तो योगिनामात्मसिद्धये ।
कर्मयोगः प्रथमतो ज्ञानयोगस्ततः परम् ॥ १ ॥

ततश्च भक्तियोगाख्यो योगोत्तम उदाहृतः ।
पूर्वपूर्वापेक्षया तु श्रेष्ठमुत्तरमुत्तरम् ॥ २ ॥

नैव कर्माणि संत्यज्य योगी त्यागफलं लभेत् ।
त्यक्तानि तेन कर्माणि यः फलं नाभिकाङ्क्षति ॥ ३ ॥

विरुद्धान्येव कर्माणि त्यक्तव्यानि मनीषिभिः ।
विहितानि तु कर्माणि कुर्याच्चित्तस्य शुद्धये ॥ ४ ॥

स्वाध्यायो नित्यमध्येयः कार्यं कर्मं तदीरितम् ।
नित्यं नैमित्तिकं चापि निरपेक्षतया मुहुः ॥ ५ ॥

पञ्चसंस्थातमो यज्ञः कार्यं एव मदात्मकः ।
पूर्वकाण्डोदितं सर्वं परकाण्डान्वितं स्मरेत् ॥ ६ ॥

अनन्वितं तु वेदार्थं यो ब्रूयाद्दैववञ्चितः ।
तस्य कर्माणि सर्वाणि निरर्थानि भवन्ति वै ॥ ७ ॥

यावन्न शुद्ध्यते चित्तं तावत्कर्मं समभ्यसेत् ।
शुद्धेऽपि चित्ते तत्कार्यं लोकसंग्रहमिच्छता ॥ ८ ॥

अन्यदेव हि तत्कर्मं येनाविष्टो निबध्यते ।
फलाकाङ्क्षाकृतं भूयो विरुद्धं वेदवाक्यतः ॥ ९ ॥

वेदोक्तं विमलं कर्मं यो ज्ञानेन विघातयेत् ।
तस्य तज्ज्ञानमखिलं भवेत्सर्वं निरर्थकम् ॥ १० ॥

असंसक्तः सदा कर्म कुर्यात्संशुद्धमानसः ।
भावयेत् सततं विद्वान् क्रियमाणान् गुणैर्गुणान् ॥ ११ ॥

असक्तं नित्यमात्मानं भावयेत्प्राकृतैर्गुणैः ।
वीचीतरंगन्यायेन ह्यारभन्ते गुणान् गुणाः ॥ १२ ॥

किमर्थं सज्जते तत्र पुमान् संगविवर्जितः ।
एवं लक्षणयुक्तानि यः कर्माण्यभिमन्यते ॥ १३ ॥

सोऽन्येनापि कृतं पापं किमात्मनि न मन्यते ।
असंगः सर्वदा तिष्ठेत्पुत्रदारग्रहादिषु ॥ १४ ॥

गुणावेशं न कुर्वीत निर्गुणः पुरुषः स्वयम् ।
इत्येवं कर्मणां तत्त्वं तुभ्यमुक्तं मया मुहुः ॥ १५ ॥

एतद्विज्ञाय पुरुषः प्रवृत्तोऽपि निवर्तते ।
अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि ज्ञानयोगं निबोध मे ॥ १६ ॥

येन युक्तः प्रसन्नात्मा गृहस्थोऽपि विमुच्यते ।
यथोपनिषदोख्यातमात्मतत्त्वमतीन्द्रियम् ॥ १७ ॥

तथा श्रद्धासमायुक्तः शृणुयाच्छ्रीगुरोर्मुखात् ।
प्रपन्नो गुरुपादाब्जं विरक्तो भवरोगतः ॥
यथा यथा संश्रृणुयादाद्रियेत तथा तथा ॥ १८ ॥

यथा यथाद्रियमाणः शृणोति तथा तथा चित्ततापं क्षिणोति ।
ततः श्रुत्वा मननं तस्य कुर्यादेकान्तेऽसौ संस्थितः शुद्धवृत्त्या ॥ १९ ॥

यत्र यत्र श्रुतमर्थं स्वयुक्त्या मन्येतासौ विप्रयत्रं तु किंचित् ।
तत्र तत्र श्रीगुरोः संनिकर्षे संशोधयेत्संशयोच्छेदनाय ॥ २० ॥

एवं निश्चितमात्मानं मननेना ववुध्य च ।
अभ्यासयोगनिष्ठाभिरभ्यसेत्तत्समाधये ॥ २१ ॥

समाहिते स्वात्मनि ध्यानयोगाद्विशुद्धया धारणयाभ्युपेतः ।
भवेन्निदिध्यासनपूर्वनिष्ठया समाधिमान्निर्विकल्पो नितान्तम् ॥ २२ ॥

तदास्य जायते कश्चिदात्मानन्दः समृद्धिमान् ।
तस्य भोगमनादृत्य भूपो योगं प्रवर्तयेत् ॥ २३ ॥

वियोजयेत्प्रकृतितः पुमांसं चित्सुखात्मकम् ।
सुखभोगे प्रवृत्तस्तु योगी लुब्ध इतीर्यते ॥ २४ ॥

विविक्तः प्रकृतिं पश्येद्गुणसाम्यात्मिकां पुमान् ।
तदास्य सकलः कालो भवेद्दृष्टिपथे स्फुटम् ॥ २५ ॥

कुण्डलीभूतभोगीन्द्रभोगतुल्योऽतिमेचकः ।
कलाम्भोधरसंकाशो महाशब्दो महामदः ॥ २६ ॥

सर्वाणि चापि भूतानि कालयन् कलनात्मकः ।
सोऽपि तस्यात्मचेष्टावद्भासते कालसंचयः ॥ २७ ॥

निश्चेष्टस्येव कर्माणि स्मर्यमाणानि भूरिशः ।
ततः परं परं ब्रह्म स्वात्मभेदेन भावयेत् ॥ २८ ॥

ब्रह्मविद् ब्रह्म भवति श्रुतमर्थं विचिन्तयन् ।
अंशांशिनोरभिन्नत्वाद्ब्रह्मैवायं प्रजायते ॥ २९ ॥

विस्फुलिङ्गो यथा वह्नेः सम्प्राप्य महदिन्धनम् ।
तथैवात्मा चितिं लब्ध्वा व्यापको जायते क्षणात् ॥ ३० ॥

दृढमूलात्मानुभवप्रसादेन विशुद्धधीः ।
न पुनर्जायते ज्ञानी भवबन्धाय कश्चन ॥ ३१ ॥

प्रपञ्चो विद्यमानोऽपि नामुं बध्नाति पूर्ववत् ।
अहंताममताशून्यं ध्वस्ताज्ञानमनोमलम् ॥ ३२ ॥

स्वाभाविकी व्यापकता निरुद्धा मनसास्य ताम् ।
भूपः प्राप्य मनश्छेदाधोगी ब्रह्मैव जायते ॥ ३३ ॥

यत्सुखं दिव्यरामायाः प्रसंगे सुरतोद्भवम् ।
ततः कोटिगुणं प्राप्य योगी नात्रापि सज्जते ॥ ३४ ॥

पुंप्रकृत्योर्युतिर्यावत्तावद्भोगः प्रवर्तते ।
वियुक्ते पुरुषे शुद्धः स्वात्मानन्दोऽवशिष्यते ॥ ३५ ॥

अप्रतर्क्योऽप्रमेयश्च व्यापको विश्वतः स्फुटम् ।
विश्वोपसंहृतिकरो विशिष्टः सुखराशितः ॥ ३६ ॥

यत्र सर्वे महानन्दा एकीभूता भवन्ति वै ।
स्रोतांसीव समस्तानि विपुले सागरेभृशम् ॥ ३७ ॥

ज्ञानानि च समस्तानि एकीभूतानि तत्र वै ।
तत्परं विमलं स्थानं शब्दब्रह्मातिगं ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरसंज्ञितम् ।
यत्प्राप्य न निवर्तन्ते योगिनो मुक्तबन्धनाः ॥ ३९ ॥

तद्धामशाश्वतं दिव्यं मामकं विद्धि नित्यशः ।
अथान्यच्छृणु विज्ञानं परमं यन्मयोदितम् ॥ ४० ॥

यथावरकमध्यस्थो दीप आवरकं रुचा ।
भासतत्यखिलं तद्वद्देहमात्मा स्वसंविदा ॥ ४१ ॥

यश्चोभयं भासयते सोऽन्तरात्मा निगद्यते ।
भूतान्यहं महच्चैवमिन्द्रियाणि च गोचराः ॥ ४२ ॥

सुखं दु:खं तथा मोह इच्छाद्वेषादयोऽपि च ।
चतुष्टयान्त: करणमिति लिङ्गप्रविस्तर: ॥ ४३ ॥
भासकस्तस्य सर्वस्य स्वयमात्मा चिदात्मक: ।
मानं दम्भं मदं हिंसामक्षान्ति कुटिलात्मताम् ॥ ४४ ॥
अशौचमयतां संगो लौल्यमिन्द्रियवश्यता ।
संसक्तिरिन्द्रियार्थेषु मनोऽहंकार एव च ॥ ४५ ॥
संसारदु:खाज्ञानं च दोषाणां चात्मनोऽबुधि: ।
अलब्धिपरितापश्च पुत्रदारधनस्पृहा ॥ ४६ ॥
वैषम्यं चापि चित्तस्य स्वकीय परकीययो: ।
तथेष्टानिष्टविषये रागद्वेषमति: क्रमात् ॥ ४७ ॥
मम चाननुसंधानं गाढदु:खेऽपि विस्मृति: ।
विषयासेविनां संगोविरक्तिर्मज्जनेषु च ॥ ४८ ॥
वाह्यार्थमात्रनिष्ठत्वं लौकिकार्थावमर्शनम् ।
एतदज्ञानमुदितं सकार्यं भवते मया ॥ ४९ ॥
येनास्य जायते भ्रंश: स्वात्मानन्दमहायदात् ।
तद्विरोधि भवेज्ज्ञानं स्वात्मसंसिद्धिकारणम् ॥ ५० ॥
अनादिरस्य सम्बन्ध: प्रकृत्या गुणरूपया ।
गुणाश्चैव विकाराश्च तदुत्था: सर्व एव हि ॥ ५१ ॥
सर्वत्र प्रकृति: कर्त्री भोक्ता पुरुष उच्यते ।
साक्षी सर्वस्य लोकस्य स्वात्मचैतन्यदीपक: ॥ ५२ ॥
स एकोऽपिद्विधा जातो जीवान्तर्यामिभेदत: ।
एवं यो वेद देहेऽस्मिन् वर्तमानं महेश्वरम् ॥ ५३ ॥
मायामोहसमुद्भूता न तस्य भववेदना ।
केचित्तु ध्यानयोगेन ज्ञानयोगेन चापरे ॥ ५४ ॥
अन्ये च कर्मयोगेन पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ।
विनश्वराणि भूतानि विषमाणि परस्परम् ॥ ५५ ॥
समं स्थिरं च सर्वत्र तत्तत्त्वमविनश्वरम् ।
शब्दात्संजायते ज्ञानं ब्रह्मात्मैक्यैकगोचरम् ॥ ५६ ॥
तत्परोक्षं स्वानुभवादपरोक्षदशां नयेत् ।
गुणानुबन्धिन: पश्येत् सर्वानेव गुणान् पृथक् ॥ ५७ ॥
प्रकृत्यैव च संजातान् सोऽकर्ता सर्ववस्तुषु ।
पृथग्भूतान्यनेकानि यद्येकत्वं प्रयान्ति हि ॥ ५८ ॥

एकत्वाच्चापि पार्थक्यं तर्हि ब्रह्मात्मदर्शनम् ।
अनादिमव्ययं चैव निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ५९ ॥

आत्मानमनुसंधाय किमर्थमनुशोचसि ।
रञ्जनच्छेदनादीनि कर्माणि व्योम्नि सन्ति न ॥ ६० ॥
सूक्ष्मत्वात्सर्वगत्वाच्च तथात्मन्यपि सन्ति न ।
प्रकाशानां प्रकाशो यः सुखानां सुखमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

तमात्मानमभिज्ञाय कृतार्थः किं न जायसे ।
जाते स्वात्मावबोधे तु संन्यासः किं करिष्यति ।
भोगानपि प्रभुञ्जानो ज्ञानी तैर्नैव लिप्यते ॥ ६२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोपाख्याने सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने आत्मविवेको नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥



पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमुत्तमशासनम् ।
यच्छ्रुत्वाभूतसर्गेषु व्यामोहं नैव यास्यति ॥ १ ॥

प्रलये मयि संलीनमविद्याकामकर्मभिः ।
जीवं सानुशयं सृष्टिर्वपुषा योजायते पुनः ॥ २ ॥

तदर्थं त्रिगुणां मायां सर्वभूतादिकारणम् ।
तामीक्षाणाख्यसंकल्पविषयीकुरुते चिता ॥ ३ ॥

चिदाभासाभिधं रेतःसेकं सम्प्राप्य सा ततः ।
महान्तं गर्भमाधत्ते आकाशादिधरान्तकम् ॥ ४ ॥
ततो हिरण्यगर्भाद्याः सम्भवन्ति पृथक् पृथक् ।
देवाश्च पितरश्चैव मनुष्याः पशवो मृगाः ॥ ५ ॥

जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजादिशरीरिणः ।
विलक्षणाश्च विविधानेकसंस्थानमूर्तयः ॥ ६ ॥

तत एवोद्भवं प्राप्य जायते भवविस्तरः ।
विस्तरो गुणनिर्माणं गुणाः सत्त्वं रजस्तमः ॥ ७ ॥

अन्योन्यमिश्रितास्ते चाप्यभूवन् बहुधात्मकाः ।
तेषामेव परीवर्तः संसारः सकलो ह्ययम् ॥ ८ ॥

विश्राम्यतिगुणेष्वेव तदेवं कर्तृताखिला ।
ततः परमकर्तारं पश्येदात्मानमात्मना ॥ ९ ॥
सोऽविद्यामखिलां हित्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ।
तावज्जन्मजरामृत्युदुःखदोषानुशीलनम् ॥ १० ॥
यावन्नित्यमकर्त्तारमात्मानं नावबुध्यते ।
सर्वाणि गुणकार्याणि सम्प्रवृत्तानि यो नरः ॥ ११ ॥
मिथ्यात्वनिश्चयात्स्वप्नवद्यो वेत्ति स पण्डितः ।
न रज्यति न वा द्वेष्टि स्वस्वरूपैकसंस्थितः ॥ १२ ॥
जानानः सुखदुःखादिपरिणामं गुणात्मकम् ।
स्वयंज्योतिःस्वभावत्वादात्मानं परमार्थतः ॥ १३ ॥
द्वेषशून्यं निर्विकारं सत्यं निश्चित्य निर्गुणम् ।
यः स्वरूपेऽवतिष्ठेत स ज्ञानीत्युच्यते बुधैः ॥ १४ ॥
स्वप्रकाशं चिदानन्दं केवलं सर्वसंश्रयम् ।
यः पश्यति स्वमात्मानं पारं प्राप्तः स मानवः ॥ १५ ॥
तावच्छृणोति शास्त्राणि वेद्यमन्वेषयत्यपि ।
स्वप्रकाशचिदानन्दं यावन्नात्मानमृच्छति ॥ १६ ॥
निवृत्ताखिलतर्षोऽसौ यावन्नैव प्रजायते ।
आत्मतत्त्वं न जानाति तावद्यत्नान्वितोऽप्यसौ ॥ १७ ॥
सर्वभ्रममयी माया ब्रह्म तन्मूलमुच्यते ।
येऽन्ये हिरण्यगर्भाद्याः कार्योपाधय एव ते ॥ १८ ॥
ततः सम्प्रसृतं विश्वं नश्वरं ज्ञायते बुधैः ।
तस्मिन्नाचरति ब्रह्म साक्षिवत्संगवर्जितः ॥ १९ ॥
आत्यन्तिकस्तदुच्छेदो ज्ञानेनैवप्रजायते ।
तत आत्मगतिं बुद्ध्वा पुनरावर्तते न च ॥ २० ॥
एतज्ज्ञानं मया प्रोक्तं सरहस्यं परंतप ।
निश्चित्य हृदये स्वीये मा ग्लासीस्त्वमतः परम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने ज्ञानयोगो नाम पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥



षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

भक्तियोगमथो वक्ष्ये मत्स्वरूपैकसंश्रयम् ।
सर्वशास्त्रसमूहेभ्यः सारभूतं समुद्धृतम् ॥ १ ॥

पूर्वप्रोक्तमिमं योगं कुर्यान्मद्रूपसंश्रयम् ।
यथानुरज्यते चित्तं मन्नामश्रवणादिषु ॥ २ ॥

तथा कुर्यान्मदासक्तिं वृद्धिगामुत्तरोत्तरम् ।
कर्मणां चोपासनानां योगस्य तपसां तथा ॥ ३ ॥

भक्तेश्चापि सुभिद्धाया ज्ञानानां चाप्यदः फलम् ।
मत्स्वरूपैकपरया यदासक्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ४ ॥

यया सद्यः प्रसीदामि वशीभूत इवध्रुवम् ।
यदक्षरं पुरा प्रोक्तं ब्रह्मोपादानमव्ययम् ॥ ५ ॥

कारणं सर्वजगतस्तस्य चाप्यहमाश्रयः ।
भवं मदाश्रयं विद्धि मुक्तिं चापि मदाश्रयाम् ॥ ६ ॥

अहं पूर्णं परं ब्रह्म माया यस्य वशे स्थिता ।
मयि स्थिताः सर्व एव भावाः प्रकृतिसम्भवाः ॥ ७ ॥

आविर्भावस्तिरोभावो मयि तेषां स्वरूपतः ।
गुणमय्या श्रमसृजा मायया मम मोहिताः ॥ ८ ॥

ततः परं चिदानन्दविग्रहं मां न जानते ।
अनेकैर्जन्मभिः शुद्धा यज्ज्ञानं समुपाश्रिताः ॥ ९ ॥

मत्स्वरूपैकलाभाय भजन्ते मां दृढव्रताः ।
अपरे वैदिकं चार्थं नयन्ते स्वधियान्यथा ॥ १० ॥

ते विघ्निता दुश्चरितैः स्वीयैरेव भ्रमाविला ।
न मां जानन्ति परमं भजन्ते चापि न क्वचित् ॥ ११ ॥

अनेकदेवतोपास्तिपरा अकृतनिश्चयाः ।
प्रवाहमार्गपतिता न तत्त्वं ते विदन्ति हि ॥ १२ ॥

मायागुणैः कृष्यमाणाः केचित्कर्माणि कुर्वते ।
केचित्तपोरताश्चापि केचिद्योगांश्च युञ्जते ॥ १३ ॥

केचिद्भवापवर्गाय स्वात्मज्ञानमुपासते ।
अपरे शुद्धसत्त्वेन मामेवैकं विजानते ॥ १४ ॥

तेषामपिभवेन्मुक्तिः सात्त्विकी न तु निर्गुणा ।
एवं बहुविधैर्मार्गैरात्मानं खेदयन्ति ते ॥ १५ ॥

शुद्धेन भक्तियोगेन न तु मां समुपासते।
मत्स्वरूपैकसम्बद्धा भक्तिर्मत्प्रेमलक्षणा ॥ १६ ॥

तया मां स्ववशे कृत्वा कश्चित् साक्षात्करोत्यपि।
यावतीर्देवता लोकैरूपास्यन्ते गुणात्मिकाः ॥ १७ ॥

तासामहमधिष्ठाता स्वाधिदैविकरूपतः।
मूले सिक्ते सुसिक्तैः किं पत्रशाखादिभिः पृथक् ॥ १८ ॥

असिक्ते चापि सिक्तैः किं पत्रशाखादिभिः पृथक्।
इति ज्ञात्वा भजेन्नित्यं मामेवैकं विशेषतः ॥ १९ ॥

विशुद्धात्मिकया भक्त्या मत्स्वरूपैक संस्थया।
विशुद्धचित्तसंस्कारैर्जातश्रद्धो विरक्तिमान् ॥ २० ॥

ब्रह्मानन्दपदे स्थित्वा ज्ञानी नाद्रियते ततः।
उत्कृष्टं पूर्णपाथोधि दुर्लभं दैवतैरपि ॥ २१ ॥

भक्तिमात्रैकलभ्यं च कश्चित्प्रेमाणमाप्नुयात्।
ज्ञानं चैवापि वैराग्यं भक्तेः पूर्वाङ्गमिष्यते ॥ २२ ॥

अथवा पूर्वसंस्कारादकस्मात्सम्प्रजायते।
कुतोऽपि परितुष्टेन मया दत्ता प्रसादवत् ॥ २३ ॥

पूर्वभक्तिः पराभक्तिसाधनात्मामुपेयुषी।
स्वात्मानं नाशयित्वापि कार्यमस्य प्रसाधयेत् ॥ २४ ॥

माहात्म्यज्ञानयोगार्थं भक्तेरुद्बोधसिद्धये।
मत्स्वरूपं विजानीयाद्वेदानामप्यगोचरम् ॥ २५ ॥

अक्षरोपादेयमिदमखिलं विश्वमण्डलम्।
मन्निमित्तं विजानीहि लीलावेशवशान्मनो ॥ २६ ॥

एताः सर्गविसर्गाद्या मम लीलाविनिश्चिताः।
ताभिर्युक्तः सदा जीवानधिष्ठाय भुनज्म्यहम् ॥ २७ ॥

अधिभूतं तथाध्यात्ममाधिदैविकमेव च।
त्रीणि त्रीणि स्वरूपाणि सर्वस्येति विनिश्चितम् ॥ २८ ॥

अहमेवास्मि सर्वेषु तेषु नास्त्यत्र संशयः।
तस्मात्सर्वत्र मामेव नित्यं संस्मर संस्मर ॥ २९ ॥

मनश्च भक्तियोगेन मय्येव विनिवेशय।
अनन्यगं यदा चित्तमभ्यासेन प्रजायते ॥ ३० ॥

तदा मामभ्युपैत्येव पूर्णं श्रीपुरुषोत्तमम्।
सर्वेशं सर्ववशिनं सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् ॥ ३१ ॥

ज्ञानक्रियोभययुतं सर्वस्याधारमव्ययम् ।
विश्वतोमुखमानन्दमनन्तं चित्प्रकाशिनम् ॥ ३२ ॥
अणुं महान्तमचलमव्यक्तं प्रकृतेः परम् ।
एवं ध्यानं समभ्यस्य चित्तं कुर्याद्वशे सदा ॥ ३३ ॥
अन्तकालेऽपि च ततो मामुपैति न संशयः ।
जीवशक्तिं सुसंहृत्य जीवं ध्यायेच्चिदुज्ज्वलम् ॥ ३४ ॥
रामेति राममन्त्रेण परे ब्रह्मणि योजयेत् ।
परं ब्रह्म यथोक्तं मत्स्वरूपं भावयन् सदा ॥ ३५ ॥
विशते शुद्धभावेन प्रेमाख्येनोपबृंहितः ।
एवं मयि सुसंगम्य पुनर्जन्म न चाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
ततो दुःखालयो घोरः संसारो विनिवर्तते ।
ब्रह्मलोकात्परं स्थानं यतो नावर्तते पुनः ॥ ३७ ॥
तत्स्थानं समुपैत्येष भक्तियोगप्रभावतः ।
द्विपरार्द्धं विधेरायुस्तदन्तेभूतभौतिकाः ॥ ३८ ॥
महाभूते विलीयन्ते तत्र मय्यहमव्ययः ।
जागर्मि सर्वदा भानः सदानन्दपदस्थितः ॥ ३९ ॥
तस्य मे प्राप्त्युपायस्तु भक्त्यन्यो नैव विद्यते ।
तपःस्वाध्याययोगाद्यैर्भक्तिः साध्यास्ति केवलम् ॥ ४० ॥
भावशुद्ध्या भवेद्भक्तिस्तस्माद्भावं विशोधयेत् ।
अपरे त्वासुरे सर्गे सम्भूतास्ततामसा जनाः ॥ ४१ ॥
मत्स्वरूपं न जानन्ति तस्मान्नैव भजन्ति ते ।
मूढा वितथकर्माणो वितथाज्ञानवैभवाः ॥ ४२ ॥
विज्ञाय सगुणाकारमात्मौपम्येन मामपि ।
अवज्ञावञ्चितात्मानो न विजानन्ति तत्त्वतः ॥ ४३ ॥
ते वै दूरतरा मत्तो न कदाचिद्भवाम्बुधेः ।
मुक्ता भवन्त्यपसदाः सदेवासुरयोनयः ॥ ४४ ॥
देवाश्चैवासुराश्चैव जीवाः सामान्ययोनयः ।
तत्र देवाः सदा मुक्ताः सामान्याः साधनव्रजैः ॥ ४५ ॥
आसुरा नैव मुच्यन्ते जन्मकोटिशतैरपि ।
तस्माद्विवस्वन् मुक्तोऽसि देवसृष्ट्येकसम्भवः ॥ ४६ ॥
मान्वशोचः कदापि त्वमनुतिष्ठमतं मम ।
इदं ते ज्ञानमतुलमुपदिष्टं परन्तप ॥ ४७ ॥

एतद्विज्ञाय सततं कुरु सृष्टिं मदाज्ञया ।
न भविष्यति ते मोहः प्रजासर्गं प्रवर्तय ॥ ४८ ॥

इति ते प्रतिजानेऽहं मा ग्लासीस्त्वंमनागपि ।
मां विद्धिशुद्धभावेन मयि बुद्धिं निवेशय ॥ ४९ ॥

मामुपास्स्व च मय्यास्स्व मयि सर्वं विचिन्तय ।
कर्माणि मयि सन्यस्य ज्ञानं कुरु मदाश्रयम् ॥ ५० ॥

मामेव यजमानस्त्वं वीतशोको भविष्यसि ।
इदं शास्त्रं मया पूर्वं ब्रह्मणे प्रतिबोधितम् ॥ ५१ ॥

ब्रह्मा प्राह प्रसादेन सनकादीन् महामुनीम् ।
सनत्कुमारो भगवान् नारदायोपदिष्टवान् ॥ ५२ ॥

एवं परम्परायातमिदं ज्ञानं सनातनम् ।
त्वं चापि निजपुत्राय मनवे शुद्धचेतसे ॥ ५३ ॥

सरहस्यमिदं ज्ञानं काले समुपदेक्ष्यसि ।
स आकर्ण्याखिलं त्वत्तो विमलं मन्मतं प्रभो ।
भवानिव यथेदानीं चित्ते निर्वृतिमेष्यति ॥ ५४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे सरयूत्पत्तौ वैवस्वतोपाख्याने ज्ञानोपदेशो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥



सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

विवस्वानुवाच

उपदिश्य परं गुह्यमिदं ज्ञानं मयाच्युतः ।
ज्ञात्वा मां गतसंदेहं तत्रैवान्तरधीयत ॥ १ ॥

इदं ते सनिगदितं रहस्यं वैष्णवं मतम् ।
हृदि निश्चित्य न पुनः शोकमेवं प्रयास्यसि ॥ २ ॥

निर्भयो वीतशोकश्च प्रवर्तय विशेषतः ।
प्रजासर्गमिमं तात यथेच्छा पारमेश्वरी ॥ ३ ॥

नह्यसौ बाधकः कच्चिज्ज्ञानिनः शुद्धचेतसः ।
ब्रह्मण्यारोप्यमाणत्वाद्बाधितः स्वयमेव तत् ॥ ४ ॥

पुराऽऽज्ञा मम संजाता देवदेवस्य वै हरेः ।
सदा मां भज भावेन प्रजाश्च विविधाः सृज ॥ ५ ॥

माया भगवतः सा वै ज्ञानिनां नैव बाधिका ।
कुतस्तरां तदीयानां भक्तानां तन्मयात्मनाम् ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच

स्वपितुर्मतमाज्ञाय यथोक्तं हरिणा पुरा ।
प्रावर्तयत्प्रजासर्गं देवो वैवस्वतो मनुः ॥ ७ ॥

वीतशोको गतग्लानिर्गार्हस्थ्यधर्ममाश्रितः ।
मनो निवेश्य परमे ब्रह्मणि क्षतसंशयः ॥ ८ ॥

यज्ञानुष्ठानपरमो ज्ञानवान् भक्तिसंश्रितः ।
तपस्वी विजितस्वान्तः प्रजासर्गमचीकरत् ॥ ९ ॥

तमागत्याब्रवीद्वेधा राज्यसंस्थानमद्भुतम् ।
क्षात्रवंशसमुत्पत्तिं राजधर्मं च भूरिशः ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वत मनुश्रेष्ठ धन्योऽसि त्वं जगत्प्रभुः ।
दिष्ट्या ते विगता ग्लानिः पितुरेव निदेशतः ॥ ११ ॥

पिता ते भगवान् साक्षादादिदेवस्त्रयीमयः ।
विवस्वान् रविरादित्यस्तपत्येष सदैव यः ॥ १२ ॥

मण्डलेऽर्चिषि चात्मन्युद्भासते सततं प्रभुः ।
सामर्ग्यजुःस्वरूपेण क्रमाद्वेदात्मकः स्वयम् ॥ १३ ॥

तेन त्वमुपदिष्टोऽसि विशुद्धं भगवन्मतम् ।
यदाह भगवांस्तस्मै पुरा रामः स्वयं प्रभुः ॥ १४ ॥

आत्मयोगप्रभावेण नैष मुह्यति कर्ह्चिन ।
यस्यान्तः सर्वदैवास्ति देवो रामः स्वयं हरिः ॥ १५ ॥

पद्मासने संनिविष्टः कनकाङ्गदभूषितः ।
द्विभुजो वै धनुर्बाणवनमालाविराजितः ॥ १६ ॥

कुण्डली पीतवसनो रत्नकङ्कणभासुरः ।
मेघश्यामः पुण्डरीकनेत्रो दिव्य किरीटवान् ॥ १७ ॥

पितापि ते तत्स्वरूपः कालात्मा भगवानसौ ।
तस्य त्वं तनयः साक्षाद्देवो वैवस्वतो मनुः ॥ १८ ॥

लोकयात्राप्रवृत्यर्थमाविर्भूतः स्वयं हरिः ।
धर्मात्मा धर्मनिपुणो धर्मकर्मप्रवृत्तिकृत् ॥ १९ ॥

अतः परं मे सकलं चिकीर्षितं बभूव तावत्सफलं मनूत्तम ।
प्रवर्तितं यद्भवताखिलं जगद्विवृद्धिमेष्यत्युरुवीर्यवर्चसा ॥ २० ॥

अयोध्याख्या पुरी पुण्या तव स्थानं भविष्यति ।
पृथिव्यां भारते वर्षे परं क्षेत्रं भविष्यति ॥ २१ ॥

रामचन्द्रस्य पाणिस्थं कमलं निपतिष्यति ।
सा धन्या नगरी भूमावयोध्याख्या भविष्यति ॥ २२ ॥

नान्यैर्योधयितुं शक्या ब्रह्मक्षत्रविडादिभिः ।
ऊर्जस्वलैर्बलोपेतैरयोध्या तेन सा मता ॥ २३ ॥

अत्युत्तमा योगमयी ध्यानगम्या पुरी तु सा ।
तेनाप्ययोध्येति भवे कीर्तिता सा भविष्यति ॥ २४ ॥

तत्र ते पुत्रपौत्रादिक्रमाद्वृद्धिगतेऽन्वये ।
देवो रामचन्द्रः साक्षादाविर्भूतो भविष्यति ॥ २५ ॥

तं हि ये भुवने लोकाः प्रपत्स्यन्तेऽग्रचया धिया ।
तेषां तापत्रयं दृष्ट्या तत्क्षणेन हरिष्यति ॥ २६ ॥

ततः परं च वितते वंशे तव महीभृतः ।
पुण्यश्लोका भविष्यन्ति भूयांसः सत्यविक्रमाः ॥ २७ ॥

एवं त्वं क्षत्रवंशस्य बीजरूपोऽसि वै मनो ।
अतस्त्वां मानयिष्यन्ति क्षत्रबीजं मनीषिणः ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुनामा तनयो भवतः सम्भविष्यति ।
ततः प्रसृत्वरो वंशः क्षत्रियाणां भविष्यति ॥ २९ ॥

एवमुक्त्वा गतो देवो भगवान् कमलासनः ।
वैवस्वतस्तपश्चक्रे प्रजासृष्ट्यर्थमुत्तमम् ॥ ३० ॥

वर्षवातातपहिमैः कायक्लेशसहो मुनिः ।
ऊर्ध्वबाहुरुपासीनो भगवन्तं दिनेश्वरम् ॥ ३१ ॥

अङ्गुष्ठाग्रेण धरणीं स्पृशन्नेकाग्रमानसः ।
जितेन्द्रियो जिताहारो जितश्वासो दृढव्रतः ॥ ३२ ॥

शुष्कपर्णाशनोऽब्भक्षो वायुभक्षो महातपाः ।
दिव्यवर्षसहस्रं स बभूवातीव निश्चलः ॥ ३३ ॥

कामयानः प्रजासर्गं स्वस्माद्वैवस्वतो मनुः ।
निवासं चात्मनोऽत्यर्थं पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मावर्ताभिधे देशे चकार शुचिमानसः ।
ततस्तपस्यतस्तस्य राम आविरभूत्पुरः ॥ ३५ ॥

भगवान् पुण्डरीकाक्षो धनुर्बाणधरो विभुः ।
वरं ब्रूहीति वचसा स तं प्रोवाच सादरम् ॥ ३६ ॥
मनुरुन्मील्य नयने ददर्श राममग्रतः ।
भक्त्या नतशिरा राजन् स तं तुष्टाव वत्सलम् ॥ ३७ ॥

मनुरुवाच

नमस्त्रिभुवनेशाय रामचन्द्राय राघव ।
निजमायागुणैरात्तस्वैरकेलिविनोदिने ॥ ३८ ॥

त्वामक्षरं वेदविदो वदन्ति सर्वस्य लोकस्य निधानभूतम् ।
स्वकालशक्त्यामितया त्रिलोकीं सृजस्यवस्यत्सि च देवदेव ॥ ३९ ॥

त्व वै महद्भूतमनन्तमादौ भूतानि सर्वाणि पृथक् करोषि ।
स्वस्माद्विहर्तुं निजशक्तिरूपैरुच्चावचैर्जीवनदेश जीवैः ॥ ४० ॥

प्रसृत्वरं तत्तम एकमासीत्ततो भवान् पूर्णनिजप्रकाशः ।
आदित्यवर्णः स निजांशुरूपान् जीवाननेकान् व्यचसर्ज[1] भूम्याम् ॥ ४१ ॥

त्वमादिजीवः पुरुषःपुराणः सृष्टीच्छयानेककृतप्रकाशः ।
विहृत्य भूपः खलु तान् स्वरूपे प्रवेशयस्यद्भुतभद्रशीलः ॥ ४२ ॥

चतुर्दशामी वयमीश काले काले निदेशात्तव कुर्म एतत् ।
जगत्ततं स्थावरजंगमोद्यैस्त्वं तस्य जीवातुरुदारकर्मा ॥ ४३ ॥

ओजः सहो बलं तेजस्त्वं धामायुश्च देहिनाम् ।
ततो मे देहि सामर्थ्यं यथेदं सम्प्रवर्तये ॥ ४४ ॥

न हि त्वत्करुणादृष्टिं विना क्वापि महेश्वर ।
अमुष्मिन् कान्तिलेशोऽस्ति पाञ्चभौतिकविग्रहे ॥ ४५ ॥

यत्कथंचित्क्वचिद्वापि चाकचक्यं विलोक्यते ।
तत्तवैवांशसंयोगादिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४६ ॥

पिता ममैष तपति प्रभावात्तव राघव ।
इन्द्रश्चन्द्रो वसुः श्रीदः श्रीमान्नाथ तव श्रिया ॥ ४७ ॥

इति स्तुतः स मनुना रामो वैवस्वतेन वै ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा वरं दित्सुरुदारधीः ॥ ४८ ॥

श्रीराम उवाच

ददामि तव सामर्थ्यं प्रजासर्गप्रवर्तने ॥ ४९ ॥

उत्पादयोच्चावचभूतसर्गंत्रैलोक्यनिर्माणविवृद्धिशक्तः ।
न ते प्रजासर्गविधौ विमोहो भविष्यति त्वं हि विधेः सहायः ॥ ५० ॥

---

१. छान्दसः प्रयोगः ।

इदं मदीयं करसंस्थमब्जं क्षिपामि भूमौ विषये पुनीते।
इहैव साकेतपुरी महापुरीनिवासहेतुस्तव सा भविष्यति ॥ ५१ ॥

पुण्यातिधन्या खलु कोटितीर्थश्रितामिता साथ दिनेशयोजनैः।
नाम्ना त्वयोध्या मम यत्र संनिधिर्नित्यं कलेर्यत्र न च प्रभावः ॥ ५२ ॥

मम धाम परं नित्यं प्रमोदवनसंज्ञितम्।
सच्चिदानन्दरूपं वै तेत्रैवाभातिनिर्मलम् ॥ ५३ ॥

परं ब्रह्म स्वयं रामः सहजानन्दिनीयुतः।
यस्मिन् विहरते नित्यं गोपगोपीगणैर्वृतः ॥ ५४ ॥

सुखितस्य गवेन्द्रस्य यत्र घोषः सनातनः।
माङ्गल्यामितसौभाग्यरञ्जिताखिलगोष्ठभूः ॥ ५५ ॥

गोवत्सकूर्दितैर्यत्रगवां हंभारवैस्तथा।
दधिमन्थाननिर्घोषैः श्रीरपूर्वा प्रपूर्यते ॥ ५६ ॥

सर्वाणि तत्र तीर्थानि यावन्ति वसुधातले।
सप्तद्वीपतते सन्ति निवत्स्यन्ति मदाज्ञया ॥ ५७ ॥

एवं सा परमा पुरी मम कराम्भोजस्वरूपा भुवि
ख्यातियास्यति कोटितीर्थकलिता श्रीमत्ययोध्याभिधा।
यस्यामुग्रतरैर्वसिष्ठतपसां भूपः प्रभावैः सरि
न्नाम्नाश्रीसरयूरुपैष्यतितरामाप्लावयन्ती महीम् ॥ ५८ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः पाणिस्थं कमलं निजम्।
तत्र प्राप्य्यपुरीं चक्रेनाम्नायोध्येतिकीर्तिताम् ॥ ५९ ॥

नालं तस्यावजदधो ब्रह्माण्डाधारवासिनीम्।
विरजाख्यां नदीं तेन कल्पान्तेऽपि न शीर्यति ॥ ६० ॥

परितश्चापि तत्पुर्या रक्षणाय सुदर्शनम्।
आदिदेश निजं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ॥ ६१ ॥

असम्पृक्तैव सा भाति तेन भूम्यां नगर्यसौ।
न तत्र कलिदोषाणां प्रवेशश्चापि विद्यते ॥ ६२ ॥

उत्साद्यन्तेऽखिला दोषा बाणराजस्य दर्शनात्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये देवाः सुरसत्तमाः ॥ ६३ ॥

स्वं स्वं वैभवमादाय तां पुरीं समुपासते।
रत्नोपलौघखचिता यस्यां स्वर्णमयी मही ॥ ६४ ॥

सुवर्णमणिनिर्व्यूढाः सप्तप्राकारभूमयः।
गोपुराणि विशालानि चिन्तामणिमयानि च ॥ ६५ ॥

स्वर्णप्रासादशृङ्गाणि रत्नमाणिक्यभानुभिः ।
भास्वराणि विमान्त्युच्चैः स्फटिकैश्चापि भित्तयः ॥ ६६ ॥

मन्दारपारिजाताद्यैर्नित्यसंफुल्लभूरुहैः ।
विराजिता गृहारामा गायत्कोकिलषट्पदाः ॥ ६७ ॥

वाप्यो विमलपीयूषसलिलैः पूरिताशयाः ।
सुवर्णरत्नसोपानजातशोभा मनोहराः ॥ ६८ ॥

आपणानामुभयतो वीथयश्चातिमञ्जुलाः ।
यत्र मूर्तिधरा वेदाः श्रीरामगुणगायनाः ॥
गन्धर्वा इव राजन्ति तथोपनिषदां गणाः ॥ ६९ ॥

इत्यद्भुताविरचनैकमयोमयोध्यां श्रीराघवस्यकरपद्ममयीं मनोज्ञाम् ।
वैवस्वतो मनुरुदीक्ष्य नितान्तहृष्टश्चक्रे निवासविधये निजराजधानीम् ॥ ७० ॥

तत्र स्थितः स धरणीवलयं जुगोप धर्मेण नीतिकलितेन समस्तलोकान् ।
पुण्यान् परं च भजमान उदारचेताः श्रीराघवं सकलकल्मषनाशनोग्रम् ॥७१॥

पौरोहित्येन स ततोवरीतुं विधिवित्तरः ।
वसिष्ठं प्रार्थयांचक्रे निजवंश शुभप्रदम् ॥ ७२ ॥

वैवस्वत उवाच

प्राजापत्यो मुनिश्रेष्ठस्तपस्वी नियतव्रतः ।
जितेन्द्रियों मन्त्रयोगी वेदविद्याविशारदः ॥ ७३ ॥

भवांस्तपोधनः श्रेष्ठः पौरोहित्ये ममोचितः ।
यतः पुरोधसमृते यजमानस्य नो शुभम् ॥ ७४ ॥

पुरोहिते कुलं सर्वं क्षेमं चापि पुरोहितः ।
यशो धनं च वृद्धिश्च यज्ञाश्चापि पुरोहितः ॥ ७५ ॥

तस्मात्पुरोहिते सर्वमैहिकामुष्मिकं फलम् ।
प्रतिष्ठिततमं वेद्मि ततः कुर्वे पुरोहितम् ॥ ७६ ॥

यस्मिन् कुले मन्त्रनिष्ठो विद्यते न पुरोहितः ।
नष्टप्रायं कुलं तद्धि विना नौरिव नाविकम् ॥ ७७ ॥

यज्ञैर्याजयते श्रौत्रं रक्षति त्रायते कुलम् ।
आपद्भ्यस्तारयत्येव पौरोहित्यमिदं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

स्वाध्यायवर्जितं पुंसां कुलं नष्टमिति स्थितिः ।
स्वाध्यायाध्ययने हेतुः पुरोधा एव केवलः ॥ ७९ ॥

मन्त्रज्ञो विनयी दक्षो वैदिकाचारतत्परः ।
कुलीनः सुकृती धीरः पापकृत्या पराङ्मुखः ॥ ८० ॥

शूरो विधिज्ञःप्रवणः सुहृद्दान्तः शमी यमी ।
प्रसिद्धो देशकालज्ञः प्रभुवत् फलसाधकः ॥ ८१ ॥

सर्वोपायविधानज्ञ आपद्भ्यस्तारणक्षमः ।
वेदशास्त्रार्थविज्ञाता समर्थः सर्ववस्तुषु ॥ ८२ ॥

ईतिदोषप्रतीकर्ता प्रजाहितकरः सदा ।
स वै पुरोहितः प्रोक्तो राज्ञा सेव्यो विशेषतः ॥ ८३ ॥

यदीच्छेद्विपुलां भूतिं दीप्तिं चापि श्रियं तथा ।
तदा राजा प्रथमतः कुर्यात्कांचित्पुरोहितम् ॥ ८४ ॥

तादृशस्त्वं मया लब्धो भ्रमता धरणीतले ।
भाग्येनैव तपोराशे कुलं तारय नः प्रभो ॥ ८५ ॥

कुलमेतद्भगवतः प्रसादात्प्रभविष्णु च ।
तेनैव त्वं मया लब्धो वृणे च त्वां पुरोहितम् ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा विधिवद्वव्रे वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ।
सोऽप्युरीकृतवांस्तस्य पौरोहित्यं महामुनिः ॥ ८७ ॥

कश्यपस्य प्रियां कन्या मुपयेमे मनूत्तमः ।
सत्कृतिं नाम वै तस्यामिक्ष्वाकुमुदया दयत् ॥
ततः प्रवर्तितो वंशः सूर्यस्य कृपयाञ्चितः ॥ ८८ ॥

कदाचिदूचे मनुराजो वसिष्ठं प्रसन्नचित्तं विनयेनाशुतुष्टम् ।
कृताञ्जलिर्यजमानप्रवीरः पुरोधसं सर्वलोकेष्टदक्षम् ॥ ८९ ॥

मनुरुवाच

भगवन् भवतो नित्यं प्र[1]सादादासादिता मया ।
अपूर्वा धनसम्पत्तिः पुत्रपौत्रादियोगिनी ॥ ९० ॥

मही चाप्यखिला ब्रह्मन् धर्मतः पाल्यते मया ।
सृष्टाश्च विविधाकाराः प्रजाः श्रीशनिदेशतः ॥ ९१ ॥

पुरी चापि मया प्राप्ता रमणीयतमा भुवि ।
भाविनां भूमिपालानां राजधानी मनोहरा ॥ ९२ ॥

नातः परतरो देशः सम्पत्समुदयाञ्चितः ।
पृथिव्यां भारते वर्षे रत्नरूपा पुरी ह्यसौ ॥ ९३ ॥

एका मे प्रार्थना ब्रह्मन् गङ्गामत्रानय प्रभो ।
अयोध्याख्या पुरी त्वेषा प्रवाहेण विवर्जिता ॥ ९४ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

तस्मादिह स्वतपसा नदीमानेष्यसि प्रभो ।
इत्युक्तस्तेन मनुना वसिष्ठो भगवान् मुनिः ॥ ९५ ॥

उवाच मनुशार्दूलं दिव्यदर्शी तपोनिधिः ।
अहो ते मनुशार्दूल सम्यग्जातास्ति वै स्पृहा ॥ ९६ ॥

पुरा खलु विधेः सर्गे योग एष सनातनः ।
अयोध्यासरयूनद्योर्विश्वालंकारभूतयोः ॥ ९७ ॥

अस्ति वै सरयूर्नाम सरित् त्रैलोक्यपावनी ।
दर्शनाच्चैव यत्स्पर्शान्महामाङ्गल्यशेवधिः ॥ ९८ ॥

रामप्रेमवशाद्ब्रह्मा पुरुषः स सहस्रदृक् ।
सहस्रशोऽश्रुधाराभिः सुस्राव प्रेमजं जलम् ॥ ९९ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चत्रिदशश्च सवासवाः ।
सुस्रुवुः प्रेमसलिलं रामप्रेमवशाः पृथक् ॥ १०० ॥

तत एषा समुद्भूता सरयूः सुरसा सरित् ।
तीर्थाना कोटयश्चास्यां विविशुः सहसोत्सुकाः ॥ १०१ ॥

गङ्गाद्याः सरितश्चास्यां विविशुः स्वस्वरूपतः ।
मेधाद्या ब्रह्मविद्याश्च सावित्र्याद्याः श्रियस्तथा ॥ १०२ ॥

द्रवरूपं समास्थाय तस्यां विविशुरुत्सुकाः ।
सा वै विरजया पश्चात्सुसंगम्य महोर्जया ॥ १०३ ॥

आस्तेऽधुना हिमगिरौ दिव्यरूपधरासरित् ।
हिमाद्रेः पूर्वशिखरे कैलासगिरिनामनि ॥ १०४ ॥

विचरन्ती सिद्धवने सिद्धगन्धर्वपूजिता ।
तामिहागमयिष्यामि सुधातोयां महानदीम् ॥ १०५ ॥

यावद्वर्षसहस्रं तु तपः कृत्वा सुदुष्करम् ।
आराध्य श्रीरामं विभुं तपसा खलु भूरिणा ॥ १०६ ॥

तं वै प्रसन्नं याचिष्ये सरयूं शीतलोदकाम् ।
त्रिधासंतापहरणीं साक्षात्कामदुघां नृणाम् ॥ १०७ ॥

अथाय खलु सा नित्यं सूक्ष्मरूपेण संस्थिता ।
रामवद्रामगङ्गापि तथाप्याविर्भविष्यति ॥ १०८ ॥

नित्यायोध्या सरयूश्चापि नित्या नित्या प्रमोदाटविरत्र यूयः ।
नित्योऽयमादिव्रज ईशलीलास्थानं तथेशो नित्य एवात्र रामः ॥१०९ ॥

आविर्भावः क्रमेणैषां नित्यानामपि वस्तुतः ।
अतोऽहमत्रनेष्यामि सरयूं लोकमङ्गलाम् ॥ ११० ॥

मुनीनामपि सर्वेषामत्रत्यानां मनूत्तम् ।
भवेदिष्टमिदं भूयः सरयूसरितागमात् ॥ १११ ॥

कोटितीर्थाश्रया पुण्या विश्वमङ्गलरूपिणी ।
पुरैव खलु पूरेषा सरय्वा तु विशेषतः ॥ ११२ ॥

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो देवं वैवस्वतं मनुम् ।
सरय्वानयनार्थाय प्रतस्थावुत्तरां दिशम् ॥ ११३ ॥

तत्र गत्वा तपस्तेपे कैलासाचलसन्निधौ ।
जिताहारो जितायासो नित्यं मौनव्रते स्थितः ॥ ११४ ॥

मुष्टिमात्रतिलप्राशी शीर्णपर्णाशनस्ततः ।
पयोव्रतोवायुभक्षस्ततस्तिग्मव्रतं चरन् ॥ ११५ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रसुमहागहनव्रततत्परः ।
प्राणायामपरो योगी त्यक्तसर्वाशनस्ततः ॥ ११६ ॥

शुष्ककायोऽतिमांसास्थिशेषः सुकृशविग्रहः ।
रामचन्द्राराधनकृदास्थितः कठिनं तपः ॥ ११७ ॥

तपसा तस्य संतुष्टो भगवान् पुरुषः परः ।
प्रत्यक्षं समनुप्राप्य प्रोवाच विमलं वचः ॥ ११८ ॥

अयि श्रीमुनिशार्दूल कठिनं ते परं तपः ।
निरीक्ष्य निजधाम्नोऽहं चलितः करुणान्वितः ॥ ११९ ॥

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं यत्ते समभिकांक्षितम् ।
अपि यद्दुर्लभं लोके दास्ये तदपि साम्प्रतम् ॥ १२० ॥

वशीभूतोऽस्मि तपसा वद किं नाम याचितम्[१] ।
इत्युक्तो वै भगवता वसिष्ठो वश्यमानसः ।
उवाच मौनमुत्सृज्य निजचेतोऽभिवाञ्छितम् ॥ १२१ ॥

वसिष्ठ उवाच

[२]अहं तपस्यामि श्रीराम सरयूप्राप्तये तपः ।
अयोध्यायां मुक्तिपुर्य्यां सा नित्यं प्रवहेदिति ॥ १२२ ॥

नदीप्रवाहरहिता न हि सा शोभते पुरी ।
रामप्रेमद्रवमयी सरयूर्विश्वपाविनी ॥ १२३ ॥

अयोध्यायाः समुचिता रामपुर्याः शुभाकृते ।
इति मे वाञ्छितं नाथ त्यक्तः कमललोचन ।
विना त्वत्कृपया देव सा लभ्या मनुजैर्न च ॥ १२४ ॥

---

१. नास्ति-बड़ौ० । २. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

श्रीराम उवाच

अस्त्वेवं मुनिशार्दूल मयाप्येतन्मतं ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् रामो वसिष्ठं प्रति वत्सलः ।
प्रेरयामास सरयूं तस्यां गमनहेतवे ॥ १२५ ॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ देवि महापुण्यामयोध्यां मुक्तिरूपिणीम् ।
तत्रस्था जगतां देवि पशुपक्ष्यन्त्यजात्मनाम् ॥ १२६ ॥
स्थावराणां द्रुमलतादीनां त्वद्वारिसंगिनाम् ।
मुक्तिं कुरु शुभां नाम मत्स्थानप्राप्तिलक्षणाम् ॥ १२७ ॥
ओमित्युक्त्वाथ सरयूर्गन्तुं समुपचक्रमे ।
तावद्यमो धर्मराजः प्राप्य संयमिनीं पुरीम् ॥ १२८ ॥
उवाच कमलाकान्तमिदं वचनमादृतः ।
किमर्थमधिकारोऽयं मयि नाथ निवेशितः ॥ १२९ ॥
न ह्यस्यां धरणिस्थायां पापं स्थास्यति देहिनाम् ।
अस्यास्तरङ्गसम्पृक्तो यत्र वाति समीरणाः ॥ १३० ॥
देशे तत्र मदीयानां संचारो नैव विद्यते ।
अस्याश्च नाममात्रेण मुक्तिमेष्यन्ति मानवाः ॥ १३१ ॥
तोयपानाच्च वै सद्यो रामभक्तिर्विवर्द्धते ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा रामः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १३२ ॥
कीकटेषु त्रिशंकोश्च छायादेशस्थभूमिषु ।
धन्वदेशेषु च तथा म्लेच्छप्रायेषु चान्तक ॥ १३३ ॥
विषयेषु मम स्तोत्रपूजावर्जितभूमिषु ।
अन्येषु चाशुचिस्थानेष्वपुण्येषु च ये नराः ॥ १३४ ॥
म्रियन्ते सुदुराचाराः सूतिकास्थाश्च याः स्त्रियः ।
दुर्वासनाश्च ये जीवा महापातककारिणः ॥ १३५ ॥
रामभक्तेश्च विमुखा विष्णुनिन्दापराश्च ये ।
शिवनिन्दापराश्चैव दुर्गानिन्दापराश्च ये ॥ १३६ ॥
अन्ये च येऽतिपिशुना देवनाद्विजगोद्रुहः ।
परोपकारहिंस्राश्च परवृत्तिविघातकाः ॥ १३७ ॥
तेषां पातकिनां नृणां दण्डधारणहेतवे ।
जागरूकः सदा तिष्ठ न त्वस्यास्तटवासिनाम् ॥ १३८ ॥
इत्यादिश्य यमं रामः स्वं धाम प्रत्यपद्यत ।
ततश्च सरयूर्देवी वसिष्ठान्तिकमागमत् ॥ १३९ ॥

उवाच मुनिशार्दूलं दिव्यवेशधरा सरित् ।
आदिष्टाहं भगवता विष्णुना करुणावता ॥ १४० ॥

अयोध्यां प्रति यास्यामि रामचन्द्रमहापुरीम् ।
तत्रैव चापि वत्स्यामि रामचन्द्रस्य सन्निधौ ।
उत्तिष्ठ मुनिशार्दूल सम्पूर्णस्ते मनोरथः ॥ १४१ ॥

श्रीशुक उवाच

अथोदतिष्ठत् तत्स्थानाद् वसिष्ठो भगवान् मुनिः ।
तमनुप्रययौ देवी सरयूर्लोकपावनी ॥ १४२ ॥

प्लावयन्ती शुभान् देशान् निजतोयघटाभरैः ।
लिम्पन्ती धरणीं तुङ्गैस्तरंगैश्चन्दनैरिव ॥ १४३ ॥

कुर्वन्ती लोलकल्लोलैः केलीमिव समंततः ।
भिन्दन्ती निजमार्गस्थान् विकटांश्चापि भूधरान् ॥ १४४ ॥

अम्भोजवेन गच्छन्ती पुण्यसेनेव पापभित् ।
तत्र तत्र मिलन्ती च नदीभिर्मार्गमध्यतः ॥ १४५ ॥

घोषयन्ती दिशः सर्वाः प्रवाहजवकाहलैः ।
स्तूयमाना तत्र तत्र वसिष्ठेन महर्षिणा ॥ १४६ ॥

अन्यैश्च सिद्धगन्धर्वैर्मुनिवर्यैश्च संस्तुता ।
उच्चावचान् शुभान् देशानेकीकृत्य महोर्मिभिः ॥ १४७ ॥

शोभयन्ती निःसरन्ती काप्यस्तब्धौघवाहिनी ।
अयोध्याभिमुखी देवी बभूव सरयूस्तदा ॥ १४८ ॥

योजनैस्त्रिभिरभ्येत्य जग्राहामितभक्तिमान् ।
महर्षिणा साकमेनां राजा वैवस्वतो मनुः ।
ततः स पूर्वमस्तौषीद्वसिष्ठं स्व पुरोधसम् ॥ १४९ ॥

मनुरुवाच

नमो महर्षये तुभ्यं प्राजापत्याय योगिने ।
अबन्ध्यकर्मणे दीर्घतपसे ब्रह्मणे नमः ॥ १५० ॥

त्वत्प्रसादादहं ब्रह्मन् कृतकृत्योऽस्मि सद्गुरो ।
तारितं मे कुलं सर्वं भासितं च ननु त्वया ॥ १५१ ॥

यदा यदा कुलेऽस्माकं भवेत्कार्यंममानुषम् ।
तदा तदा सहायस्त्वमधुनेव भविष्यसि ॥ १५२ ॥

तापितं भगवन् कृत्स्नं त्रैलोक्यं तपसा त्वया ।
येन स्थानात्प्रचलितो विष्णुस्त्रैलोक्यपूजितः ॥ १५३ ॥

इति स्तुतस्तेन ततो वसिष्ठः प्रोवाच तस्मै विहितप्रसादः।
पाद्यार्घपूजादिभिरेवमेनां गृहाण राजन् सरयूं समेताम् ॥ १५४ ॥

स्तुवीहिचैनां स्तुतिभिः तत्पराभिः श्रीरामप्रेमद्रवैकस्वरूपाम्।
इत्थं हि ते पुरलक्ष्मीर्भवित्री तरंगिणी सततं पुण्यरूपा ॥ १५५ ॥

इत्याज्ञप्तो वसिष्ठेन मनुर्वैवस्वतः स्वयम्।
तुष्टाव सरयूरूपां श्रीरामप्रेमसम्पदम् ॥ १५६ ॥

मनुरुवाच

प्रेमद्रवे नमस्तुभ्यमयोध्याभिमुखद्रवे।
महापुण्ये सूर्यवंश्यराजसम्पत्प्रदायिनी ॥ १५७ ॥

अनेककल्पावधिसंस्थितोदके मार्कण्डेयाद्यैर्मुनिभिः स्तव्यरूपे।
प्रेमामृते ब्रह्मसुखातिगामिसुखप्रदे श्रीसरयु प्रसीद ॥ १५८ ॥

वसिष्ठतपसाऽऽनीते गङ्गाजलमनोहरे।
वासिष्ठ्यै रामगङ्गायै नित्यं तुभ्यं नमोऽम्ब मे ॥ १५९ ॥

प्रायो मत्कुलसंस्थानां सदा कल्याणकारिणी।
स्थाने समागता मातर्नित्यमास्स्व पुरे मम ॥ १६० ॥

इति स्तुत्वा चकारोच्चैः पूजां पाद्यार्घसम्मुखैः।
उपचारैः षोडशभिरानयत्स्वपुरे ततः ॥ १६१ ॥

अभ्यागतां तां पुरवासिनो जनाः सपर्यया भूरितमोपचारया।
प्रत्यग्रहीषुः स्तुतिभिश्च भूरिशः समङ्गलोपायनपाणयो भृशम् ॥ १६२ ॥

ततः प्रभृत्येव पुरी महोत्तमा बभूव सात्यन्तरुचिप्रवर्द्धिनी।
श्रियान्विता रत्नतटद्वयत्विषा विराजमाना सरयूप्रसंगतः ॥ १६३ ॥

तस्याः पुर्यास्तलतो वाहिनी सा चक्राह्वकारण्डवराजहंसयुक्।
अनेकरूपैर्मुनिभिः पक्षिरूपैर्निषेवितातीव रराज सुश्रिया ॥ १६४ ॥

पीयूषद्रववाहिनी मुनिवरश्रीराजहंसान्विता।
रत्नाबद्धतटद्वयातिसुषमा संफुल्लपद्माकरा।
सौवर्णोज्ज्वलसैकता शुभमणिस्वर्णाक्तनिःश्रेणिका।
रामारोहणसारणीव सरयूस्तस्यां विरेजेतराम् ॥ १६५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि प्रमोदवनवर्णने सरयूसम्भवो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

✽

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इति तेऽभिहितं राजन् यथाभूत्सरयूः पुरा ।
भूयश्च कथयाम्यस्याः समुत्पत्तिं वसिष्ठतः ॥ १ ॥

कदाचिद्भगवान् वेधाः सत्यलोके सुरैर्वृतः ।
सभामध्यास्त महतीं लोकेशो वेदनायकः ॥ २ ॥

उपासांचक्रिरे देवा देवर्षिनिवहाश्च तम् ।
चित्ररथाद्या गन्धर्वाश्चक्रुस्तदुपवीणनम् ॥ ३ ॥

तत्र केचिदृचः पेठुर्ऋषयश्चार्थकोविदाः ।
केचिद्यजूंषि जगदुराध्वर्यवविशारदाः ॥ ४ ॥

केचिज्जगुः स्वरैर्जुष्टं साम संतन्य भूरिशः ।
केचित्पदानि वै चक्रुः केचित्क्रममुदैरयन् ॥ ५ ॥

केचिज्जटानामभ्यासं चक्रुरन्ये शनैः शनैः ।
महोपनिषदः पेठुरन्येऽङ्गान्यभ्युदैरयन् ॥ ६ ॥

केचिच्छास्त्रानुगां दृष्टिमुपवलम्ब्य तपोधनाः ।
चक्रुः परस्परं वादं सिद्धान्तज्ञानसाक्षिणः ॥ ७ ॥

एवमन्ये महामन्त्रकल्पान् समुदचारयन् ।
ऋषिच्छन्दोदेवताभिः साकं यद्वच्च बह्वृचा ॥ ८ ॥

तत्रान्योऽन्यं प्रवादेषु जायमानेषु भूमिप ।
महर्षिरत्रितनयो दुर्वासा नाम रोषणः ॥ ९ ॥

[1]द्वितीयेनोपयन्तुनाम्ना कोविदेन महर्षिणा ।
सहभूतः साम गायन्नन्येन परमर्षिणा ॥ १० ॥

कलहायमानो रोषेणात्यन्धीभूतविलोचनः ।
विस्वरं रवमातेने गीयमानेषु सामसु ॥ ११ ॥

ततः श्रीसरयूदेवी तीर्थशक्त्योघमण्डले ।
ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे गङ्गादीनां पुरः स्थिता ॥ १२ ॥

अबद्धं तस्य तद्गानमत्रिसूनोर्महारुषः ।
समाकर्ण्य कटाक्षेण सरस्वत्यै न्यवेदयत् ॥ १३ ॥

तया निवेदितं चास्य स्खलितं सामगानगम् ।
श्रुत्वा सरस्वती देवी प्रोवाच सरयूं प्रति ॥ १४ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

सम्यग्ज्ञातं भगवति त्वयास्मिन् भूरिमण्डले ।
जायमाने महाशब्दे वादप्रवादगोचरे ॥ १५ ॥
रोषणस्यात्रिपुत्रस्य स्खालित्यं सामगानगम् ।
इति श्रुत्वा सरस्वत्या वाचं श्रीसरयूः पुनः ॥ १६ ॥
हसन्ती तामन्वहसन्निरीक्ष्य वदनं मुनेः[1] ।
ततो मुनिर्ददौ शापं मर्त्यलोकगतिं प्रति ।
गर्भवासमनुप्राप्य फलं हास्यस्य वेत्स्यसि ॥ १७ ॥

विधिरुवाच

मा ग्लासीः सरयूदेवि कच्चित्वं विश्वमङ्गला ।
त्वां निरीक्ष्य प्रजायन्ते विशोकाः सकला जनाः ॥ १८ ॥
शपोऽयं ते महादेवि केवलं लोकमङ्गलः ।
मर्त्यलोकेऽपि जाता त्वं मनुष्यान् सुखयिष्यसि ॥ १९ ॥
गङ्गादिपुण्यतीर्थेभ्यः सहस्रगुणमुत्तमा ।
भविष्यसि त्वं सरयूः सत्यं सत्य न संशयः ॥ २० ॥
यः कुर्यात्पुण्यतीर्थेषु यात्रां पृथ्वीप्रदक्षिणाम् ।
त्वयि यावन्न च स्नाति तावत्तस्य न तत्फलम् ॥ २१ ॥
इत्यादरस्ते विपुलो मर्त्यलोके भविष्यति ।
श्रीरामनगरीनाम्ना यायोध्येति प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥
साक्षाद्वैकुण्ठनगरी तस्यां स्थास्यति निश्चला ।
ब्रह्महापि दुराचारः सुरापयीति परार्थहृत् ॥ २३ ॥
गुरुतल्पगमोऽपि त्वय्येकस्नानाद्विशुद्ध्यति ।
न त्वत्समं मर्त्यलोके तीर्थमन्यद्भविष्यति ॥ २४ ॥
गर्भवासादपि परं मा ग्लासीस्त्वं सुदेवते ।
वसिष्ठस्य शुभा भार्या नाम्ना या देव्यरुन्धती ॥ २५ ॥
योगैकतानहृदया लक्ष्मीतुल्याप्युमासमा ।
तस्या गर्भे जनिं लब्ध्वा विश्वमानन्दयिष्यसि ॥ २६ ॥
ततः प्रमोदविपिने रामलीलां मनोहराम् ।
निरीक्ष्य निजनेत्राभ्यां परां प्रीतिमवाप्स्यसि ॥ २७ ॥
ततः परं रामचन्द्रे लोकानन्दसुधानिधौ ।
कोटिकन्दर्पलावण्य रता देवि भविष्यसि ॥ २८ ॥

---

१. अत्र बहुस्खलितम् – बड़ौ० ।

ब्रह्मपुत्रीं हि मन्वानो रामो न त्वां वरिष्यति ।
उत्तराचलवर्यस्य नाम्ना पद्मगिरेस्ततः ॥ २९ ॥

कन्यात्वं प्राप्य भावेन रामेन्दुं वरयिष्यसि ।
शारदीषु मनोज्ञासु रात्रिषु स्मरमोहिता ॥ ३० ॥

रामेण रमणं प्राप्य कृतार्थत्वमुपैष्यसि ।
नित्यरासविलासस्था महाभावैकभाजनम् ॥ ३१ ॥

रसिकेन्द्रं रामचन्द्रं सीतावद्रमयिष्यसि ।
एवं दुर्वाससः शापस्तव लोकस्य चेष्टदः ।
नानुतापाय कश्चित्ते तस्मात्किमनुशोचसि ॥ ३२ ॥

श्रीशुक उवाच

इति श्रुत्वा तु सरयूः पितामहवचः शुभम् ।
अन्तरानन्दजलधौ ममज्ज विगतज्वरा ॥ ३३ ॥

ततो वशिष्ठस्यगृहे नियोगात्प्रजापतेः सावततार देवी ।
अरुन्धतीगर्भजदिव्यरत्नं बभूव माङ्गल्यकरीह लोके ॥ ३४ ॥

जनक उवाच

पूर्वंभवोत्तराद्रेः सा कन्यात्वं नागता कथम् ।
एक[1]जन्मनि सम्प्राप्ता व्यवधानं कुतो हि सा ॥ ३५ ॥

तेनैव जनुषा ब्रह्मन् रामेन्दुं नामिलत्कुतः ।
एतन्मे छिन्धि संदेहं सरयूसम्भवोद्भवम् ॥ ३६ ॥

श्रीशुक उवाच

उक्तमेतत्पुरा राजन् यथा वैवस्वतो मनुः ।
पौरोहित्ये वसिष्ठस्य तीर्थाय प्रार्थनां दधौ ॥ ३७ ॥

ततस्तप्तं वसिष्ठेन दुश्चरं परमं तपः ।
ततश्च सा वसिष्ठाय हिमाद्रौ दर्शनं ददौ ॥ ३८ ॥

कन्याहं ते भविष्यामीत्युवाच सरितां वरा ।
ततः कन्यात्वमापन्ना संतुष्टा तपसा मुनेः ॥ ३९ ॥

श्रीमत्यां कुलभार्यायामरुन्धत्यामजीजनत् ।
ततो वसिष्ठस्तां कन्यां गृहीत्वागान्मनोः पुरीम् ॥ ४० ॥

पश्चात्प्रवाहरूपापि साभ्युपेता सुधोज्ज्वला ।
सा कन्या मुनिना दत्ता ऋषये सोमशर्मणे ॥ ४१ ॥

---

१. (अत्र X चिह्नंदत्वा "From this to x this mark up to page 208 seems to be a द्विरुक्ति in the original copy) – बड़ौ० ।

सोमशर्मा भृगोर्वंश्यो ज्ञानवैराग्यभूषितः ।
तौ दम्पती वीतरागौचक्रमाते न च प्रजाम् ॥ ४२ ॥

तपसा सोमशर्मा तु त्यक्त्वा तद्भौतिकं वपुः ।
ज्ञानेन मुक्तिपदवीमियाय मुनिपुङ्गवः ॥ ४३ ॥

सा तु प्रमोदविपिने रामस्य मुरलीध्वनिम् ।
आरादाकर्ण्य सहसा मोहिताभूत् स्मरातुरा ॥ ४४ ॥

रासकेलि समालोक्य नितान्तं विहरद्वने ।
ततः कदाचिद्विपिने क्रीडन्तं रघुपुङ्गवम् ॥ ४५ ॥

एकान्ततः समालोक्य जलान्तादुदतिष्ठत ।
दिव्यवेषधरा भूत्वायोषिद्रतिमनोहरा ॥
उवाच पुरतो रामं कोटिमन्मथमोहनम् ॥ ४६ ॥

स्त्र्युवाच

वृणीष्व मां रसिकेन्द्र प्रेम्णासक्तां चिरात्त्वयि ।
अमुना तव रूपेण मोहिताहं वशीकृता ॥ ४७ ॥

श्रीराम उवाच

कासि त्वमम्भोजदलायताक्षि मनोहरापाङ्गि मनोज्ञरूपा ।
किं कामरामास्युत देववामा किं वा रमा सर्वगुणाभिरामा ॥ ४८ ॥

स्त्र्युवाच

भृगोः कुले सोमशर्माद्विजेन्द्रो यस्याङ्गनाहं तपसि स्थितस्य ।
वसिष्ठपुत्री विषयेभ्यो निवृत्ता वशीकृता ते मुरलीनिनादैः ॥ ४९ ॥

त्वं कोऽपि पूर्णः पुरुषः पुराणः स्वकेलिभिर्मोहितसर्वलोकः ।
जाने त्वदासक्तिवतां जनानां न विद्यतेऽसौ गुणसम्प्रवाहः ॥ ५० ॥

यं योगिनश्चेतसि चिन्तयन्ति समाधिवश्येऽखिलवृत्तिरिक्ते ।
स त्वं प्रभो राम परोऽसि पूरुषस्तथापि रत्या किल कामये त्वाम् ॥ ५१ ॥

अङ्गीकुरुष्वैव ततः शरण्य स्मरार्दितां मामनुभूतभोगाम् ।
नो चेद्वियोगज्वलनज्वालया ते दन्दह्यमाना परिमोक्ष्यामि वर्ष्मं ॥ ५२ ॥

श्रीराम उवाच

अहं राजन्यतनयस्त्वं ब्राह्मणसुता भृशम् ।
कथमङ्गीक्रिये स त्वां विरुद्धं लोकवेदयोः ॥ ५३ ॥

भवान्तरे भविष्यामि तवाभीष्टार्थसिद्धये ।
इति मत्वा कुरु तपः शोषयन्ती कलेवरम् ॥ ५४ ॥

अनर्थकमिमं देहम् तपोऽर्थे विनियोजय ।
तेन पुण्यप्रभावेण मामेष्यसि भवान्तरे ॥ ५५ ॥

इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं सातप्यत् परमं तपः ।
जितेन्द्रिया निराहारा प्रेमानलविशोषिता ॥ ५६ ॥

योगानलेन तं दग्ध्वा पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
ततः पर्व्वगिरेभार्यां जन्मसम्प्राप सा वरम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि सरयूसम्भवेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥



एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तस्यां संजातमात्रा सा दिव्यदेहविभूषिता ।
शुक्ले पक्षे चन्द्रिकेव व्यवर्धत दिने दिने ॥ १ ॥

तस्या रूपं सुसंजातं मनोहारि हरेरपि ।
लक्ष्मीपयोधराश्लेषपरमानन्दनिर्वृतेः ॥ २ ॥

चरणो जघने चैव मध्यनाभिस्थलोदरम् ।
त्रिवली रोमराजिश्च वक्षोजौ कण्ठमाननम् ॥ ३ ॥

नासिके लोचने कर्णौं भालं मूर्द्धा कचोत्कराः ।
एकमेकं वपुस्तस्य हृष्टमन्यदिवाजनि ॥ ४ ॥

यौवनाख्यमहाशिल्पिसम्पादितसुमंजिम ।
क्वचिद्रक्तं क्वचिच्छ्यामं क्वचिच्छ्वेतं क्वचिच्छिति ॥ ५ ॥

क्वचिद्गौरं वपुस्तस्या भूतं रंगकृतेव तत् ।
अणिमा लघिमा चैव महिमा गरिमा तथा ॥ ६ ॥

प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चापि तत्तनौ ।
अणिमा मध्यदेशेस्यात्लघिमा पुष्पवत्तनौ ॥ ७ ॥

महिमा दृश्यते तस्याः सततं दृङ्नितम्बगः ।
गरिमा कुचयोः प्राप्तिर्देवानामपि दुर्लभा ॥ ८ ॥

प्राकाम्यमीशता चास्यास्तनावुज्जृम्भते पृथक् ।
वशित्वं दृष्टिमात्रेण यूनां वश्यत्वकारणात् ॥ ९ ॥

प्रथमे यौवने तस्याश्चाङ्गमङ्गं व्यरोचत ।
निर्णिक्तमुकुराकारं निर्मेघशशिबिम्बवत् ॥ १० ॥
तस्यां स्मरमहीपालो निजाज्ञामातनोत्तदा ।
विजित्येव विपक्षेभ्यो नगर्यां मधुराकृतौ ॥ ११ ॥
कियद्वाच्यमदो रूपं पुष्टं यौवनकारुणा ।
रामचन्द्ररसीन्द्रेण भोगार्हं भूय एव तत् ॥ १२ ॥
तां विलोक्य गिरिर्बालां काले परिणयोन्मुखीम् ।
त्रैलोक्ये तद्वराभावादन्वतप्यत मानसे ॥ १३ ॥
निरीक्ष्य चाकचक्योघं चमत्कारितलोचनम् ।
अन्वेत्येव चकोरीणामप्यदो वालिनां हृदि ॥ १४ ॥
तदङ्गमपुषत्कांचिद्रूपसम्पदमीक्षताम् ।
नारदस्तत्पितुः पार्श्वे कदाचिदगमन्मुनिः ॥
स तमभ्यचर्य विधिवद्दावुत्तममासनम् ॥ १५ ॥

गिरिरुवाच

अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् ।
अतीव कोमलं हृद्यं प्राप्तं ते दर्शनामृतम् ॥ १६ ॥
जाता पुण्यवती सम्यगद्यास्मत्कुलसंतत्तिः ।
धन्यं मेरोः कुलं चाद्य युष्मदागमनात्प्रभो ॥ १७ ॥
गृहिणां गृहकृत्येषु व्यग्राणां दुर्भगात्मनाम् ।
अनुधावति युष्माकं दर्शनं सौभगावहम् ॥ १८ ॥
क्व नो दुश्चरितं ब्रह्मन्नहन्ताममताकुलम् ।
क्व च वो दर्शनमिदं योगिनामुचितं मुने ॥ १९ ॥
गोदोहमात्रं विरमेद्यत्र भाग्यवशाद्भवान् ।
तत्र स्यादचला सम्पत् स मे किं नु करिष्यति ॥ २० ॥

श्रीनारद उवाच

गिरिराज सुधन्योऽसि मेरोः पुत्रो महायशाः ।
इदं ते शीर्षमुत्तुङ्ग सरयू पात सुन्दरम् ॥ २१ ॥
इयं ते परमा कन्या सिन्धोरिव सुता रमा ।
उभयोस्तुल्यं सौभाग्यमुभे अपि हि पद्मजे ॥ २२ ॥
इमां दाशरथी रामः समये परिणेष्यति ।
अतो न देया कस्मैचिन्नार्हः सिंहबलिं गजः ॥ २३ ॥
निश्चिन्तोभवशैलेन्द्र वराय त्वमतःपरम् ।
नदीयं तादृशं कान्तं विनान्यं जनमर्हति ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ योगी महाभागवतो मुनिः।
गायन् रामयशः पुण्यं क्वणन् वीणां मनोहराम् ॥ २५ ॥

स इयाय पुरीरत्नमयोध्यां रामभूषिताम्।
तद्वत्सम्मानितो राजन् रामेणाचारकोविदा ॥
ततः प्रसन्नो देवर्षिरुवाच मधुरं वचः ॥ २६ ॥

अहो इदं राम जगत् समस्तं त्वयाभिगुप्तं कुशलैर्विभाति।
यद्वद्दिवानाथयुतं प्राभभिर्नयःपरीतं दिवसे समंतात् ॥ २७ ॥

पाल्यन्ते साधवः सम्यक् संह्रियन्ते दुराशयाः।
यदर्थं चावतीर्णोऽसि तत्त्वया क्रियतेस्फुटम् ॥ २८ ॥

अथ विज्ञाप्यमस्त्येकं वेत्सि यद्यपि तत् स्वयम्।
तथापि सेवकाः कुर्युः स्वधर्मं भूतिमिच्छवः ॥ २९ ॥

अस्ति पद्मगिरिर्नाम मेरोः पुत्रो महायशाः।
गन्धमादनपुत्री यं लेभे भर्तारमुत्सुका ॥ ३० ॥

नाम्ना कुमुदिनी नाम सरयूस्तस्य कन्यका।
बोढुमर्हसितां राम चिरात्त्वयि धृताशयाम् ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा नारदे याते रामस्त्रैलोक्यसुन्दरः।
जलावगाहनकृते सरयूमुपजग्मिवान् ॥ ३२ ॥
सावरोधजनः सार्धं भ्रातृभिऽलक्ष्मणादिभिः।
स एकान्ततमे स्थाने निष्क्रम्य नगराद्वहिः ॥ ३३ ॥

यत्रारामो महानस्ति रामणीयकमञ्जुलः।
रसालमञ्जरीवृन्दरजसाञ्चितमारुतः ॥ ३४ ॥

सदा वसन्तवसतिर्जलयन्त्रमनोहरः।
अनेकवृक्षगहनः फुल्लत्पुष्पकदम्बकः ॥ ३५ ॥

कल्पवृक्ष द्रुमलतामहामण्डपमण्डितः।
मणिसौधो मनोहारी सरयूतीरभूस्थितः ॥ ३६ ॥

तत्र रामो रुचिं तन्वन् रेमेजनकजान्वितः।
भ्रातरो लक्ष्मणाद्याश्च स्वस्वपत्नीसमन्विताः ॥ ३७ ॥

चिक्रीडुः सरयूतीरे विविधैः सम्भ्रमैर्युताः।
स्थले विहृत्य रमणः पुष्पावचयनादिभिः ॥ ३८ ॥

वनेषु विजहारोच्चैः सरयूतीरभूमिषु।
ततः श्रान्तवपुः श्रीमान् प्रियया सह राघवः ॥ ३९ ॥

जले विहर्तुं राजेन्द्रतनयोऽवततार सः।
करीव करिणीयुक्तो विहृत्य स च निर्भरम् ॥ ४० ॥

जानक्या सहितोऽवात्सीत्तत्रैव निशि नायकः ।
ततो रात्रौ प्रजातायां पारिजातसुगन्धिना ॥ ४१ ॥

वीजितः पवनेनासौ मल्लीकुसुमसंगिना ।
एकाकी विचरन् पूर्णचन्द्रज्योत्स्नाप्रकाशिते ॥ ४२ ॥

सरय्वाः पुलिने रामः स्त्रियमेकां ददर्श सः ।
नवीनयौवनोल्लासमण्डितावयवश्रियम् ॥ ४३ ॥

श्रियं यथा विस्फुरन्तीं चञ्चलानां छटामिव ।
कुर्वन्तीं देहदीप्तीनां वृन्दैर्वितिमिरा दिशः ॥ ४४ ॥

अङ्गरागातिसौरभ्यसम्भारसुरभीकृते ।
कानने विस्फुरन्तीं च स्वाभाविकतनुत्विषा ॥ ४५ ॥

पल्लवारक्त चरणां रम्भोरुं हंसगामिनीम् ।
रक्तांशुकपरीधानां संध्यापूर्णातिथेरिव ॥ ४६ ॥

निम्ननाभिसरोरम्यं त्रिवलीललितोदराम् ।
रोमराजीसमुद्भासिमध्यां मध्यां च सुन्दरीम् ॥ ४७ ॥

उत्तुङ्गस्तनकुम्भाक्तकाश्मीरागुरुसौरभाम् ।
मुक्ताहारलतारत्नमालासंशोभितोरसम् ॥ ४८ ॥

ग्रैवेयकमहारत्नदीधितिद्योतिकाननाम् ।
मन्दस्मितमनोहारिमुखचन्द्रोत्थचन्द्रिकाम् ॥ ४९ ॥

चारुनासां चकोराक्षीं कपोलादर्शभासुराम् ।
रत्नताटंकसम्पन्नश्रवणद्वयमञ्जुलाम् ॥ ५० ॥

विशालभालफलकभूतसौभाग्यभासिनीम् ।
सीमन्तरत्नपदान्तर्गुप्तसिन्दूररेखिकाम् ॥ ५१ ॥

श्यामां रजनिसंशोभिवेणीमौक्तिकतारकाम् ।
सर्वाभरणसम्पन्नां सर्वसौन्दर्यसंयुताम् ॥ ५२ ॥

सर्वसौभाग्यभवनां सर्वत्रैलोक्यमोहिनीम् ।
जाम्बूनदमयीं मालां दधानां करपङ्कजे ॥ ५३ ॥

वरणार्थं प्रियस्यास्य बहुलोत्कलिकाकुलाम् ।
तां दृष्ट्वा रघुशार्दूलः प्रोवाच वचनं ततः ॥ ५४ ॥

कासि त्वं विपुलश्रोणि चरन्ती निर्जने वने ।
नारी वा किंनरी वापि देवी वा वनदेवता ।
नागी वा नगकन्या वा धन्या सौभाग्यसंयुता ॥ ५५ ॥

सरयुवाच

अहं पद्मगिरेः पुत्री सरयूर्नामतः प्रिय ।
चिराय त्वां कामयन्ती ध्रुवं प्राप्तास्मि सम्प्रति ॥ ५६ ॥
कच्चित्स्मरसि मां नाथ पूर्वजन्मनि संगताम् ।
अरुन्धत्या समुत्पन्नां वसिष्ठान्मुनिपुङ्गवात् ॥ ५७ ॥
ब्रह्मपुत्रीति मात्याक्षीस्तदा कामेन संयुताम् ।
अधुना तु प्रपन्नां मां स्वाश्रयामुररीकुरु ॥ ५८ ॥

श्रीराम उवाच

स्मरामि त्वां पूर्वभवे संगतां मम काङ्क्षया ।
ब्रह्मपुत्रीति संत्यक्तामधुना तु मदाशयाम् ॥ ५९ ॥
प्राप्तामुरीकरिष्यामि त्वामहं पद्मशैलजे ।
प्रमोदवनमध्ये तु सुखितस्यालये शुभे ॥ ६० ॥
आदिव्रजे सदानन्दे विहरन्तं महोत्सवैः ।
गोपीरासविलासाद्यैस्तत्र त्वं मामुपैष्यसि ॥ ६१ ॥
स्मरक्रीडारसे मग्नो विहरिष्याम्यहं त्वया ।
त्वत्कामं पूरयिष्यामि यथान्यासां मृगीदृशाम् ॥ ६२ ॥
रासमण्डलमध्ये तु गोपीनां प्रेमलीलया ।
वशीकृतस्ते साक्षात्त्वं गमिष्यामि मृगेक्षणे ॥ ६३ ॥
व्रजप्रेमोच्चिता त्वं हि तत्र मां समुपैष्यसि ।
जाम्बूनदमयीं मालां मम कण्ठेऽर्पया प्रिये ॥ ६४ ॥
इति निशम्य रमा रमणस्य सा वचनमर्थवदर्थविशारदा ।
रसवती सरयूः ससुखं न्यधात् प्रियगले मणिहेममयीं स्रजम् ॥ ६५ ॥
स गान्धर्वविधानेन रमणीमुदवोढ ताम् ।
ततो रतिं तया सार्द्धं प्रावर्तयदुदारधीः ॥ ६६ ॥
इत्थं सा रमणी तस्य व्रजप्रेमानुशालिनी ।
प्रमोदविपिने नित्यं लीलारसमवर्द्धयत् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मनि सरयूसम्भवो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥



पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

ततश्चिरात्सुसंगम्य रामो जनकनन्दिनीम् ।
अतोषयन्महाकेलिसमुत्थैर्विविधै रसैः ॥ १ ॥

एवं ते सरयूत्पत्तिरुक्ता पातकनाशिनी ।
य एनां श्रृणुयाद् भक्त्या नरः सोऽपि विमुच्यते ॥ २ ॥

प्रमोदवनरूपं च समाहात्म्यमुदाहृतम् ।
इदं तस्याः परं धाम सहजायाश्चिदात्मकम् ॥ ३ ॥

प्रमोदवनकेलीनामधिष्ठात्री परात्परा ।
रामेणापि सहैवैषा संजातार्द्धाङ्गसङ्गिनी ॥ ४ ॥

दृष्टा दशरथेनैव सपत्नीकेन धीमता ।
[1]ततोऽन्तर्द्धानमगात्तूर्णं तद्रूपं युगलात्मकम् ।
रुरोदसूतिकास्थाने रामः प्राकृतबालवत् ॥ ५ ॥

जनक उवाच

काकुत्स्थवंशसम्बन्धः कथं देव्या भवेन्मुने ।
एतद्धयनुचितं तस्या [2]जायाया रघुपतेः स्वयम् ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच

असौ राजा पुरा कल्पे कश्यपाख्यः प्रजापतिः ।
अदितिस्तद्वधूर्देवी कौसल्या याभवत्पुनः ॥ ७ ॥

तौ दम्पती पुरा धात्रा नियुक्तौ सृष्टिकर्मणि ।
वैराग्याविष्टचित्तत्वान्न चक्राते प्रजासृजिम् ॥ ८ ॥

ततो ब्रह्मा स्वयमेत्याब्रवीत्तौ कथं वां नो कुरुथो विश्वसर्गम् ।
उत्पादितावेतदर्थं परेण तदिच्छातः प्रतिकूलं किलैतत् ॥ ९ ॥

इत्युक्तावपि तौ तेन विरक्तौ कश्यपादिती ।
ऊचतुर्वचनं तस्मै सत्यमर्थवदीश्वरौ ॥ १० ॥

तावूचतुः

यदि नो स स्वयं साक्षाद्भूत्वा देवः परः पुमान् ।
वक्ष्यते विश्वसर्गाय करिष्यावस्तदा प्रजाम् ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा विधये साक्षाच्चतुराननमूर्तये ।
चक्राते संततं तीव्रं मुनिभिर्दुश्चरं तपः ॥ १२ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः । २. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

अजुष्टविषयौ वीतरागावनभिकाङ्क्षिणौ ।
त्यक्तसर्वजनासंगौ वनवाससमाश्रयौ ॥ १३ ॥

समाहितौ ध्यानसक्तौ तुच्छीकृतजगद्रसौ ।
आत्मानन्दैकनिरतौ चित्तवृत्तिविजित्वरौ ॥ १४ ॥

दिव्यवर्षायुतं तौ तु तपोनिष्ठौ बभूवतुः ।
ततः साक्षात् स भगवानादिदेवो रमापतिः ।
प्रददौ दर्शनं ताभ्यां रमाजुष्टार्धविग्रहः ॥ १५ ॥

पीताम्बरो मञ्जुलवन्यमालाविभूषितो वाणधनुर्धरो वै ।
श्रवःस्फुरत्कुण्डलमण्डितास्यो गुडालकालीकमनीयमूर्तिः ॥ १६ ॥
स्मितोज्ज्वलद्योतितदीपिताष्टदिशास्तुवत्पार्षदवर्यजुष्टः ।
सकौस्तुभः कन्दलितानुकम्पामनोज्ञदर्शो घननीलकान्तिः ॥ १७ ॥

तं वीक्ष्य सीतारमणं धनुर्धरं तौ दम्पती प्रोल्लसितोत्सवाढ्यौ ।
दृग्भिः पिबन्तौ मधुरामृताब्धि प्रसन्नचित्तौ जगतुः स्तुतिं वै ॥ १८ ॥

तावूचतुः

यदर्थं तप आचीर्णं तन्नौ जातमदः फलम् ।
यद्युवां दर्शनं यातौ सीतारामौ परौ दृशाम् ॥ १९ ॥

आनन्दमय मूर्त्योर्वां कतयोऽर्हः कृपामृते ।
ईदृशं दर्शनं लब्धुं परार्थंरतिकामयोः ॥ २० ॥

नमो वां करुणार्द्राभ्यां दम्पतिभ्यां सीतापते ।
एको ब्रह्मपरं पूर्णं ब्रह्मानन्दमयी परा ॥ २१ ॥

अहो वां करुणा काचिदनिर्वाच्यैव विस्तरात् ।
अद्य भक्तयङ्कुरे जाते प्रादुर्भूतस्तपोऽवधिः ॥
अलमतः परं नाथ नस्तपःखेदवेदनैः ॥ २२ ॥

संगते फले स्फुटमदः पदाम्भोजलब्धये परमभक्तिमभ्यर्थयामहे ।
न सुलभा तव प्रेमरूपिणी भक्तिरच्युता श्रीपते हरे ॥ २३ ॥

तपस्विपूरिते वर्षपूगकैः प्रकटिता भवेन्नाथ वा क्वचित् ।
इयमहो सुधास्वादुमाधुरीविजयिनी प्रभो भक्तिरस्तु नौ ॥ २४ ॥

या शिवादिभिः प्रार्थ्यतेऽनिशं परसमाधिभिः साधिते हृदि ।
विरहजारुजो नैव सेहिरे श्रीपतेतवावेशभाविताः ॥ २५ ॥

कथमिमाः सहिष्यावहे विभो तव जनाविभौ प्रेमपोषितौ ।
इत्युदीर्यादितियुतः कश्यपः सुसमाधिभिः ॥
शुद्धान्तःकरणो नीचैरयतत्पदयोः प्रभोः ॥ २६ ॥

पादाब्जपतितौ तौ तु समुत्थाप्य रमापतिः ।
उवाच वचनं स्मित्वा भक्तिभाव प्रतोषितः ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अस्मिन्नेव स्वरूपे मे युवामासक्तमानसौ ।
भवान्तरेप्यदः साक्षाल्लप्स्येथे सुमनोरथौ ॥ २८ ॥

भवान् दशरथो नाम राजा लोके भविष्यति ।
सूर्यवंशे रघोर्वंशे परमोदारमानसः ॥ २९ ॥

इयं देवी तु कौसल्या तस्य भार्या भविष्यति ।
सीतारामौ परात्परौ तत्रावां दम्पती खलु ॥ ३० ॥

दर्शयिष्यावहे श्रीमद्विग्रहं द्विभुजात्मकम् ।
अन्यत्सर्वसमं तत्र विद्युन्मेघसमाकृती ॥ ३१ ॥

कद्रूश्च विनता चैव तत्र त्वामुपयास्यतः ।
एका तु केकयी भूत्वा सुमित्राख्या परा वधूः ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो रमया सह राघवः ।
जन्मान्तरे भावि सर्वं संसूच्य करुणानिधिः ॥ ३३ ॥

एवत्ते कारणं प्रोक्तं यथा दशरथस्य तौ ।
दर्शनं ददतुः प्रीत्या सीतारामौ परौ निजम् ॥ ३४ ॥

यस्य भक्तस्य यः कामस्तस्य तं चेन्न पूरयेत् ।
न्यूनतैव भवेत्पूर्णे साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमे ॥ ३५ ॥

एतद्धि तद्दर्शनमत्र दुर्लभं सीतायुतस्य श्रीराघवस्य यत् ।
तादृग्विद्यां भक्तिमृतेभवान्तरे प्रेमात्मिकां वैधविधानमिश्रिताम् ॥ ३६ ॥

तावन्मात्रां दृशिं दत्त्वा यावद्वाञ्छास्य संस्थिता ।
ततोऽन्तर्द्धिमगात्तूर्णं रमया सह राघवः ॥ ३७ ॥

अद्य जातशिशुर्भूत्वा प्रादुरासीत्तदग्रतः ।
देवदेवो नटवरो रामचन्द्र उदारधीः ॥ ३८ ॥

वात्सल्यविभ्रमाविष्टो राजा दशरथस्ततः ।
सद्यो विस्मृतवान्नैश्यं तस्य देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ३९ ॥

महान्तमुत्सवं चक्रे जाते पुत्रे तु तादृशे ।
नीलरत्नवरश्यामे पुण्डरीकनिभेक्षणे ॥ ४० ॥

उत्सवो वां समानोऽभूद्यथा पुत्र्यास्तव प्रभो ।
तथा पुत्रस्य जनने काकुत्स्थस्य महोत्सवः ॥ ४१ ॥

अवाद्यन्देववाद्यानि यथा पुत्र्यास्तव प्रभो ।
तथा पुत्रस्यजनने काकुत्स्थस्यापि भूरिशः ॥ ४२ ॥

स तस्त तनयो राजन् साक्षाद्देवो रमापतिः ।
इयं ते तनया चापि साक्षाच्छ्रीसहजामिधा ॥ ४३ ॥

अनयोः संततं योगः क्रीडासुन्दररूपयोः ।
भविता त्वद्गृहे राजन् महता सम्भ्रमेण सः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे सीताजन्मोत्सवे श्रीशुकजनकसंवादे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥



एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथानयोरहं वक्ष्ये तत्त्वं लोकोत्तरं तु यत् ।
चिदानन्दैकवपुषोः जानकीरघुनाथयोः ॥ १ ॥

चिद्रूपा जानकी देवी परानन्दः स राघवः ।
अनया वीक्षितः सद्यश्चेतन्यायैव कल्पते ॥ २ ॥

पुरा तत्त्वानि सृष्ट्यादौ ब्रह्माण्डारम्भहेतवे ।
वीर्याधानार्थमेनं हि तुष्टुवुर्ब्रह्मरूपिणम् ॥ ३ ॥

तत्त्वान्यूचु

नमोऽस्तु ब्रह्मणे तस्मै पूर्णाय परमात्मने ।
निजानन्दप्रकाशाय साक्षिणेऽध्यक्षमूर्तये ॥ ४ ॥

वदन्ति यत्तत्त्वविदः परं तत्त्वं सनातनम् ।
तस्मै वेदशिरोरुढवर्ष्मणे ब्रह्मणे नमः ॥ ५ ॥

समासव्यासरूपेण सर्वोपनिषदां गिरः ।
समन्वयन्ति यत्रैव तस्मै कस्मैचिदो नमः ॥ ६ ॥

अव्यक्ताय निरीहाय निर्गुणाय परात्मने ।
निराभासाय शुद्धाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ ७ ॥

समस्ततत्त्वबीजाय तत्त्वातीताय साक्षिणे ।
सर्वाध्यक्षस्वरूपाय तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ ८ ॥

सृष्ट्यारम्भार्थमुद्युक्ता तत्त्वसृष्टिः सनातनी ।
विफलानुग्रहमृते यस्य तस्मै नमो नमः ॥ ९ ॥

नालं भूतगणोऽस्त्यपि च मनो नाहं न वा वैमह-
न्नोबुद्धिः प्रकृतिर्न वा कलयितुं ब्रह्माण्डनिष्पादनम् ।
यस्यानुग्रहवर्जितानि नितरां तत्त्वानि संसुप्तव-
न्नोजाग्रत्यखिलानुभावमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥ १० ॥

सर्वेऽपि यस्य मुखवीक्षणतत्परो यः कस्यापि नैव मुखवीक्षणतत्परश्च ।
जीवातुरेक इह तत्त्वगणस्य सोऽयं जागर्तु संततमधीश्वरः श्रीरामः ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्तुवतां तेषां तत्त्वानामाह यावताम् ।
आकाशवाक् सुसम्बोध्य तत्त्वानि निखिलानि सा ॥ १२ ॥

किं भोस्तत्त्वानि स्तुवत ब्रह्मशून्यं यथा नभः ।
अक्रियं निर्विशेषं च सृष्टये नित्यमक्षमम् ॥ १३ ॥

तस्य शक्तिं परां देवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् ।
प्रकाशिनीं विमर्शाख्यां शुक्लरक्तां स्तुवीत भोः ॥ १४ ॥

तां मायां नैव जानीत चैतन्यरहिता हि सा ।
इयं तु नित्यचैतन्यरूपिणी सुखरूपिणी ॥ १५ ॥

विवेक बुद्धिविकला मायेत्येके वदन्ति ताम् ।
कथं स्फुरेद्ब्रह्म तस्यामनिच्छायां स्वभावतः ॥ १६ ॥

तस्मात्परां चित्कलां तां जानीत ननु चेतसा ।
ब्रह्माभेदस्वरूपेण संस्थितां ब्रह्मणः कलाम् ॥ १७ ॥

चन्द्रस्य चन्द्रिका यद्वद्ब्रह्मणः सा प्रभात्मिका ।
यया संवीक्षितं ब्रह्म चैतन्याय प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥

यथा सुषुप्तिगो जीवो नैव किंचित् क्षमो भवेत् ।
तथा ब्रह्म तया हीनं दीनप्रायमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

विधातुः सैव सावित्री गायत्री च सरस्वती ।
नारायणे स्वयं लक्ष्मीरुमाख्या सैव शंकरे ॥ २० ॥

सीताख्या श्रीरामचन्द्रे रामाख्या सहजा परा ।
यत्र यत्र प्रभुर्याति तत्र तत्रास्य संगिनी ॥ २१ ॥

परा श्रीश्चेतनाकारा चेतयित्री च सा सताम् ।
तां यूयं समुपासध्वं स्तुतिभिर्बहुमूर्तिकाम् ॥ २२ ॥

इयं प्रसन्ना भवतामभीष्टं साधयिष्यति ।
स्वेच्छामात्रेण संवीक्ष्य चिन्मयं ब्रह्मशब्दितम् ॥ २३ ॥

चेतयिष्यति सा देवी ततः कार्यं भविष्यति ।
इत्युदीर्य महारावं तूष्णीमासान्तरिक्षगीः ।
तत्त्वानि तुष्टुवुस्तां च ब्रह्मशक्तिं परात्पराम् ॥ २४ ॥

तत्त्वान्यूचुः

नमस्तेऽम्ब पराशक्त्यै वस्तुसौन्दर्यमूर्तये ।
सकलारम्भसाफल्यजीवातुतममूर्तये ॥ २५ ॥

अमूर्तायै समूर्तायै सहजस्फूर्तये नमः ।
कलाकाष्ठामुहूर्तायै कालशक्त्यै च ते नमः ॥ २६ ॥

कालशक्त्यै क्रियाशक्त्यै स्वभावशक्तिमूर्तये ।
अवस्तुवस्तुरूपायै ब्रह्मचित्यै नमो नमः ॥ २७ ॥

कलायै चित्कलायै ते निष्कलायै कलात्मने ।
सकलायै सरूपायै परशक्त्यै नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥

भेदाभेदविहीनायै विस्फुरन्त्यै परात्मनिः ।
आधाराधेयरूपायै ब्रह्मशक्त्यै नमो नमः ॥ २९ ॥

कर्ता कर्मार्थ करणमाधारः सम्प्रदानकम् ।
उपादानमपादानं यद्रूपं सकलं जगत् ॥ ३० ॥

वयं चैवापि यद्रूपास्तथा क्षरमथाक्षरम् ।
प्रकृतिश्च गुणाश्चैव ब्रह्मशक्तिं नताः स्म ताम् ॥ ३१ ॥

आह्लादिनी शक्तिरपारवीर्या सृष्टिस्थितिविध्वंसकरी समग्रा ।
तस्मिन् परे ब्रह्मणि विस्फुरन्ती ज्ञेया कथं सा तदभिन्नरूपा ॥ ३२ ॥

आश्रयो विषयश्चैव सैवैका निर्विकल्पिका ।
अनाद्यनन्तरूपा च प्रत्यक्चित्तिरुदीर्यते ॥ ३३ ॥

ताम्राश्रिताः स्मः परमात्मरूपिणीमुदारवीर्याममृतात्मरूपिणीम् ।
गुणावसाने मुनयः समाधिभिः संविन्दन्ते या सुविशुद्धसत्त्वगाम् ॥ ३४ ॥

इति संस्तुवतां तेषां प्रसन्ना साभवत्क्षणात् ।
तपा संवीक्षितं ब्रह्मचिन्नभः शून्यमप्युत ॥ ३५ ॥

ईक्षांचक्रे स्वमात्मानंस्फुरन्तं सर्वतोमुखम् ।
तमसः परमालोकप्रकाशात्मानमद्भुतम् ॥ ३६ ॥

अथाविरासीत्पुरुषो यः षोडशकलात्मकः ।
सहस्रशीर्षनयनः सहस्राननबाहुकः ॥ ३७ ॥

सहस्रपादचरणः सहस्रश्रुतिनायकः ।
सहस्रमूर्तिरुद्दीप्तः स्रष्टा स महतोऽप्यभूत् ॥ ३८ ॥

तत आविरभूद्ब्रह्मा देवः शब्दमयः स्वराट् ।
हिरण्यगर्भो भगवांस्ततोऽण्डं समवर्तत ॥ ३९ ॥

ततो विराडभूद्दीप्तः पुरुषः सर्वशंश्रयः ।
एवं प्रववृत्ते विश्वं यदनुग्रहतः पुरा ॥ ४० ॥

सेयं जनक पुत्रीत्वं तव प्राप्ता न संशयः ।
इयं हनिष्यतितरां दैत्यान् भुवनभीषकान् ॥ ४१ ॥

इयं करिष्यतितरां केलीमन्यैरगोचराम् ।
स्वानन्दमात्रसम्पत्तिरसिकानन्दरूपिणी ॥ ४२ ॥

इयं भक्तिमयी भूत्वा भावुकान् रञ्जयिष्यति ।
इयं सयन्मयी भूत्वा भुवनं भूषयिष्यति ॥ ४३ ॥

रघोर्वंशं निमेर्वंशं स्वभावात्यावयिष्यति ।
यावन्ति चरितान्यद्धा राघवेन्द्रः करिष्यति ॥ ४४ ॥

तेषामियमधिष्ठात्री भविष्यति न संशयः ।
गास्यन्ति चास्याश्चरितं गङ्गाजलसुपावनम् ॥ ४५ ॥

महौषधंभवातीनां नारदाद्याः सुरर्षयः ।
रामस्य नाम्नि या शक्तिर्भुवनत्रयपावने ॥ ४६ ॥

सैवास्या नामसम्बन्धाद्यथावदवधार्यताम् ।
यज्ञदानतपस्तीर्थस्वाध्यायाध्यात्मबोधतः ॥ ४७ ॥

कोटिसंख्यं रामनाम्नि पावित्र्यं वर्तते नृपः ।
ततः कोटिगुणं पुण्यमस्या नाम सनातनम् ॥ ४८ ॥

इति मत्वा भजन्त्येनां मुनयो नारदादयः ।
यावन्न कीर्तयेदस्या नाम कल्मषनाशनम् ॥ ४९ ॥

अनेककोटिजप्तोऽपि न रामः फलसाधकः ।
सरय्वाः पारद्वये हि रामधाम प्रतिष्ठितम् ॥ ५० ॥

रामधामोपरि स्पष्टं तव पुत्र्याः परं पदम् ।
यत्र रामोऽपि भगवान् पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ ५१ ॥

स्त्रीवेशेन निजात्मानं वेषयित्वा प्रयात्यहो ।
इयं हि सहजानन्दा तल्लोकस्याधिराज्यभाक् ॥ ५२ ॥

श्रीनन्दनाख्यगोपस्य दुहिता ब्रह्मरूपिणी ।
श्रीराजिमातृगर्भस्य रत्नमद्भुतमाधुरी ॥ ५३ ॥

ऊढा राघवेन्द्रेणैव रससाम्राज्यमूर्तये ।
रमिता रामचद्रेण राजरूपेण भोगिना ॥ ५४ ॥

रसभावमये सौधे दूतीसख्यावलीवृता ।
रसस्यैष परः पन्था नात्र कार्या विचारणा ॥ ५५ ॥

विचारकः पतेदाशु प्रभोर्द्वेषी भवेच्च सः ।
न हीदृशे महाभावे कस्याप्यनाधिकारिता ॥ ५६ ॥

अनेकभवसंशुद्धवीतकमल्षमानसः ।
कोटिष्वपि मनुष्याणां भावकः स्यादसंशयः ॥ ५७ ॥

तस्यैषा चिन्मयी लीला सहजानन्दिनीशितुः ।
भावनापथमभ्येत्य भवदुःखं विनाशयेत् ॥ ५८ ॥

कामानुग्राहिका लीला निष्कामं कुरुते जनम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण शुद्धे भक्तिपथे स्थितम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकोपगीतसीताजन्मोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥



द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

यद्धि मायामयं विश्वं तदर्वाक् सम्प्रतिष्ठितम् ।
नित्यं चिदानन्दमयं सरयूतीरभूमिगम् ॥ १ ॥

अरूपवच्च तत्सर्वं ज्ञानिनामप्यगोचरम् ।
तथापि खलु भक्तानां दृश्यते रूपसुन्दरम् ॥ २ ॥

तेजोमयं रसमयं भक्तिप्रेमोपबृंहितम् ।
इच्छया रामचन्द्रस्य परस्य ब्रह्मणः खलु ॥ ३ ॥

सर्वे तन्मयता याता नामधामवपुर्गुणाः ।
लीलादिकं तत्र विश्वं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ४ ॥

एतद्धि सहजानन्दामनोरथस्य पूर्तये ।
आदावेव स्वयं रामो रमते वै प्रमुद्वने ॥ ५ ॥

यत्र कल्पद्रुमारामवेष्टितं पुरमुत्तमम् ।
अयोध्याख्यं परं स्थानं रत्नप्रासाददीपितम् ॥ ६ ॥

प्राकृताकाररहितैरप्राकृतगुणान्वितैः ।
सर्वभावगुणैराढ्यं कल्याणगुणमन्दिरम् ।
न तं ज्ञानेन पश्यन्ति कुतः कर्मभिरन्विताः ॥ ७ ॥

भक्त्यैकलभ्यमिदमद्भुतमस्य नित्यं धामाद्वितीयममलद्युतिदीप्यमानम् ।
चिल्लोकशब्दितमपारमनन्तमाद्यंप्रत्यग्दृशैकविषयातिगं च ॥ ८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे श्रीशुकजनकसंवादे महाधामवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥



त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अयोध्यां परितो राजन् सरय्वाः कूलयोर्द्वयोः ।
प्रमोदवनसंज्ञं तत्परं धाम निशामय ॥ १ ॥

तदष्टकोणमाख्यातं महामण्डलमुत्तमम् ।
उत्फुल्लपङ्कजाकारं कर्णिकायां पुरी स्वयम् ॥ २ ॥

तन्मध्ये विमलं भाति श्रीमद्दाशरथं गृहम् ।
अनेकरत्नप्रत्युप्तसुवर्णमयमुज्ज्वलम् ॥ ३ ॥

कक्षासप्तकसम्पन्नं वृहद्गोपुरसंयुतम् ।
विशालतरसौवर्णवप्रमितिप्रभासुरम् ॥ ४ ॥

तेजःपुञ्जमयं साक्षात्कोटिसूर्येन्दुजित्वरम् ।
सुवर्णरत्नसंक्लृप्तैरट्टालैर्गगनस्पृशम् ॥ ५ ॥

उत्तुङ्गवलभीदीव्यद्वातायनशतान्वितम् ।
सर्वर्तुसुखदैर्भूरिवेश्मभिः परिशोभितम् ॥ ६ ॥

मणिकुट्टिमसंक्रान्तखेलच्चन्द्रमुखीगणम् ।
जलयन्त्रसुसम्पन्नवेश्माभ्यन्तरवेश्मकम् ॥ ७ ॥

अनेकस्थानिकायुक्तं लोकोत्तरकलामयम् ।
तत्र सम्राणमहारजो राजा दशरथाभिधः ॥ ८ ॥

दीक्षितः सर्वमेधानां देवतातिथिपूजकः ।
राज्यं कुर्वन् सदा भाति रामवात्सल्यवार्निधिः ॥ ९ ॥

तस्य पत्नी सदादीक्षा तदाहितमनोगतिः ।
कौसल्या श्रीमती ज्येष्ठा केकयी तदनन्तरम् ॥ १० ॥

सुमित्रा च ततः पश्चात्तिस्त्रोऽप्यस्यातिसौख्यदाः ।
तस्य पुत्रः स्वयं रामः श्रीमांश्चन्द्राननस्तु यः[1] ॥ ११ ॥

एष एव स्वलीलाभिर्मर्यादापुरुषोत्तमः ।
अनुकूलः सदा सीतास्वाधीनपतिकारतः ॥ १२ ॥

अनन्यप्रेयसीकान्तः श्रुतिधर्मपथेश्वरः ।
प्रमोदवनवासी तु परमः पुरुषोत्तमः ॥ १३ ॥

विशुद्धप्रेमभक्त्यैकप्राप्यरूपो महाप्रभुः ।
सर्वोत्तमः सदा सेव्यो हृदि भावैकवेदिभिः ॥ १४ ॥

यस्य लीला रसमयी सर्वात्माभावभूषिता ।
ब्रह्मधर्मस्य मर्यादा सर्वा यत्र विवर्जिताः ॥ १५ ॥

निःसाधनपथस्थानां पराविर्भावकारणम् ।
प्रमोदवनमात्रैकविश्रान्तसुखवारिधिः ॥ १६ ॥

प्रमोदवनसामग्री प्रेमभक्तिमयी सदा ।
सहजानन्दिनी तत्र मोदिनी चापि विश्रुता ॥ १७ ॥

आह्लादिनी परा शक्तिः सर्वलीलाधिदेवता ।
अनेककोटिलक्ष्मीनामंशिनी परदेवता ॥ १८ ॥

परलक्ष्मीः परब्रह्मरूपिणी परमेश्वरी ।
स एतया सुसम्पन्नः प्रमोदवनचन्द्रमाः ॥ १९ ॥

क्रीडति क्रीडनैर्दिव्यैः परमानन्दसिन्धुभिः ।
वासन्तैः शारदैश्चैव तथान्यै ऋतुरञ्जितैः ॥ २० ॥

सुखितस्य गृहे साक्षात्कल्याणगुणमण्डितः ।
माङ्गल्यायाः सुतः श्रीमान् ज्ञानिनामप्यगोचरः ।
कुतस्तरां कर्मजुषां भक्त्यैकसुलभः प्रभुः ॥ २१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये सीताजन्मोत्सवे श्रीशुकजनकसंवादे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥



---

१. खण्डितं – बड़ौ० ।

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जनक उवाच

कोऽयं सुखितना मास्तिमहाभागो महोन्नतः।
यद्गृहे भगवान् रामः पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः।
नित्यं विहरति स्वच्छैर्विलासैर्बुद्ध्यगोचरैः ॥ १ ॥
का च माङ्गल्यका देवी महोदारा मनस्विनी।
यद्गर्भरत्नमभवद्रामो राजीवलोचनः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

तावेतस्यैव पितरौ परब्रह्मस्वरूपिणः।
ययोर्गृहे करोत्येष रसलीलामयीं क्रियाम् ॥ ३ ॥
अन्यावेतस्य पितरौ [1]कौसल्यादशरथाभिधौ।
यत्र मर्यादामालम्ब्य भवत्येष सुखप्रदः ॥ ४ ॥
एतौ त्वमर्यादरसलीलासुखरसेशितुः।
पितरौ खलु गोपालौ माङ्गल्यासुखिताभिधौ ॥ ५ ॥
कर्दमो देवहूतिश्च पुरा कल्पे बभूवतुः।
ययोः कपिलरूपेण साक्षाद्विष्णुरवातरत् ॥ ६ ॥
योगाचार्येण तेनैतौपरां सिद्धिमवापितौ।
विरजापरपारस्थौ परब्रह्मरसस्पृशौ ॥ ७ ॥
मुक्तौ लीलातनुं धृत्वा पितृभावेन भावितौ।
जुषेते परमं सौख्यं माङ्गल्यासुखिताभिधौ ॥ ८ ॥
तत्रैतयोः कदाचित्स स्वं रूपं मङ्गलालयम्।
प्रभुर्दर्शितवान् रामो निजलोकप्रतिष्ठयोः ॥ ९ ॥
प्रमोदवनमध्यस्थं नीलनीरदविग्रहम्।
द्विभुजं चरणाम्भोजरणन्नूपुरमण्डितम् ॥ १० ॥
मुखचन्द्रपरिभ्राजदलकावलिवेष्टितम्।
बिम्बोष्ठं चारुनयनं मञ्जुलं बालकेलिभिः ॥ ११ ॥
रूपमत्यद्भुतं दृष्ट्वा दम्पती तौ सलालसौ।
बभूवतुरतीवास्य स्वपुत्रत्वाय कर्हिचित् ॥ १२ ॥
तदा सोऽन्तर्हितो भूत्वा व्योमवाण्या जगाद ह।
ज्ञातो वां मयका तावद् दुर्घटोऽसौ मनोरथः ॥ १३ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः।

अपि[1] पूर्वजन्मनि पुत्रो जातो वां कपिलाह्वयः।
ज्ञानशक्त्यैव सम्पन्नो न त्वनेन स्वरूपतः ॥ १४ ॥
ज्ञानक्रियोभययुतं स्वरूपमिदमद्भुतम्।
कथं वां पुत्रभावेन प्राप्नुयादितराभवत् ॥ १५ ॥
अयमप्युदितो भावो वैकल्पमपि नैष्यति।
तस्मादागन्तुके कल्पे युवां सारस्वताभिधे ॥ १६ ॥
अपि मां पुत्रभावेन प्राप्स्यथः पुरुषोत्तमम्।
मुक्तौ लीलातनुं धृत्वा पितृभावेन भावितौ ॥ १७ ॥
प्राप्स्यथः परमं सौख्यं माङ्गल्यासुखिताभिधौ।
तावद्युवां परं भावं वात्सल्यरसरञ्जितम् ॥ १८ ॥
मयि जुष्टं वितनुतामेतद्वां परमं तपः।
अनेन भावरूपेण तपसानन्यगामिना ॥ १९ ॥
अचिरादेव वै पूर्णो भविता वां मनोरथः।
इति दत्त्वा वरं तत्र दम्पत्योर्मुक्तयोस्तयोः ॥ २० ॥
प्रभुः पुत्रत्वमगमन्माङ्गल्यासुखिताख्ययोः।
इत्थं ते कारणं प्रोक्तं तपोः पुत्रोऽभवद्यथा ॥ २१ ॥
वस्तुतस्तस्य साकेते नित्यः परिकरोऽखिलः।
नित्यः श्रीसुखितो गोपो नित्य माङ्गल्यका च सा ॥ २२ ॥
नित्या गावश्च गोपाश्च नित्या श्रीसहजेश्वरी।
आविश्यतां तमत्यर्थं विशुद्धं मुक्तिरूपिणम् ॥ २३ ॥
कंचिज्जीवं समुद्यंति कल्पे कल्पे युगे युगे।
यथैव सुभगा नाम काचिद्ब्राह्मणकन्यका ॥ २४ ॥
ब्रह्मावर्त्ते जनिं लब्ध्वा वैधव्यं समुपागता।
सा जाता रामभक्त्यैव सहजानन्दिनीसखी ॥ २५ ॥

जनक उवाच

कथमेषा कथा ब्रह्मन् श्रोतुं त्वत्तोऽभिकामये।
सहजानन्दिनीसख्या जन्मप्रस्तावनामयी ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच

आसीन्मालवके देशे सूत्रकारस्य कन्यका।
परचक्रोपद्रवेण वेश्याहस्ते गता तु सा ॥ २७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः।

बान्धवा निधनं प्राप्तास्तस्याः कालक्रमेण वै ।
पितृभ्रातृमुखाः सर्वे सानूढैव वयोन्विता ॥ २८ ॥

वेश्याभिस्तु कृता वेश्या नित्यमुद्विग्नमानसा ।
शोचन्ती स्वकुलं भूयः परहस्तगतावशा ॥ २९ ॥

अहो मे क्व गता माता क्व च योनिप्रदः पिता ।
क्व वा भ्रात्रादयः सर्वे हा धात्रा भ्रंशितास्म्यहम् ॥ ३० ॥

किं करोमि क्व गच्छामि वेश्याहस्तगतावशा ।
अपि मे क्वापि भूयोऽपि लप्स्यते कुलमुज्ज्वलम् ॥ ३१ ॥

धिगीदृशीमवस्थां मे देहान्तश्च कथं भवेत् ।
इति चिन्तासमायुक्ता सोद्वेगतरमानसा ॥ ३२ ॥

अकुर्वंती जनैः संगं स्वरविद्यामशिक्षयत् ।
गन्धर्वैः कुशलैस्तत्र नानादेशसमागतैः ॥ ३३ ॥

नृत्यविद्यामशिक्षच्च गायनैर्नृत्यकारिभिः ।
इत्येवं वर्त्तमाना सा पुरुषैः संगवर्जिता ॥ ३४ ॥

तां विद्यां जीवनीकृत्य निजवृत्तिमकल्पयत् ।
कुलस्त्रीणां गतिं दृष्ट्वा तुतोष च मुमोद च ॥ ३५ ॥

ततः कालवशात्सा वै जरती पञ्चतां गता ।
ब्रह्मावर्ते समभवत् कन्यका नन्दशर्मणः ॥ ३६ ॥

आख्यया सुभगा नाम रामभक्तिपरायणा ।
अतीवरूपलावण्यवेशालंकारभूषिता ॥ ३७ ॥

तस्या मातोर्जला नाम महोर्जितवती तु सा ।
ताभ्यां पितृभ्यां सा नित्यं पाल्यमाना दिने दिने ॥ ३८ ॥

ववृधे रूपलावण्यवयःशीलगुणान्विता ।
तस्या लोकोत्तरं रूपं तेजश्चातिमनोहरम् ॥ ३९ ॥

विलोक्य मातापितरौ चिन्तायुक्तौ बभूवतुः ।
अहो इयं वरतमा कन्या कस्मै प्रदीयताम् ॥ ४० ॥

नास्या रूपसमो भर्ता लभ्यते धरणीतले ।
इति चिन्तासमायुक्तौ निद्रां न समुपेयतुः ॥ ४१ ॥

सा तु चन्द्रमुखी कन्या स्वभावादेव सुव्रता ।
रामभक्तिपरा नित्यमेकादश्यामुपोषिणी ॥ ४२ ॥

कार्तिकव्रतिनी चैव माघवैशाखसंयमा ।
औत्पत्तिकज्ञानयुक्ता शुचिः प्रयतमानसा ॥ ४३ ॥

राम रामेति जल्पन्ती श्रीपते राघवेति च।
जगद्भर्तास्तु मे भर्ता काङ्क्षन्तीति मुहुर्मुहुः ॥ ४४ ॥

वयोऽन्वितापि न तरां चक मे प्राकृतं नरम्।
वरचिन्तातुरौ दृष्ट्वा पितरावभिकाङ्क्षती ॥ ४५ ॥

साक्षाल्लक्ष्मीपतिं कान्तं स्वभावादेव तत्त्ववित्।
अथ तस्याः पिता चक्रे काले पाणिग्रहोत्सवम् ॥ ४६ ॥

सुपर्वाख्येन विप्रेण भार्गवेण निरायुषा।
विवाह्य विधिवत्तां तु कन्यकां नन्दशर्मणः ॥ ४७ ॥

पथि स्वसदनं गच्छन् दष्टः कृष्णाहिना मृतः।
सा सुन्दरी तथा वीक्ष्य तमुत्क्रान्तासुमातुरा ॥ ४८ ॥

अनुगन्तुं मतिं चक्रे तावदाहान्तरिक्षगोः।
अलं शोकेन ते तन्वि नासौ भर्ता तवात्मनः ॥ ४९ ॥

भज श्रीरामचरणं त्वं जीवस्व म्रियस्व मा।
यावदायुः प्रवर्तस्व साधुभिः सेविते पथि ॥ ५० ॥

भजन्ती परया भक्त्या स्वात्मभर्तारमच्युतम्।
इति श्रुत्वा व्योमगिरं संनिवृत्ताभवत्ततः ॥ ५१ ॥

पत्युस्तस्यानुगमनात् सुभगा भजनोत्सुका।
विलप्य लोकरीत्या सा मृतं भर्तारमादरात् ॥ ५२ ॥

आनीता स्वपितुर्गेहं भ्रातृभिः पुनरेव सा।
तत्रस्था सा रामं भेजे प्रेम्णा लोकोत्तरेण च ॥ ५३ ॥

उपदिष्टा नारदेन वैष्णवप्रवरेण सा।
षडक्षरं राममन्त्रमुपासांचक्र उच्चकैः ॥ ५४ ॥

वैष्णवं कर्म कुर्वाणा तत्सेवौपायिकं भृशम्।
कायेन मनसा वाचा चक्रे सा वैष्णवं तपः ॥ ५५ ॥

तीर्थेष्वायतनेष्वन्येष्वतिपुण्यतमेषु च।
कुर्वंती विविधां भक्तिं चचारसुभगाह्वया ॥ ५६ ॥

वैष्णवाख्येन तपसा शोषयामास सा तनुम्।
सदाचाररता भक्ता विशुद्धहृदया च सा ॥ ५७ ॥

भक्त्या वशीकृत्य रामं वर्तमाना शुभे पथि।
कदाचित्स्वप्नमध्ये सा ददर्श निजवल्लभम् ॥ ५८ ॥

रामं सहजया युक्तं प्रमोदवनमध्यगम्।
नवीननीलमेघाभं पीताम्बरसमुज्ज्वलम् ॥ ५९ ॥

सुवर्णसूत्रकटककुण्डलादिविभूषितम् ।
अत्युदारमुखं रुच्यं स्वभावमधुराकृतिम् ॥ ६० ॥

तस्य वामाङ्गसंसक्तां सहजानन्दिनीं प्रियाम् ।
कमलाद्यकरां देवीं स्मयमानां गुणोज्ज्वलाम् ॥ ६१ ॥

सयो निर्मुक्तनिद्रा सा प्रोत्थिता तदनन्तरम् ।
अस्मार्षीद् वल्लभं रामं यथोक्तमधुराकृतिम् ॥ ६२ ॥

सहजानन्दिनीप्रेमभक्तिक्रीतं प्रियं तु सा ।
विज्ञाय शुभगा चक्रे सहजाराधने मतिम् ॥ ६३ ॥

भक्त्या समाराध्य तु सा सहजां रामवल्लभाम् ।
रामभक्तिं परां लेभे सुभगा सुभगाकृतिः ॥ ६४ ॥

अन्यदत्यद्भुतं राजंस्तस्या भक्तिस्वरूपके ।
उपलब्धे महारत्ने प्रकाश उपजायते ॥ ६५ ॥

रामभक्तेर्विशुद्धायाः श्रीभक्तेश्च विशेषतः ।
श्रीभक्ती रामभक्तिश्च भक्तिद्वयमुदाहृतम् ॥ ६६ ॥

सहजानन्दिनीरक्तिः श्रीभक्तिरिति शब्दिता ।
श्रीमद्रामचन्द्रे भक्तिः सा वै रामविशेषिता ॥ ६७ ॥

रामभक्तेर्हेतुभूता श्रीभक्तिः प्रेमरूपिणी ।
प्रेमरूपा स्वयं साक्षात्सहजानन्दिनी प्रिया ॥ ६८ ॥

तस्माद्भक्तिं ददात्येषा सहजाऽऽराधिता भृशम् ।
रसिकेन्द्रवरो रामः पुरुषोत्तमशाब्दितः ॥ ६९ ॥

कल्याणगुणसम्पन्न आदिलक्ष्मीरतिप्रदः ।
तदालिङ्गितवल्ली सा तद्वश्यत्वप्रदायिनी ॥ ७० ॥

यावन्नाराधिता सा वै कथं रामः प्रसीदति ।
अतः श्रीरामवश्यार्थं सहजांराधयेद्भृशम् ॥ ७१ ॥

या प्रसन्ना सती सद्यः स्वात्मैकत्वं ददात्युत ।
यथा श्रीसहजा देवी सुभगा प्रीतिवत्सला ॥ ७२ ॥

स्वात्मैकत्वमदात्तस्यै सुभगायै स्वरूपतः ।
सुप्रसन्ना कदाचित्सा आदिलक्ष्मीः परा स्वयम् ॥ ७३ ॥

सुभगायाः परप्रेम्णा प्रत्यक्षा समभूत्ततः ।
अशोकवनमध्यस्था श्रीरामानन्दरूपिणी ॥ ७४ ॥

चन्द्रानना तडिद्गौरी वामे कमलधारिणी ।
दक्षिणेऽभयदानाढ्या सानन्दकलहासिनी ।
मधुरालापिनी रामा वरं ब्रूहीति सादरम् ॥ ७५ ॥

श्रीसहजोवाच

सहजाहं प्रेमरूपा श्रीरामार्द्धाङ्गरूपिणी ।
प्रेम्णानेन तव प्रीता स्वात्मैक्यं दातुमुत्सहे ॥ ७६ ॥

धन्यासि सुभगे देवि त्वं मद्रूपासि भाविनि ।
मया सम्प्रीतया वत्से दत्तं स्वात्मैक्यमेव ते ॥ ७७ ॥

अधुना सुभगेत्याख्या त्वामालम्ब्य भविष्यति ।
या पूर्वं सुभगा नाम सुभगा सैव भामिनी ॥ ७८ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं श्रीः स्वस्य माहात्म्यं दत्वा तस्यै कृपान्विता ।
आगामिनि भवे सैव सुभगाख्या भविष्यति ॥ ७९ ॥

एवं सुखितगोपोऽपि तथा माङ्गल्यका प्रसूः ।
नित्ये धाम्नि स्वरूपेण तिष्ठतः सर्वदा प्रभोः ॥ ८० ॥

परितुष्टः प्रभुस्ताभ्यां भक्त्यात्यन्तविशुद्धया ।
दत्तवान् पितृदात्म्यं [1]देवहूत्यै कर्दमाय च ॥ ८१ ॥

एवं सर्वोऽपि लीलाया नित्यः परिकरः किल ।
आविर्भावतिरोभावैः क्रीडति प्रभुणा सह ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥



पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

प्रत्यक्चितिः परानन्दा सहजानामशब्दिता ।
रामभक्तिः शुभगुणा न तां स्तोतुमहं क्षमः ॥ १ ॥

अनेकनामरूपात्मा स्वानन्दरसकेलिनी ।
चिन्मये परमे धाम्नि प्रमोदवनसंज्ञिनि ॥ २ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

नानाभावमयैर्भोगैः क्रीडत्येषा दिवानिशम् ।
रामेण स्वानुकूलेन चिदानन्दाह्वयात्मना ॥ ३ ॥

अप्राकृतानुभावेन स्वरूपानन्दलीलया ।
सा कदाचिद्दधौ मानं रहःकेलीरसोदये ॥ ४ ॥

क्रीडन्त्येव मनोरम्ये रसकुञ्जे रसात्मिका ।
अन्तर्दधौ सखीलोकैः सार्द्धं लीलामनस्विनी ॥ ५ ॥

ततस्तद्विरहेणैत्र दूयमानहृदुन्मदः ।
छन्नो विरहजैर्भावैः सात्त्विकैश्च स्खलन्मनाः ॥ ६ ॥

चलितुं नाशकत्कुञ्जात्कृती स रसवित्तमः ।
सान्तर्धाय ततः कुञ्जाच्छ्रीनन्दनगृहेऽभवत् ।
राजिन्यां गोपतेर्वध्वां प्रसादसुमुखाकृतिः ॥ ७ ॥

जनक उवाच

कस्माच्छ्रीनन्दनगृहे सहजानन्दिनी गता ।
एषा खलु परालक्ष्मीः प्रत्यग्ज्योतिश्चिदात्मिका ।
एतं मे संशयं छिन्धि त्वं श्रीशुक महामुने ॥ ८ ॥

अहो भाग्यं गोपवंशयस्य तस्य श्रीनन्दस्य ग्रामवास्तोर्जनस्य ।
श्रीराजिन्याश्चैव मातुः परायास्तस्याः श्रीमदादिलक्ष्म्याः स्वयं वै ॥ ९ ॥

किं ताभ्यां सुकृतं तादृक्कृतं लोकोत्तरं तपः ।
कर्म वा दुश्चरं किंचिद्येनैषा कन्यतां गता ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच

विवस्वान् भगवान् देवः प्रभा चैव महामनाः ।
तौ दम्पती प्रचक्राते सहस्रं शरदां तपः ॥ ११ ॥

मन्दाकिन्यास्तटे शुद्धे सुमेरुशिखरोपरि ।
कल्पवृक्षवने रम्ये तस्थतुस्तौ तयोरतौ ॥ १२ ॥

अन्येन च स्वरूपेण भास्वन्मण्डलमूहतुः ।
तयोर्मण्डलवर्ती यो वैकुण्ठसदनेश्वरः ॥ १३ ॥

लक्ष्मीनारायणो देवो युगलात्मा तडिद्घनः ।
तस्याप्यंशी परो देवः श्रीरामः सहजासखः ।
स एव भावितस्ताभ्यां योगयुक्तेन चेतसा ॥ १४ ॥

जनक उवाच

ताभ्यां केनोपदिष्टौ वै श्रुत्यगोचरविग्रहौ ।
परौ श्रीसहजारामौ तडिद्घननिभाकृती ॥ १५ ॥

चिदानन्दघनं ब्रह्म प्रभाभूतं हि यत्तनोः ।
तदेव सहजारामयुग्ममित्थं त्वयोदितम् ॥ १६ ॥

श्रीशुक उवाच

स्वयंभूरेष भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
येन वेदः पुरा सृष्टः शब्दब्रह्ममयोऽखिलः ॥ १७ ॥

स एव भगवानेतं सृष्टवांल्लोकविस्तरम् ।
साक्षात्परम्पराभेदादेकोऽनेकश्च कारणम् ॥ १८ ॥

स एवाण्डं ससर्जेदमपायन्तः स्ववीर्यधृक् ।
तासु गर्भमभूद्भूयो ब्रह्माण्डं यदनन्तकम् ॥ १९ ॥

ब्रह्माण्ड्यप्सु निहितमापस्तद्विश्वतेजसि ।
स वैश्वतेजसो वह्निः संस्थितः परमानिले ॥ २० ॥

परमानिल आसीनः परमे व्योम्नि कार्यशः ।
एतद्विश्वत उद्भूतं महामनस उद्भवात् ॥ २१ ॥

तन्महाहंकृतौ व्याप्तं महा महति सा तता ।
महा महन्महामाया महाप्रकृतिसंज्ञके ॥ २२ ॥

अव्यक्ताख्ये परे व्योम्नि प्रधाने सर्वकारणे ।
अव्यक्तमन्तरंगायां महाशक्तौ परात्मनः ।
परमात्माक्षरं ब्रह्म वेदानां स्थानमुत्तमम् ॥ २३ ॥

समन्वयो यत्र गिरां पराणां वेदाख्यानामुपनिषदाह्वयानाम् ।
तदक्षरं ब्रह्मविदो वदन्ति यद्वेत्तारस्तं परमाप्नुवन्ति ॥ २४ ॥

परमः पुरुषो रामो भगवान् पुरुषोत्तमः ।
यतो भुवनमुद्भूतं यस्मिन् परिसमाप्यते ॥ २५ ॥

यतो वेदाश्च सम्भूतास्तद्ब्रह्मास्य प्रभामयम् ।
इति ज्ञात्वा स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २६ ॥

तदंशभूतः सकलं सृष्टवान् भुवनं विधिः ।
यः सोऽण्डं व्यसृजत्पूर्वं तत्र जातः स्वयं च यः ॥ २७ ॥

विवस्वानेष भगवान् द्योतमानस्त्रयीमयः ।
स्वयंभूर्भगवान् सर्वमुवाचैवं विवस्वते ॥ २८ ॥

विशिष्टं ब्रह्मणस्तत्त्वं साङ्गोपाङ्गरहस्यकम् ।
तस्मै तन्त्रं समाचख्यौ कृत्स्नं सकर्मपद्धतिम् ॥ २९ ॥

ततश्चोपनिषत्सारं ज्ञानयोगं तपोयुतम् ।
भक्तिशास्त्रं रसमयं सोपासनमुदाहृतम् ॥ ३० ॥

तत्त्वं निदर्शयामास करामलकवत्स्फुटम् ।
सोऽशः साक्षात्स्वयं रामस्यांशो देवस्त्रयीमयः ॥ ३१ ॥

स्वयं चाधिजगे सर्वं विवस्वान् सकलाः श्रुतीः ।
साङ्गाः सहरहस्याश्च पृथक्संस्थाक्रियामयीः ॥ ३२ ॥

शब्दब्रह्माखिलं ज्ञात्वा दृष्टिं चक्रेऽर्थगोचराम् ।
समासव्यासतो जज्ञे रामं सर्वार्थरूपिणम् ॥ ३३ ॥

यावन्तो वै मताः शब्दास्ते सर्वे रामवाचकाः ।
रामो विशुद्धतत्त्वं तद्रामाख्यं धाम शर्मभृत् ॥ ३४ ॥

राममुष्य[1] तपश्चक्रे विवस्वान् प्रभया सह ।
निराहारौ जितात्मानौ जितेहामुष्मिकस्पृहौ ॥ ३५ ॥

सहस्रवर्षपर्यन्तं तपोनिष्ठौ बभूवतुः ।
तयोराविर्बभूवासौ रामः सहजया सह ॥ ३६ ॥

तौ विलोक्य प्रभासूर्यौ लोकोत्तरगुणाकरौ ।
प्रेम्णा श्रीसहजारामौ शृङ्गाररसविग्रहौ ।
तयोरासीन्मतिर्भूयः पुत्र ईदृग्भवेत नः ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच

इमं मनोरथं प्रादामदित्यै कश्यपाय च ।
इयं तु सहजा देवी प्रिया मम रसात्मिका ॥ ३८ ॥

भवित्री युवयोः कन्या पराश्रीर्विश्वतैजसी ।
अहं चेश्वरभावेन प्राप्स्यामि भवतोः कुलम् ।
भूत्वा जामातृरूपेण गुप्तो जारव्रते स्थितः ॥ ३९ ॥

विवस्वानुवाच

भूत्वापि प्रकटोऽस्मासु जारभावेन किं प्रभो ।
भविष्यसि श्रीसहजा यतस्तव सदा वधूः ॥ ४० ॥

भवता लालितां देवीं नित्यं परमभूषिताम् ।
कं स्वादं लप्स्यसे राम नित्यसिद्धास्वरूपतः ॥ ४१ ॥

श्रीराम उवाच

अधिकोऽत्र रसानन्दो भावे स्नेहरसात्मके ।
दौर्लभ्यं नाम स्पृहाया वर्द्धनं परमं मतम् ॥ ४२ ॥

स्पृहा संचारिणी स्नेहे पूर्णभावविभाविनी ।
अतोऽयं रसभावो वै भविता वां गृहेषु नौ ॥ ४३ ॥

---

१. उपसर्गरहितल्यबन्तशब्द आर्षप्रयोगः ।

इत्युक्त्वा सप्रसादेन गते रामे स्वरामया ।
पूर्णचित्तौ निववृतुस्तपसस्तौ च दम्पती ॥ ४४ ॥

प्रेमाणं समुपाश्रित्य मनोनिर्वृतिमीयतुः ।
अतोऽस्मिन्नन्तरे रामा सहजा सुविलासिनी ॥ ४५ ॥

श्रीरामे रमणे मानमाते ने रसवर्द्धनम् ।
तस्मिन् माने स्वस्वरूपान्तिधाय व्रजेश्वरी ॥ ४६ ॥

अधिकानन्दरतये लुभ्यमानमनाः सदा ।
नन्दनस्यगृहे जाता देवस्य श्रीविवस्वतः ॥ ४७ ॥

विवस्वान् भगवानेष गोपः श्रीनन्दनाह्वयः ।
प्रभा च राजिनी माता तद्गृहे सहजाभवत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये-सीताजन्मनि श्रीशुकजनकसंवादे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥



षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

सारस्वतेऽन्तरे प्राप्ते विवस्वान् भगवान् स्वयम् ।
आसीच्छ्रीनन्दनो गोपो राजिनी च प्रभाभवत् ॥ १ ॥

तयोर्गृहमलंकर्तुं बभूव परमा रमा ।
अशेषरूपलावण्य माधुर्यगुणवारिधिः ॥ २ ॥

रामाश्यामाप्रभृतिभिः [1]सखीषोडशभिरन्विता ।
शुक्लायां माघपञ्चम्यामेके तज्जन्म संजगुः ॥ ३ ॥

परे वैशाखशुक्लायामपरे फाल्गुनस्य च ।
ज्येष्ठा चापि कनिष्ठापि उभे माधुर्यभूषिते ॥ ४ ॥

लक्ष्म्यादिसेविते नित्यं ब्रह्मादिसुरवन्दिते ।
सारस्वतेऽन्तरे तस्याः पूर्णं रूपं जगुर्बुधाः ॥ ५ ॥

तदा वसन्तपञ्चम्यामेषा जनिमती व्रजे ।
जातमात्रैव सा रेजे श्रीनन्दनगृहे शुभा ॥ ६ ॥

१, पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

प्रभामण्डललक्ष्येण अनुभावेन भूषिता ।
अस्यां संजातमात्रायां क्षितिरासीच्छुभान्विता ॥ ७ ॥

जलानि सुप्रसन्नानि सुज्वालश्चहुताशनः ।
शुभस्पर्शंस्तथा वायुर्वाति त्रिविधसुन्दरः ॥ ८ ॥

मनांसि परभक्तानां श्रीरामस्य पदस्पृशाम् ।
आसन्नतिप्रसन्नानि ब्रह्मबोधोदयाद्यथा ॥ ९ ॥

केचन ननृतुर्गोपाः केचिद्गोपालका जगुः ।
केचिच्च चिक्षिपुर्भूयो दध्यक्षतशुभाञ्जलीन् ॥ १० ॥

गोपिकाः स्वस्वगेहेभ्यः सदूर्वादलपाणिकाः ।
सामत्राः साक्षतकरा आजग्मुः समलंकृताः ॥ ११ ॥

गावः श्रृङ्गारिता गोपैर्वासोऽलंकारधातुभिः ।
वृषा वत्सावत्सतर्यः सर्वा एव महीपते ॥ १२ ॥

आयान्तीनां च यान्तीनां गायन्तीनां च यूथपा ।
नृत्यन्तीनां वाद्यतीनां गोपीनामुत्सवोऽभवत् ॥ १३ ॥

तस्मिन् मङ्गलभूयिष्ठे समाजे व्रजयोषिताम् ।
इन्दिरा व्यचरत् साक्षात्स्वयं निर्मञ्छनीकृता ॥ १४ ॥

रत्नकाञ्चनराशीनां मिषेण परितश्च सा ।
आत्मानमुपदीकृत्य परितः पर्युपस्थिता ॥ १५ ॥

आगच्छन्त्यो व्रजमृगदृशो नन्दनाख्यस्य गेहे-
मार्गे कूजद्वलयरसनानूपुरद्वन्द्वघोषैः ।
श्रीराजिन्या अविरतमलचक्रिरे द्वारवेशं-
सम्पद्देव्याः किमपि चतुरंगाख्यसेना इवोग्रा ॥ १६ ॥

दिशां प्रसादेन मनोहरेण सितांशुकोटिद्युतिदीपितानाम् ।
जगज्जनेनानुमितानि तस्याः सौभाग्यभाग्योद्भवनानि भूयः ॥ १७ ॥

तदुत्सवे समायाता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
पृथक् पृथग् जगुर्गाथा इमास्तत्र विचक्षणाः ॥ १८ ॥

ब्रह्मोवाच

जय जय लीलाललिते गुणगणकल्याणयुते ।
कृपय सुभव्ये सहजे मयि भवसर्गाकुलिते ॥ १९ ॥

व्रजवसुधासंपदियं प्रकटितरूपा भवति ।
वितरतु भक्तिं सहजे परमरमा रामवधूः ॥ २० ॥

रसमयदेहार्द्धजुषं किमपि परब्रह्ममयीम् ।
रघुवररामस्य रमां रमणवतीं तां कलये ॥ २१ ॥

चिरमुदयस्वाभेरणा सुखितगवेन्द्रस्य भुवः ।
क्वचन भवित्रीं जनके जगदुदथायाम्युदिता ॥ २२ ॥

वाण्युवाच

परधामतः प्रमुदकाननाज्जयत्ति संगता त्वं नन्दनालयम् ।
परमशोभया शोभनैर्गुणैः किमपि मण्डपस्युच्चकैर्जगत् ॥ २३ ॥

विधिपयोधिजाः पुष्टिकान्त यस्तदनुकीर्तिस्तुष्टिरिला चोर्जिका ।
तदनु विधिका परीचायाविधिका परिलसन्ति माया च ते शक्तयः ॥ २४ ॥

निजसुशक्तिभिः संगता पराश्रयगुणान्विता स्वामिनी प्रभोः ।
स्नपयसिप्रियं लोचनाम्भैर्विरहवेदनारुद्धमानसे ॥ २५ ॥

किमपि जन्मनि गोपकुले सरसलीलया राममञ्चितुम् ।
त्वमथ राजसे रासराज्येश्वरी परमभावकानप्रेम दापितुम् ॥ २६ ॥

महादेव उवाच

आविर्भावं प्राप्य महेशी ब्रह्मभूमौ श्रीराजिन्या-
गर्भमणित्वं प्रतिपद्य सम्यङ्मानो व्यरचि भवत्या
श्रीरामस्य छन्दक्रीडां खलु सहजानन्दात्वम् ।
कर्मेत्येके कालमथैःके निगदन्ति दैवं चान्ये
स्वाभावमपरे प्रवदन्ति ब्रह्मविद्वांसो मे सद्यः ॥ २७ ॥

सुमुखीः त्वां जानन्त्येके निर्गतकालाभिपाशाः
श्रीमत्सहजानन्दा श्रीराजिनीगवेन्द्र-

प्रेमानन्दस्तोममयी परमाद्या यस्मै मातः
कृपयसि सुलभस्तस्येशः ।

योगीन्द्राणां चेतसिदुर्लभतरस्त्वेष मातः
परमं प्रमोदविपिनं तव धाम स्वेच्छानन्दावसे रसानन्दागारं
तत्र क्रीडन्तीं त्वां सुखितात्मजसंगे ये सेवन्ते तेषां मुक्तिस्तृणतुल्या ॥ २८ ॥

इत्थं गाथाः प्रगायन्तो नन्दतुर्जातसम्भ्रमाः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ये चान्ये देवतोत्तमाः ॥ २९ ॥

सर्वे स्त्रीवेशिनो भूत्वा ननृतुर्नन्दनाङ्गणे ।
श्रीनन्दनः प्रसन्नात्मा तेभ्योऽदात् पटभूषणे ॥ ३० ॥

भोजनं चापि विविधं परमान्नं सुपेशलम् ।
ते तृप्ता मानितास्तुष्टाः प्रायुञ्जन् शुभदाशिषः ॥ ३१ ॥

चिरं रमय रामेन्दुं चिरं कुरु यशो नवम् ।
अलंकुरुपितुर्गेहं श्रीनन्दनमहात्मनः ।
चिरं श्रीराजिनीमातुरङ्कयाभूषय त्विषा ।। ३२ ।।

यागोचरा योगिमनोविहंगैर्यागोचरा कविजनप्रयोगैः ।
श्रीनन्दमूर्तिः सहजाभिधाना निःसाधना त्वं सुलभा भवेति ।। ३३ ।।

अथ त्रयोदशे ह्यस्या नन्दनो जातसम्भ्रमः ।
ब्रह्मादिभिर्योगिवर्यैर्नामोत्सवमकारयत् ।। ३४ ।।

एषा रमयतो चित्तं तेन रामेति कीर्तिता ।
सहैव जाता महसा तेनैषा सहजा मता ।
एवमादीनि नामानि सुगायन्ति पुराविदः ।। ३५ ।।

सा जातमात्रा गुणनित्यलीलाविभूतिसंस्फूर्तितरूपमाधुरी ।
लोकान्प्रमोदैः पूर्णान् कुर्वती हुदिने दिने सा ववृधे स्वभावतः ।। ३६ ।।

प्रकुर्वती नित्यसखीभिरन्विता नानाविधान् शैशवकेलिसंकुलान् ।
आह्लादयन्ती च तरून्खगान्मृगान्सावासिधेः शारदचन्द्रिकेव ।। ३७ ।।

जन्मोत्सवं समाप्येत्वं स्वं स्वं विष्टपमाययुः ।
ब्रह्मादयो हर्षिताश्च स्तुवन्तः सहजेश्वरीम् ।। ३८ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे श्रीशुकजनकसंवादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५६ ।।



सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एवं यः शृणुयान्नित्यं सीताजन्मोत्सवं परम् ।
स भवेज्जीवन्मुक्तो वै सएव राघव प्रियः ।। १ ।।

एकधा नन्दनगृहे द्विधा च भवतो गृहे ।
विज्ञाय सहजोत्पत्तिं कृतकृत्यः प्रजापते ।। २ ।।

सा चैवं राजहंसी व्रजजननयनानन्दसंदोहदात्री ।
सीतेत्याख्या प्रसिद्धा नृपवर सहजानन्दिनीति प्रगीता ।
श्रीनन्दनस्य प्रमुदवनपरा नित्यलक्ष्मीरनन्ता ।
चित्ते संचिन्तनीया सपदि सुमहती या प्रसिद्धा चिकीर्षो: ॥ ३ ॥

नित्यधाम च माहात्म्यं प्रमोदवनसंज्ञितम् ।
यः शृणोति नरस्तस्य कल्याणमुपजायते ॥ ४ ॥

सहजां शृणुयाद्यश्च नामलीलागुणान्विताम् ।
सहजानन्दिनीनाथं तथा रघुकुलोद्वहम् ॥ ५ ॥

नामलीलागुणैर्युक्तं जीवन्मुक्तः स वै भवेत् ।
सुखितस्य च माहात्म्यं पूर्णस्नेहस्य गोपतेः ॥ ६ ॥

माङ्गल्यायाश्च पुण्याया महिमार्णवो वै महान् ।
ययोस्तनयतां प्राप्तः श्रीरामो रमणोसखः ॥ ७ ॥

नित्यलीलासमायुक्तः प्रमोदवनचन्द्रमाः ।
सहजानन्दिनीसीतापार्श्वद्वयसुशोभितः ॥ ८ ॥

रासमण्डलमध्यस्थः सखीभिः परिवारितः ।
सरयूपुलिने रम्ये रासलीलां करोति वै ॥ ९ ॥

अत्र विष्णवादयः सर्वे सखीभावसमन्विताः ।
पश्यन्ति सादरं प्रेम्णा राघवेन्द्रं परात्परम् ॥ १० ॥

हर्षिताः स्वस्वचेतसि ते रोमाञ्चितविग्रहाः ।
लुठन्ति राघवेन्द्रस्य चरणोपान्तविह्वलाः ॥ ११ ॥

मुहुर्मुहुर्नतिं कृत्वा स्तुतिं कृत्वा मुहुर्मुहुः ।
दण्डवत् प्रणताः सर्वे राघववं रसिकोत्तमम् ॥ १२ ॥

पुनुरुत्थाय ते सर्वे ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
सपर्यां राघवेन्द्रस्य चक्रुः प्रेमसुविह्वलाः ॥ १३ ॥

कृतार्थं मन्यमानाः स्वं ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
दर्शनाद् राघवेन्द्रस्य अयोध्यायाश्च दर्शनात् ॥ १४ ॥

सरयूदर्शनाच्चैव प्रमोदवनदर्शनात् ।
प्रेमविह्वलिताः सर्वे वभूवुः सहसा क्षणत् ॥ १५ ॥

एवं ब्रह्मादयो देवा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
लीलां श्रीराघवेन्द्रस्य प्रेम्णा पश्यन्ति प्रत्यहम् ॥ १६ ॥

इमां प्रेममयीं लीलां महोदरान् गुणांस्तथा ।
शृणुते राघवेन्द्रस्य प्रेमभक्ति लभेत सः ॥ १७ ॥

सहजायां रतिं प्राप्य जीवन्मुक्तो भवेत्स्वयम् ।
ययोऽर्गृहे राजते नित्यं प्रेमानन्दमयी परा ।। १८ ।।

सहजानन्दिनीनाम्नी लक्ष्मीकोटिगुणान्विता (धिका) ।
महालक्ष्मीः श्रीरामस्य रमणी रमणीयमा ।। १९ ।।

कस्तयोस्तुल्यतां यायाद्राजिनीनन्दनयोर्वै ।
सहजानन्दिनीस्पर्शलालनात्तीर्थभूतयोः ।। २० ।।

तव नृप सदने च श्रीमदाद्येन्दिराया जनुरितिश्रृणुप्राद्यो हर्षवित्तैकचित्तः ।
स भवति परलीलाप्रेमजनान्दसिन्धुप्रविततलहरीणां वृन्द आप्लुत्य तुष्टः ।।२१।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे श्रीशुकजनकसंवादे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५७ ।।



अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जनक उवाच

अथाश्रावय मे ब्रह्मंल्लीलां रसमयीं पराम् ।
प्रमोदवनराज्ञ्याः श्रीसहजायाः सनातनीम् ।। १ ।।

मानस्य हेतुमाख्याहि परे धाम्नि विलासिनोः ।
येनान्तर्द्धिमगादेषा द्वैतीयिकभावावधिः ।। २ ।।

एनां हि श्रृण्वतो नाम मम श्रीसहजाश्रयाम् ।
कथामद्भुतरूपां वै औत्कण्ठ्यं वर्द्धतेऽनिशम् ।। ३ ।।

श्रीशुक उवाच

मानस्य[1] कारणं वक्ष्ये सहजाया विशेषतः ।
इयं रहस्यगा लीला गोपनीया प्रयत्नतः ।। ४ ।।

कदाचित्सहजानन्दा प्रमोदवननायिका ।
उत्फुल्लमालतीमल्लीमाधुरीमधुरे मधौ ।। ५ ।।

अत्युत्कण्ठावशात्कान्ते प्रेषयामास दूतिकाम् ।
सा तं कुन्दवने स्थाप्य समेता सहजान्तिके ।। ६ ।।

---

१. नास्ति बड़ौ० ।

दूतिकोवाच

अहमानीय रामेन्दुं कान्तं कुन्दवने तव ।
स्थापयित्वा समायाता सहजेऽस्मि त्वदन्तिके ॥ ७ ॥

त्वमिदानीं व्रज स्वैरं कामुकं रामवल्लभम् ।
त्वदागमनकाङ्क्षाभिरनिमेषविलोचनम् ॥ ८ ॥

तत्र गत्वा कुन्दवने स्वैरं विहर कामिनम् ।
इदानीं मा विलम्बिष्ठाः श्रीरामस्तत्रसीदति ॥ ९ ॥

त्वदाननं समालोक्य सद्यो वितिमिरीकृताः ।
दिशो निभालयन्नास्ते चकोरीकृतलोचनः ॥ १० ॥

तत्र तं सहसा गत्वा रमयस्व रमत्मिके ।
त्वयैकरमणाकाङ्क्षापरिसक्ताखिलग्रहम् ॥ ११ ॥

इति दूतीवचः श्रुत्वा प्रिया गन्तुमसज्जत ।
सहजानन्दिनी साक्षाद्रतिकटि गुणाधिका ॥ १२ ॥

अथावर्तनमातेनुस्तस्याः सख्यो मुदान्विताः ।
कुकुंमैः कालागुरुभिः कस्तूरीभिः सचन्दनैः ॥ १३ ॥

ततस्तां स्नपयांचक्रुः स्नानकर्मविचक्षणाः ।
सुगन्धिभिः सुमधुरैः स्रोतोभिः साखोदकैः ॥ १४ ॥

तस्याः स्नान्त्याः सुरभिसलिलान्युद्‌गतानि प्रणालपा-
सौरभ्योद्‌गारिभिरतितरां भूरिवर्णैः प्रवाहैः ।
चक्रुस्तृप्तिं बहुविधां तस्याः स्नान्त्या मार्गेषु गत्वा-
चित्तेष्वन्तः सकलसुखमयीं प्रेमवृत्तिं प्रसार्य ॥ १५ ॥

स्नातायां धूपयामासुर्धूपैः कालागुरूद्भवैः ।
तस्याः केशानार्द्रवरान् सख्यो धूपनपण्डिताः ॥ १६ ॥

सुधूपिताश्चिकुराः श्यामवर्णाः स्निग्धच्छायाः सहजाया विरेजुः ।
मुखाम्बुजोद्‌गारिणिसौरभौघैः सुसंगता भ्रमराणामिवाल्पः ॥ १७ ॥

अथैनां भूषयामासुः सख्यो भूषणदक्षिणाः ।
यावकं पदयोर्धृत्वा विचित्राकारतावहम् ॥ १८ ॥

साङ्गुष्ठमङ्गुलिगणं मण्डयांचक्रुरुच्चकैः ।
चटकध्वानिनी भूषा निधाय विविधवत्स्त्रियः ॥ १९ ॥

तुलाकोटीर्निधापाङ्घ्रयोः किङ्किणी पर्यभूषयन् ।
मञ्जरीकाश्च संलग्नाः कलहंसनिनादिनीः ॥ २० ॥

मध्ये च मेखलांधृत्वा पर्यबध्नन् गुणेन ताम् ।
मुक्तासरं मणिसरं तथा काञ्चनमालिकाम् ॥ २१ ॥
उच्चैःस्तवकहारं च तथान्याश्चैव मालिकाः ।
उरोजयोर्न्यधुस्तस्यास्तथा कण्ठसराधिकम् ॥ २२ ॥
सौभाग्यसूत्रमेवापि कण्ठे कम्बुसमत्विषि ।
करयोर्वलयान् प्रास्य भुजयोरङ्गदे न्यधुः ॥ २३ ॥
नसिभूषां प्रविन्यस्य श्रुत्येर्भूषागणं व्यधुः ।
तारकागुणसंशोभिमुक्ताफलगुणेन ताः ॥ २४ ॥
आननं मण्डयांचक्रुस्तस्याः सख्या विचक्षणाः ।
कबरीं गुंफयामासुः पट्टसूत्रान्तरस्थितैः ॥ २५ ॥
मणिभिर्मौक्तिकैश्चैव गजमुक्ताफलैस्तथा ।
सीमन्तं पूरयामासुर्युक्तं सिन्दूररेखया ॥ २६ ॥
गजमुक्ताफलैःस्थूलैः संध्याभ्रमिव तारकैः ।
ललाटं मण्डयांचक्रुस्तस्याः कुंकुमपत्रकैः ॥ २७ ॥
कस्तूरी विंदुना चैव महाभाग्यैकमन्दिरम् ।
तदोष्ठं रञ्जयामासुर्यावकैः पल्लवोयमम् ॥ २८ ॥
कञ्चुकीमर्पयामासुः कुचयोः सौरभान्विताम् ।
ताम्बूलबीटिकां दत्त्वा रञ्जयामासुराननम् ॥ २९ ॥
तां परीधापयामासुश्चीरं सुमहदुज्ज्वलम् ।
सोत्तरीयं महारत्नमौक्तिकस्तबकाञ्चितम् ॥ ३० ॥
एवं विभूषमाणायामस्यामालार्जनैभृशम् ।
अगच्छन्यधुयामिन्या याम एकः क्षणाधिकः ॥ ३१ ॥
तावत्तत्र स्थितो रामो विषण्णः कामसायकैः ।
युवावसन्तसंफुल्लमाधवीसौरभाविलैः ॥
उद्वेजितमनाः श्रीमान् सहसा पर्यचिन्तयत् ॥ ३२ ॥
दूती तत्र गता न वा गुणवतो याताथवा मानिनो
शुद्धा वापि विलम्बिताङ्गवसनालङ्काररागादिभिः ।
प्राप्ता वातिघनेप्रमोदविपने प्राप्ता मुहुः सम्भ्रमं-
हंहो हंत हतः कथं नु सहजानन्दाद्यमां संगता ॥ ३३ ॥
व्योमाधूमो दृश्यतेऽद्य प्रभातनुरुचवो जाग्रतोविस्फुलिङ्गः-
हन्तेदं चन्द्रबिम्बं ज्वलति हुतवहश्चन्द्रिका तस्य कीला ।
यूनः प्राणा हवींषि स्वरति पिकवाक् पञ्चमालापमन्त्रैः-
कालोऽयं साधु यज्वा कुसुमसरविधिश्चन्दनोत्था नीलत्विक् ॥ ३४ ॥

हा सीते सहजे सितासिततमे साकेतलक्ष्मीपरे-
पूर्णे चिन्मयचित्तचन्द्रकिरणश्रेणीचमत्कारिणीः ।
दत्तप्रेमरसावलम्बनमहो कान्ते जनं मादृशं-
कामक्रूरकठोरसायकहतिं कृत्वा भृशं मा कुरु ॥ ३५ ॥

गुणवति तावकीने मधुहासविशिष्टमुखेन्दुरुचिप्रसरे-
मधुसमयेऽपराधरहिते प्रणवैकपराजितके रमणे ।
वितथमियतमीश्वरि विलम्बमिमं न कुरुष्व कदापि परं-
न सहितिकालशक्तिरतिमात्रवियोगभवं परितापमिमम् ॥ ३६ ॥

इत्थं प्रलपमानस्य तस्य पूर्णमहेशितुः ।
कालशक्तिः स्वानुचरी प्रभुं साक्षादुवाच ह ॥ ३७ ॥

कालशक्तिरुवाच

अहं कृष्ण सखी नाम तावकीना गुणोदया ।
त्वमिच्छसि यमानन्दं तं साक्षादुपसादये ॥ ३८ ॥

कालशक्तिरहं कृष्णा ज्ञानशक्तिस्तु जानकी ।
क्रियाशक्तिः कला नाम प्रेमशक्तिश्च मोदिनी ॥ ३९ ॥

अन्याश्च शक्तयोऽनन्ता योषिद्रूपमुपाश्रिताः ।
प्रभुं गुणनिधिं कान्तं भवन्तं पर्युपासते ॥ ४० ॥

सर्वासां रञ्जनं कार्यं प्रभुणा भवता प्रभो ।
एतद्धि सौष्ठवं नाथ स्वामिनः स्वामिनीष्वपि ॥ ४१ ॥

इति ब्रुवाणां तां कृष्णां कोटिचन्द्रावलिप्रभाम् ।
इन्द्रनीलमणिप्रख्यनीलमेघतनुद्युतिम् ॥ ४२ ॥

ज्योत्स्नायतीं तडिल्लेख्यां स्वर्णकोटितनुप्रभाम् ।
सर्वावयवशोभाढ्यां हसन्तीं कामुकीं प्रियाम् ॥ ४३ ॥

वीक्ष्य कान्तः स्थितो दृग्भ्यां सद्यः कामविमोहितः ।
अविध्यत चलैस्तस्याः कटाक्षैः काममार्गणैः ॥ ४४ ॥

ततस्तयातिकामुक्या समयुज्यत कामुकः ।
रन्तुमेकान्ततः स्वैरं सुखैर्निधुवनोद्भवैः ॥ ४५ ॥

कालशक्तिः स्वयं साक्षात् सा तु कृष्णा गुणोदया ।
अदृश्यमकरोत्कुञ्जं तस्मिन् कुन्दवने महत् ॥ ४६ ॥

दिव्यं तमः समसृजत् क्रीडास्थानं न्यगूहयत् ।
तत्र रेमे तया रामश्चिदानन्दगुणाकरः ॥ ४७ ॥

नवं निधुवनं प्राप्य कृष्णायां रामकामुकः ।
तद्गुणैः सहजां गौरीं त्रिसस्मार वशंवदः ॥ ४८ ॥

अथ श्रीसहजानन्दा दूतीवचनलोभिता ।
कृताङ्गविविधाकल्पा रन्तुं पर्यचलद् गृहात् ॥ ४९ ॥

सखीभिः सहिता साक्षात्सहजानन्दिनी स्वयम् ।
विवेश विपिनं घोरं प्रमोदवनगह्वरम् ॥ ५० ॥

न प्राप तिमिरच्छन्नं कुन्दकुञ्जवनं महत् ।
मधुचन्द्रोदयज्योत्स्नागोचरं यावदीक्षितम् ॥ ५१ ॥

तावदन्वेषितं भूयः प्रमोदविपने तया ।
सखीभिः सहिता साध्वी सहजानन्दिनी स्वयम् ॥ ५२ ॥

बभ्राम विपिनं तत्र पृच्छन्ती खलु तांस्तरून् ।
अथ तत्र तृषार्ता सा पीत्वा श्रीसरयूजलम् ॥
विलोक्य दिव्यया दृष्ट्या प्रोवाच वचनं सखीः ॥ ५३ ॥

श्रीसहजोवाच

कियद्यावदिदं घोरं वनमद्य गवेषितम् ।
गौर्या मया ततो ज्ञातं रामः कृष्णामुपासते ॥ ५४ ॥

कृष्णा च जानकी चैव कला चैव हि मोदिनी ।
एताः पिबन्ति कान्तास्यसारं प्रेमसुधारसम् ॥ ५५ ॥

इत उत्थाय सख्यश्चदीपिकापाणयोऽग्रतः ।
यात कुन्दवनं सर्वा ध्रियतां कामुकाधयः ॥ ५६ ॥

धृत्वा बद्ध्वा समानीय दण्ड्योऽयं वश्यकामुकः ।
इत्युत्साहवती गोपीरनुयुज्यस्वयं च सा ॥ ५७ ॥

अनुकुन्दवनं सद्यः सहजा पर्यगच्छत ।
अथ कृष्णा भयत्रस्ता सहजायाः समागमात् ॥
उवाच रमणं वाक्यं दृढबन्धरतिस्थिता ॥ ५८ ॥

कृष्णोवाच

इदं कुन्दवनं नाम सहजाया विहारभूः ।
स्थातव्यं नो चिरमिह स्वस्थानस्थोऽखिलः शुभः ॥ ५९ ॥

संहजायाः सखीनां वै आयान्तीनामितस्ततः ।
मञ्जीरकिङ्किणीघोषैर्व्याप्ता कुन्दवनस्थली ।
नात्रास्थातुमितो युक्तं पारक्ये कुन्दकानने ॥ ६० ॥

श्रीराम उवाच

मनोऽभिलषितं देशं तमेव नय मां प्रिये।
इत्युक्तः स तया रामो नीतः स्वस्थानमादरात् ॥ ६१ ॥

योगशक्त्या स्वया तत्र निभृतं योगरूपया।
दृढबन्धस्थितावेवैतौ कृष्णारामकामुकौ ॥ ६२ ॥

विकसद्भूरिमन्दारं कृष्णावनमुपेयतुः।
अथ श्रीसहजानन्दा दूती निर्दिष्टवर्त्मना ॥ ६३ ॥

अगात् कुन्दवने कुञ्जेयत्ररामः पुरा स्थितः।
कामुक्या कृष्णया युक्तः कुर्वाणः सुरतोत्सवम् ॥ ६४ ॥

तत्र गत्वा सखीवृन्दैः साकं श्रीसहजेश्वरी।
व्यचष्ट रतिचिह्नानि मध्ये कुञ्जेयथोदिते ॥ ६५ ॥

नवकिसलयशय्या मर्दिना दृश्यतेऽसौ निधुवनपरिवर्तावर्त संवर्तनर्तैः।
विलुठति मणिमाला मेखलायुक्तसूत्राविगलितवलयार्धं चाप्यहोकुञ्जधूलौ ॥६६ ॥

मुहुरिति विमनस्का भूपउद्वीक्ष्य दूत्या-
मुखमवनतमुच्चैर्लज्जया धिग् धिगाह।
अधवति ननु धिङ्मां त्वन्मृषोघायि यातां-
धिगधरमणमेनं योपां वृषलं जगामु ॥ ६७ ॥

केयं दैवहतस्याहो युवती विहितस्पृहा।
इहापि सहजाधाम्नि या महोद्धतमानसा ॥ ६८ ॥

एवमादीनि बहुधा वचांस्यभ्युज्जगाद सा।
कृष्णासक्तं प्रियं वीक्ष्य बहुरोषरसाविला ॥ ६९ ॥

भूषणं वसनं रागं हारान् कुसमालिकाः।
विदधाना सदाङ्गेभ्यो वेपमानाधरा रुषा ॥ ७० ॥

सहजोवाच

न तथान्यरतिं वीक्ष्य विद्रूपे सुखवर्जिता।
यथा मद्वञ्चनं वीक्ष्य विद्रूपेऽहं निजे हृदि ॥ ७१ ॥

य एवं रमते नित्यं रसिकेन्द्रो हि धूर्तधीः।
तस्याहं कैतवं महाधूर्तस्य योगतः ॥ ७२ ॥

इति प्रीतिपणं कृत्वा सहजा स्त्रीस्वभावतः।
सरय्वा वै तटे सद्यः स्रोतोरूपा बभूव ह ॥ ७३ ॥

विख्याता सा स्वयं लक्ष्मीस्त्रिषु लोकेषु पुण्यवाट्।
इत्थं मानवती भूत्वा सहजा स्वालिभिः सह ॥ ७४ ॥

प्रमोदवनमभ्येत्य पालीग्रामे बभूव सा ।
मानस्य कारणं प्रोक्तं सहजायाः पुराणगम् ॥ ७५ ॥

एवं सा नन्दनगृहे बभूव सहजेश्वरी ।
रामः कृष्णारतिं भुक्त्वा सहजाकुञ्जमागमत् ॥ ७६ ॥

तत्र श्रुत्वा यथावृत्तं सहजायास्तथा गतिम् ।
आसीद्विषण्णहृदयस्तदेकसुखमानसः ॥ ७७ ॥

ज्ञात्वावतीर्णां सहजां श्रीनन्दनगृहे प्रियाम् ।
स्वयमप्यवतीर्णो वै सुखितस्य गृहे प्रभुः ॥ ७८ ॥

स्वयं रामो नदो भूत्वा सरयूं प्रति संगतः ।
नदीरूपेण रेयाते तत्र तौ दिव्यविग्रहौ ॥ ७९ ॥

इदं यः सहजेशान्याः शृणुयान्मानकारणम् ।
प्रादुर्भावं चापि तस्याः श्रीनन्दनगृहे पुनः ॥ ८० ॥

तस्य भक्तस्य सहजा करोति कुशलं स्वयम् ।
प्रेमाणं रामपदयोर्वर्द्धिष्णुं प्रतिवासरम् ॥ ८१ ॥

लभते नियतं मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ।
इदं रहस्यमखिलं मद्भक्तेभ्यः प्रगोपयेत् ।
कृष्णायाश्चैव रामस्य सहजायाः कथानकम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सीताजन्मोत्सवे सहजामानकरणे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥



एकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इतः सा ववृधे पूर्णा कलाभिः सहजेश्वरी ।
ततश्च ववृधे रामः प्रमोदवनचन्द्रमाः ॥ १ ॥

कलाः समग्राः प्रबभूव रेतयोलोकोत्तरं श्री सहजानन्दिनीशयोः ।
यथा नभस्यद्भुतशारदात्विषः पूर्णेन्दुसान्द्रद्युतिकौमुदीरुचोः ॥ २ ॥

सरय्वाः पुलिने रम्यौ घोषावुत्तरदक्षिणौ ।
उत्तरे नन्दनो राजा दक्षिणे सुखिताभिधः ॥ ३ ॥

व्रजेश्वरौ गोपराजौ भुवंजुगुपतुर्व्रजे ।
समृद्धपशुपालश्रीसंदोहसमुपासितौ ॥ ४ ॥
लोकेशसम्पदुत्कर्षसावमर्शश्रियान्वितौ ।
व्रजस्त्रीजनासंचारप्रैधमानपुरश्रियौ ॥ ५ ॥

नन्दिग्रामः सुखितस्याभवद्वै स्थानं सम्पत्संयुता राजधानी ।
पालीग्रामो योजनार्धेन तस्यस्थनं तद्वै नन्दनस्य प्रसिद्धम् ॥ ६ ॥

सरयूसुरसां वातैः सेव्यमानावुभौ व्रजौ ।
पुण्यतीर्थमहास्थानौ गोपीजनसुखास्यदौ ॥ ७ ॥

मध्ये मंजुवटो नाम योजनोच्छ्रायमण्डितः ।
योजनार्द्धार्द्धमायामबहुपादविराजितः ॥ ८ ॥

हरिन्मणिलसत्पर्णो नवमाणिक्यपल्लवः ।
रत्नवर्षी मधुसुधाधाराररञ्जितमूलकः ॥ ९ ॥

सुवंणविटपस्तोमः सुच्छायः श्रीभरान्वितः ।
त्रिविधानिलसंसेव्यबहुशोभाकुटीगृहः ॥ १० ॥

ज्योतिर्गणेश्वरो नाम लिङ्गं यन्मूलसंश्रितम् ।
यस्योपरि न तिष्ठन्ति पक्षिणश्च समंततः ॥ ११ ॥

दिव्यदैवत रूपोऽसौ सिद्धिदाता महावटः ।
वनं तु परितस्तस्य कुञ्जपुञ्जसुमञ्जुलम् ॥ १२ ॥

वनोपवन्संदोहवेष्टितौ तावुभौव्रजौ ।
इतो निर्गच्छति पुरा ततः श्रीसहजेश्वरो ॥ १३ ॥

मध्ये मंजुवटस्तत्र नित्यं द्वा वापि खेलतः ।
यावद्वाल्यदशारभ्य स्वस्वदिव्यसखीयुतौ ॥ १४ ॥

कुमारौ संविहरतो नानाकेलिकलाकुलौ ।
अतीते बाल्यभावे तु सहजारामसुन्दरौ ॥ १५ ॥

परस्परालोकलीलारसं पुपुषतुर्भृशम् ।
एकासने चैकदेशे एकपात्रस्थभुक्तिषु ॥ १६ ॥

एकशय्याभिशयने संगतौ तौ बभूवतुः ।
सखीभिः सहिता लोला ललामा सहजेश्वरी ॥ १७ ॥

विजहार वने फुल्लकुसुमावचयादिभिः ।
इति गोचारणाद्यैस्तु छायाविश्रमणादिभिः ॥ १८ ॥

विचचार वने रामो मकराकारकुण्डलः ।
पीताम्बरोऽरविन्दाक्षो वनमालाविभूषितः ॥ १९ ॥
पौगण्डवेशरुचिरः सर्वस्य हृदयंगमः ।
आयुधेषुक्रियाः शिक्षन् वीरेभ्यो राजधर्मतः ॥ २० ॥
श्रीनन्दनस्य नन्दिन्यामासक्त्या गोदुहोऽभवत् ।
तामासक्तिमहं वक्तुं न क्षमोऽस्मि विवेचितुम् ॥ २१ ॥
नित्यप्रेमरसानन्दानन्दिनोः सहजेशयोः ।
एक एव परः प्रेमा विभक्त इव चाभवत् ॥ २२ ॥
श्रीरामालम्बनो ह्येकः सहजालम्बनः परः ।
सहजा सेविता नित्यमादिलक्ष्म्यातितुष्टया ॥ २३ ॥
तेन प्रेमस्वरूपा सा संजाता गोदुहां कुले ।
प्रेमभक्तेःपूर्णरूपा श्रीमतीसहजाभवत् ॥ २४ ॥
अतएव प्रियाश्रेष्ठा रामस्य प्रणिगद्यते ।
स्वाभाविकस्तयोः प्रेमा प्रत्यहं बहुवृद्धिमान् ॥ २५ ॥
पौगण्डे रामचन्द्रस्य प्राकट्यं तु समागतः ।
बालो वृद्धो युवा चापि चकोरश्चन्द्रमाश्रयः ॥ २६ ॥
तथा प्रेमवतीनेत्रं रामकायिवरराश्रयम् ।
बाल्य एवक्षणे तस्या रामचन्द्रदृशिं विना ॥ २७ ॥
अभूतामतिविग्लाने पद्मे ग्रीष्माकुले इव ।
इत्थं क्रमेण वद्वद्धं प्रेमास्याः सहजाश्रियः ॥ २८ ॥
आचकर्ष वलाद्रामं विसस्मारेतरं यथा ।
एकदा पाञ्चवार्षिक्यां सहजायां रघूद्वहः ॥ २९ ॥
मात्रा शृङ्गारितो रामः षड्वार्षिक उदारधीः ।
वत्सान् सम्पालयन् नित्यं ययौ मंजुवटं प्रति ॥ ३० ॥
तत्र तां दृष्टवान् सर्वभूषणस्तोमभूषिताम् ।
सहजामनवद्याङ्गीं बालकेलीविशारदाम् ॥ ३१ ॥
शारदस्य विधोः पूर्णा चन्द्रिकामिव सोदयाम् ।
धात्रीपार्श्वे विराजन्तीं स्मयमानां मुदावहाम् ॥ ३२ ॥
उदारगुणसंदोहां वर्द्धिष्णुतनुमाधुरीम् ।
यथावपोवेशभूषावासोवैशिष्ट्यभूषिताम् ॥ ३३ ॥
सापि तं नीलमेघाङ्गं दिव्यरत्नावतंसिनम् ।
उद्दामरूपसौभाग्यं ददर्श प्रियमादरात् ॥ ३४ ॥

मुमोह सहजा देवी प्रियदर्शनमात्रतः ।
स्तब्धा वटतरोर्मूलमवलम्ब्य कृताश्रया ॥ ३५ ॥

खिन्नगात्राभवत्सद्यः पुलकौघविसंष्ठुला ।
कम्पमानतनुस्तन्वी घूर्णमाना पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

विवर्णवदना भूत्वा साश्रुनेत्राभवत्ततः ।
मूर्छामिव सुसम्पन्ना प्रलीनसकलेन्द्रिया ॥ ३७ ॥

मग्ना रामसुधासिन्धावुत्थातुमपि चाक्षमा ।
एवं भावसुसम्पन्नां सहजां वीक्ष्य मातरः ॥ ३८ ॥

धात्रीभावगताः सर्वा विस्मिता अभवन् स्त्रियः ।
अङ्कमारोप्य तां निन्युः पालीग्रामं मनोहरम् ॥ ३९ ॥

रामं च तत्सखायस्ते कथं कथमपि द्रुमात् ।
मूर्छायितं गृहान्निन्युः सुखितस्य व्रजं प्रति ॥ ४० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥



षष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथास्याः शोभना नाम धात्री विस्मितमानसा ।
श्रीराजिन्यैसमाचख्यौवृत्तं वटतले यथा ॥ १ ॥

शोभनोवाच

अहो प्रेमातिपुत्र्यास्ते बाल्य एव मुमोह या ।
रामे सर्वगुणारामे दृगानन्दे कलानिधौ ॥ २ ॥

अतः परं किं नु सखि कुर्याद्वयसि संस्थिता ।
विनैव वयउद्भावमेतावान् प्रेमवारिधिः ॥ ३ ॥

रामेन्दुमस्याः पश्यन्त्याश्चक्षुः साश्रुकलोदयम् ।
वपुः सकम्परोमाञ्च प्रलीनेन्द्रियकं मनः ॥ ४ ॥

कथंचिदपि ह्यायाता स्वाङ्कमारोप्य ते सुताम् ।
तत्स्थानादानिनायाहं यत्र दृष्टवती तु ताम् ॥ ५ ॥

इयं हि पवितेव स्यात्प्रेमाघूर्णा मह्रीतले ।
हस्ते वटतरोः शाखामवलम्ब्य सुसंस्थिता ॥ ६ ॥

अस्मिन् वयसि नेदृग्वै प्रेमा दृष्टोऽथवा श्रुतः ।
रसिकेयं दर्शनस्य रसिकाख्या भविष्यति ॥ ७ ॥

एकं जाने गोपपत्नि मा चिन्ते विस्मिता भव ।
अनयोः पूर्वभविकः सम्बन्धः खलु दृश्यते ॥ ८ ॥

अनुरूपवपोवेशरूपालंकारयुक्तयोः ।
इति धात्रीवचः श्रुत्वा सोत्कण्ठा राजिनी स्वयम् ॥ ९ ॥

द्रष्टुकामा तयोः प्रेम राममानय तद्गृहात् ।
तामेव शोभनां नाम प्रेषयामास तं व्रजम् ॥ १० ॥

सुखितस्य गृहं यत्र राजते सकलर्द्धिमत् ।
संध्यायाः पूजनं सायं करोति सहजा स्वयम् ॥ ११ ॥

तत्रोत्सवे समागच्छ मातः सुखितगेहिनि ।
सुतं चानय रामेन्दु त्वं निजाङ्कविभूषणम् ॥ १२ ॥

इति धात्र्योदिता देवो मा‌ङ्गल्यातियशस्विनी ।
विहस्यामन्त्रणं मेने कृत्वा शृङ्गारमादरात् ॥ १३ ॥

पालिग्रामं प्रचलितवतीं वस्त्रभूषादियुक्ता
श्रीमाङ्गल्या परममुदिता रामचन्द्रस्य याता ।
तत्साथेऽसौ नव इव घनो नोलपङ्केरुहाङ्गो
रामः साक्षान्मदनविजयी जग्मिवान् सप्रमोदः ॥ १४ ॥

अग्रे पुरस्कृत्य शुभाः पुरन्ध्रीर्माङ्गल्यका सम्प्रविवेश पालीम् ।
सा द्वारपर्यन्तमुपेत्य सम्यक् सम्मानिता नन्दनगोपपत्न्या ॥ १५ ॥

अथाभिसायं कुसुमावचायं कर्तुं समस्तालिजनैः समेता ।
वनं जगाम प्रमुदाभिधानं विभूषिताङ्गी सहजा सखीभिः ॥ १६ ॥

तत्रालिवर्गैः सहजा प्रसूनान्यवाप्तशोभावविचाय बाला ।
अनेकजातिद्रुमवल्लिजैस्तैरामण्डिता चाप्तमहासखीभिः ॥ १७ ॥

तत्रान्तरे च रामोऽपि कृत्वा रूपान्तरग्रहम् ।
सखीवेशेन तत्पार्श्वमगमत् कौतुकान्वितः ॥ १८ ॥

पूर्वं तु तासां चपलोज्ज्वलानां निभाल्य कुञ्जान्तरितः सुकेलीः ।
अथाभ्यगच्छन्मुदितो विलासी कुतूहलाक्तः सहजां वनान्ते ॥ १९ ॥

तां वीक्ष्य कृष्णां सहजां मनोज्ञां सलीलसर्वावयवाढ्यरूपाम् ।
विचित्रकेलीभिरदृष्टपूर्वां पप्रच्छमन्दस्मितरञ्जितोष्ठी ।। २० ।।

कासि त्वमम्भोजदलायताक्षी साक्षाद्रतिस्पर्द्धस एव दीनाम् ।
तवैव रूपेण विचित्रिता मे सखीसमात्यन्तविचक्षणापि ।। २१ ।।

सोवाच मन्दस्मितशोभितास्या गोपालकन्याहमिह प्रसिद्धा ।
व्रजे खलु श्रीसुखितेन्द्रगेहे वसामि सर्वर्द्धिसमूहयुक्ते ।। २२ ।।

इच्छाम्यहं दीर्घदृशा त्वयैकं सख्यं सखीवृन्दसमन्वितापि ।
तत्त्वामुपेतास्मि सखीं वयस्यां गृहाण मां सादरमिन्दुवक्त्रे ।। २३ ।।

इतीरिता सापि तया सुसख्या प्रत्यग्रहीत्तां समरूपवेशाम् ।
तस्यास्ततोंऽसे स्वभुजं निधाय वनान्तरे सातिचचार तत्र ।। २४ ।।

कृष्णा सखी त्वं मम हृद्यरूपा त्वां वीक्ष्य यातास्मि यथाभिलाषम् ।
तथैव धात्रा विहितं च सख्यं सदैव नौ चात्र प्रमुद्वनेऽस्मिन् ।। २५ ।।

एकं तु विज्ञाप्यमतीव मे त्वयि ग्रामं न यामः सुखितस्य सम्प्रति ।
त्वामन्नवस्त्राञ्जनलेपनक्रियाविभूषणैः स्वे गृह एव सेवये ।। २६ ।।

कृष्णोवाच

समागमो नौ वन एव संगतो न चान्यथा नागरिनन्दनालये ।
केयं कुतो वेति विमर्शिता पुनः स्थास्याम्यहं तत्र कथं नु सुन्दरि ।। २७ ।।

सहजोवाच

एवं चेद्वन एवात्र दर्शनं दास्यसि प्रिये ।
यथा न नौ विप्रयोगो भवेत्क्वापि कलावति ।। २८ ।।

श्रीशुक उवाच

इत्थं विरच्य सत्यानि तया श्रीसहजाह्वया ।
वनान्निववृते कृत्वा पुष्पावचयनक्रियाम् ।। २९ ।।

कृष्णा सखी ददौ तस्यै निजरत्नाङ्गुलीयकम् ।
यस्य धारणमात्रेण वियोगो नैव बाधते ।। ३० ।।

सापि कृष्णा नाम सखी पालीग्रामस्य पार्श्वतः ।
ययौ सहजया सार्द्धमग्रेऽन्तर्द्धिमगात्ततः ।। ३१ ।।

तद्वीक्ष्य सर्वधात्रीणामभूच्चेतसि विस्मयः ।
गवेषयन्त्योऽपि च तां समंतान्नैवलेभिरे ।। ३२ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये-श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्यानेषष्टितमोऽध्यायः ।। ६० ।।

✱

एकषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ तां सायमार्तिक्यविधिना परमादृता ।
जग्राह राजिनीमाता वनात्सद्यः समागताम् ॥ १ ॥

आलिङ्ग्य संचुम्ब्य निवृत्तमार्गश्रमामिमां प्राणसमां सुतां सा ।
संध्यार्चनोत्साहमहोत्सवेन प्रवर्तयामास मनोज्ञकेलौ ॥ २ ॥

श्रीमाङ्गल्यातिनिपुणा विरच्य विधिवत्स्वयम् ।
गोमयैः कामधेनोर्वै संध्यामत्यद्भुताकृतिम् ॥ ३ ॥

चन्दनालिप्तभित्तिस्थां पञ्चवर्णप्रसूनकैः ।
प्रत्यङ्गभूषितां देवीं वरदां समपूपुजत् ॥ ४ ॥

गन्धैः पुष्पैस्तथाधूपै दीपंनैवेद्यकल्पनैः ।
पूजान्ते मनसा रामं तस्याः पतिमयाचत ॥ ५ ॥

महतासम्भ्रमेणैवं संध्यार्चन महोत्सवम् ।
विधाय राजिनीदेवी नन्दिग्रामगताः स्त्रियः ॥ ६ ॥

पुरन्ध्रीः श्रीमन्माङ्गल्याप्रभृतीः पर्यपूजयत् ।
वसनैर्भूषणैर्भोज्यैः सिन्दूरपूरणादिभिः ॥ ७ ॥

तां रात्रिं जागरं चक्रे पुरन्ध्रीभिः सह स्वयम् ।
गायन्त्यः सकला गोप्यः संध्यादेवीं शुभैः स्वरैः ॥ ८ ॥

सुखं समाययांचक्रुरेवं कलितमुत्सवम् ।
तस्मिन् समाजे माङ्गल्यासुतस्य सहजां प्रति ॥ ९ ॥

सद्जायाश्च माङ्गल्यासुतं प्रति विशेषतः ।
प्रणयं राजिनीदेवीपर्यैक्षत महाशया ॥ १० ॥

अथ प्रभाते सम्प्राप्ते विसृज्य परमादरात् ।
माङ्गल्यां तत्सखीश्चापि तथान्याश्चोत्सवागताः ॥ ११ ॥

एकान्ते राजिनी देवी नर्मसख्या सह स्वयम् ।
समचिन्तयदत्यार्ता पुत्र्या परिणयं प्रति ॥ १२ ॥

राजिन्युवाच

हन्तलोकोत्तरगुणारामोरामोरघूद्वहः ।
त्रैलोक्येऽप्यस्य तुलया नान्यः कश्चिन्महान् वरः ॥ १३ ॥

अजानन्त्या मया पूर्वं कान्तमेनं गुणोत्तरम् ।
पुत्री गुणवती चैषा कथमन्येन योजिता ॥ १४ ॥

वाचा दत्तेपमन्यस्मै गोपाय कुलशालिने ।
माङ्गल्यातनये रामे वरे समुदिते सति ॥ १५ ॥
एतद्वचनुचितं मास्तु यतः कन्या स्वयंवरा ।
यमेव वृणुयात्स्वेच्छा स एव खलु तद्वरः ॥ १६ ॥
अनालोचितमित्येतन्मया गोपेश्वरेण तम् ।
अनुतापः समुदभूत्तस्य तद्विषमं फलम् ॥ १७ ॥
परावर्तयितुं शक्या कथमेषाधुना सखि ।
व्रतं पूगीफलं यस्याः सुकुलीनाय गोदुहे ॥ १८ ॥
प्रेमास्याः सहजं रामे किं तु पूर्वभवं महत् ।
रूपेणापीयमतुला रामेणैव महोचिता ॥ १९ ॥
वर्द्धिष्णुः प्रणयाम्भोधिः सहजारामयोर्व्रजे ।
कुलं शीलं तथा भूमिच्छादापितुमुद्यतः ॥ २० ॥
तथा ह्यस्मिन् समाजे च पर्यैक्षत मपानयोः ।
धात्रीभिर्वर्णितः पूर्वं प्रेमामृतमहोदधिः ॥ २१ ॥
यथा मंजुवटे दृष्टो मोहमूर्छामदावधिः ।
पूर्वसंस्कारजः प्रेमा प्रतीतः स मयापि च ॥ २२ ॥
किं न्वस्मिन् विषये कार्यं धर्मसंकटरूपिणि ।
अहो अत्यद्भुतो धाता कथमेवं करिष्यति ॥ २३ ॥
सहजारूपलावण्यमनिमालकृता गिरः ।
रामेतरेण गोपेन भविष्यन्ति कथं नु ताः ॥ २४ ॥
स्नुषामेनां साभिलाषां माङ्गल्यापि यशस्विनी ।
सुखितस्य गवेन्द्रस्य भार्योदारा महाकुला ॥ २५ ॥
इत्येवं महती चिन्ता जायते मम चेतसि ।
तां निवारयितुं शक्तो विधिरेव हि केवलम् ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्येवं राजिनीदेवी दीर्घचिन्तासमाकुला ।
रात्रिं दिवं समुद्विग्ना निद्रां न लभते क्वचित् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥



द्विषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एवं स्थितायां राजिन्यां शंकरः समुपागतः।
जटाजूटधरो रुद्रः कृत्तिवासास्त्रिलोचनः॥ १॥

चन्द्रभालः शूलधरः शान्तवेशधरो वटुः।
तमाराध्य सपर्याद्यैर्गोपपत्नी शुचिव्रता॥ २॥

प्रसादयामास साध्वी ज्ञात्वा देवं सदाशिवम्।
प्रसन्नो भगवान् शम्भुः श्रीराजिन्यै उवाच ह।
रहस्यं सहजेशान्या यतश्चिन्ताकुला ह्यसौ॥ ३॥

शिव उवाच

सीमा ते रसराजस्य कथ्यते गोपभामिनि।
आशावदः स्वभावो ह नात्र कार्या विकल्पना॥ ४॥

रसमात्रैकभोगाय श्रीपतेरवतारिता।
स रसो रसराजाख्यः शृङ्गारः श्रीपतेर्वपुः॥ ५॥
रसो वै स इति प्राह सर्वार्थालोकिनी श्रुतिः।
श्रुत्युक्तः स रसः शुद्धः शृङ्गार इति कीर्तितः॥ ६॥

आलम्बनमुद्दीपनमनुभावस्तथैव च।
संचारिणस्तथा भावा इत्येषा रससंस्थितिः॥ ७॥

भावैरेवानुभाव्योऽसौ स्वाद्यश्चैव निरन्तरम्।
तादृग्रसविशिष्टं तच्छ्रीरामस्य परं वपुः॥ ८॥

ध्येयं गेयं च पेयं च रसविद्भिर्निरन्तरम्।
श्रीरामस्य गुणैः पूर्णः परमानन्दविग्रहः॥ ९॥
नित्यलीलारसानन्दी कोटिकन्दर्पमोहनः।
साकेतलक्ष्मीनिलयः सहजानन्दिनीसखः॥ १०॥
पुरुषोत्तमशब्दैकवाच्योऽसौ रसविग्रहः।
तथैव सहजानन्दा रसरूपा विलासिनी॥ ११॥
प्रमोदवनराज्ञी च नित्यलीला विशारदा।
नानयोस्ते भिदा कार्या कर्हिचिद्गोपभामिनि॥ १२॥
सदा परे नित्यधाम्नि साकेताख्ये मनोहरे।
एवमेव सदा ह्येतौ स्वरूपेण विराजतः॥ १३॥
नित्यौ नित्यानन्दमयौ नित्यक्रीडाविलासिनौ।
तावेतौ भवतोर्गेहे ह्यवतीर्णौ स्वरूपतः॥ १४॥

इयं च सहजा नाम तव पुत्री गुणैर्युता।
सामान्यदृष्ट्या नो वीक्ष्या वीक्षणीया विशेषतः ॥ १५ ॥

यावन्तो वै सुरा ह्यस्यै शिरसा प्रणमन्त्यहो।
अहं ब्रह्मा च शेषश्च श्रीरीशस्त्रिजगत्प्रभुः ॥ १६ ॥

अस्याश्चरणजान् रेणून् वहन्ति शिरसानिशम्।
रामे च सहजायां च न कार्या भेदकल्पना ॥ १७ ॥

चतुर्वर्गाधिकं सौख्यं दातुमेतौ क्षमाविह।
आत्मस्वरूपलाभार्थमनयोः समुपासना ॥ १८ ॥

न विना सहजां रामो भक्तायाशु प्रसीदति।
तस्माच्छ्रीरामतुष्ट्यर्थमाराध्या सहजेश्वरी ॥ १९ ॥

चिदानन्दघना साक्षात्प्रेमानन्दस्वरूपिणी।
हस्तालम्बं दिशेद्यस्मै स भक्तो जायतेतराम् ॥ २० ॥

अहं ब्रह्मादयश्चापि देवाः सर्वे निजात्मना।
समाराध्य परामेनां सहजां सत्कृतिं ययुः ॥ २१ ॥

आदिलक्ष्मीरियं ज्ञेया श्रीमद्रामचन्द्राश्रिता।
इहावतीर्णौ सहजारामौ विज्ञाय भामिनि ॥ २२ ॥

यत्प्रमोदवनंधाम सर्वधामशिरोमणि।
तथैवान्यः परिकरः प्रादुर्भूतोऽत्र सर्वशः ॥ २३ ॥

इति विज्ञाय विबुधा ब्रह्माद्या अपि संततम्।
भवद्गृहद्वारदेशं निभृतं पर्युपासते ॥ २४ ॥

अस्यास्त्वं मातृभावेन पितृभावेन नन्दनः।
ब्रह्मादिदिविषद्वृन्द वन्दितुं पदमीयतुः ॥ २५ ॥

भवतां भवने नित्यं लक्ष्मीर्वैकुण्ठवासिनी।
हस्ते पद्ममुपादाय मार्जनं कुरुते भृशम् ॥ २६ ॥

यत्र यत्र च ते पुत्री दधाति सहजा पदम्।
तत्र तत्र प्रमाष्ट्र्येषा पद्मा पद्मेन राजिनि ॥ २७ ॥

माहात्म्यमस्या जानीहि श्रीराजिनि परात्परम्।
यत्रोपनिषदां दृष्टिरपि मूढायते भृशम् ॥ २८ ॥

नास्याः स्वरूपं जानन्ति तत्त्वेन निगमा अपि।
अतस्ते नेति नेतीति ब्रुवाणा अवतस्थिरे ॥ २९ ॥

लक्ष्मीर्गौरी गिरां देवी गङ्गा गायत्र्यधीश्वरी।
अस्या एव कलाः सर्वाः सहजानन्दिनीश्रियः ॥ ३० ॥

समासव्यासयोगेन गायन्त्येनां श्रुतेर्गिरः ।
प्रेमानन्दमयी ज्योत्स्नां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ ३१ ॥

अंशैः कलाभिश्च विभूतिभिश्च क्रीडत्यसावेकपरप्रतिष्ठा ।
अनेकनामाकृतिरूपयुक्ता नित्या विशुद्धा खलु नित्यमुक्ता ॥ ३२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥



त्रिषष्टितमोऽध्यायः

श्रीराजन्युवाच

आख्याहि भगवन्मह्यं सहजायाः शुभान् गुणान् ।
येषु संश्रुतमात्रेषु प्रमोद उपजायते ॥ १ ॥

यदि नित्या नित्यधामा सहजा राघवप्रिया ।
मम गेहे कथं जाता संशयोऽयं महेश्वर ॥ २ ॥

अनादिनिधना सेयंकस्मात्समुपजायते ।
इमं मे संशयानायाः संशयं छिन्धि शंकर ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

इत्थं श्रीराजिनीदेवि किमु विस्मृतवत्यसि ।
त्वयैवाराधिता पूर्वं सह भर्त्रा शुचिव्रते ॥ ४ ॥

कृपयैवावतीर्णेयं परा श्रीर्युवयोर्गृहे ।
त्वं प्रभासि पुराजन्मन्ययं श्रीनन्दनो रविः ॥ ५ ॥

कोटिकल्पयुगाध्यक्षौ भगवन्तौ युवामिमौ ।
अनेकवर्षपर्यन्तं भवती रविणा सह ॥ ६ ॥

आराध्य सहजाराममीदृशं भाग्यमाप ह ।
अन्याश्चापि प्रिया विष्णोस्तत्रैतस्याः शुभाः कलाः ॥ ७ ॥

व्रजे च यावत्यो गोप्यस्ता अस्याः सुप्रभावजाः ।
प्रमोदवनसौभाग्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ८ ॥

आविर्भावान्तराण्यस्य वैकुण्ठादीनि राजिनि ।
वैकुण्ठं चापि गोलोको मथुरा द्वारकापि च ॥ ९ ॥

ध्रुवस्थानं भ्रुवोर्मध्यं सूर्यमण्डलमेव च ।
श्रीमद्वृन्दावनं धाम सर्वमेतत्प्रभात्मकम् ॥ १० ॥

इदं हि सहजं धाम परं ब्रह्ममयं स्फुटम् ।
सहजायाश्च रामस्य रसलीलाविलासभूः ॥ ११ ॥

एतत्स्थानमधिष्ठाय सहजानन्दिनी स्वयम् ।
रमतेऽप्राकृतैर्भावैर्भावभुक्तिचिदात्मिका ॥ १२ ॥

अस्याः सेवनमात्रेण निर्बन्धो जायते नृणाम् ।
न मन्त्रो नापि चैवार्चा न जपो न तपस्तथा ॥ १३ ॥

प्रेमसेवामपेक्ष्यैषा मोचयेद्भवबन्धनात् ।
इयं निःसाधना मुक्तिर्मया तुभ्यं निगद्यते ॥ १४ ॥

नामैवास्याः कोटितीर्थंस्वधिकं गोपभामिनि ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मुच्यते जनः ॥ १५ ॥

भावयेच्चित्तकमले प्रमोदवनमद्भुतम् ।
विपुलं सच्चिदानन्दं कोटिकल्पद्रुमाश्रितम् ॥ १६ ॥

हेममारकतीं भूमिं रत्नाङ्गणसुविस्तराम् ।
अनेककोटिसूर्येन्दुप्रकाशां मण्डलाकृतिम् ॥ १७ ॥

वनानि तत्रभास्वन्ति वल्लीतरुमयान्यहो ।
कल्पद्रुमा यत्र लता यत्र कल्पलताः शुभाः ॥ १८ ॥

हेमदण्डमयाः स्तम्भा विटपा रत्नविस्तराः ।
हरिन्मणिमयाः पर्णाः कोटिरत्न प्रसूनिनः ॥ १९ ॥

अमिताः फलसंदोहाः सद्यः स्वादामृतोपमाः ।
अगोचरो रसो येषां मोक्षानन्दरसाधिकः ॥ २० ॥

तद्रसामृतसम्पृक्तां सुरसां सरयूमिह ।
ज्योत्स्नावर्णप्रवाहाढ्यां मुक्तामाणिक्यकूलिनीम् ॥ २१ ॥

राजहंसकुलच्छन्नां कह्लारोत्पलगन्धिनीम् ।
स्नास्यद्गोपिगणाकीर्णरत्ननिःश्रेणिशोभिताम् ॥ २२ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वस्नानकालसुखप्रदाम् ।
सुवर्णपङ्कजाकीर्णां गोपराजप्रपूजिताम् ॥ २३ ॥

तत्कूलयोरुभययोः कुञ्जपुञ्जसुमञ्जुलम् ।
प्रमोदविपिनं ध्यायेद्रत्नपर्वतशोभितम् ॥ २४ ॥

महौषधीज्वलत्सानुकन्दरोपत्यकादिकम् ।
रत्नस्फटिकमाणिक्यसानुव्याप्तदिगम्बरम् ॥ २५ ॥

रत्नाद्रिं कामगहनं सौगन्धिकगिरिं तथा ।
अनेकोपवनारामकुञ्जशोभाढ्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥

महावैकुण्ठात्परं तद् रामवैकुण्ठसंज्ञितम् ।
तत्र श्रीसहजानन्दावनं सर्ववनोपरि ॥ २७ ॥

अशोकवनमुत्फुल्लसर्वर्तुकुसुमाकरम् ।
यत्र कामोद्भवः शोकस्तथा विरहसम्भवः ॥ २८ ॥

शान्तिं नीतोऽनया तस्मादशोकवनमीरितम् ।
लतामण्डपमाङ्गल्यं वहत्त्रिविधमारुतम् ॥ २९ ॥

सर्वानन्दमयं धाम रामकामप्रपूरणम् ।
तत्र धाम्नि स्थितां ध्यायेदालीभिः परिशीलिताम् ॥ ३० ॥

लवंगमञ्जरीरूपमञ्जरीरतिमञ्जरी ।
आनन्दमञ्जरीप्रेममञ्जरीरसमञ्जरी ॥ ३१ ॥

कर्पूरमञ्जरीरंगमञ्जरीरुचिमञ्जरी ।
माधुर्यमञ्जरीत्याद्याः सर्वाः शीलगुणोत्तराः ॥ ३२ ॥

रूपोत्तराः सौकुमार्याः सौभाग्यगुणगाह्वयाः ।
रामनायकसौन्दर्य सुधास्वादचकोरिकाः ॥ ३३ ॥

अन्याश्च ललिताद्यास्ताः सीमाः सौभाग्यवारिधेः ।
सहजानन्दिनीरामप्रेममत्ताः समन्ततः ॥ ३४ ॥

ताभिः समेतां सुभगां सुकुमारीं सुमाधुरीम् ।
सुपाय्वां सुपाण्डित्यां सुलास्यां च सुविग्रहाम् ॥ ३५ ॥

सुलीलां सुदतीं सूर्मि सुकपोलां सुहासिनीम् ।
सुलापां सुकवित्वाख्यां सुभाग्यां सुमनोहराम् ॥ ३६ ॥

सखीनां पद्महस्तानां मध्ये पद्मैकहस्तिनीम् ।
विद्युल्लताचमत्कारसर्वतोगात्रभास्वराम् ॥ ३७ ॥

नीलशाटीपरीधानां तप्तकाञ्चनविग्रहाम् ।
नीलतोयदमध्यस्थां विद्युल्लेखामिवोद्धताम् ॥ ३८ ॥

सद्यः प्रसादसुमुखीं स्मयमानमुखाम्बुजाम् ।
पद्मिनीकोटिसौरभ्यवशीकृतमधुव्रताम् ॥ ३९ ॥

मधुगन्धमदोन्मत्तैर्मधुपैरुपसेविताम् ।
प्रत्यङ्गसौरभोल्लासमधुमादविकामयीम् ॥ ४० ॥

अधस्तात्कल्पवृक्षस्य श्रीरत्नवेदिकोपरि ।
रत्नसिंहासनासीनां सेवितामप्सरोगणैः ॥ ४१ ॥
धृताची मेनका रम्भा उर्वशी पुंजिकस्थली ।
तिलोत्तमा मंजुघोषा सुकेसी मदनोत्सवा ॥ ४२ ॥
इत्याद्याभिः सुवर्ग्याभिर्दिव्याभिरुपवीणिताम् ।
कयाचिद्धृतरत्नौघवर्षणच्छत्रमण्डलाम् ॥ ४३ ॥
काभ्यांचिच्चारुचन्द्रांश्रुचामरद्वन्द्ववीजिताम् ।
काभ्यांचित्स्फाटिके पीठे संवाहितपदाम्बुजाम् ॥ ४४ ॥
रत्नभूषणहस्ताभिरन्याभिरुपसेविताम् ।
ताम्बूलवीटिकारत्नकरंजयुतपाणिभिः ॥ ४५ ॥
रामाभिरामरामाभिः समंतात्पर्युपासिताम् ।
पुष्पहारसनाथाभिस्याभिः समुपासिताम् ॥ ४६ ॥
मन्दोद्योतिस्मतज्योत्स्नाविधूनिततमोगुणाम् ।
मूर्तिमद्भिश्च निधिभिः समंतादुपसेविताम् ॥ ४७ ॥
सरस्वत्या यमुनया गङ्गाया च निषेविताम् ।
पाञ्चजन्येन शङ्खेन चक्रेण[1] सुदर्शनेन च ॥ ४८ ॥
कौमोदक्या च गदया पद्मेन भुवनात्मना ।
शार्ङ्गेण चैव धनुषा दिव्यैरन्यैस्तथाऽऽयुधैः ॥ ४९ ॥
अप्राकृतैस्तथा सर्वैः पदार्थैरुपसेविताम् ।
कालेन मायया चापि विद्यपाविद्यया तथा ॥ ५० ॥
गुणैः सत्त्वादिभिश्चैव तत्त्वैर्दैवतविग्रहैः ।
ईषद्दृगंशसंपातप्रसादवरकाङ्क्षिभिः ॥ ५१ ॥
परिचारकसंदोहैर्दूरतः पर्युपासिताम् ।
प्रेमसाम्राज्यमहिषीं प्रमोदवननायिकाम् ॥ ५२ ॥
महापुरुषधौरेयपर्युपास्यपदाम्बुजाम् ।
ब्रह्मादिसुरकोटीशैः सेव्यमानां समंततः ॥ ५३ ॥
एवंविधां तां सहजां चिदानन्दपदेश्वरीम् ।
योध्यायेद्राजिनीं देवीं तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ५४ ॥
सहजानन्दिनीभक्तिः प्रारब्धस्यापहारिणी ।
कर्मज्ञानादिकं सर्वं तत्तुल्यं नैव विद्यते ॥ ५५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥



---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

कदाचिदेषा सहजा स्वयमात्मरतिं गता ।
लयं कृत्वा प्रपञ्चस्य भोक्तुकामैव केवलम् ॥ १ ॥

निःशेषयित्वा निखिलं द्वन्द्वातीता बभूव ह ।
तदा भक्तान् स्वयं भुक्तान् प्रवेशितवती तनौ ॥ २ ॥

ततः पूर्वमनावृष्टिर्जाताद्वादशवार्षिकी ।
अतपश्च रविश्चण्डो मण्डलद्वादशात्मकः ॥ ३ ॥

तेन शुष्कं जगत्सर्वं सहस्थावरजंगमम् ।
कालजीमूतसंघातस्ततः प्रावर्षतोच्चकैः ॥ ४ ॥

तत एकार्णवे जाते वसिष्ठाद्या महर्षयः ।
मज्जमाना महात्रासादेनां तुष्टुवुरञ्जसा ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः

नमो ब्रह्मस्वरूपिण्यै स्वानन्दघनमूर्तये ।
व्यक्ताव्यक्तातिवर्तिन्यै स्वप्रकाशचिदात्मने ॥ ६ ॥

गिरां देव्यै च नित्यायै शब्दार्थाखिलमूर्तये ।
सप्रपञ्चाप्रपञ्चायै स्वतन्त्रायै नमो नमः ॥ ७ ॥

महाकालकलावत्यै परिणामैकहेतवे ।
नमस्ते स्थूलसूक्ष्मादिजगद्विधारणात्मने ॥ ८ ॥

गुणातीते गुणाधारे जीवशक्त्यङ्कुरात्मिके ।
वाचातीते परे मातः सहजे पाहि सेवकान् ॥ ९ ॥

यर्ह्येवेदं जगत्कर्तुमिच्छा प्रादुरभूत्सती ।
तर्ह्येव तत्क्षणादेतद् दृश्यजातमदृश्यत ॥ १० ॥

सच्चिदानन्दरूपा त्वं व्यापिका परमात्मिका ।
अंशानंशा विशिष्टांशा स्वरूपगुणरूपिका ॥ ११ ॥

त्वमुपादानमेतस्य निमित्तं त्वं परा चितिः ।
एकधानेकधा चापि विद्वद्भिः परिगीयसे ॥ १२ ॥

त्वं शक्तिस्त्वं शक्तिमती त्वं धर्मश्चासि धर्मिणी ।
सर्वाभिन्नस्वरूपत्वाद्देवि ब्रह्मेति गीयसे ॥ १३ ॥

ये त्वां समाश्रितामर्त्या मृत्युत्रासवशीकृताः ।
तेषाममृतरूपासि किमन्यत्कथयामहे ॥ १४ ॥

क्षयेऽपि विश्वस्य चराचरस्य त्वदीयमानन्दमयं पुराणम् ।
जागर्ति तद्धाम प्रमुद्वनाख्यं यत्र प्रकृत्या नु गुणा भवन्ति ॥ १५ ॥

त एव भाग्यैर्विधुरा मनुष्याः श्रीसद्गुरूपास्तिपराङ्मुखाश्च ।
ये मातरद्धा निगमैर्निरूढां न वै तवाङ्घ्र्योः पदवीं श्रयन्ते ॥ १६ ॥

सम्प्राप्य च त्वच्चरणारविन्दं परामृतस्राविमहामरन्दम् ।
न कर्मणां ज्ञानपथस्य वापि पश्यन्ति नो वान्यसुरौघवक्रान् ॥ १७ ॥

ये ब्रह्मभूताः सहसा प्रसन्ना विशोकवाञ्छाः समसर्वभूताः ।
सम्प्राप्य ते त्वच्चरणाम्बुजस्थां भक्तिं सुधां वीततृषो भवन्ति ॥ १८ ॥

तावन्न ते धामनि मोदमाना माद्यन्ति तैस्तैरमृताधिभोगैः ।
यावन्न ते पादसरोजयुग्मे नैसर्गिकी जायत एव भक्तिः ॥ १९ ॥

ये वैष्णवं भूष्णुतमाः पदं तन्महामहाभागवतप्रधानाः ।
ते पूर्वमद्धा भवतीं भजन्ते परां रमां वै श्रियमादिलक्ष्मीम् ॥ २० ॥

अस्मिन् महाब्रह्मपुरे प्रकाम यत्पुण्डरीकं दहरं सुवेश्म ।
तस्मिंश्चिदात्मा दहराभिधोऽन्तराकाश एतत्तव धाम नित्यम् ॥ २१ ॥

यदस्ति किंचिदिह यच्च नास्ति तत्सर्वमत्रैव परं प्रतिष्ठितम् ।
सर्वे च कामा विषयाश्च सर्वे परामृतानन्दमया विभान्ति ॥ २२ ॥

तत्त्वं तदन्विष्य तव स्वरूपं जिज्ञासमाना मुनयो विमानाः ।
भवन्ति मुक्ताः कतिचित्प्रपद्य नातः परं ते पुनरावृतन्ते[1] ॥ २३ ॥

सम्प्रत्यस्मान् कालवेगेन मूढान् नष्टप्रायान् नष्टहृद्बुद्धिवृत्तीन् ।
त्वं त्रायस्व त्राणकर्त्रीह नान्यो यस्मादेषा त्वत्समुत्थैव भीतिः ॥ २४ ॥

इति तेषां प्रपन्नानां मज्जतां सागरोदके ।
सद्यः समुद्धृतिं कर्तुं दिव्यां नावं ससर्ज सा ॥ २५ ॥

तस्यामारोप्य नौकायां महापद्मदलीकृती ।
स्वयं च वाहिका भूत्वा प्रलयाब्धेरतारयत् ॥ २६ ॥

नक्षत्रग्रहताराद्यैः स्तूयमाना महर्षिभिः ।
पोतवाहस्वरूपेण स्वयं च शुशुभेतराम् ॥ २७ ॥

इत्थमेषा सुविक्रान्ता स्वतन्त्रा च महोर्जिता ।
महाप्रलयपाथोधेर्मुनिवर्यानतारयत् ॥ २८ ॥

तदस्याश्चरितं दृष्ट्वा महर्लोकस्थिताः सुराः ।
अवाकिरन् कल्पवृक्षप्रसूनैः सहजेश्वरीम् ॥ २९ ॥

---

१. पुनरावर्तन्ते—इत्यर्थः ।

आब्रह्मभुवनात्सर्वे देवाश्च शरणं गताः ।
तेऽपि संतारिताः काले प्रादुर्भूय स्वविक्रमैः ॥ ३० ॥

इदं स्तोत्रं वसिष्ठाद्यैर्मुनिभिः कीर्तितं तु यत् ।
यः पठेत् सततं प्रातस्तस्य श्रीर्वरदा स्वयम् ॥ ३१ ॥

यस्त्रिसंध्यं पठेत् स्तोत्रं तस्य श्रीसहजेश्वरी ।
सद्यः प्रसन्ना कुरुते निश्चलां धनसम्पदम् ॥ ३२ ॥

सद्यस्तारपते मृत्योर्ददाति प्रेमसम्पदम् ।
श्रीरामचरणाम्भोजे करोति च सुनिर्वृतिम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥



पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

अस्याः श्रीसहजेशान्यास्त्वत्पुत्र्या गोपभामिनि ।
महिमानमिमं वक्तुं क्षमो देवि कियानहम् ॥ १ ॥

इयं कालस्वरूपेण सततं पर्युपस्थिता ।
ग्रहनक्षत्रतारादीन् सततं चालयत्युत ॥ २ ॥

यावन्तः कालावयवास्तेऽस्य विग्रहसंश्रयाः ।
शैशुमारमिदं चक्रं कालमूर्तेः शरीरकम् ॥ ३ ॥

यत्र नक्षत्रताराणां मण्डलं पर्यवस्थितम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति घटीयन्त्रवदी दृशाः ॥ ४ ॥

कालस्य सूक्ष्मावयवा व्यापकाः सर्वभूतगाः ।
पार्थिवा अम्मयाश्चैव तैजसा वायवास्तथा ॥ ५ ॥

नाभसा मानसाश्चैव व्यापकाः कालविग्रहाः ।
स्थिरं स्थिरचरं चैव चरं चैवाचरं तथा ॥ ६ ॥

स्थिरं चैव चरं चैव क्रमतः परिकीर्तिताः ।
शुक्लपक्षप्रतिपदि पूर्वं सूर्योदयात्किल ॥ ७ ॥

षष्ठिदण्डप्रमाणेन पार्थिवादीन् विभावयेत् ।
उषः पार्थिवकं ज्ञेयं नाभसं चारुणोदये ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दतरं चैव तथा मन्दतमं भवेत् ।
अतिमन्दं मन्दमन्दं घटिकाः पार्थिवाश्रयाः ॥ ९ ॥

धौतं धौततरं चैव तथा धौततमं भवेत् ।
अतिधौतं धौतधौतं घटिका आप्यसंश्रयाः ॥ १० ॥

ज्वलितं प्रज्वलितकं सुप्रज्वलितकं तथा ।
अतिप्रज्वलितं चैव ज्वलिताज्वलितं तथा ॥ ११ ॥

पञ्चपठ्य इमा ज्ञेयास्तैजसात्मकसंश्रयाः ।
वेगं वेगतरं चैव तथा वेगतमं तथा ॥ १२ ॥

अतिवेगं महावेगं घटिका वायवाश्रयाः ।
आकाशं चावकाशं च महाकाशं विकाशकम् ॥ १३ ॥

अत्याकाशमिति ज्ञेया घटिका नाभसाश्रयाः ।
संकल्पं च विकल्पं च निवृत्तं च प्रवर्तकम् ॥ १४ ॥

अतिवृत्तकं च ज्ञेया घटिका मानसाश्रयाः ।
षष्ठिदण्डात्मकः काल इति तुभ्यं प्रकीर्तितः ॥ १५ ॥

एतन्मूलमिदं विश्वं बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
बाह्यं सर्वमिदं विश्व ब्रह्माण्डात्मकमीरितम् ॥ १६ ॥

आभ्यन्तरं तदेवेदं ब्रह्माण्डरचनात्मकम् ।
इडा वामवहा नाडी पिंगला दक्षिणाश्रया ॥ १७ ॥

तयोर्मध्यगता सूक्ष्मा सुषुम्णेति प्रकीर्तिता ।
सूर्यचन्द्राग्नयस्तासु प्रतिष्ठिततमा मताः ॥ १८ ॥

स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन पञ्चभूतानि चैव हि ।
तेषां मात्रा इन्द्रियाणि देवा इन्द्रादयस्तथा ॥ १९ ॥

दिशोऽन्तरिक्षमरुतः समुद्रा गिरयस्तथा ।
नद्यो भूतगणाश्चैव स्वस्वस्थानसमाश्रयाः ॥ २० ॥

तत्रैव संश्रिता लोकाः सप्ताधः सप्त चोपरि ।
मूलाधारं समारभ्य षट् चक्रास्तत्र संश्रिताः ॥ २१ ॥

मूलाधारे स्थितः श्रीमान् शेषो नारायणः स्वयम् ।
स ब्रह्मा स शिवः सेंद्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥ २२ ॥

गणेशो वाक्पतिश्चैव सर्वदेवमयात्मकः ।
तस्यैव शक्तयः सर्वाः प्रसूता देवतागणाः ॥ २३ ॥

चतुर्दलं स्थानयस्य मूलाधारे प्रकीर्तितम् ।
गणराजस्वरूपेण स्वयं तत्र प्रतिष्ठितः ॥ २४ ॥

लेखनीपुस्तकधरः सरस्वत्याभिमर्षितः ।
स्वाधिष्ठानं षट्दलं च तत्र ब्रह्मा प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥

विद्याकमण्डलुधरो निगमत्रय भूषितः ।
स्वशक्त्या वेदरूपिण्या गायत्र्या चाभिमर्षितः ॥ २६ ॥

मणिपूरं दशदलं तत्र विष्णुः श्रिया युतः ।
शङ्खचक्रगदापद्मभूषितः शुद्धसत्त्वभाक् ॥ २७ ॥

अनाहतं रविदलं चक्रं सम्परिकीर्तितम् ।
तत्र रुद्रः स्वशक्त्या च पार्वत्या भाति भूषितः ॥ २८ ॥

विशुद्धं षोडशदलं पुरुषोऽत्र प्रतिष्ठितः ।
प्राणेश्या जीवशक्त्या स नित्यमेवाभिमर्षितः ॥ २९ ॥

सहस्रानिनदृक्कर्णः सहस्रपदबाहुकः ।
जागर्ति सर्वजीवानामधिष्ठाता स्वयं प्रभुः ॥ ३० ॥

आज्ञाचक्रं च द्विदलं परमात्मात्र संस्थितः ।
चिच्छक्त्यालिङ्गितः साक्षाच्छब्दार्थो नामगोचरः ॥ ३१ ॥

तदूर्ध्वं तत्परं स्थानं सहस्रदलकाननम् ।
तत्कर्णिकास्थितश्चन्द्रस्तत्र हंसः प्रतिष्ठितः ॥ ३२ ॥

तत्र ब्रह्म परं दिव्यं क्षराक्षर पदातिगम् ।
निरीहं निर्गुणं साक्षान्नित्याकारं सुरञ्जनम् ॥ ३३ ॥

वेद्यं वेदातिगं चापि सर्वोपादानकारणम् ।
यत्प्राप्य नातिवर्तेत तन्मयो भवति ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैवं मया तुभ्यं प्रकीर्तितम् ।
सहजानन्दिनीशक्त्या सर्वमेतद्विजृम्भितम् ॥ ३५ ॥

ब्रह्मापि तन्मयं विद्धि यत्पूर्णममृताव्ययम् ।
रामेति यस्य वै नाम तद्रूपं वापि यन्मयम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सहजोपाख्याने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥



षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

अस्याः साम्राज्यपदवी प्रमुद्वने प्रतिष्ठिता ।
तत्रस्था कालमायादीनाज्ञापयति राजवत् ॥ १ ॥

अस्याः कटाक्षमात्रेण कोटिब्रह्माण्डनिर्मितिः ।
कोटयश्च विरञ्चीनं विष्णूनां चैव कोटयः ॥ २ ॥

कोटयश्चैव रुद्राणां शक्राणां चैव कोटयः ।
उत्पद्यन्ते विकुर्वन्ति विलीयन्ते ततस्तथा ॥ ३ ॥

एकं सृजति ब्रह्माण्डमेकं स्थापयते तथा ।
एकं संहरेत चैषा कटाक्षक्षेपमात्रतः ॥ ४ ॥

जानन्ति काल इत्येनां केचिद्वेदार्थकोविदाः ।
केचित्कर्मेति जानन्ति स्वभावमिति चापरे ॥ ५ ॥

केचित्पुरुष इत्येनां जगुरन्येऽक्षरात्मकाम् ।
केचित्तत्त्वात्मिकामेनां जगुर्ब्रह्मेति चापरे ॥ ६ ॥

केचित्पूर्णं परं ब्रह्म पुरुषोत्तमशब्दितम् ।
स्वतन्त्रेच्छं गुणाधीशं कल्याणगुणभूषणम् ॥ ७ ॥

वदन्त्येनां वेदवाक्यैः सहजानन्दिनीश्वरीम् ।
नास्याः पारं विजानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८ ॥

श्रीराम एव जानाति तत्त्वमस्या यथातथम् ।
कदाचिदेषा सहजा स्वात्मलीलामुपाश्रिता ॥ ९ ॥

सम्मोहयति तं चापि श्रीरामं किमुतेतरम् ।
अस्या लीलावशाद् रामो मानुषं भावमाश्रितः ॥
लोके मूढ इवाभाति किमुतान्यस्य वै कथा ॥ १० ॥

श्रीराज्ञ्युवाच

अस्या माहात्म्यमुदितं भवता यत्त्रिलोचन ।
न तत्र मम संदेहो पदात्थ भगवन् स्फुटम ॥ ११ ॥

रामोऽप्यस्या महिमानं न वेत्ति यत्तु प्रोक्तंभवता पार्वतीश ।
तन्मे चित्ते संशयोऽभून्नितान्तं यस्मादेषा तदभिन्नस्वरूपा ॥ १२ ॥

श्रीशिव उवाच

तदभिन्नस्वरूपेयं सत्यमेव न संशयः ।
तदप्येषा क्वचित्स्वेच्छामात्रा तं चापिमोहयेत् ॥ १३ ॥

प्रवक्ष्याम्यत्र ते दिव्यमाख्यानं गोपभामिनी ।
अवतारकथारूपं सहजाया महाद्भुतम् ॥ १४ ॥

आसीन्निमिकुले राजा जनको नाम धार्मिकः ।
सत्यसंधो दयानिष्ठो ब्रह्मज्ञो योगवित्तमः ॥ १५ ॥

सर्वानुकूलधिषणः सर्वस्य कमनीयधीः ।
विक्रमी शूरहृदयो याजको वेदवित्तमः ॥ १६ ॥

पूर्वोत्तरार्थकुशलः सिद्धान्तयज्ञो महामतिः ।
विवेचकः कृतश्रद्धो जितेन्द्रिय उदारधीः ॥ १७ ॥

दानकृच्छास्त्र निर्णेता निर्विकल्पो महामनाः ।
लोकोपास्तिपरः क्षान्तो विजयी तत्त्वदर्शनः ॥ १८ ॥

आस्तिकस्त्यागशीलश्च लक्ष्मीवान् दिव्यलक्षणः ।
शस्त्रास्त्रविद्यानिपुणः सर्वधर्मविशारदः ॥ १९ ॥

देवतातिथिनित्यार्चातत्परो विदितार्थकः ।
प्रमाणज्ञः सदा वीरः परदुःखनिवारकः ॥ २० ॥

रामभक्तिपरो राजा प्रजारञ्जनतत्परः ।
अनिन्दकः सुवदनः प्रसन्नः परिणामवित् ॥ २१ ॥

ईतिहर्ता वीतशोकः कालधर्मप्रचारणः ।
विचारपरमो वेत्ता अप्रमत्तः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

सर्वभूतदयाशीलो हयमेधविशारदः ।
इन्द्रासनस्याधिष्ठाता द्यावाभूम्येकमण्डनः ॥ २३ ॥

कुलभारोद्वहनकृद्धरित्रीभरणक्षमः ।
विप्रार्चनसदाचारो महालक्ष्मीप्रसादनः ॥ २४ ॥

आत्मज्ञो वीतरागश्च ग्राम्यधर्मपराङ्मुखः ।
सत्याचारपरो नित्यं प्रत्यक्षस्वात्मदर्शनः ॥ २५ ॥

महायोगीन्द्रसंसर्गी योगचर्चापरायणः ।
महोपनिषदर्थज्ञः सर्वत्र समदर्शनः ॥ २६ ॥

तस्य पालयतः पृथ्वीं मैथिलेन्द्रस्य धीमतः ।
नाधार्मिकोऽभूज्जगति नाकृतिज्ञो न नास्तिकः ॥ २७ ॥

नासत्यवाङ् नालसश्च नावर्णाश्रमपालकः ।
नाशूरो नापि दुष्टात्मा न शठो नाजितेन्द्रियः ॥ २८ ॥

स ऊढवान् महावंश्यां राज्ञी सुनयनाह्वयाम् ।
तया सह धरित्र्या च मुमुदे राजपुङ्गवः ॥ २९ ॥

राज्ञी सुनयना देवी महालक्ष्मीप्रपूजने ।
अविच्छिन्नमतीर्जाता भर्त्रा सह नृपेण च ॥ ३० ॥

प्रसन्ना श्रीः स्वयं साक्षाच्चतुर्धा तद्गृहेऽभवत् ।
स्वयं श्रीसहजादेवी ह्येषा जाता स्वरूपतः ॥ ३१ ॥

सा सीतेति समाख्याता द्वितीया चोर्मिलाभवत् ।
तृतीया माण्डवीत्याख्या श्रुतकीर्तिश्चतुर्थिका ॥ ३२ ॥

एवं दशरथगेहे जातो रामचन्द्रः स्वयम् ।
त्रिभिर्वैलक्ष्मणाद्यैरंशैश्च कार्यविधित्सया ॥ ३३ ॥

अथो जनकराजस्य कन्यास्ता वयसान्विताः ।
जाताः स्वयंवरोद्युक्ता अप्राकृतगुणान्विताः ॥
अथ श्रीनारदोऽभ्येत्य प्रोवाच जनकं प्रति ॥ ३४ ॥

श्रीनारद उवाच

एतास्ते कन्यका राजन् साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपिणीः[1] ।
अप्राकृतैरेव परैः पुरुषैः पुरुषर्षभैः ॥ ३५ ॥

ऊह्याः पाणिग्रहेणेति पणं कुरु महीपते ।
इत्युक्त्वा प्रगते स्वर्गं देवर्षौ नारदाभिधे ॥ ३६ ॥

पणं चक्रे स्वयं राजा कठिनं सुविचक्षणः ।
न्यस्तं मम गृहे साक्षाद्धनुः शम्भोर्दुरासदम् ॥ ३७ ॥

य एतद्रोपयेद्वीरः स एता उद्वहिष्यति ।
इति ढक्कारवं लोके वादयामास मैथिलः ॥ ३८ ॥

ततो देशाधिपाः सर्वे राजानः समुपागताः ।
पूर्वदक्षिणपाश्चात्त्या उत्तरत्रनिवासिनः ॥ ३९ ॥

स्वयंवरे तु सीताया जातः कोलाहलो महान् ।
आगच्छद्भिर्महीपालैर्नानादेशनिवासिभिः ॥ ४० ॥

महान्तं रवमाकर्ण्य मिथिलायां स्वयंवरे ।
महोत्सवं च भूपानां राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥
रामं त्रिभुवनारामं गुणरत्नमहाकरम् ॥ ४१ ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

राजोवाच

उपस्थितोऽयं सुमहानुत्सवो मिथिलापुरे ।
वीरस्वयंवरोत्साहे सीतायाः सुमनोहरे ॥ ४२ ॥
यूयं रविकुलोद्भूता रघुवंश्याः कुमारकाः ।
कथं न गच्छत परं तत्र सीतास्वयंवरे ॥ ४३ ॥
वीरकृत्यमिदं तावज्जगत्यां पर्युपस्थितम् ।
शिवचापारोपणाय जनकेन कृतः पणः ॥ ४४ ॥
मैथिली तत्र लाभो वै जनकेन्द्रसुता परा ।
श्रूयते सहजा देवी चतुर्धाजनि तद्गृहे ॥ ४५ ॥
ब्रह्मादीनां सुरेन्द्राणां मुखेभ्यो यन्मया श्रुतम् ।
चतुर्धा श्रीःस्वयं जाता जनकेन्द्रस्य वेश्मनि ॥ ४६ ॥
चतुर्धा मद्गृहेऽप्यद्धा जातो रामचन्द्रः स्वयम् ।
भवानेकः स्वयं रामस्त्रयोऽमी लक्ष्मणादयः ॥ ४७ ॥
एतद्युक्ततमं मन्ये विधिनैवोपपादितम् ।
मन्ये जातमिदं कार्यं रघुवंशसुमङ्गलम् ॥ ४८ ॥
अत्र प्रयतनीयं वै भवद्भिः कृतनिश्चयैः ।
एवंविधे वै विषये शूराणां सुमहोत्सवः ॥ ४९ ॥
तत्र गत्वा समारोप्यहरकार्मुकमुत्तमम् ।
कण्ठे निक्षेपय श्रीमन् सीतास्वयंवरस्रजम् ॥ ५० ॥
इत्थं नृपतिना रामस्तत्क्षणे प्रतिबोधितः ।
अङ्गीचकार सहसा मुखदाक्षिण्यमात्रतः ॥ ५१ ॥
किन्तु संस्मार तां नित्यां स्वात्मशक्तिमनन्यधीः ।
प्रमोदवनलीलानामीश्वरीं सहजेश्वरीम् ॥ ५२ ॥
इयं वृत्तं समाकर्ण्य सा मे किं नु वदिष्यति ।
तस्याः कटाक्षवशगो वेपामि स्वात्मना ह्यहम् ॥ ५३ ॥
हृदये मम सा नित्यं वसत्येव न संशयः ।
अद्य प्रमोदविपिने सा मे किं नु करिष्यति ॥ ५४ ॥
इति चिन्तासमाविष्टो न सुष्वाप दिवानिशम् ।
अन्येद्युः सरयूपारे स्वरहस्यस्थलीं प्रति ॥ ५५ ॥
जगाम यत्र सहजां नित्यं रमयति स्वयम् ।
एतद्धि वृत्तं रामस्य नापोध्यावासिभिर्जनैः ॥ ५६ ॥
ज्ञायते सखिभिश्चापि ऋते श्रीलक्ष्मणं प्रभुम् ।
तत्रासौ रममाणेऽपि दृष्टः सहजया स्फुटम् ॥ ५७ ॥

उद्विग्न इव चित्तेन पितुराज्ञां स्मरन् मुहुः ।
तदा सहजया प्रोक्तः सविलासमुदारया ॥ ५८ ॥
उद्विग्न इवहे कान्त लक्ष्यसेऽद्य कुतो मया ।
आविष्ट इव शोकेन केनापिधार्षितो यथा ॥ ५९ ॥
एतद्धयनुचितं भर्तुः स्वतन्त्रेच्छस्य ते प्रभोः ।
एतन्मूलमहं नाथ पृच्छामि त्वां विशेषतः ॥ ६० ॥

श्रीराम उवाच

अहं त्वद्वशगो नित्यं सहजानन्दिनीश्वरि ।
सीतास्वयंवरं गन्तुमुक्तः पित्रा न संशयः ॥ ६१ ॥
आवयोश्च रहःप्रेमज्ञायते नेतरैर्जनैः ।
प्राकृतैर्लोकधर्मज्ञैप्राकृतमनुत्तमम् ॥ ६२ ॥
अतोऽहमुन्मना वृत्तः पितुराज्ञानपायिनी ।
अनपायि च ते प्रेम कथमन्यां समुद्वहे ॥ ६३ ॥
स्वप्नेऽपि नेतरां जाने त्वां विना सहजेश्वरी ।
पाशारज्जु रुभयतः पतिता मे न संशयः ॥ ६४ ॥
इति श्रुत्वा प्रियवचः सहजा प्रत्युवाच तम् ।
ईषत्स्मितरुचिज्योत्स्नादीपिताक्रीडमण्डपा ॥ ६५ ॥

श्रीसहजोवाच

जनकस्य गृहे साक्षादहमेवाजनि प्रभो ।
कर्तुं बहुतरा लीलास्त्वया साकं रघूद्वह ॥ ६६ ॥
त्वं चेत्प्रमोदविपिनादवतीर्णो रघोः कुले ।
अवतीर्णाहमपि वै निमिचन्द्रकुले तदा ॥ ६७ ॥
उपासकः स मे राजा महिष्या सह योगवित् ।
पुत्रीभावमतः प्राप्ता चतुर्धा तद्गृहेस्म्यहम् ॥ ६८ ॥
प्रथमां तु भवान् वोढा द्वितीयां लक्ष्मणः स्वयम् ।
तृतीयं भरतः श्रीमाश्चतुर्थीं शत्रुसूदनः ॥ ६९ ॥
इत्येवमैात्मनोंऽशैस्त्वं चतुर्भिर्भूरिविक्रमैः ।
कर्ता पाणिग्रहं नाथ तन्ममैव सुमङ्गलम् ॥ ७० ॥
न जातु कश्चिदन्यस्तां वोढा सीतां स्वयं श्रियम् ।
अवत।र्णां विलासार्थं मदभिन्नस्वरूपिणीम् ॥ ७१ ॥

स वै राजा निमेवंश्यो ज्ञान निष्ठो दृढव्रतः ।
योगी ब्रह्मविदां श्रेष्ठो भक्तिकामो बभूव ह ॥ ७२ ॥
तस्य भक्तिकलां पूर्णां कर्तुं प्रमुदकाननात् ।
अवतीर्णा स्वयमहं स्वांशनैव स्वरूपतः ॥ ७३ ॥
इति विज्ञायभगवन् सीतामुद्वह निश्चितम् ।
रमयिष्याम्यहं तेन स्वरूपेण सदा प्रिय ॥ ७४ ॥
प्रमोदकानने चाहं स्वरूपेण व्यवस्थिता ।
स्वयं श्रीसहजानाम्ना रासलीलारतास्मि च ॥ ७५ ॥
रामचन्द्ररसिकेन नित्यं साकेतगास्मि च ।
इति निश्चित्य मां कान्त सर्वत्र त्वत्स्वरूपगाम् ॥ ७६ ॥
लीलां विस्तारय स्वैरं न वै शङ्कितुमर्हसि ।
इत्थं प्रबोधितो रामो लीलामध्ये स्वयं श्रिया ॥ ७७ ॥
सीतासमुद्वाहविधौशङ्का तत्याज राघवः ।
ततः साकेतनगरे स मागत्य स्वयं प्रभुः ॥ ७८ ॥
सोत्कण्ठोऽतितरां जातो जानक्यास्तत्स्वयंवरे ।
अथाजगाम राजर्षिविश्वामित्रो महातपाः ॥ ७९ ॥
श्रीरामं यज्ञरक्षायै नेतुं स्वाश्रमकाननम् ।
स विज्ञाप्य महाराजं स्तुत्या दशरथं मुनिः ॥ ८० ॥
निन्ये सलक्ष्मणं राम स्वाश्रमयज्ञवाटिकाम् ।
रामं स शिक्षयामास विद्यां शस्त्रास्त्रगोचराम् ॥ ८१ ॥
धनुर्वेदं सहोपाङ्गं सरहस्यं समन्त्रकम् ।
सप्रयोगं ससंहारं सक्रमं समशिक्षयत् ॥ ८२ ॥
वायव्यं वारुणं दिव्यमाग्नेयं रौद्रमेव च ।
ब्राह्मयं नारायणं चास्त्रं सर्वमेवोपपादयत् ॥ ८३ ॥
तमाचार्यमनुप्राप्य स्वयं रामः सलक्ष्मणः ।
वीरः शस्त्रास्त्रविद्यानां पारगामी बभूव सः ॥ ८४ ॥
एवं शिक्षितसर्वास्त्रं राममक्षुण्णविक्रमम् ।
नियोज्य यज्ञरक्षायै यज्ञौधान् समपूरयत् ॥ ८५ ॥
स जघान मखे विघ्नान् दैत्यरूपान् दुरासदान् ।
महोद्धतान् सुविक्रान्तान् दैत्यमायाविशारदान् ॥ ८६ ॥
तान् घातयित्वा गाधेयोरामेण धन्वपाणिना ।
इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैः कृतकार्यो बभूव ह ॥ ८७ ॥

सा निन्ये मिथिलां रामं सीतावीरस्वयंवरे ।
जनकस्यालयो यत्र विभाति श्रीमरोन्नतः ॥ ८८ ॥

विलोक्य मिथिलालक्ष्मीं मुमुदेह सहलक्ष्मणः ।
रामः स्वयं तदा जज्ञौ रमाया नित्यसंनिधिम् ॥ ८९ ॥

पद्मोत्पलसुगन्धीनि सरांसि विपिनानि च ।
गुञ्जद्भ्रमरजुष्टानि पुष्पितद्रुमभाञ्जि च ॥ ९० ॥

राजमार्गा विपणयः प्रासादा धनिनां गृहाः ।
स्वर्णमाणिक्यरत्नौघनिर्मिता गृहदीर्घिकाः ॥ ९१ ॥

मदोद्धताश्च मातंगारणद्घण्टानिनादिनः ।
शिक्षकैः सुविनीताश्च हया नाद्यविनोदिनः ॥ ९२ ॥

इत्यादि श्रीभरैर्नद्धा मनोमोदविधायिनी ।
नैम्यस्य शुशुभेऽत्यर्थं राजधानी दिवानिशम् ॥ ९३ ॥

मुमुदाते च तां वीक्ष्य भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
गाधिसूनुमनुश्रुत्य जनकः पुरमागतम् ॥ ९४ ॥

अग्रहीदभिसंगम्य पदानि खलु भूरिशः ।
वने चोपवने पुर्यां राजमार्गेषु वेश्मसु ॥ ९५ ॥

सीतास्वयंवरोत्साहो मूर्तिमान् समदृश्यत ।
नवापि निधयस्तत्रे मूर्तिमन्तः सुसंगताः ॥ ९६ ॥

त्रैलोक्ये वितता लक्ष्मीरेकत्रैव व्यदृश्यत ।
तत्तत्कुतूहलं राजा गाधेपाय प्रदर्शयन् ॥ ९७ ॥

प्रवेशयामास गृहं कुमारौ च सुलक्षणौ ।
तौ विनीततमौ नत्वा किशोरौ लोकमञ्जुलौ ॥ ९८ ॥

चिरं जीव तमित्यूचे मन्मनोरथपूर्तये ।
इमौ रघुकुलोत्तंसौ राज्ञो दशरथस्य हि ॥ ९९ ॥

कुमारौ नयनानन्दौ चतुर्णां द्वौ शिरोमणी ।
इतोऽनुजौ यौ श्रीमन्तौ भरतारिनिषूदनौ ॥ १०० ॥

[1]तावलंकुरुते देशं यत्र राजा रघूद्वहः ।
इमौ मन्मखरक्षायां प्रवीणौ सुधनुर्धरौ ॥ १०१ ॥

आगतौ तव भाग्येन अस्मिन् वीरस्वयंवरे ।
इत्युक्त्वा गाधितनयो याज्ञवल्क्यादिकान् मुनीन् ॥ १०२ ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

सभास्तारान् पृथङ्नत्वा विश्रातो जनकालये ।
जनको राममालोक्यनवेन्दीवरकोमलम् ।। १०३ ।।

रुद्रचापसमारोपे संदिहान इवाभवत् ।
रामः प्रदर्शयामास माधुर्यं स्वस्वरूपगम् ।। १०४ ।।

जनकाय नरेन्द्राय लोकोत्तरगुणाकरः ।
स तस्य रूपमाधुर्यं सौन्दर्यगुणशीलताम् ।। १०५ ।।

वीक्ष्य मेने स्वकन्याया योग्यं वरमनुत्तमम् ।
तावद्रामो गुरोराज्ञां गाधेयस्य महामुनेः ।। १०६ ।।

अनुप्राप्य धनुःशम्भोरारोपयितुमुद्यतः ।
यावदारोपयेद् धन्वा तावद्बाहुबलोर्जितः ।। १०७ ।।

बभञ्ज रघुशार्दूलश्चण्डीपतिशरासनम् ।
तस्य सम्भज्यमानस्य धनुषो विकटारवः ।। १०८ ।।

दिक्कुंजराणां कर्णेषु विश्रान्तोऽतिभयानकः ।
शब्दव्याकुलिते लोके उत्पात इव चाभवत् ।। १०९ ।।

सीतारामवरप्राप्त्या मङ्गलं चाभवत्पुनः ।
ततः सीता सखी वृन्दमध्यगा हर्षनिर्भरा ।। ११० ।।

अवृणोद् रामभर्तारं कण्ठे जाम्बूनदस्रजा ।
यावन्तो वसुधापाला महाराजन्यपुङ्गवाः ।। १११ ।।

समंताज्जनकागारं बाणरावणपूर्वगाः ।
तावन्तोविफलायासा बभूवुः शिवधन्वनि ।। ११२ ।।

अलम्भि चैव रामेण कन्याकीर्तिर्जयस्तथा ।
उवाह विधिवद् रामः सीतां सहपरिच्छदाम् ।। ११३ ।।

दत्तां जनकराजेन पाणिग्रहणकर्मणा ।
तत्राभ्युपेतो राजेन्द्रो राजा दशरथः स्वयम् ।। ११४ ।।

तनयौ सुसमादाय भरतारिनिषूदनौ ।
ततः प्रसन्नो जनकः कन्यास्तिस्रः सुलोचनाः ।। ११५ ।।

प्रददौ लक्ष्मणादिभ्यो मनोवाञ्छानिराकुलः ।
एवं सम्प्राप्तसर्वार्थो बभूव जनको नृपः ।। ११६ ।।

विवाहोत्सवयोग्यानि वसूनि बहु दत्तवान् ।
यथा कीर्तिं जगुर्देवा औदार्यान्निभिभूपते ।। ११७ ।।

भूतानि चैव भावीनि यावन्ति भुवनत्रये ।
विवाहोत्सवयोग्यानि वर्तमानानि चैव हि ।। ११८ ।।

सीताविवाहसौख्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
देवा गन्धर्वपतयो नागाश्चैव नगास्तथा ॥ ११९ ॥

नरा नार्यश्च सौख्येन बभूवुः पूर्णमानसाः ।
राजा दशरथः पुत्रान् दारैः संयोज्य सभ्रमी ॥ १२० ॥

बहुलक्ष्मीसमायुक्तः साकेतपुरमागमत् ।
धनुर्भङ्गरुषाक्रान्तं भार्गवं रामचन्द्रमाः ॥ १२१ ॥

हृत्वा स्वांशं शुद्धसत्त्वं नाभयामास जीववत् ।
तदद्भुततमं नास्ति पूर्णे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ १२२ ॥

ज्योतींषि न प्रकाशन्ते यथाह्नि महसां पतौ ।
तथैवांशाः कलाश्चैव पूर्णे सर्वकलाश्रये ॥ १२३ ॥

सहजानन्दिनीनाथे स्वानुभावं न बिभ्रति ।
भूमितलं भूषयति रामे सर्वकलाश्रये ॥ १२४ ॥

श्रीमान् वैकुण्ठनाथोऽपि निष्प्रयोजनतां गतः ।
सर्वं प्रयोजनं चक्रे राम एव स्वयं प्रभुः ॥ १२५ ॥

स एवेन्द्रो यमश्चापि वरुणश्च कुबेरकः ।
ईशो ब्रह्मा रविश्चापि सर्वदेवमयोऽभवत् ॥ १२६ ॥

सर्वेषां कार्यमातेने स्वयमेव रघूद्वहः ।
सर्वसत्तामयी सत्ता राम एव प्रतिष्ठिता ॥ १२७ ॥

एवं नित्यश्रिया साक्षात् सीतयासहितः प्रभुः ।
आजगाम स्वबन्धूनामानन्दं जनयन् पुरीम् ॥ १२८ ॥

राजा महामनाश्चक्रे महान्तं भृशमुत्सवम् ।
गृहप्रवेशसमये वरबध्वोः मुभावहम् ॥ १२९ ॥

सिद्धगन्धर्ववर्येभ्यश्चारणेभ्यः समंततः ।
नर्तकेभ्यो गायकेभ्यो धनं बहुतरं ददौ ॥ १३० ॥

महाशया महाराज्ञी कौसल्या विहितोत्सवा ।
कैकयी च सुमित्रा च पुत्रोद्वाहमहोत्सवे ॥ १३१ ॥

पुरन्ध्रीभ्योऽथ बन्धुभ्यः संगताभ्यः समंततः ।
परमानन्दमातेने वासोभूषणभोजनैः ॥ १३२ ॥

आशिषस्ताः स्त्रियः साध्व्यः प्रायुञ्जन् गुणवत्तराः ।
प्रसन्नचित्ताः प्रययुः स्वानि स्वानि गृहाणि च ॥ १३३ ॥

चतुर्लक्ष्मीस्वरूपा सा रेजे जनकनन्दिनी ।
नवोद्वाहमहोत्साहमहामाङ्गल्यभूषिता ॥ १३४ ॥

चत्वारो भ्रातरस्ताभिः श्रीभिः शोभान्विता बभुः ।
यथा कल्पद्रुमवराः कल्पवल्लीभिरन्विताः ॥ १३५ ॥

जगदानन्दनिधयः कल्याणगुणभूषिताः ।
अलंचक्रुः पितुर्गेहान् श्रीरामाद्याः स्वरूपतः ॥ १३६ ॥

तास्वागतासु लक्ष्मीषु साकेतनगरी भृशम् ।
रराजारण्यराजीव[1] वसन्तसमयश्रिया ॥ १३७ ॥

द्यौरिवेन्दुरुचा रेजे राज्यलक्ष्मीर्महीपतेः ।
सर्वसम्पन्मयं सद्म राज्यलक्ष्म्या न तादृशम् ॥ १३८ ॥

यादृशं शुशुभे ताभिः साक्षाल्लक्ष्मीभिरन्वितम् ।
ततो दिनेषु गच्छत्सु सर्वसाम्राज्यसम्पदि ॥ १३९ ॥

यौवराज्यपदे रामं स्थापयामास भूपतिः ।
समेतो भ्रातृभिः सर्वैर्युवराजपदे स्थितः ॥ १४० ॥

पितुः सर्वं राज्यधुरमवहज्जानकीपतिः ।
सर्वाः प्रजामुमुदिरे सर्वर्द्धिफलसंयुताः ॥ १४१ ॥

यौवराज्यस्थितेरामे नवीना श्रीरवर्तत ।
त्रैलोक्यमवहद्दीप्तिं विभूतिं परमां श्रियम् ॥ १४२ ॥

सीतादृष्टिप्रसादेन बभौ सर्वत्र मङ्गलम् ।
यावती श्रीस्त्रिजगति सर्ववस्तुसमाश्रया ॥ १४३ ॥

एकत्र संस्थिता दृष्टा साकेतनगरे तु सा ।
वर्षपूगे ततो जाते रामे रञ्जयति प्रजाः ॥ १४४ ॥

वाञ्छा दशरथभूपस्यान्निजराज्याभिषेचने ।
ईदृशी महिषी भाग्यैर्लब्धा सीतास्तियादृशी ॥ १४५ ॥

त्रैलौक्यस्यैव भाग्येन रामो राजा भवेदिति ।
अथैकान्ते समासाद्य रामं राजीवलोचनम् ॥
उवाच वचनं प्रीतो राजा दशरथः स्वयम् ॥ १४६ ॥

राजोवाच

राम राम महाबाहो पितृपैतामहीं धुरम् ।
राज्यं श्रियं च परमां त्वं पालयितुमर्हसि ॥ १४७ ॥

प्रजानामेव भाग्येन दत्तस्त्वं वेधसा मम ।
न हीदृशो रघोर्वंशे भूतो वाथ भविष्यति ॥ १४८ ॥

---

१. °रण्यानीव–बड़ी० ।

सर्वे गुणास्त्वयि प्राप्ताः स्वत एव समुन्नतिम् ।
श्रियं च परमां प्राप्तुमसाधारण्यमेव च ॥ १४९ ॥

नेत्रानन्दसमूहाय प्रजानां भुवनत्रये ।
महामाङ्गल्यसंघाय त्वं हि राजा भविष्यति ॥ १५० ॥

अंतस्त्वामभिषेक्ष्यामि राज्येपैतामहेऽतुले ।
यौवराज्य एव भवान् सर्वा भूमिमरञ्जयत् ॥ १५१ ॥

भाग्येन चैव सौभाग्यैः प्रजेशस्त्वं भविष्यसि ।
युक्तार्जैर्भ्रातृभिः सार्द्धं कृत्स्नं पाहि महीतलम् ॥ १५२ ॥

अहं स्वात्मरतिं राम तवार्थं परिसाधये ।
भवादृशे वंशधुर्येसुमग्नो रूपसागरे ॥ १५३ ॥

अहो भाग्यं सदास्माकं रघोर्वंशमुपेयुषाम् ।
यद्वार्द्धकेऽपि सुखैर्वै गृहे स्वात्मजदर्शनम् ॥ १५४ ॥

इत्युक्तः प्रीतियुक्तेन राज्ञा दशरथेन सः ।
उवाच वदतां वर्यो रामः सुमधुरं वचः ॥ १५५ ॥

श्रीराम उवाच

वयं सनाथा भवता राजराजेन भूभृता ।
जननीमेव पश्येम महीमेतां महीपते ॥ १५६ ॥

तव प्रसादान्नृपते यौवराज्ये स्थितोऽस्म्यहम् ।
रञ्जयाम्येष जगतीं किं मे राज्यं ततोऽधिकम् ॥ १५७ ॥

वयं राजकुमाराः स्म भवान् पालयतु क्षितिम् ।
इतोऽधिकं सुखं नास्ति राज्यं भारः परं मम ॥ १५८ ॥

इन्द्रं यमं तथैवापि वरुणं च धनाधिपम् ।
ईशानं चैव ब्रह्माणं तथान्यांल्लोकपालकान् ॥ १५९ ॥

यः स्यात् त्वदाज्ञारहितस्तमहं नामये क्षणत् ।
विक्रान्त्या त्वत्प्रसादाच्च शक्तोऽहं सर्वसाधने ॥ १६० ॥

भूयोऽश्वमेधं वितनु यज्ञान् कुरु सनातनान् ।
वर्षे वर्षे महाराजन् सुनु सोममुदारधीः ॥ १६१ ॥

पाहि प्रजा महीपाल विपद्भ्यः पुरुषाधिप ।
एवं नो वर्द्धय सुखं किं राज्येन ततोऽधिकम् ॥ १६२ ॥

इत्युक्तः स महीपालो रामेणाक्षुण्णबुद्धिना ।
शशास कानिचिद्वर्षाण्यवनीं धर्मवित्तमः ॥ १६३ ॥

ततो मुनीनामाज्ञातो देवेन्द्रस्य च धीमतः ।
रामराज्याभिषेकाय मतिं चक्रे महिपतिः ॥ १६४ ॥

शुभे मुहुर्ते त्रिदशैः सकलै सुमोदितः ।
श्वोभाविनोऽभिषेकस्य पूर्वं चक्रेऽधिवासनम् ॥
यदा सा केकयसुता सख्या मन्त्रं चकार ह ॥ १६५ ॥

कैकय्युवाच

सखि जानामि रामोऽयं सर्वलोकैकरञ्जनः ।
प्रियो ममात्यन्तमेव मत्पुत्राद्भरतादपि ॥ १६६ ॥

प्रजाश्चानुरताः सर्वाअस्मिन्नेव गुणालये ।
माधुर्यं चापि सौन्दर्यं गाम्भीर्यं वीर्यमेव च ॥ १६७ ॥

औदार्यं सौकुमार्यं च सौशील्यं कान्तिरेव च ।
रामे लोकोत्तरं सर्वं पश्यामि जनरञ्जनम् ॥ १६८ ॥

मत्सुतो भरतोऽप्यस्य नित्याज्ञापरिपालकः ।
अस्य भक्तिरसेनासौ किङ्करीकृतविग्रहः ॥ १६९ ॥

तृणवन्मन्यते सर्वं राज्यं स्वात्मानमेव वा ।
तथापि चानुतप्येऽहं रामराज्याभिषेचने ॥ १७० ॥

विना मत्तनयं कुर्यात् कौसल्यातनयः कथम् ।
राज्यं सर्वस्य लोकस्य सपत्नीवृद्धिदुःखतः ॥ १७१ ॥

तत्प्रतीकारमसकृन्नित्यं चित्ते विचारये ।
रामस्वभावमाधुर्यात्किं तु नोपलभे सखि ॥ १७२ ॥

इत्युक्ता केकयाधीशकन्यया सा प्रिया सखी ।
स्मारयामास वै चित्ते वरं कालान्तरे वृतम् ॥ १७३ ॥

सख्युवाच

किं न स्मरसि वै राज्ञि यद्राज्ञोऽङ्गुलिपर्वणि ।
वेदना महती जाता सद्यस्त्वं तामुपाचरः ॥ १७४ ॥

तदा राज्ञा वरो दत्तस्तुभ्यं केकयि दुर्लभः ।
इदानीं सखि याचस्व समयोऽयमुपस्थितः ॥ १७५ ॥

राज्याभिषेकं भरते वने निर्वासनं तथा ।
रामस्येति वचोबद्धं याचस्व नृपतिं हठात् ॥ १७६ ॥

इति संस्मारिता सख्या केकयी भरतप्रसूः ।
तथैवायाचत नृपं वरं कालान्तरे वृतम् ॥ १७७ ॥

नृपः सत्यवचोबद्धः श्रुत्वा तत्केकयीवचः ।
भृशमुद्वेजितोऽप्यासीत्तूष्णीं शून्य इवान्तरे ॥ १७८ ॥

दृष्ट्वा चिन्तातुरं भूपं रामः संतुष्टमानसः ।
तदभिप्रायमाज्ञाय राजानं सुसमादधौ ॥ १७९ ॥

श्रीराम उवाच

राजन् सत्यवचा भूपाः किं मे राज्येन भूयसा ।
गृहे वापि वने वापि तुल्यं प्रीतिसुखं मम ॥ १८० ॥

इत्येवं भूरिवाक्यौघैः संतोष्य नृपतिं हठात् ।
रामः प्रस्थातुमारेभे वनं भ्रात्रा स्त्रिया सह ॥ १८१ ॥

राज्ञो मातुश्चाप्रियं तत्सत्यवाक्स्थितिहेतवे ।
चकार भगवान् रामः सर्वत्र समदर्शनः ॥ १८२ ॥

राज्यं त्यक्त्वा पुराद्यातो वनं रामः सलक्ष्मणः ।
सीतया धर्मचारिण्या सहितो धर्मपालकः ॥ १८३ ॥

यावत्त्रिरात्रं ते चक्रुर्जलमात्राशनं व्रतम् ।
चतुर्थे दिवसे प्राप्ते त्रयश्चक्रुः फलाशनम् ॥ १८४ ॥

पञ्चमे दिवसे गङ्गा समुत्तीर्य रघूद्वहः ।
चित्रकूटाचले चासं चक्रे परमधार्मिकः ॥ १८५ ॥

भ्रातुः समागमभयात् कुर्वन् सत्यां गिरं पितुः ।
ततः प्रतस्थौ भगवान् सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ १८६ ॥

पृष्ठबद्धमहातूणो धनुष्पाणिः कृपाणभृत् ।
महासौन्दर्यकलितो वनचारिभिरीक्षितः ॥ १८७ ॥

प्रविश्य घोरं विपिनं विराधाद्यान् प्रमर्दयन् ।
महापराक्रमो रामः प्राप्तः पंचवटीवनम् ॥ १८८ ॥

ततो गोदावरीतीरे रक्षन्नाश्रममण्डलान् ।
रक्षन् मुनींश्च दैत्येभ्यो रक्षोभ्यस्तत्र चावसत् ॥ १८९ ॥

सार्द्धद्वादशवर्षेषु व्यतीतेषु वनस्थितौ ।
रक्षोनाथस्य भगिनीं चक्रे विग्नां च विश्रुतिम् ॥ १९० ॥

तत्पृष्ठगान् राक्षसांश्च खरादीन् हतवान् सुधीः ।
क्षेमं च दण्डकारण्यं कृतवान् भुजवीर्यतः ॥ १९१ ॥

चिक्रीडे दण्डकारण्ये सीतया सहितः प्रभुः ।
लक्ष्मणं वनरक्षायां नियुज्य परमोत्सवी ॥ १९२ ॥

चक्रे रासविलासादीन् रामोगुप्ततया निशि ।
प्रमोदवनसामग्रीमाविर्भाव्य विशेषतः ।। १९३ ।।

ततो दसमुखः क्रुद्धः श्रुत्वा शूर्पणखादशाम् ।
मानुषेणैव रामेण किमिदं समनुष्ठितम् ।। १९४ ।।

इति संचिन्त्य सातङ्को बभूव रक्षसां प्रभुः ।
ततस्तस्य प्रतिकृतिं कर्त्तुं हर्तुं च तत्प्रियाम् ।। १९५ ।।

मारीचेन समं यातो मायादीर्घरथस्थितः ।
माघशुक्लचतुर्दश्यां वीक्ष्य शून्यं तमाश्रमम् ।। १९६ ।।

रावणस्तापसवपुर्भूत्वा भिक्षार्थमागतः ।
तं मायाविनमाज्ञाय सीता देवी मनस्विनी ।। १९७ ।।

विवेश गार्हपत्याग्नौ रावणस्तमधर्षयत् ।
अग्निः सीतानुभावेन् भूत्वा संवर्तकाग्निवत् ।। १९८ ।।

अतिमात्रं महाघोरस्वरूपो भक्षितुं स्थितः ।
दग्धुमुद्यन्तमनलं वीक्ष्य दुद्राव रावणः ।। १९९ ।।

सीताछायां समादाय जगाम गगनाध्वना ।
सा राक्षसकुलं दग्धुं कृत्यारूपव्यवस्थिता ।। २०० ।।

छायारूपा समुद्भूय गता लङ्कां निजेच्छया ।
अथ रामस्तु मारीचं हत्वा मायिनमासुरम् ।। २०१ ।।

समुपेत्य ततो वीरौ वीक्ष्य शून्यं तमाश्रमम् ।
वायसैश्चैव कङ्कैश्च तीक्ष्णतुण्डैः समावृतम् ।। २०२ ।।

विहीनं सीतया साध्व्या शोकाविष्टौ बभूवतुः ।
मूर्छितः प्रापतद्रामो धरण्यां गतचेतनः ।। २०३ ।।

पय आनीय च ततो लक्ष्मणेन प्रबोधितः ।
भगवान् हेतुमनुजो रामः श्रीपुरुषोत्तमः ।। २०४ ।।

अज्ञातचेष्ठोमनुजैः प्राज्ञैरपि सुदुर्गमः ।
क्वचिज्ज्ञानी क्वचिन्मूढः क्वचिच्छोकसमावृतः ।। २०५ ।।

तूणी सम्बद्ध्य वाणी च सज्जीकृत्य दृढं धनुः ।
सीतालोकाय बहुशो बभ्राम भ्रातृणा सह ।। २०७ ।।

तरूंल्लताश्च गुल्मांश्च घनराजीन् वनस्पतीन् ।
पृच्छन् मुर्छन् मुहुर्वीरो बभ्रामबहुशोऽटवीम् ।। २०७ ।।

दृष्टो जटायुरग्रे च कृतयुद्धोऽति रक्षसा ।
सीतार्थं रहितप्राणः कण्ठजीवः पितुः सुहृत् ।। २०८ ।।

ततो वृत्तं समाकर्ण्य प्रियाचौरस्य रक्षसः।
भ्रातृभ्यां विहितो दाहो मृतस्य वयसोऽस्य च ॥ २०९ ॥

चक्रे तस्यान्तिकं कर्म तातेति च रूरोद सः।
हा तात ' हा पितृसखमदर्थं मृतवानसि ॥ २१० ॥

अथातितायिनौ वीरौ भ्रातरौ सुहृदौ च तौ।
रावणेन रणोद्युक्तौ बभूवतुरुदायुधौ: ॥ २११ ॥

कुपितो लक्ष्मणं राम उवाच विरहातुरः।
जाया मे जीवति यदा तदा जीवतु वै जगत् ॥ २१२ ॥

ने चेत्सेश्वरं लङ्केशं भस्मीकर्तुमहं क्षमः।
समुद्रं शोषयिष्यामि धक्ष्यामि धरणीमिमाम् ॥ २१३ ॥

त्रैलोक्यं नाशयिष्यामि सदेवासुरमानुषम् ।
इत्थं भयानकवचा ब्रूते रामः सदां वने ॥ २१४ ॥

लक्ष्मणस्तमुवाचाथ प्रणयाद्विहिताञ्जलिः।
आर्यैवं भवतो वाक्यं श्रुत्वाहं सभयोऽस्मि च ॥ २१५ ॥

भूमिः प्रचलिता सद्यो जलधिश्च समुत्थितः।
मेरुश्च कम्पितोऽत्यर्थं देवताश्च चकम्पिरे ॥ २१६ ॥

मान्धाता सगरश्चैव तथा राजा भगीरथः।
रघुस्तथाम्बरीषाद्या यावन्तो जनकः स्वयम् ॥ २१७ ॥

तावत्सम्पालिता भूमिर्यथा पित्रा स्वपुत्रकाः।
तेषां कुले भवान् जातः कीर्तिवर्द्धनकारकः ॥ २१८ ॥

सूर्यवंशोद्भवः श्रीमान् धर्मात्मा सर्वपालकः।
एकस्याविनयाद् राम हन्तुं नार्हसि वै जगत् ॥ २१९ ॥

श्रीशिव उवाच

भक्तस्य लक्ष्मणस्येत्थं वचनैः प्रससाद सः।
स्नेहेन परिरभ्यामुं भ्रातरं प्राणसम्मितम् ॥ २२० ॥

स्मित्वाऽऽघ्राय शिरस्तस्य जगाम किल सत्वरम्।
तेनैव सहितो भ्राता लक्ष्मणेन मनीषिणा ॥ २२१ ॥

उच्चावचेषु शैलेषु शिखरेषु च भूरिषु।
गह्वरेषु गुहास्वेवं गुल्मेषु च वनेषु च ॥ २२२ ॥

निकुञ्जेषु च कुञ्जेषु पर्यन्तेषु घनेषु च।
आरोहेष्ववरोहेषु भ्रातरौ खिन्नविग्रहौ ॥ २२३ ॥

परिश्रान्तौ संचरन्तौ समेषु विषमेषु च ।
पश्यन्तौ जानकीस्तेयं कबन्धालयमागतौ ॥ २२४ ॥

तद्बाहुवीर्यवशिनौ रण्डस्य तुण्डसंनिधिम् ।
दृष्ट्वा वनचरान् नीत्वा ग्रसन्तं वदनेन तम् ॥ २२५ ॥

अत्यर्थदीर्घदोर्दण्डं खड्गाभ्यां विनिकृत्य तौ ।
पातयामासतुर्भूमौ स त्यक्त्वा वपुरात्मनः ॥ २२६ ॥

बभूव दिव्यो गन्धर्वः प्रणम्य भ्रातरावुभौ ।
सीतां दिशन् गतः स्वर्गं वपुसौन्दर्यभासुरः ॥ २२७ ॥

तेनोदिष्टेन मार्गेण क्रामन्तौ दुर्गपर्वतान् ।
सज्जीकृत्य धनुर्बाणौ मन्दं मन्दमुपेयतुः ॥ २२८ ॥

ततः पम्पासरः प्राप्तौ स्नात्वा विश्रम्य तत्तटे ।
प्रणम्य मुनिसंदोहं दण्डकारण्यवासिनम् ॥ २२९ ॥

ततः प्रचलितौ पश्चात् कुर्वन्तौ विविधाः कथाः ।
मार्गे घोरतरे भूरि घोषयन्तौ धनुर्गुणम् ॥ २३० ॥

दूरस्थौ च ततो दृष्ट्वावृष्यमूकनिवासिभिः ।
शाखामृगैः पञ्चभिस्तौ वीरेन्द्रौ चललोचनौ ॥ २३१ ॥

सुग्रीवस्यनिदेशाच्च प्राप्तः पवनजोऽन्तिकम् ।
ततो मधुरया वाण्या संवादः समभूत्तयोः ॥ २३२ ॥

तदुक्तं तत्स्वरूपं च सम्यग्विज्ञाय राघवः ।
चक्रे सखित्वं तेनासौ कपीन्द्रेण समं दृढम् ॥ २३३ ॥

ऋष्यमूकस्य शिखरे जानक्या भूषणानि तैः ।
आनीय कपिभिर्दत्तान्यादेशात् कपिभूपतेः ॥ २३४ ॥

रामहस्तेऽर्पितान्यद्धा सख्या सौहार्ददर्शिना ।
भूषादर्शनमात्रेण मुमोह रघुपुङ्गवः ॥ २३५ ॥

सुग्रीवः कपिभिः साकं दुःखाभिभवमाप्तवान् ।
कृतोपकरणैः पश्चाद्विनोदः कपिभिः कृतः ॥ २३६ ॥

सर्वे बालिवधोत्साहप्रतीतिजनिकां ततः ।
तालावलीं समाजग्मुः सप्तदर्वीकराकृतिम् ॥ २३७ ॥

रामो दृष्ट्वा स्थितिं तेषां सप्तानां मर्मवित्स्वयम् ।
सज्जीकृत्य धनुर्वीरः संधाय विशिखं बली ॥ २३८ ॥

वेगेन ताडयामास सरलां तालराजिकाम् ।
बाणस्तन्मूलसंसुप्तं शापदग्धं भुजङ्गमम् ॥ २३९ ॥

हत्वा हंसवपुः कृत्वा तूर्णं रघुपतेर्ययौ ।
चक्रुः स्वर्गस्थिता देवाः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः ॥ २४० ॥

श्रीराममूर्द्धनि प्रायः पुष्पवृष्टिः सुशोभना ।
कपिभिर्दर्शितं रामः कबन्धं दुन्दुभेर्भृशम् ॥ २४१ ॥

वामेनैव करेणासौधनुष्कोट्या व्युदासितम् ।
उड्डीयाम्बरतो भूमौ दीर्घान्तरतयापतत् ॥ २४२ ॥

सोऽतिहृष्टैः कविभटैरर्चितः सादरं रघुः ।
अथ सुग्रीव आश्रित्य बलं रघुपतेर्महत् ॥ २४३ ॥

बालिनो राजधानीं तां किष्किन्धापुरमागतः ।
गत्वा परिसरे गाढमास्फोट्य सुदृढं करौ ॥ २४४ ॥

कृत्वा सिंहनिनादं च मुखेनापूरयन्नभः ।
आततायिनमाहूय स्वाग्रजं तावयुध्यताम् ॥ २४५ ॥

तयोः स्वरूपसादृश्यात्तर्को रघुपतेरभूत् ।
उभयोरनयोर्मध्ये को मित्रो मम चिह्नतः ॥ २४६ ॥

इत्येवमुग्धहृदये रामे सूर्याङ्गजो रणे ।
इन्द्राङ्गजेन बलिनाऽऽताड्य विद्रावितोद्रुतम् ॥ २४७ ॥

स भ्रष्टविक्रमः प्राप्तो रामस्यान्तिकमानतः ।
तर्जन्योपालभद्रामं श्वासोच्छ्वासाकुलो भृशम् ॥ २४८ ॥

पश्यन् विचकितो भूयः शत्रोरागमशङ्कया ।
विवृत्याननमुद्ग्रीतो भ्रात्रा युद्धे पराजितः ॥ २४९ ॥

आश्वासितः स रामेण हस्तस्पर्शतलालनैः ।
अभीतिदैश्च वचनैः स्वामिना भयहारिणा ॥ २५० ॥

उक्तं च भवतः साम्यान्न मया मारितो रिपुः ।
सत्यं मे व्याहृतं याहि पुनरेव निजं रिपुम् ॥ २५१ ॥

हनिष्याम्यधुना शीघ्रमित्युक्तः स्वामिना ततः ।
जगाम कलहायासौ किष्किन्धां बालिनः पुरीम् ॥ २५२ ॥

सुग्रीवमागतं ज्ञात्वा गर्जन्तं पुरसन्निधौ ।
रोषाद्वधं विनिश्चित्य सुग्रीवस्य स विक्रमी ॥ २५३ ॥

शुद्धान्तात्सम्प्रचलितो निषिद्धोऽपि च भार्यया ।
विज्ञिर्धूम्रापशकुनान् बाली हठसमावृतः ॥ २५४ ॥

ततो ज्येष्ठानुजौ युद्धे दृष्ट्वान्योन्यमुपागतौ ।
रामोहृष्टतनुर्भूत्वा करे कृत्वा धनुर्वरम् ॥ २५५ ॥

स्थित्वा गुल्मान्तरे वीरः कृत्याकृत्यमचिन्तयन् ।
साक्षात्स भगवान् देवो रामः कारणकारणः ॥ २५६ ॥

बाणं प्राणहरं क्षिप्त्वा बालितं हृदयेऽवधीत् ।
यत्रासौ पतितो बाणविद्धो वानरभूपतिः ॥ २५७ ॥

रामस्तत्रागतो वीक्ष्य सदयं कर्म चात्मनः ।
संतप्तोऽनुचितं कृत्वा सान्त्वितः सामभिस्ततः ॥ २५८ ॥

सुग्रीवेणानुजेनापि बलिना च प्लवंगमैः ।
श्रीरामदृष्टिनिर्धूतसमस्तशमलः कपिः ॥ २५९ ॥

बाली रामे विलीनात्मा जगाम परमं पदम् ।
ततो राज्याभिषेकेन सुग्रीवश्चाभिषेचितः ॥ २६० ॥

ततो वार्षिकमासेषु शृङ्गे माल्यवतो गिरेः ।
उवास भ्रातृसहितः सीताविरहकर्षितः ॥ २६१ ॥

भूयः शोकं चकारासौ तत्र संतप्तमानसः ।
अहो राज्याभिषेके मे तादृग्विघ्नो बभूव ह ॥ २६२ ॥

आजन्म सुखिनो जातं ततो मे वनसेवनम् ।
तत्राप्यभून्मे जानक्या विरहः प्राणशोषणः ॥ २६३ ॥

सीतार्थं च मृतं तातमित्रं तत्तादृशं वयः ।
अधर्माच्च हतोबाली किं नु दुखःमतः परम् ॥ २६४ ॥

इत्येवं गणयन् दुःखं चातुर्मास्यं चकर्त सः ।
अथ रामाज्ञया शीघ्रं किष्किन्धां लक्ष्मणो ययौ ।
चापतोमरभृद्वीरो भ्रूभङ्गेन तमादिशत् ॥ २६५ ॥

लक्ष्मण उवाच

यत्पादाब्जप्रसादेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।
भोगं करोषि साम्राज्यलक्ष्म्याः सुग्रीव भूरिशः ॥ २६६ ॥

सोऽरण्ये निवसन् रामो हृदयेन विदूयते ।
तवाग्रजरिपुः साक्षाद्विस्मृतो भवता स किम् ॥ २६७ ॥

तेनाख्यातमिदं श्रुत्वा जहास कपिपुङ्गवः ।
श्रीरामानुजमाश्लिष्य निन्ये शुद्धान्तमादृतः ॥ २६८ ॥

तत्रासौ तारयान्याभिर्योषिद्भिश्च प्रपूजितः ।
शिविकां तावथारुह्य पुरोगैः कपिभिर्युतौ ॥ २६९ ॥

आजग्मतुस्त्वरायुक्तौ यत्रास्ते रघुपुङ्गवः ।
कुशसंस्तरमध्यासबद्धपद्मासनः प्रभु ॥ २७० ॥

नीलोत्पलदलश्यामः स्वस्थो वल्कलचीरभृत् ।
सुलोचनः सुवदम आजानुदीर्घबाहुकः ॥ २७१ ॥

अलङ्कृतो वपुर्लक्ष्म्या बिभ्रद्वभ्रुरुचोजटाः ।
तुङ्गोत्तमाङ्गशिखरः कैलासाधिपतिर्यथा ॥ २७२ ॥

तं दृष्ट्वा रघुशार्दूलं सुग्रीवादयाः प्लवंगमाः ।
लक्ष्मणेन समं सर्वे प्रणेमुर्दण्डवद्भुवि ॥ २७३ ॥

कृताञ्जलिपुटा ऊर्ध्वमुत्थिता देशकारिणः ।
परिरेभेऽथ सुग्रीवं रामो राजीवलोचनः ॥ २७४ ॥

समुपावेशिताः सर्वे रामेण कपिपुङ्गवाः ।
अन्योन्यविक्रमं दृष्ट्वा तावेकासनसंस्थितौ ॥ २७५ ॥

अङ्गदश्चात्मनिकटे रामेण स्थापितो भृशम् ।
सम्मानितश्च नितरां सादरैर्वचनादिभिः ॥ २७६ ॥

ततः कथय आहूता यावन्तो भूमिमण्डले ।
समाययुस्ते पुरतो हरिणा चक्रवर्त्तिना ॥ २७७ ॥

सुग्रीवस्यादेशकरा नानाजातय उद्धता ।
श्वेता रक्ताः पिङ्गाश्च नीलाः कृष्णाश्चकर्बुराः ॥ २७८ ॥

स्थूलाः स्थूलकराः शैलसदृशाः कुञ्जरोपमाः ।
अरुणास्याः कालमुखाः पिङ्गाक्षा बहुवर्णकाः ॥ २७९ ॥

विकिन्नवेगाः कपयो लाङ्गलातपवारणाः ।
आययुः कोटयस्तत्र लङ्केशकुलनाशनाः ॥ २८० ॥

बद्धकक्षोरकाः क्रूरा आत्मीयोज्झितजीविताः ।
स्वामिनोऽर्थे पतङ्गाभाः सर्वेयुद्धविशारदाः ॥ २८१ ॥

कृतास्फोटाः कपिवरा मुक्तौकस उपागताः ।
दिनेशवंशतिलकस्यार्थे प्रसभमुद्यताः ॥ २८२ ॥

संग्रामाङ्गणगाः शक्ता हन्तुं प्रतिवलं क्षमाः ।
देवांशा हरयः सर्वे हरीशसहितास्तथा ॥ २८३ ॥

विधेराज्ञाकराः सर्वे रामं सेवितुमागताः ।
रामाभिधं परं साक्षात् पूर्णश्रीपुरुषोत्तमम् ॥ २८४ ॥

एतेषां गणना प्रोक्ता महापद्मनवद्वयम् ।
ततोऽपि चाधिका वीराः समायाताः प्लवंगमाः ॥ २८५ ॥

धीमन्तो बलिनश्चैव बुद्धिविक्रमशालिनः ।
श्रेष्ठाः स्वामिहिताश्चैव सुग्रीवस्य निदेशतः ॥ २८६ ॥

कृत्वा प्रणामं रामस्य सर्वे तत्र समाययुः ।
अथ केचित्कपिश्रेष्ठाः सीतालोकसमुत्सुकाः ॥ २८७ ॥

मासैकमवधिं कृत्वा ययुस्ते सर्वतो दिशम् ।
मासाधिकं व्यतिक्रान्ता दण्ड्याः स्युर्नात्र संशयः ॥ २८८ ॥

नलनीलमरुत्पुत्रप्रमुखा ऋक्षपुङ्गवाः ।
वृत्वेशमङ्गदं ते वै कपयो दशकोटयः ॥ २८९ ॥

याम्यां दिशिगताः सर्वे सीतालोकनतत्पराः ।
मासावधिर्लङ्घितस्तैः प्राप्तास्ते कपयस्ततः ॥ २९० ॥

महेन्द्रमचलं नाम तीरे नीरनिधेर्भृशम् ।
प्रायोपवेशमास्थाय संस्थिताः कुशसंस्तरे ॥ २९१ ॥

सम्पतिर्नाम विहगस्तत्र तैः सङ्गतोऽभवत् ।
कपिभ्यस्तेन कथितं सीतावृत्तं यथातथम् ॥ २९२ ॥

लङ्केशोपवने सीता शोकाविष्टा वियोगिनी ।
अशोकस्य तरोर्मूले वसतीति निबोधत ॥ २९३ ॥

तन्निवेदितमाकर्ण्य दशमे मासि मार्गके ।
दशम्यां विहितोत्साहो हनूमान् हरिवासरे ॥ २९४ ॥

संध्यायामन्तरायाणि हत्वा पथि पयोनिधेः ।
शतयोजनविस्तीर्णं पय उल्लङ्घ्य विक्रमी ॥ २९५ ॥

लङ्कां ययौ सूक्ष्मवपुरदृश्यात्मा महासुरैः ।
रात्रेः पाश्चात्यप्रहरे ददर्श नगरीं ततः ॥ २९६ ॥

तस्मिन्नुपवने सीता[1]मशोकतरुसमाश्रिताम् ।
प्रलपन्तीं रामनाम महाविरहदुःखिताम् ॥ २९७ ॥

[2]ददर्शावतीर्य विटपात्तदन्तिकमुपागतः ।
मूर्ध्ना कृतप्रणामोऽस्यै निबद्धाञ्जलिरब्रवीत् ॥ २९८ ॥

हनुमानुवाच

अम्बाम्ब मातर्जननि भक्तो रघुपतेरहम् ।
अङ्गुलीयकमेतद्धि प्रभोस्तुभ्यं समर्पये ॥ २९९ ॥

१–२. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षं ।

इति प्रत्यर्प्य हनुमान् श्रीरामस्याङ्गुलीयकम् ।
तस्याः शिरोभूषणं तच्चूडारत्नं प्रगृह्य सः ॥ ३०० ॥

पुनराश्वास्य तां देवीं ततो वीरः सुनिर्गतः ।
भग्नं तेन त्रयोदश्यां रावणस्योत्तमं वनम् ॥ ३०१ ॥

क्रव्यादाः शतशस्तेन घातिता भुजविक्रमाः ।
स आबद्धश्चेन्द्रजिता ब्रह्मास्त्रेण भृशं रणे ॥ ३०२ ॥

चतुर्दश्यां ततः पुच्छे नियुक्तातुच्छपावकैः ।
प्रज्वालिता तेन लङ्का परिभूतः पुलस्त्यजः ॥ ३०३ ॥

महेन्द्रमचलं प्राप्तो राकायां पवनात्मजः ।
कपीनां पुरतस्तेन सर्वं चरितमीरितम् ॥ ३०४ ॥

सिद्धार्था हरयः सर्वे महेन्द्रगिरितः पुनः ।
व्यावर्तिताः पञ्चदिनैरागताः पथि सत्वराः ॥ ३०५ ॥

षष्ठेऽह्नि तैर्मधुवनं सर्वमालोडितं मुहुः ।
सप्तम्यां च मरुत्सूनुः सीतामस्तकभूषणम् ॥ ३०६ ॥

ददौ रघुपतेस्तच्च हृदये निदधे प्रभुः ।
मुमोह विरहेणतंस्ततोऽष्टम्यां शिरःस्थिते ॥ ३०७ ॥

सूर्ये प्रयाणमातेने उत्तराफाल्गुनीयुते ।
जयाय जयिनां श्रेष्ठो रामः कपिबलैर्वृतः ॥ ३०८ ॥

अधाज्जलनिधेस्तीरे स्कन्धावारनिवेशनम् ।
सिन्धोस्तीरे स्थितिरभूत्पौषस्यादद्य दिनत्रयम् ॥ ३०९ ॥

चतुर्थीदिवसे प्राप्तः शरणं च विभीषणः ।
तदैव रघुनाथेन कृतोलङ्काधिपश्च सः ॥ ३१० ॥

अभिषिच्य स्वयं तावत् पयसा तस्य मूर्द्धनि ।
सिन्धोरुल्लङ्घने मन्त्रः सप्तम्यां तैः कृतस्तः ॥ ३११ ॥

रामश्चलक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः ।
हनुमान् कपयश्चान्ये निबद्धाञ्जलयोऽखिलाः ॥ ३१२ ॥

सिन्धुं ययाचिरेमार्गं यावद्दिनचतुष्टयम् ।
भूत्वा निरशताः सर्वे याचन्तः सरितां पतिम् ॥ ३१३ ॥

अथ क्रुद्धोऽब्रवीद् रामः सौमित्रे धनुरानय ।
अहमेकेन वाणेन जलधिं खलु शोषये ॥ ३१४ ॥

रामं कुपितमालोक्य वेपमानः सरित्पतिः ।
सदद्यएवाविरभवत् प्रियोपायनसंयुतः ॥ ३१५ ॥

शान्ति निनाय शनकैः सामभी रघुपुङ्गवम् ।
सप्रश्रयैश्च वचनैः सेतूपायमदर्शयत् ॥ ३१६ ॥

साश्चर्यैः कपिशार्दूलैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः ।
सहर्षो निलयं प्राप्तो मुदिताः कपयोऽभवन् ॥ ३१७ ॥

ते सर्वे कपयः स्वीयशिरसा सर्वपर्वतान् ।
उच्चैः शृङ्गान् गण्डशैलसहितान् गगनोन्नतान् ॥ ३१८ ॥

नीत्वाक्षिपंस्तोयनिधौ रामनामाङ्कमण्डितान् ।
ते युक्तिपूर्वं निहिता नलहस्तेन वारिधौ ॥ ३१९ ॥

दशम्यां सेतुरारब्धस्त्रयोदश्यां प्रपूरितः ।
दशयोजनविस्तीर्णः शतयोजन लम्बितः ॥ ३२० ॥

तेनोत्तीर्णाः कपिभटाः सर्वे भूतादिने क्रमात् ।
न्यवेशयद् रघुपतिः सुवेलपर्वते बलम् ॥ ३२१ ॥

निरुद्धय लङ्काहृदयं स्थितो रामो यथान्तकः ।
पूर्णादिनास्त्रिभिर्घस्त्रैः सर्वे ते कपिसंचयाः ॥ ३२२ ॥

सिन्धोर्जलं समुत्तीर्य पारंजग्मुः समंततः ।
गर्जन्तो भीषणैर्नादैस्त्रासयन्तो रिपून् स्थिताः ॥ ३२३ ॥

लङ्काप्राकारमाक्रम्य कोष्ठाट्टालकगोपुरान् ।
शिखरांश्च समारुह्य संस्थिताः परितः पुरीम् ॥ ३२४ ॥

तृतीयां तु समारभ्य दशम्यन्तदिनाष्टकम् ।
लङ्कायाः परितो जाता प्लवंगानां बलस्थितिः ॥ ३२५ ॥

एकादश्यां कपिबलप्रेक्षार्थं रावणेरितौ ।
शुकश्च सारणश्चैव प्राप्तौ बद्धौ च वानरैः ॥ ३२६ ॥

द्वादश्यां सर्वद्वारेषु कृत्वाशाखामृगान् प्रभुः ।
सेनापतींस्तथादिश्योत्तरे द्वारि स्वयं स्थितः ॥ ३२७ ॥

तत्राट्टालक आगत्य सच्छत्रो रावणः स्थितः ।
अर्द्धचन्द्रेषुणा रामस्तस्य छत्रं समाच्छिनत् ॥ ३२८ ॥

अथ मन्दोदरी नाम तस्यार्द्धाङ्गनिवेशिनी ।
अब्रवीद्वचनं तथ्यं हितं चामृतसम्मितम् ॥ ३२९ ॥

मन्दोदर्युवाच

पश्याधीश दिशो यावत् तावद्रघपतेश्चमूम् ।
[1]पश्याम्येतत्प्रातिकूल्यं नो ये मज्जन्तिजले क्षणात् ॥ ३३० ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

तरन्तितेऽपि पाथोधौ प्रस्तराः शैलरूपिणः ।
करचालनमात्रेण ये यस्यन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ३३१ ॥

तैरियं नगरी नाथ वेष्टिता सर्वतोदिशम् ।
भव्यं यद्रक्षसां तौ च प्राप्तौ क्षयकरौ रिपू ॥ ३३२ ॥

यत्सीमा नामरैर्लङ्घ्या लङ्घिता सापि वानरैः ।
यः सोदरः सोऽपि यातः संगं त्यक्त्वा द्विषोऽन्तिकम् ॥ ३३३ ॥

मन्ये तदधुना जातः कोऽपि कालविपर्ययः ।
येनैकेन हृताश्चान्ये राक्षसा ये खरादयः ॥ ३३४ ॥

वाली च निहतो येन ते त्वद्वीर्यबलाधिकाः ।
तस्यापश्यत एवास्य प्रियां हृत्वा त्वमागतः ॥ ३३५ ॥

सोऽयं सेतुं विधायाब्धौ त्रिकूटाचलमागतः ।
कथमन्धायसे नाथ पश्यन् विंशतिलोचनैः ॥ ३३६ ॥

मुक्त्वा शिरांसि भवतश्चिच्छेद छत्रसंहृतिम् ।
मन्ये पुलस्त्यवंशेऽस्मिन् रामेण वै कृता कृपा ॥ ३३७ ॥

एकस्तेऽवसरोऽद्यापि संधिं कर्तुं महात्मना ।
समर्प्य प्रियतमां रामस्यास्य पतिव्रताम् ॥ ३३८ ॥

जीवन्तु राक्षसाः सर्वे लङ्कापुर्याः शमस्तु च ।
जानासि नाथ सकलं बाह्वोयद्वालिनोबलम् ॥ ३३९ ॥

एकेन मार्गणेनैष रामेण निहतः क्षणात् ।
तस्य प्रियां च रामस्य हृत्वा त्वं कुधियागतः ॥ ३४० ॥

उत्पादितेयं भवता कृत्या रक्षःकुलक्षये ।
इति मन्दोदरी प्रोच्य विरता कुधियोऽन्तिके ॥ ३४१ ॥

अथ तौ वानरैर्बद्धौ शुकसारणसंज्ञकौ ।
रामस्यादेशतोमुक्तौ प्राप्तौ तौ रावणान्तिकम् ॥ ३४२ ॥

तावूचतुः कपिपते रूपं विस्फूर्जितं महत् ।
जृम्भन्ते वानरवरास्त्वत्पुरोग्रासहेतवे ॥ ३४३ ॥

मैन्दं पश्य प्रभो क्रुद्धस्त्वां पश्यति स उन्मुखः ।
द्विविदोऽयं पुरीमेतां ग्रसन्निव मुखे स्थितः ॥ ३४४ ॥

नीलोऽयं वानरपतिः प्रहस्तमवृणोच्च यः ।
हन्तुं कपीनां पुरतः संग्रामविजयी बली ॥ ३४५ ॥

नलोऽयं वानरवरः सेतुर्येन विनिर्मितः ।
एष चाङ्गद ऊर्ध्वाक्षस्तातेन सदृशो बली ॥ ३४६ ॥

अयं ऋक्षेश्वरो वीरो जाम्बवान् बुद्धिमान् बली ।
निजसेनास्थितो भाति वृद्धो युद्धविशारदः ॥ ३४७ ॥

एकैकोऽप्रतिमो ह्येषां वीर्येण च बलेन च ।
शक्त उर्वीं समुद्धर्तुं का लङ्का तृणपुञ्जवत् ॥ ३४८ ॥

तव चित्ते मतिर्मा भूदेते वानरमर्कटाः ।
आदेशाद्राघवपतेः कोट्यन्तः परितः स्थिताः ॥ ३४९ ॥

एते कपिवरा नाम सर्वदेवपराक्रमाः ।
निरीक्षतां मया चापि रामो वीरः स्वयं स्थितः ॥ ३५० ॥

अक्षहावानरपतेरुत्संगे कृतमस्तकः ।
त्वत्सोदरोक्तं शृण्वानस्तस्याङ्कस्थपदाम्बुजः ॥ ३५१ ॥

आस्ते सुवर्णहरिणचर्माध्यास्य समास्थितः ।
पश्यंस्त्वद्वंशनाशाय विशिखं लक्ष्मणाहृतम् ॥ ३५२ ॥

तस्माद्भवान् गर्हं कर्म कृतवान् नात्र संशयः ।
निधनायात्मनः पीतं विषं हालाहलं त्वया ॥ ३५३ ॥

जानकीं देहि लङ्का च यदि वाञ्छसि जीवितुम् ।
उदितोऽयं धूमकेतुः क्षयाय ननु रक्षसाम् ॥ ३५४ ॥

तस्माच्छीघ्रं सुतैः सार्द्धं प्रयाहि स्त्रयमन्यतः ।
विज्ञायास्य बलं धीमान् भ्राता ते शरणं गतः ॥ ३५५ ॥

तस्मै लङ्का प्रसादेन दत्ता नैवात्र संशयः ।
किशोरेण हतायेन ताडका नाम राक्षसी ॥ ३५६ ॥

मुक्ता तेऽवरजा येन ह्रिया तव पितुर्मुनेः ।
निष्क्रन्त्य नासिकाकर्णं वीरेन्द्रेण महात्मना ॥ ३५७ ॥

कस्तस्याप्यनयं कृत्वा जीवेत खलु राक्षसः ।
शिरःश्रेणी क्षितिं गन्ता तव दाशरथेः शरैः ॥ ३५८ ॥

तयोरित्थं वचः श्रुत्वा प्रहस्य खलु रावणः ।
आहूय सकलान् रक्षश्चमूनाथान् सुनिश्चितम् ॥ ३५९ ॥

त्रयोदशीं समारभ्य यावत्पर्वकुहूदिनम् ।
तावत्संख्यां विधायैषां यथास्थानमरोपयत् ॥ ३६० ॥

माघस्याद्यदिने प्राप्तो रामस्यादेशतोऽङ्गदः ।
दूतो भूत्वा महाबुद्धिः सभां रक्षःपतेर्ययौ ॥ ३६१ ॥

उवाच तत्र साक्षेपं रावणस्यपुरो वचः ।
धर्मद्वारेणमार्गेण सबान्धवपशु व्रज ॥ ३६२ ॥

श्रृणु रावणलङ्कायां स्थापितोऽत्र विभीषणः।
श्रीरामेण महावीरः शिरोमुकुटभूषिणा ॥ ३६३ ॥

इति कर्णकटून्यद्धा वचांस्याकर्ण्य रावणः।
क्रुद्धोऽङ्गदस्य बन्धाय राक्षसानादिदेश ह ॥ ३६४ ॥

हत्वा बालिसुतः सर्वान् बलेन बलिनो रिपून् ।
भित्त्वा राजशिरोवेश्म गर्जन् यातो नमोऽध्वना ॥ ३६५ ॥

माघे शुक्लद्वितीयातः सप्तम्यवधि चा भवत् ।
अतीव संकुलं युद्धं रक्षोवानरसैन्ययोः ॥ ३६६ ॥

युद्धावहारः समभूत् ततस्तत्र दिनद्वयम् ।
द्वादश्यां हनुमान् जघ्ने धूम्राक्षंनाम राक्षसम् ॥ ३६७ ॥

तेनैव निहतश्चक्रस्त्रयोदश्यां निशाचरः।
चतुर्दशीं समारभ्य नीलेन दिवसैस्त्रिभिः ॥ ३६८ ॥

बलवान् निहतो युद्धे प्रहस्तो नाम राक्षसः।
ततस्त्रिभिर्दिनैर्यावच्चतुर्थी दिन मुल्बणैः ॥ ३६९ ॥

बाणैर्विद्रावितो युद्धे रामेण खलु रावणः।
पञ्चमीदिवसाद्धस्तैश्चतुर्भिरनुजो बली ॥ ३७० ॥

कुम्भकर्णः सुनिद्राणो रावणेन प्रबोधितः।
तदा युद्धावहारोऽभूदन्योन्यं सेनयोर्द्वयोः ॥ ३७१ ॥

षड्भिर्दिनैः कुम्भकर्णो रामेण निशितैः शरैः।
छित्त्वावयवशो युद्धे धरण्यां विनिपातितः ॥ ३७२ ॥

अस्मिन् युद्धे तु बहवो भक्षिताः कपिसंचयाः।
श्रुत्वा सहोदरवधं रावणः शोकपीडितः ॥ ३७३ ॥

विललाप महादुःखी कृष्णे पञ्चदशीदिने ।
तदा युद्धावहारोऽभूद्विलापे रावणस्य तु ॥ ३७४ ॥

फाल्गुनादयदिनारभ्य चतुर्थीदिवसावधि ।
नरान्तकमुखाः पञ्च घातिता वीरराक्षसाः ॥ ३७५ ॥

पञ्चमीदिवसाद्धस्तैरतिकायस्त्रिभिर्हतः ।
अष्टम्यां निहतौ कुम्भनिकुम्भौ पञ्चभिर्दिनैः ॥ ३७६ ॥

मकराक्षश्च कपिभिश्चतुर्भिर्दिवसैर्हतः।
संतर्प्याग्निमथ प्राप्य नभश्चरमहारथम् ॥ ३७७ ॥

कृष्णाद्वितीयादिवसे रात्रौ शक्रजिता जितम् ।
ओषध्यानयनैर्यावत्तृतीयासप्तमीदिनम् ॥ ३७८ ॥

पश्चाहं कृतवान् रामो युद्धावहरणं पुनः ।
अष्टमीदिवसात्षड्भिर्दिवसैर्विचरन् रणे ॥ ३७९ ॥

लक्ष्मणेन युद्धं कुर्वन्निन्द्रजिद्विक्रमी हतः ।
ततो [1]भूतादिने शोकाद् रुरोद खलु रावणः ॥ ३८० ॥

युद्धावहारः समभूद्दिनमेकं सुदुःखतः ।
पञ्चदश्यां ततः प्राप्तो रावणो राक्षसैः सह ॥ ३८१ ॥

युद्धाय वानरान् निघ्नन् कुर्वन् विक्रममुल्बणम् ।
चैत्रादयदिवसात्पञ्चदिवसे राक्षसाधिपाः ॥ ३८२ ॥

क्षयं नीताः शरै रामलक्ष्मणाभ्यां सुदारुणाः ।
षष्ठीदिवसतोऽष्टम्यां महापार्श्वादयोहताः ॥ ३८३ ॥

लक्ष्मणो हृदि निर्भिन्नः शक्त्या रावणमुक्तया ।
मूर्छितोन्य पतद्भूमौ नितरां शक्तिपीडितः ॥ ३८४ ॥

व्यद्रावयद्रणाद्रामो दशास्यं नवमी दिने ।
विशल्यकरणीं दिव्यामौषधिं हनुमांस्ततः ॥ ३८५ ॥

द्रोणाद्रेरानयत्तस्याः स्पर्शादासीद्विशल्यकः ।
युद्धावहारः समभूत्तश्च दशमीदिने ॥ ३८६ ॥

रात्रौ युद्धमभूद्भूयः प्रविश्य कपिभिस्ततः ।
लङ्का प्रज्वालिता स्वर्गाद्रथं मातलिरानयत् ॥ ३८७ ॥

तमास्थाय ततो रामो हन्तुं दशमुखं ययौ ।
द्वादश्या दिवसाद् यावद्भूतामष्टादशैर्दिनैः ॥ ३८८ ॥

रामरावणयोर्युद्धे रामेण रावणो हतः ।
इत्थं त्रिजगतां शल्यः कण्टकोऽमरराड्जयी ॥ ३८९ ॥

अन्तं नीतो दशमुखः श्रीरामेण महौजसा ।
ततो देवगणाः सर्वे हर्षसम्भृतमानसाः ॥ ३९० ॥

कुसुमैः कल्पतरुजैः श्रीरामं समवाकिरन् ।
माघशुक्लद्वितीयातो यावद्भूतादिनं मधोः ॥ ३९१ ॥

सप्ताशीति दिनान्यासीद् युद्धं पञ्चदशैर्विना ।
वानस्पत्यदिनेष्वासीत्तेषां दाह क्रिया ततः ॥ ३९२ ॥

वैशाखादयदिने रामः सुवेलं नाम पर्वतम् ।
जगाम वानरैः साकं जित्वा लङ्काधिपं सुधीः ॥ ३९३ ॥

---

१. चतुर्दशी टि०–बड़ौ० ।

वादित्रगीतमाङ्गल्यैर्लङ्कापुर्यां विभीषणः ।
राज्याभिषेकविधिना स्थापितो रामसेवकः ॥ ३९४॥

आनीता च पुरात् सीता श्रीमत्सौमित्रिणा सती ।
अशोकवनिकामध्याद् रामविश्लेषकर्षिता ॥
तृतीयादिवसे रामः सीतां शुद्धयर्थमूचिवान् ॥ ३९५ ॥

श्रीराम उवाच

जानामि नित्यसंशुद्धां त्वामहं जनकात्मजे ।
न ते लीलां विजानन्ति ब्रह्माद्या अपि देवताः ॥ ३९६ ॥

इमां लीलां त्वमकरोर्भूभारक्षयहेतवे ।
राक्षसा वानराश्चैव संख्यातीता मह्रीतले ॥ ३९७ ॥

त्वया कृतः क्षयस्तेषां रावणाहरणच्छलात् ।
धर्मस्य स्थापनार्थाय भक्तिपुष्ट्यर्थहेतवः ॥ ३९८ ॥

तथापि जगदज्ञानान्मा नो निन्दयात् कदाचन ।
अतस्त्वां शोधयिष्यामि दीप्तेऽग्नौ गार्हपत्यके ॥ ३९९ ॥

इति पत्युर्वचः श्रुत्वा पाणौ पाणिं प्रगृह्य च ।
निनाय सा सुवेलादेर्महागह्वरकाननम् ॥ ४०० ॥

विमानं तत्र वै दिव्यमाजगाम महोज्ज्वलम् ।
तमारुरुहतुस्तौ च दम्पती ललनाज्ञया ॥ ४०१ ॥

रामो विमानमारुह्य ललनां न व्यलोकत ।
विमानवर्यं तद्दिव्यं जगाम व्योमवर्त्मना ॥ ४०२ ॥

सीताकुञ्जं सरय्वां वै रमणीयं प्रतिष्ठितम् ।
यत्र सा काञ्चनीभूमिर्मणिरत्नमहोज्ज्वला ॥ ४०३ ॥

प्रमोदविपिनं नाम वनं यत्र मनोरमम् ।
अनेककुञ्जपुञ्जाढ्यं गुञ्जद्भ्रमरसंकुलम् ॥ ४०४ ॥

कूजत्कोकिलमानन्दि कौककेलिगणावृतम् ।
अनेककल्पवृक्षाढ्यमनर्घ्यरामणीयकम् ॥ ४०५ ॥

यत्र श्रीसहजानन्दरूपेणैषा व्यवस्थिता ।
कल्याणगुणसंदोहा प्रेमानन्दस्वरूपिणी ॥ ४०६ ॥

ब्रह्मानन्दं तृणीकुर्वद्भक्तसंदोहभूषिता ।
दिव्यप्रासादवरंगा कल्पवृक्षतलस्थिता ॥ ४०७ ॥

मणिवेदीलसत्स्वर्णरत्नसिंहासनस्थिता ।
महारत्नासनवरस्थितानेकसखीवृता ॥ ४०८ ॥

तत्प्रमोदवनं तस्याः कोणाष्टकसमन्वितम् ।
पूर्वं कृष्णवनं नाम ततो राधावनाभिधम् ॥ ४०९ ॥

तृतीयं वापि वैकुण्ठं रमावैकुण्ठकं ततः ।
ततः श्रीरामवैकुण्ठं षष्ठं सीतानिकेतनम् ॥ ४१० ॥

सप्तमं सुखितागारमष्टमं सहजास्पदम् ।
तन्मध्ये तन्महारम्यं प्रमोदवनमुत्तमम् ॥ ४११ ॥

यत्र श्रीसहजारामौ युग्मत्वेन व्यवस्थितौ ।
महासाम्राज्यगुणभृ नित्यलीलारसास्पदौ ॥ ४१२ ॥

पर्यन्ततः सखीवृन्दं स्वस्वकुञ्जप्रतिष्ठितम् ।
रामा श्यामा च सापत्न्यौ श्रीरामरतिनन्दिते ॥ ४१३ ॥

प्रमोदविपिने ताभ्यां रमते रामचन्द्रमाः ।
पूर्णः सर्वगुणाधीशः शरत्पूर्ण इवोडुपः ॥ ४१४ ॥

तं कुञ्जं स समासाद्य विमानादवतीर्य च ।
दिव्यं श्रीसहजानन्दासदनं वीक्ष्य विस्मितः ॥ ४१५ ॥

तस्याः सखीजनैर्हृष्टैः श्रीरामोऽन्तः प्रवेशितः ।
प्रविश्य सीताकुञ्जेऽसौ महासौभाग्यमण्डिते ॥ ९१६ ॥

अपश्यत्तत्र तस्याश्च महासाम्राज्यसम्पदम् ।
कालशक्तिं समादिश्य माया शक्तिं च वश्यगाम् ॥ ४१७ ॥

सृजति स्थापयत्यत्ति सहजानन्दिनी स्वयम् ।
मूलं सर्वावताराणां स्वयमेव प्रतिष्ठिता ॥ ४१८ ॥

अशेषगुणसंदोहवशीकारविधायिनी ।
ब्रह्मणश्चापि विष्णेश्च रुद्रस्य च विधायिनी ॥ ४१९ ॥

कटाक्षक्षेपमात्रेण कोटिब्रह्माण्डकारिणी ।
सप्तस्वर्गमहास्थानं सप्तपातालसंस्थितिः ॥ ४२० ॥

चिदानन्दकलापूर्णा गुणातीता गुणेश्वरी ।
कारणं कारणानां च साधिपाधिपरूपिणी ॥ ४२१ ॥

उपादानं निमित्तं च सर्वाधिष्ठानरूपिणी ।
आधेय विश्वरूपा च रामणीयकविग्रहा ॥ ४२२ ॥

शृङ्गाररसमाधुर्यमयी प्रेमसुखाकृतिः ।
एकापि सा द्विधाभूत्वा सहजा रामरूपिणी ॥ ४२३ ॥

रमणं रमयत्यन्तर्महाभावरसोदधिः ।
तादृशीं तां स्वयं वीक्ष्य सहजानन्दिनीश्वरीम् ॥ ४२४ ॥

विस्मितोऽभूद् रामचन्द्रः क्षणं निर्निमिषेक्षणः ।
समुत्थाय ततः सा तं स्वासनात्सहजेश्वरी ॥ ४२५ ॥

अस्थायपद्दक्षभागे स्मितशोभिमुखाम्बुजा ।
उवाच रमणं रामं रमणी नित्यसंगता ॥ ४२६ ॥

कान्त त्वयाहं सततं संगता नित्यकेलिनी ।
प्रमोदवनमध्यस्था रमामि वनकेलिभिः ॥ ४२७ ॥

न मां रक्षोऽधिपोजह्रे नाहं लङ्कां गताविभो ।
न च मे विरहो जातो न च मां नीतवान् भवान् ॥ ४२८ ॥

भवान् किं नैव जानाति प्राणनाथ स्वकां गतिम् ।
मानुषीं गतिमाश्रित्य मूढवत्किंनु दृश्यसे ॥ ४२९ ॥

भूमेर्भारविनाशाय प्रमोदवनमध्यतः ।
अंशेनास्म्यवतीर्णाहं चतुर्धा जनकालये ॥ ४३० ॥

त्वमयीश रामचन्द्रः स्वयं दशरथालये ।
भवतीर्णोऽसि भगवान् पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ४३१ ॥

आवयोर्विविधां लीलां जनागास्यन्ति भूतले ।
मुक्तये सर्वभूतानां साधूनां चानुरक्तये ॥ ४३२ ॥

अत्रस्थावपि चावां वै कुर्वहे कोसलापुरे ।
लीलां सर्वस्य सुखदां तथान्यत्र निजालये ॥ ४३३ ॥

न चैवानुप्रपन्नं नौ किमपीहात्मकेलिनोः ।
नित्यात्मनोर्व्यापकयोः परब्रह्मस्वरूपिणोः ॥ ४३४ ॥

अथापि भवतोक्तं यत्प्रिय मामकशुद्धये ।
तत्रावजाने भगवंल्लोकलीलानुरोधतः ॥ ४३५ ॥

भवान् पुराणधर्मज्ञो मर्यादापुरुषोत्तमः ।
उपासीनो लोकमेव मा मे कुत्सां करोत्विति ॥ ४३६ ॥

श्रीशिव उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा रामस्तत्वविदां पतिः ।
उवाच परमं सीतां सहजानन्दकुञ्जगाम् ॥ ४३७ ॥

न ते स्वरूपमाहात्म्यं वेदानामपि गोचरः !
यत्र देवा विमुह्यन्ति शब्दः किं तत्र शक्नुयात् ॥ ४३८ ॥

स्वात्मैकमात्रवेद्यासि सहजानन्दिनी स्वयम् ।
यल्लीलागुणकर्माणि जगद्विस्मापयन्ति हि ॥ ४३९ ॥

लोके विहरसि स्वैरं स्वमायागुणसंवृता ।
भक्तानामनुकम्पार्थं मुक्तयेस्वानुभूतये ॥ ४४० ॥

क्षमस्व सहजानन्दे स्वरूपं ते न गोचरः ।
मयापि किमुतान्येषां पादोपास्तिरतात्मना ॥ ४४१ ॥

किं चिकीर्षसि वै नित्यं किं करोषि किमीप्स्यसि ।
इति ते स्वमतं लोके ज्ञातुं कोऽपि न हि क्षमः ॥ ४४२ ॥

परावाग्रूपिणी भूत्वा सम्प्रवर्तयसे बुधान् ।
फलाकाङ्क्षायुतास्तत्र पतन्त्यभ्युद्धृताः परे ॥ ४४३ ॥

बुद्धिस्वरूपिणी भूत्वा प्रभा चाप्यप्रमा ह्यसि ।
पूर्वां तारयसे विश्वमधो नयसि चापरा ॥ ४४४ ॥

सर्वस्वरूपिणी साक्षात् परब्रह्मस्वरूपिणी ।
त्वं लक्ष्मीस्त्वं रतिर्गीस्त्वं प्रीतिस्त्वं कीर्तिरेव च ॥ ४४५ ॥

शान्तिस्त्वं तुष्टिरेवापि पुष्टिस्त्वं नात्र संशयः ।
मेघा प्रज्ञा प्रभा च त्वं विद्या त्वं धीर्धृतिः स्मृतिः ॥ ४४६ ॥

बुद्धिर्विद्याप्यविद्या च सर्वविद्येश्वरी च सा ।
सर्वशक्तिमयी देवी सर्वमन्त्रेश्वरी च सा ॥ ४४७ ॥

त्वं नित्या चित्कला शान्ता शान्त्यतीता पराकुला ।
निष्कला च कलाभासा सकला चापि निष्कला ॥ ४४८ ॥

एकानेका व्यापिका च परब्रह्मेति गोयसे ।
न हि त्वं रावणग्राह्या व्यापकब्रह्मरूपिणी ॥ ४४९ ॥

क्षयाय राक्षसौघस्य तथा लीलां चकार हि ।
सदसद्व्यक्तये चैव साधूनां पालनाय च ॥ ४५० ॥

त्वमेव सर्वं कुरुषे मम मूर्द्ध्नि निधाय च ।
नाहं कर्त्ता ह्युदासीनः कर्त्रीत्वं सर्वदा प्रिये ॥ ४५१ ॥

भक्तिमार्गमधिष्ठाय भक्तेषु त्वं कृपावती ।

ममापि करुणारूपा तथैव च नियोजिका ।
किं बहूक्तेन सहजे सर्वं त्वं मत्स्वरूपिणी ॥ ४५२ ॥

इत्युक्ता रामचन्द्रेण सहजानन्दिनी स्वयम् ।
प्रोवाच स्मितरम्यास्या प्रसादसुमुखी प्रिया ॥ ४५३ ॥

श्रीसीतोवाच

गच्छाधुना महाभाग कुरु कार्यं महीतले ।
कृत्वा भूभारहरणं व्यवस्थाप्य तथा वृषम् ॥ ४५४ ॥
साधूनां चामराणां च पूरयित्वा मनोरथम् ।
इदं पुनः स्वकं धाम समुपेष्यसि राघवः ॥ ४५५ ॥

श्रीराम उवाच

न त्वां विनाहं यास्यामि क्षणमप्यवनीतले ।
अशक्तो निष्प्रभावोऽहं त्वया विरहितः प्रिये ॥ ४५६ ॥

श्रीसीतोवाच

यत्रैवान्तर्हिता कान्त विमानारोहण क्षणे ।
तत्रैवाहमुपेष्यामि याहि निःशङ्कमित्यतः ॥ ४५७ ॥
देवानां च मुनीनां च ब्राह्मणानां तथा पुरः ।
अहमग्नौ प्रवेक्ष्यामि स्वरूपस्य विशुद्धये ॥ ४५८ ॥
गार्हपत्याग्निमाविष्टा रावणाहरणक्षणे ।
मम छाया हृता तेन मायारूपैव रक्षसा ॥ ४५९ ॥
प्रवेक्ष्यति पुनः साग्नौ करिष्याम्यहमुद्भवम् ।
प्रदर्शनाय लोकानां मम लीला भविष्यति ॥ ४६० ॥
इत्युक्तः प्रियया रामो विमानं भास्करोपमम् ।
आरुह्य शीघ्रं प्रमुद्ना[1]दा जगाम लङ्कापुरम् ॥ ४६१ ॥
यस्मिन् वने महाघोरे सीतान्तर्धानमागता ।
तत्रैव स समागत्य यानादवरुरोह च ॥ ४६२ ॥
अपश्यत्तद्वने तां च पुष्पावचयकारिणीम् ।
सहजानन्दिनीं सीता श्रीरामानन्यवल्लभाम् ॥ ४६३ ॥
ततस्तौ सहितौ भूत्वा तस्मात् स्थानादुपेयतुः ।
पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां च द्विजन्मनाम् ॥ ४६४ ॥
अन्येषां चापि भूतानां लक्ष्मणस्य च पश्यतः ।
समिद्धे गार्हपत्येऽग्नौ रामः सीतामशोधयत् ॥ ४६५ ॥
एषा परस्य सदनं प्रविष्टा स्त्रीस्वभावतः ।
यद्यदुष्टा भवेत्सीता त्वमग्ने साक्षितां व्रज ॥ ४६६ ॥
अथ सीता स्वयं देवी पातिव्रत्यपरायणा ।
मुक्ताहारयुता भूत्वा सवस्त्रा मृदुविग्रहा ॥ ४६७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

निपपात समिद्धेऽग्नौ तदाग्निः शीतलोऽभवत् ।
अङ्गाराः पद्मतां जग्मुर्ज्वालाधारा सुधाभवत् ॥ ४६८ ॥
भगवान् गार्हपत्याग्निः श्रीयज्ञः पुरुषः स्वयम् ।
स्वाहास्वधाभ्यां संयुक्तो वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ४६९ ॥
रत्नसिंहासनासीनां चामरद्वयवीजिताम् ।
अव्याहताङ्गवसनामव्याहतसुमौक्तिकाम् ॥ ४७० ॥
अव्याहतालकां देवीं करे संस्थाप्य जानकीम् ।
स्वात्मानं दर्शयामास ववन्दे तं च राघवः ॥ ४७१ ॥
अथ व्योम्नि स्थिता देवास्तथा ब्रह्मर्षयोऽखिलाः ।
देवर्षयो नारदाद्या ये चान्ये ऋषिसत्तमाः ॥ ४७२ ॥
राजा दशरथश्चैव देवयानमुपाश्रितः ।
जनकश्चैव योगीन्द्रोऽन्ये च राजर्षयोऽखिलाः ॥ ४७३ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याश्चैव निर्जराः ।
ब्राह्मणा भूमिसंस्थाश्च कपीन्द्राश्चातिधार्मिकाः ॥ ४७४ ॥
वासुकिप्रमुखा नागा ये चान्ये तत्र संगताः ।
ऊचुर्वचनमभ्येत्य श्रीरामं धर्मवित्तमम् ॥ ४७५ ॥
कर्मणा मनसा वाचा सीतानन्यप्रतिव्रता ।
शुद्धा शुद्धा पुनः शुद्धा माशङ्किष्ठा रघूद्वह ॥ ४७६ ॥
अस्याः स्वरूपं माहात्म्यं गुणांश्चैव रघूद्वह ।
सर्वं जानासि मनसि स्वयमेव विशेषतः ॥ ४७७ ॥
अथ दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवनिनादिताः ।
सीताविशुद्धिवृत्तान्तं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ ४७८ ॥
प्रणम्य गार्हपत्यं च सीतामादाय राघवः ।
मुमुदे विश्वदयितो राक्षसौघविनाशकृत् ॥ ४७९ ॥
गार्हपत्यस्तमेकान्ते यथावृत्तं निवेद्य च ।
सीताप्रवेशनं स्वस्मिंश्छायाया हरणं तथा ॥ ४८० ॥
स्तुतोऽभिवन्दितस्तेन यथास्थानं जगाम सः ।
ततो रामः पुष्पकाग्रमध्यासीनः स्वकां पुरीम् ॥ ४८१ ॥
गन्तुं प्रस्थितवान् व्योम्नि सीतालक्ष्मणसंयुतः ।
चतुर्थीदिवसे भूयः कृतमङ्गलकौतुकः ॥ ४८२ ॥
भक्तैः कपिवरैः साकं महत्या मुदया युतः ।
इत्थं विधाय वै वासं वने वर्षांश्चतुर्दश ॥ ४८३ ॥

ततोऽसौ दण्डकात्प्राप्तो भारद्वाजाश्रमं प्रभुः ।
पञ्चम्यां तेन मुनिना रामो वै सत्कृतश्च सः ॥ ४८४ ॥

भरतेन समं षष्ठ्यां नन्दिग्रामनिवासिना ।
आसीत्समागमस्तस्य परमानन्दवर्द्धनः ॥ ४८५ ॥

वन्दितो भरतेनासौ मुदितस्तं च सस्वजे ।
सप्तम्यां संगतैः पौरैः परमोत्सवपूर्वकम् ॥ ४८६ ॥

श्रीरामः सीतया साकमयोध्यायां प्रवेशितः ।
महासाम्राज्यपदवीं प्राप्तोऽसौ सम्यगर्चितः ॥ ४८७ ॥

अथ भाद्रपदे मासि नवम्यां श्रीविदेहजा ।
अधत्त गर्भं मार्तण्डवंशविस्तारकारणम् ॥ ४८८ ॥

इति रामायणं शास्त्रं त्वदग्रे कथितं मया ।
चरितं सहजादेव्या रामस्य च महात्मनः ॥ ४८९ ॥

यावन्ति चरितान्यत्र रामस्य परमात्मनः ।
तानि सर्वाणि बोध्यानि सहजायश्चिदाकृतेः ॥ ४९० ॥

सहजायाश्चरित्राणि गीतानि सुमनीषिभिः ।
पावनानि त्रिजगतां ध्यातव्यानि विशेषतः ॥ ४९१ ॥
स्वयं श्रीसहजादेवी श्रीराजिनि तवाङ्गजा ।
जनकस्यालये जाता चकार चरितावलीः ॥ ४९२ ॥

केकयीवाक्स्वरूपेण स्वयमेवाविरास च ।
विहर्तुं स्वैरमीशेन जगाम विपिनं घनम् ॥ ४९३ ॥
तत्र द्वादशवर्षान्ते रक्षसां क्षयहेतवे ।
रक्षोनाथस्य कुमतेर्बुद्धिरूपा व्यवर्तत ॥ ४९४ ॥

अन्यथा रामो भगवान् ब्रह्मण्यौ धर्मपालकः ।
कथं हन्यात्पुलस्त्यस्य तनयं सकुलं युधि ॥ ४९५ ॥
कथं च रावणोऽप्यद्धा सर्ववेदप्रवर्तकः ।
हरेत् परस्त्रियं मोहास्त्रैलोक्यविजयी हठात् ॥ ४९६ ॥
सर्वं श्रीसहजादेव्याश्चरित्रमिदमद्भुतम् ।
ततश्च सहजं धाम प्रमोदवनसंज्ञितम् ॥ ४९७ ॥

प्राप्तुं निजस्वरूपेण विहर्तुं त्वरितोऽभवत् ।
तस्मादस्याश्चरित्राणि तव पुत्र्याश्चिदाकृतेः ॥ ४९८ ॥

न तत्त्वतो विजानामि किमुतान्ये सुरादयः ।
इति विज्ञाय सततं राजिनि त्वं महामते ॥ ४९९ ॥

आनुकूल्येन वर्तस्व प्रातिकूल्याद्विनङ्क्ष्यसि ।
नास्याश्चिकीर्षां प्रभवन्ति विज्ञातुं सुरेश्वराः ॥ ५०० ॥

यथेयं कुरुते लीलां तथा गायन्ति तत्त्वतः।
ध्यायन्त्येनां विशेषेण भक्तिमन्तो मुमुक्षवः ॥ ५०१ ॥

तरन्ति भवपाथोधिमस्याः सकरुणेक्षणात्।
सीतागाद्रावणगृहं तत्रान्यत्कारणान्तरम् ॥ ५०२ ॥

त्रैलोक्यविजयी वीरः पुलस्त्यमुनिनन्दनः।
रक्षोधिनाथः परभित् प्रविजित्य जगत्त्रयम् ॥ ५०३ ॥

सर्वसम्पद्भरान् गेहे स्थापयामास सर्वतः।
स्वर्गेऽपि याति रत्नानि यानि रत्नानि भूतले ॥ ५०४ ॥

पाताले यानि रत्नानि तानि स्थापितवान् गृहे।
आब्रह्मभुवनं याश्च सम्पदः श्रीविभूतयः ॥ ५०५ ॥

ताः सर्वाः स्थापितास्तेन महावीरेण रक्षसा।
आरामं जलदास्तस्य सिञ्चन्ति प्रतिवासरम् ॥ ५०६ ॥

सुवेलाद्रिगुहा रत्नैः पूरिता धनदेन च।
मन्दं तपति सूर्योऽस्य हेमन्तशिशिरतुंगः ॥ ५०७ ॥

वसन्ते वाति सेवायै त्रिविधो मारुतः स्वयम्।
चन्द्रो मुञ्चति गेहेऽस्य किरणान्नित्यपूर्णिमः ॥ ५०८ ॥

हेमन्ते शिशिरे चास्य हसंतीस्थोऽनलः स्वयम्।
ग्रीष्मे चामुष्य सेवायै हिमवर्षी मरुत्स्वयम् ॥ ५०९ ॥

आरामे रोपितास्तेन नन्दनस्था महाद्रुमाः।
गेहे षड्ऋतवस्तस्य रूपवन्तः स्वयं स्थिताः ॥ ५१० ॥

यथाज्ञापालनं नित्यं सेवन्ते राक्षसेश्वरम्।
नेन्द्रस्य तादृशी भूतिर्नाग्नेश्च वरुणस्य च ॥ ५११ ॥

कुबेरस्य निधीशस्य न च कस्यापि भूपतेः।
तादृशी सम्पदेतस्य सम्राजो भुवनेशितुः ॥ ५१२ ॥

इति व्यवस्य मनसा जानकी रामवल्लभा।
विहर्तुं स्वैरकामा सा लीलांकृतवती स्फुटम् ॥ ५१३ ॥

रावणाहरणव्याजाल्लङ्कां गतवती स्वयम्।
गार्हपत्ये तिरोभूय तत्रागात् सहजेश्वरी ॥ ५१४ ॥

यत्र लक्ष्मीभराः सर्वे प्रादुर्भूतास्तथैव ते।
जानकी रासलीलार्थं यत्रलक्ष्मीः स्वयं स्थिता ॥ ५१५ ॥

श्रीराजिन्युवाच

रामं विना कथं राज्ञो भवेदस्यास्तथाविधः।
एमद्वेदितुमिच्छामि कथं रामोऽत्र संगतः ॥ ५१६ ॥

श्रीशिव उवाच

रावणस्य वने तत्र प्रादुर्भूता महेश्वरी।
दिव्यरूपधरा साक्षात् कोटिलक्ष्मीकलानिधिः ॥ ५१७ ॥

दिने त्वशोकवृक्षस्य अधस्ताद्विरहातुरा।
रात्रौ निजसखीवृन्दैः सा रेमे सहजेश्वरी ॥ ५१८ ॥

लोभया च त्रिजटया सेव्यमाना प्रतिक्षणम्।
इन्द्राण्या च तथा देव्या पीयूषफलहस्तया ॥ ५१९ ॥

उमया च महेशान्या तथा नदयष्टकेन च।
जनकस्य गृहे जाताः सख्यः कमललोचनाः ॥ ५२० ॥

कमलेशीप्रभृतयः सेवार्थं तत्र संगताः।
दिव्यदेहाः स्वरूपेण तथा देव्यो रमामुखाः ॥ ५२१ ॥

उपचारसमूहैस्तां सेवितुं सुसमाययुः।
विभीषणस्य पत्न्या सा सेव्यमाना प्रतिक्षणम् ॥ ५२२ ॥

रतिप्रीत्यादिभिश्चैव दिव्यशक्तिकदम्बकैः।
उपास्यमाना सा देवी चित्ते चिन्तामकल्पयत्।
स्वयं लक्ष्मीं पुरस्कृत्य प्रोवाच वचनं सती ॥ ५२३ ॥

श्रीसीतोवाच

अहो अत्यद्भुततमं वनमेतन्मनोरमम्।
न रोचते मे सततं विरहातुरचेतसः ॥ ५२४ ॥

गुञ्जन्ति मत्तभ्रमरा गायन्त इव मत्प्रभुम्।
विध्यन्ति कामविशिखैर्विरहे मम मानसम् ॥ ५२५ ॥

सुस्वरं पञ्चमालापैः कूजन्ति पिकवल्लभाः।
अरुन्तुदा गिरस्तासां दारयन्ति मनो मम ॥ ५२६ ॥

एता रसालमञ्जर्यो मञ्जुला रजसाञ्चिताः।
अग्निं विरहनामानं दीपयन्ति मदन्तरे ॥ ५२७ ॥

अशोकमञ्जरी रम्याः पश्यन्ती ज्वलिता इव।
दहामि हृदयेऽत्यर्थं तीक्ष्णेनविरहाग्निना ॥ ५२८ ॥

किं नु कुर्यामहं तावत्स्वयं लक्ष्मीः पराङ्मुखी।
सुवर्णकेतकीधूलिभरैर्व्योम्नान्धकारिते ॥ ५२९ ॥

पद्माकरसमुद्भूतपरागपटलो मरुत्।
एषोऽन्धयति चक्षूंषि दृष्टिपातनिरोधकः ॥ ५३० ॥

वासन्तीपुष्पमधुभिर्वासिताः सकला दिशः ।
मन्ये मदनभूपस्य भूयसा यशसाश्चिता ॥ ५३१ ॥

एषा वसन्तसम्पत्तिर्व्याप्नोति सकलं जगत् ।
नहि मे रोचतेऽत्यर्थं स्वयं लक्ष्मीः सुखप्रदा ॥ ५३२ ॥

स्वयं लक्ष्मीरुवाच

तव लीलाविनोदार्थमहमत्र स्वयं स्थिता ।
रावणस्य वने रम्ये प्रादुर्भूय स्वरूपतः ॥ ५३३ ॥

यावती भुवने भूतिः सा मदंशस्वरूपिणी ।
साहमत्र स्वरूपेण प्रादुर्भूतास्मि जानकि ॥ ५३४ ॥

दिशां च पतयः सर्वे परितः सेवका इव ।
तव लीलासुखार्थाय भूतिरत्रेदृशी सखी ॥ ५३५ ॥

अतिमात्रमियं रम्या शोभात्र सततं स्थिता ।
न खल्विन्द्रस्य लोकेऽपि दृश्येयं दैवतैरपि ॥ ५३६ ॥

रोचितस्तेऽत्र विरहः स्वयमैश्वर्यभावितः ।
या नित्यं रमते भूयः प्रमोदवनवासिनी ॥ ५३७ ॥

आज्ञापय विनोदार्थमिच्छासिद्धिं वशेस्थिताम् ।
यथा रासरसोल्लासो भवेदत्र तथाविधः ॥ ५३८ ॥

यथा प्रमोदविपिने ससामग्रीक उत्तमः ।
सफलोऽयं भवेत्तेन मम लीलार्थमुद्यमः ॥ ५३९ ॥

श्रीसीतोवाच

राघवेन्द्रो विजानाति सर्वं सखिविनोदवान् ।
सर्वैश्वर्यनिधिर्देवस्त्रयीगायति यत्परम् ॥ ५४० ॥

न हि मे विरहस्तेन कश्चित्कालत्रयेऽपि च ।
सर्वं जानामि कान्तस्य परमैश्वर्यमीदृशम् ॥ ५४१ ॥

स्वयं लक्ष्मीरुवाच

रामोहि ब्रह्म परमं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
अलौकिकं महत्तेजस्तस्य सूर्यादिषु स्थितम् ॥ ५४२ ॥

किं जानन्ति स्वरूपं ते ब्रह्मशेषशिवादयः ।
भक्तानामनुकम्पार्थे लीलारूपं समाश्रिता ॥ ५४३ ॥

नित्यं रमयसे रामं परब्रह्म यथोदितम् ।
एतद् रामस्य रामत्वं रमणं यत्त्वया सह ॥ ५४४ ॥

त्वयानुकम्पिता भक्ताः श्रीरामेणानुकम्पिताः ।
इति ज्ञात्वा भजन्ते त्वां ब्रह्मशेषशिवादयः ॥ ५४५ ॥

अनेकधा च रमसे त्वं रामेण सहेश्वरि ।
श्रीभूलीलास्वरूपेण नित्यपर्यङ्कगामिनी ॥ ५४६ ॥

त्वं भूः सत्तास्वरूपेण निश्चलास्य परिक्रिया ।
युगे युगे त्वमाचार्यरूपेण प्रकटा स्वयम् ॥ ५४७ ॥

स्वस्वरूपं ज्ञापयितुं कुरुषे यत्नमुत्तमम् ।
नान्यथा त्वां प्रपद्येरन् भक्तास्ते सनकादयः ॥ ५४८ ॥

आचार्यः प्रथमो ब्रह्मा द्वितीयाः सनकादयः ।
तृतीयः शेष एवासौ चतुर्थश्च शिवः स्वयम् ॥ ५४९ ॥

समस्ताचार्यवार्याणां त्वमाचार्योपदेशिका ।
या स्वयं श्रीस्वरूपेण सा प्रमोदवनेश्वरी ॥ ५५० ॥

इति ते रूपमुदितं यथाविज्ञानवैभवम् ।
इच्छासिद्धिमथाज्ञाप्य कुरुलीलारसोदधिम् ॥ ५५१ ॥

यस्मिन् परमहंसानां संचारः स्यात् सुखावहः ।
उत्तरङ्गो हावभावैः सरस्वान् प्रेमपाय सः ॥ ५५२ ॥

सम्भोगविप्रलम्भाभ्यां कूलद्वयसुविस्तृतः ।
तीव्राभिलाषचिन्ताद्यैरुद्दीप्तमणिमौक्तिकः ॥ ५५३ ॥

गुरुलज्जावाडवाग्निर्मनोभूमकराञ्चितः ।
क्षुद्रानन्दनदीपूरः सुगम्भीररसामृतः ॥ ५५४ ॥

अन्यभावविषोदर्को महाभावमहोर्जितः ।
त्वत्कीर्तिचन्द्रिकापूर्णो भक्तौघराजहंसकः ॥ ५५५ ॥

उद्वेलो नित्यमेवासौ लोकवेदाद्यगोचरः ।
प्रोद्भाति सहजानन्दे तव लीलारसोदधिः ॥ ५५६ ॥

यत्र शेते तु भवती श्रीरामरमणान्विता ।
पुष्पशय्यागता नित्यं ब्रह्मानन्दान्तरस्थिता ॥ ५५७ ॥

सर्वलोकेशसाम्राज्यमहासौभाग्यभाजनम् ।
इत्थं तयोः समालापं कुर्वन्त्योः सुवयस्ययोः ॥ ५५८ ॥

माल्यवत्यचले रामो लक्ष्मणां प्रत्युवाच ह ।
गच्छ लक्ष्मण किष्किन्धां सुग्रीवं राज्यसंगतम् ॥ ५५९ ॥

भुञ्जानं च महाभोगान् मद्वाञ्छाविस्मृतान्तरम् ।
तं च मद्वचसा ब्रूयाः स यथात्रागतो भवेत् ॥ ५६० ॥

सुग्रीव रामवीर्येण प्राप्तराज्यमकण्टकम् ।
त्वं नित्यं तत्प्रभुञ्जानो नास्मान् विस्मर्तुमर्हसि ॥ ५६१ ॥

त्वं राज्यभोगं कुरुषे वने सीदामहे वयम् ।
शीघ्रमागम्यतां वीर मम कार्यं प्रवर्त्यताम् ॥ ५६२ ॥

इति स्नेहान्वितैर्वाक्यैस्तमिहानय लक्ष्मण ।
इति सम्प्रेष्य किष्किन्धां राजधानीं कपिशितुः ॥
लक्ष्मणं रघुशार्दूले योगचर्यामुपाश्रितः ॥ ५६३ ॥

जटाधरो वल्कलचीरवासा मृगाजिनस्थः कुशविष्टरस्थः ।
एकान्ततो माल्यवतो गुहायां समाधिमासाद्य सुनिर्वृतोऽभूत् ॥ ५६४ ॥

ततः स सर्वभूतात्मा सर्वयोगेश्वरेश्वरः ।
चिदानन्दघनाकारः सीतायादर्शनं ययौ ॥ ५६५ ॥

एकेन वपुषा तत्र गिरौ माल्यवति स्थितः ।
परेणैव स्वरूपेण लीलाविग्रहरूपिणा ॥ ५६६ ॥

भक्तानामनुकम्पार्थं दिव्योपवनमन्वगात् ।
भक्तास्तास्तत्र लङ्कायां निरुद्धा रावणेन याः ॥ ५६७ ॥

तासामुद्धरणार्थाय सद्यः प्रादुरभूद्विभुः ।
देवानां कन्यका याश्च याश्चैवाप्सरसोऽद्भवाः ॥ ५६८ ॥

पितृणां मानसोद्भूता ब्रह्मणो मानसोद्भवाः ।
देवानां कन्यका याश्च लक्ष्म्या सह विनिःसृताः ॥ ५६९ ॥

दिव्यगन्धर्वकन्याश्च नानादेशनृपात्मजाः ।
सरितश्चाद्भुताकारा विरजाद्याः सुमङ्गलाः ॥ ५७० ॥

नानानसुदताश्चैव नानाद्वीपेश्वरात्मजाः ।
पर्वतानां चैव कन्या दिव्यरूपधराः स्त्रियः ॥ ५७१ ॥

रक्षसां कन्यकाश्चैव कामरूपधराः स्त्रियः ।
महेन्द्रलोकगाः कन्या अद्याप्युद्वाहवर्जिताः ॥ ५७२ ॥

अग्निलोकस्थिता याश्च श्रीमद्वैश्वानरात्मजाः ।
यमस्य वरुणस्यापि लोकगा नित्यकन्यकाः ॥ ५७३ ॥

वायुलोकस्थिताः कन्याः कुबेरस्य च लोकगाः ।
कैलासगिरिवासिन्यो या दिव्याः कन्यकावराः ॥ ५७४ ॥

अन्याश्च दैव्या मानुष्यो गन्धर्व वरकन्यकाः ।
अकृतोद्वाहसम्बन्धा बलादाकृष्य रक्षिताः ॥ ५७५ ॥

नागानां कन्यकाश्चैव रूपसारविभूषिताः ।
पद्मिन्यश्चित्रिणीश्रेष्ठा हस्तिन्यः शङ्खिनीवराः ॥ ५७६ ॥

नानाजातिस्त्रीवरेण्याश्चन्द्रवक्त्रा मृगेक्षणाः ।
जातरूपसमानाङ्ग्यः पद्मपत्रातिकोमलाः ॥ ५७७ ॥

तडिल्लेखासमानाङ्ग्यः शिरीषदलकोमलाः ।
सर्वावयवशोभाढ्या महासौभाग्यभूषिताः ॥ ५७८ ॥

कमनीयप्रभास्तन्व्यो यौवनोद्भेदमञ्जुलाः ।
जातरूपघटीस्तन्यः सर्वालङ्कारभूषिताः ॥ ५७९ ॥

रूपलावण्यरुचिराः कन्दर्पबलवर्द्धिनीः[1] ।
रावणेन हृतास्तास्तु त्रैलोक्यजययात्रया ॥ ५८० ॥

दिग्जैत्रयात्रासमये तासां पितृभिरर्पिताः ।
कन्याभावेनैव युता अदृष्टपुरुषाननाः ॥ ५८१ ॥

तासां मनो रामचन्द्रे सुचिरेण व्यवस्थितम् ।
मनसेव तपस्यन्त्यो रामचन्द्रहृताशयाः ॥ ५८२ ॥

अनेकजन्मसंसिद्धा रागिन्यो वामलोचनाः ।
कर्मज्ञानोपासनाभिराजन्मशुभसंयुताः ॥ ५८३ ॥

शुद्धान्तकारणाः सर्वा भक्त्यङ्कुरसमन्विताः ।
सीतादर्शनमात्रेण जातप्रारब्धसंक्षयाः ॥ ५८४ ॥

उत्तमप्रेमकलिताः श्रीरामस्नेहविह्वलाः ।
रामस्य विरहेणैव चिरोत्कण्ठासमन्विताः ॥ ५८५ ॥

सीतास्वरूपलावण्यध्वस्तरूपाभिमानिकाः ।
रामलीलागुणं श्रुत्वा चिराय दर्शनोत्सुकाः ॥ ५८६ ॥

तासां मण्डलमध्यस्था जानकी रामवल्लभा ।
तारकामण्डलगता पौर्णमासीव शारदा ॥ ५८७ ॥

अभिवीक्ष्य प्रियं राममभिरामगुणाकरम् ।
उत्तस्थौ स्वासनात्तूर्णं प्राणप्राप्तिसमुत्सुका ॥ ५८८ ॥
तामुत्थितामनूत्तस्थुः सर्वास्ता वामलोचनाः ।
तासां दृग्गोचरो रामः सद्य एव व्यजायत ॥ ५८९ ॥

सरत्नकिंकिणीकमञ्जुनूपुरद्वयीपदः-
सुवर्णघण्टिकावलीसनादपादगुल्फभूः ।
नटोचिताच्छमल्लकच्छचित्रवर्णचारुता-
चमत्कृताभकच्छिकासुदर्शनीयवेषभाक् ॥ ५९० ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

उदारहारभासुरप्रसर्पिवक्षसाञ्चितः-
सुरूपगौञ्जहारभृत्कपोलदर्पणद्युतिः ।
विराजमाननासिकाविभूषणप्रभाधरः-
कलाकलापपेशलः सुराङ्गनाविमोहनः ॥ ५९१ ॥

स्फुरन्मयूरपिच्छकावतंसमध्यविस्फुर-
त्सहस्रचन्द्रिकावलीसुसक्तरत्नमण्डलः ।
विशालभालविस्फुरत्कुरङ्गनाभि पत्रिका-
विचित्रवक्तुचन्द्रमाः सुमन्दहाससुन्दरः ॥ ५९२ ॥

पदस्फुरन्नखप्रभाजितार्कचन्द्रकोटिकः-
कुतूहलात्तकामकेलिचातुरीकलाञ्चितः ।
त्रिकासिरासमण्डलीविलासलासभासितः-
प्रमोदकुञ्जकौतुकी महाद्भुतो नटो यथा ॥ ५९३ ॥

प्रमोदवनसामग्री सर्वा तत्र व्यदृश्यत ।
रामस्योपवने रम्ये परार्द्धललनाञ्चिते ॥ ५९४ ॥

ता एव सख्यश्चतुरास्ता एव च शरन्निशाः ।
ता एव वल्लीप्रवरास्ता एवाखिलसम्पदः ॥ ५९५ ॥

ता एव संगीतकलासुशिक्षिता मृदङ्गवीणा मुरजादिपाणयः ।
सझर्झरास्तालधरा वरस्त्रियः प्रादुर्भवन्त्यो गणशश्चकासिरे ॥ ५९६ ॥
कलाविदुष्यः शशिमण्डलाननाः संगतीभङ्गीप्रथनापटीयसीः ।
नियोजयामास सखीः समंततः स्वे स्वे विधाने सहजेश्वरी स्वयम् ॥ ५९७ ॥

आसी मण्डलमध्यस्थं सहजारामयोर्युगम् ।
परितो मण्डलान्यासुस्तयोस्तत्र यथोचितम् ॥ ५९८ ॥

यथोचितं यथामानं यथास्थानं यथागुणम् ।
यथाधिकारं विन्यस्ता मण्डलेषु सखीगणाः ॥ ५९९ ॥

शरच्चान्द्रीमयः कालस्तदानीं समजातय ।
रत्नाङ्गणमयो देशः प्रभामय्योऽखिला दिशः ॥ ६०० ॥

स्वरा मूर्तिधरास्तत्र प्रादुरासुः सजातयः ।
रागास्तथैव रागिण्यो रामरासरसोत्सुकाः ॥ ६०१ ॥

शुशुभे तच्च विपिनं रत्नाङ्गणसमुज्जवलम् ।
त्रिविधानितलीलाभिः सेवितं सुषुमाञ्चितम् ॥ ६०२ ॥

अथोज्जगौ मुरलिकां रामो रमणपण्डितः ।
मोहयन् सकला रामाः स्वयं कुन्दवने यथा ॥ ६०३ ॥

मुरलीनादमाकर्ण्य प्रमोदवनगोपिकाः ।
सर्वास्तत्र समाजग्मुर्लीलाविस्तारणोचिताः ॥ ६०४ ॥

एवं समाजः सुमहानासीत्तत्र मृगीदृशाम् ।
रामरासरसक्रीडासमुत्कण्ठितचेतसाम् ॥ ६०५ ॥

नित्या नैमित्तिकाश्चैव ललनास्तत्र सङ्गताः ।
अन्योन्यप्रेमसम्पन्ना रामप्रेमवशीकृताः ॥ ६०६ ॥

अथ श्रीसहजानन्दा मन्दमन्दोपसर्पं च ।
ईषन्मानमनोजाक्षी सावगुण्ठपटानना ।
यावत् किंचिन्न च ब्रूते तावदाह स्वयं प्रभुः ॥ ६०७ ॥

श्रीराम उवाच

प्राणप्रिये किं वक्तव्यं सर्वं वेत्सि हृदि स्थिता ।
तथापि खलु मे प्रेम्णा वक्तुमत्युत्सुकं मनः ॥ ६०८ ॥

आश्चर्या तव लीलासौ यत्प्रमोदवनान्तरे ।
जनकस्य गृहे भूत्वा प्राप्ता मां त्वं निजेच्छया ॥ ६०९ ॥

राज्याभिषेकं मे कर्तुं किं जातं नृपतेर्मनः ।
तत्रापि केकयीमातुः कथं सा धीरवर्तत ॥ ६१० ॥

कथं च तादृशी वाणी वक्त्रे तस्या ह्यवर्तत ।
कथं भरतमायान्तं संलक्ष्याहमुदासधीः ॥ ६११ ॥

चित्रकूटं परित्यज्य लक्ष्मणं चागतो वने ।
भवती च कथं लुब्धा दृष्ट्वा मायामयं मृगम् ॥ ६१२ ॥

कथं चाहं गतस्तस्य पृष्ठलग्नो घनं वनम् ।
कथं च भवती वीरं लक्ष्मणं प्राणसम्मितम् ॥ ६१३ ॥

दुर्वचोविशिखैर्विद्ध्वा देवरं निरवासयत् ।
कथं वा तत्क्षणादेव रक्षो दग्धवती न च ॥ ६१४ ॥

कथं वा लाक्ष्मणीं दिव्यां धनुर्लेखमलङ्घथाः ।
कथं च लक्ष्मणः स्निग्धस्त्वद्दुर्वाचममन्यत ॥ ६१५ ॥

जटायुनापि वीरेण तादृशेन न मोचिता ।
एतद्दैवकृतं मन्ये दैवं च प्रबलं कथम् ।
एतन्मे महदाश्चर्यं मनो बाधयतेतराम् ॥ ६१६ ॥

इति पत्युर्निशम्यासौ साकूतं मधुरं वचः ।
उवाच स्मितरुच्या सा द्योतमाना रदत्विषा ॥ ६१७ ॥

श्रीसीतोवाच

देवं नामामहेवास्मि कालश्चाहं दुरत्ययः ।
लीला चाहं भक्तगेया तत्साधनमहं पुनः ॥ ६१८ ॥
भूत्वोभयस्वरूपाहं रमामि भवता सह ।
रक्षश्चातिबलं तद्वै न हन्तुं शक्यमन्यथा ॥ ६१९ ॥
यस्य श्रौतं बलं दिव्यं तथा कर्मबलं बहु ।
शिवस्योपासको वीरस्त्रैलोक्यविजयी बलात् ॥ ६२० ॥
यस्य बाहुबलं भूयो भवतः पार्षदो वरः ।
लीलावेशस्तथैवायं किं न स्मरसि वल्लभ ॥ ६२१ ॥
पौलस्त्यतनयो विप्रो ब्रह्मण्यस्यतवावधः ।
गृहे गृहेऽग्निहोत्राणि शिवपूजा गृहे गृहे ॥ ६२२ ॥
प्रतापितं जगद्येन तयोर्वीर्येण भूयसा ।
मायायां मथुरायां च काश्यां चोज्जयिनीपुरे ॥ ६२३ ॥
अस्थिचर्मावशिष्टोऽसौ चकार विपुलं तपः ।
अगस्त्योऽस्य विदां वर्यो मुनिरस्ति गृहोपरि ॥ ६२४ ॥
दक्षिणे ध्रुव इत्युक्तो ज्योतिर्विद्भिः पुरातनैः ।
स कथं शक्यते हन्तुं विनेदृशमति क्रमम् ॥ ६२५ ॥
कथं पुनरिमाः कन्यास्त्वदेकहृदयाः स्त्रियः ।
उद्धृताः स्युश्च धर्मज्ञ दुस्तराद्भवसागरात् ॥ ६२६ ॥
इति विज्ञाय वीरेन्द्र न विकल्पितुमर्हसि ।
रमस्व रसयुक्ताभिः कन्याभिरिह कामिवत् ॥ ६२७ ॥
ईदृशीं सम्पदं कान्त सफलीकर्तुमर्हसि ।
एकत्रैव जगल्लक्ष्मीर्दृश्यतामिह वल्लभ ॥ ६२८ ॥
इदं विपिनमालूनं कपीन्द्रेण महौजसा ।
पुनः पल्लवितं पश्य वसन्तसमयश्रिया ॥ ६२९ ॥
भविश्री राजधानीयं विभीषणमहामतेः ।
वैष्णवप्रवरस्यास्य सततं हितवर्तिनः ॥ ६३० ॥
सुवेलाद्रिगुहा रम्या निकुञ्जवरशोभिता ।
इमाश्च किङ्करीस्तत्र नित्यं रमय सुव्रत ॥ ६३१ ॥
यथा भवांश्च रत्नाद्रौ प्रमोदविपिनेऽन्तरा ।
तथेह रन्तुमर्होऽसि लीलानटवरः प्रभो ॥ ६३२ ॥
इत्युक्तः प्रियया रामो प्रोवाच विशदस्मितः ॥ ६३३ ॥

श्रीराम उवाच

अहं त्वदेकपत्नीकः कथमेताः समुद्वहे ।
मोचनं चान्यथैवासां करिष्याम्येव जानकि ॥ ६३४ ॥

श्रीजानक्युवाच

यस्य जीवस्य यो भावस्तेन गम्योऽसि राघव ।
भावसंछेदनं न स्याद्व्रतस्य छेदनं भवेत् ॥ ६३५ ॥

अपि चेमा देवकन्या मयाऽऽविर्भाविताः स्वतः ।
सिन्धोर्विनिःसृताः काश्चिन्मया सह वरस्त्रियः ॥ ६३६ ॥

अन्याश्च विपुलश्रोण्यश्चिरं त्वयि धृताशयाः ।
एतासां रमणं कार्यं महत्कौतूहलं कुरु ॥ ६३७ ॥

हर त्रिभुवनस्त्रीणां मानं सौन्दर्यजं मदम् ।
ब्रह्मणो मोहनं कार्यं महतीं रजनीं सृज ॥ ६३८ ॥

उमादयाश्च महालीलां वीक्ष्य चित्ते विलक्षिताः ।
भविष्यन्ति गलद्दर्पास्त्वदेकचरणाश्रिताः ॥ ६३९ ॥

श्रीशिव उवाच

इत्युत्साहितचित्तोऽसौ प्रियया प्राणतुल्यया ।
रामो लीलारसं कर्तुमारेभे रसिकाग्रणीः ॥ ६४० ॥

सद्यो विगतमर्यादो रसराजो व्यवर्तत ।
स लीलाकौतुकाविष्टो वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ६४१ ॥

कृत्वा वृन्दं वरस्त्रीणां निनाय गहनं वनम् ।
तत्र प्रमोदविपिनं सर्वासां समदर्शयत् ॥ ६४२ ॥

सरय्वाः पुलिनं रम्यं निकुञ्जवरसेवितम् ।
विविक्तं कोकिलालापगुञ्जद्भ्रमरनादितम् ॥ ६४३ ॥

एकान्तलीलोपयिकं रसकेलीनिकेतनम् ।
अनेकदिव्यसदनं रसराजप्रबोधनम् ॥ ६४४ ॥

महासमरसानन्दं स्त्रीणामतिमनोरमम् ।
उत्फुल्लपद्मकह्लारसरसीशतसेवितम् ॥ ६४५ ॥

हेमवल्लीवनागारं रत्नपुष्पवरद्रुमम् ।
मृदुस्वर्णमणिस्वच्छवालुकामयमङ्गणम् ॥ ६४६ ॥

तत्र ताः स्वोत्तरीयाणि विस्तार्य विहितासनाः ।
परिवव्रुः समंतात्तं रसिकेन्द्रशिरोमणिम् ॥ ६४७ ॥

स्वस्वयूथेषु मुख्याभिः सुवर्णमणिमालिकाः ।
कान्तस्य वरणार्थाय रोपिताः कण्ठदेशतः ॥ ६४८ ॥

स ताभिः स्वर्णमालाभिर्वृतः कान्तोव्यराजत ।
महामुकुटशोभाढ्यो नवपाणिग्रहोचितः ॥ ६४९ ॥

तस्मिन्नुद्वाहसंदोहकौतूहलमहोत्सवे ।
रामपार्श्वे उभे सख्याववर्ततां मुदान्विते ॥ ६५० ॥

आसीत्पिकीकलालापो मञ्जुलस्वरगानकृत् ।
झाङ्कारगानमिलितो भ्रमरीणां समंततः ॥ ६५१ ॥

कोकीरवश्च केकाभिर्भेरीभाङ्कारसुन्दरः ।
तरङ्गिण्याश्च कल्लोलाः सिन्धुगम्भीरनादिनः ॥ ६५२ ॥

मृदङ्गमञ्जुलरवो व्यजृम्भत नभःस्पृशः ।
तूर्यत्रिकं ननादाथ कालशक्त्याभिनादितम् ॥ ६५३ ॥

स्वर्णतालीवनध्वान आसीन्मारुत लीलया ।
इत्येवं सम्पदाविष्टमभूदुद्वाहकौतुकम् ॥ ६५४ ॥

सम्पन्नोद्वाहविधयः सर्वास्ता हरिणीदृशः ।
नवीनमन्मथाक्रीडाजितं बल्लभमब्रुवन् ॥ ६५५ ॥

स्त्रियऊचुः

अद्य नः सफलं जन्म भवतैव कृतं प्रभो ।
अद्राक्ष्म जीवलोकस्य सुखमद्य रमापते ॥ ६५६ ॥

रूपसारं च नो दत्तं त्वदाज्ञातो विरंचिना ।
अद्यैव सफलं जातं भवत्संगमशोभया ॥ ६५७ ॥

सौभाग्यं विपुलं दत्तं भृतं तं च त्वया विभो ।
एतद्धि दुर्लभतरमुमादीनां महत्फलम् ॥ ६५८ ॥

अपीदृशं नित्यमेव भूयाद्रमणजं सुखम् ।
प्रमोदवनसंपत्तिर्दृष्टा वल्लभ तादृशी ॥ ६५९ ॥

वैकुण्ठभवनेऽप्येषा प्रायो नैव भविष्यति ।
धन्या वयं रमाकान्त मुदितास्तव संगमात् ॥ ६६० ॥

जानीमहे परप्राण भवान्नारायणादपि ।
लीलारसविधानेन वरेण्यः पुरुषोत्तमः ॥ ६६१ ॥

रूपं तव सदा पेयं जीवं जीवैरिवेक्षणैः ।
अहोऽतिकेलिचातुर्यं मन्मथस्यापि मोहनम् ॥ ६६२ ॥

तृप्ता अपि मुहुर्नाथ वयं नित्यमतृप्नुमः ।
चिरेण विरहाक्रान्ता भृशमानन्दिताः प्रभो ॥ ६६३ ॥

दग्धा इव लता भूयो वयं पल्लवितास्त्वया ।
निर्वापितोऽङ्गतापश्च स्मरजश्चित्तमूर्च्छनः ॥ ६६४ ॥

वैदग्धं भवतोऽत्यर्थं वशीकृत्य च नःस्थितम् ।
एषा तवाधरसुधा नित्यं पेया वधूजनैः ॥ ६६५ ॥

माङ्गल्यातनयो राम भवानद्भुतकौतुकी ।
इमे व्रजजना धन्यास्त्वन्मुखेन्दुनिरीक्षकाः ॥ ६६६ ॥

धन्यं प्रमोदविपिनमाकीटपशुपक्षिकम् ।
मुरलीनादसुधया नित्यमाप्यायितं त्वया ॥ ६६७ ॥

धन्या व्रजस्य धरणी दूर्वारोमाञ्चिता सदा ।
विमुक्तपादुकाभ्यां ते चरणाभ्यां सदाङ्किता ॥ ६६८ ॥

किं वर्णनीयमस्माभिः सर्वाश्चर्यमयो भवान् ।
एते निकुञ्जरसिकाः कोकिला मधुपैः सह ॥ ६६९ ॥

उद्गायन्ति तव श्लोकं निगमा इव चागमैः ।
वसिष्ठवामदेवाद्या याज्ञवल्क्यशुकादयः ॥ ६७० ॥

तत्तत्पक्षिस्वरूपेण निवसन्तीह संततम् ।
तव लीलारसास्वादहेतवे सुखसेतवे ॥ ६७१ ॥

अमीषां प्रेमज सौख्यं ब्रह्मानन्दसुखाधिकम् ।
अहो अत्यद्भुता रीतिः प्रमोदविपिनान्तरे ॥ ६७२ ॥

अहो कुटिलता प्रेम्णो गरिमा यत्र लाघवम् ।
लाघवं गरिमा तत्र यत्राधर्मोऽपि धर्मवत् ॥ ६७३ ॥

अधर्मवद्यत्र धर्मस्तथाऽऽर्जवमकैतवम् ।
अनार्जवं कैतवं च यत्र ते च ह्युभे च ते ॥ ६७४ ॥

एतद्विस्मयनीयं च महदेवात्र दृश्यते ।
यदक्षरात्परं ब्रह्म पुरुषोत्तमशब्दितम् ॥ ६७५ ॥

तदत्र नीलमाधुर्यमहसा समलङ्कृतम् ।
दृश्यते मुग्धवामानां करक्रीडनकोपमम् ॥ ६७६ ॥

भवानत्यद्भुतं वेशं कृत्वा क्रीडति कामिवत् ।
अहो ते दुर्लभं धाम ब्रह्मादीनां त्रयीजुषाम् ॥ ६७७ ॥

प्रेमैकलभ्यं भगवन्नस्मादृङ्मुग्धचेतसाम् ।
तव प्रसादपात्रत्वादधुनाऽऽस्म भवातिगाः ॥ ६७८ ॥

इति प्रेम्णा वदन्तीस्ताः सर्वाः प्रत्येकमङ्गनाः ।
रमयामास रामेन्दुर्लीलया रसवित्तया ॥ ६७९ ॥

एकान्ततः परिप्राप्य तमेके तरुणीजनाः ।
तुष्टुवुर्विमलैः स्तोत्रैर्वैकुण्ठे श्रुतयो यथा ॥ ६८० ॥

स्त्रियऊचुः

नमः श्रीरामाय नित्यरमणकोविदाय नित्यमधुरमूर्तये श्रीरामाविलासरसिकाय महापुरुषायाविर्भावितविशुद्धसत्त्वाय तिरोभाविरजस्तमोमयाखिलभावायानादिभक्तिमार्गजीवातुप्रपत्तिवशीकृतचित्ताय भक्तजनवित्ताय नित्यनिरवधिप्रसादकल्पतरवे भजनार्थप्रदत्तलीलाविग्रहशिवसनकशेषशुकादिमुनिगणकमनीयविचित्र चरित्रभवनायाष्टकोणवैकुण्ठायतप्रमोदवनमाधुरीमधुव्रताय श्रीनन्दननन्दिनीश्रीसहजानन्दिनीश्रीप्रमोदिनीनित्यनिजशक्तिसमेताय मधुरमेचकनित्यसमुन्नतसुधाजलधराय ब्रह्मविद्वरिष्ठमानसराजहंसाय नित्यकिशोराय नित्यानन्दपदमहासाम्राज्यभाजनाय परब्रह्मणे निस्तुलायाप्रमेयाय कर्मोपास्तिनागम्यस्वरूपवैभवाय परमपुण्यलोकश्लोक्याय नामरूपविभिन्नप्रपञ्चरचनातीतनामरूपाय निखिलप्रपञ्चसमवायिनिमित्ताय श्रीमते रसिकरामचन्द्राय ॥ ६८१ ॥

अन्यास्ताः किंकरीभूय नित्यस्वाम्यवशीकृताः ।
उचुः सुपेशला वाचश्चरणाहितचेतसः ॥ ६८२ ॥

स्त्रियऊचुः

नमस्ते नित्यनिरवधिनिरुपमनिर्भरानुकम्पासमुद्धृताखिलजीवराशये कदुदञ्चत्कृपाकटाक्षसमुद्बोधितचिरविस्मृतस्वरूपाय शिवविरञ्चिरमान्वेषितचरणपरागरजःकणायविमलकौस्तुभाङ्कुरितकृपाकन्दाय श्रीमत्प्रमोदवनकुञ्जाधिपतये विमलगुण भूमिसमुन्मूर्छितश्रुतिगणगन्धर्वगानाय नेतिनेतिवचसोऽप्यगोचराय रुचिररोचिष्णुचिदानन्दमयमूर्तिमहोमहनीयमहापौरुषविस्फूर्जिताय श्रीरामायाभिरामाय ॥ ६८३ ॥

अहो खलु वयं दास्यो भवतः पुरुषर्षभ ।
सहजानन्दिनींयुक्तं नित्यं परिचरामहे ॥ ६८४ ॥

अध्यारोढुमिदं न चित्सुखमहासाम्राज्यसिंहासन-
मर्हा नाथ वयं विधातुमुचिताः कैङ्कर्यमेकान्ततः ।
यत्र त्वं रमयस्यखण्डविलसत्सौभाग्यकां स्वामिनीं
ताम्बूलाहरणादिकामपचितिं तत्राचरिष्यामहे ॥ ६८५ ॥

अस्मिन्नेव रसे निविष्टनिपुणस्वान्ता वयं नित्यशो
ब्रह्मानन्दपदं ततोऽपि तृणवत्कृत्वा समुद्वेलिताः ।
अक्षुब्धं निजदास्यभावपदवीसौख्यं त्वया प्रापिता:
श्रीमन्नित्यमिदं प्रमोदविपिनं द्रक्ष्यामहे लोचनैः ॥ ६८६ ॥

इति केङ्कर्यभावेन भावितास्ताश्च भामिनीः ।
विविधैर्भावसंदोहैररीरमत वल्लभः ॥ ६८७ ॥

श्रीराम उवाच

भवतीनां परो भावो ब्रह्मादिसुरदुर्लभः ।
मासां मदेकविषयं मनः सुदृढयन्त्रितम् ॥ ६८८ ॥

अहो अत्यद्भुतं प्रेम्णो महिमा किमु वर्ण्यताम् ।
येनाहं वश्यतां यातो वेदवाचामगोचरः ॥ ६८९ ॥

गोप्यः प्रमोदवनवासनिरुद्धचिन्तास्तासां वदाम्बुरुहरेणुकणप्रसादात् ।
एषोर्जिता परतरा मम भक्तिरागाद्युष्माकमन्तरपथे नरराजकन्याः ॥ ६९० ॥

धन्याः स्थ यूयमनुरागजुषो मयीति युष्मास्वहं सहजयाविनियुक्त एव ।
रंस्ये रमावदितराननुवर्तनीयः कीर्तिश्च वस्त्रिभुवनं वलयिष्यतीशाः ॥ ६९१ ॥

रत्नाचले यथा स्वयं प्रमोदविपिनेऽप्यहम् ।
तथेह खलु युष्माभिरहं नित्यविलासवान् ॥ ६९२ ॥

को जानातीदृशीमिच्छां सहजाया रसावहाम् ।
लोकापवादं सोढ्वापि यथा केलिः प्रयोजिता ॥ ६९३ ॥

किं मां नमत तद्यूयं सहजावश्यतां गतम् ।
इमामेव तु जानीत समुद्धाख्य निर्जमनः ॥ ६९४ ॥

नाहमस्याः प्रभावज्ञो वर्ते लीलासु चावशः ।
योऽस्याः करावलम्बी स्यात् स मया तारितो भवात् ॥ ६९५ ॥

अत्र चोदाहरिष्यामि पुरावृत्तं यथा भवत् ।
कदाचिदैच्छद्गिरिशो मम लीलावलोकनम् ॥ ६९६ ॥

श्रुत्वा भक्तैः प्रकथितां मम लीलां रसोर्जिताम् ।
स आगाद्भगवान् रुद्रः प्रमोदवनमन्तरा ।
तुतोष सर्वतो वीक्ष्य माधुरी वनमद्भुतम् ॥ ६९७ ॥

चिन्तामणिप्रवरभूमिरुदञ्चदंशुव्याप्तान्तरिक्षधरणीहरिदन्तरालम् ।
सम्पन्नविस्फुरदनेकविचित्रकुञ्जमाधुर्यधुर्यरचनामयकामशालम् ॥ ६९८ ॥

नित्योल्लसन्मधुविराजितवृक्षराजीभ्राम्यन्मधुव्रतकदम्बनिषेव्यमाणम् ।
कूजत्पिकीरवविकरवरसुस्वराढ्यं धन्यंप्रमोदवनमीक्ष्य ययौ न तृप्तिम् ॥ ६९९ ॥

कैलासादागतः श्रान्तः सहजानन्दिनीसरः ।
अवगाह्य शिवस्तत्र तत्क्षणात् प्रमदाभवत् ॥ ७०० ॥

सात्यर्थरूपलावण्यशालिनी प्रमदा नवा ।
प्राग्दशां नैव सस्मार विस्मिते वाभवत्तदा ॥ ७०१ ॥

आचम्य च पयस्तस्य सरसः स्वादुशीतलम् ।
शिवोऽहं प्रमदाभूत इति चैतन्यमाप सः ॥ ७०२ ॥

निरीक्ष्य स्वस्य सौन्दर्यविशेषं गर्विता च सा ।
अहो न मत्समा काचिद्व्रजेऽप्यस्ति वराङ्गना ॥
श्रीरामं वशयिष्यामि तत्क्षणादेव दर्शनात् ॥ ७०३ ॥

मद्रूपलावण्यमुदीक्ष्य रामो ममैव वश्यो भवितैष सद्यः ।
श्रीनन्दनस्यात्मजयाप्यलभ्यं सौभाग्यमेष्यामि कथं न साहम् ॥ ७०४ ॥

इत्थं मनोराज्यमियं कुर्वती प्रमदा नवा ।
व्यचष्ट मालतीकुञ्जान्माधुरीकुञ्जमेष्यतीम् ॥ ७०५ ॥

कांचित् सखीं चम्पकाङ्गीं सहजामान्यहारिणीम् ।
तस्या रूपं विलोक्यैषा भग्नमाना बभूव च ॥ ७०६ ॥

अथ तां वक्तुमारेभे कासि त्वं कुत्र यास्यसि ।
धन्यासि रूपसारेण केवलेन विनिर्मिता ॥ ७०७ ॥

त्रैलोक्यललनारत्नमोहनं रूपमीदृशम् ।
सातिधन्यतमाकान्ता यस्यास्त्वं माल्यहारिणी ।
एतत्तवाद्भुतं रूपं मदं हरति योषिताम् ॥ ७०८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नोत्तरं दत्तवत्यसौ ।
जगाम तूष्णीं च ततः स्वामिनीसेवनोत्सुका ॥ ७०९ ॥

इति तदीरितमश्रुतकेन सा प्रणिविधूय ततो विचचाल ह ।
निधुवनान्तविमाल्यनिजेश्वरीं ननु तुतोषयिषुर्वरिवस्यया ॥ ७१० ॥

ततः सा भग्नहृदया तत्पृष्ठमनुयायिनो ।
जगाम माधुरीकुञ्जसप्तमद्वारकक्षिकाम् ॥ ७११ ॥

कलावती तु तत्रागाद् यथा कार्यं ममेशितुः ।
तत्र वेत्रच्छटाहस्तप्रतोहारीनिवारिता ॥ ७१२ ॥

पप्रच्छ तां करुणया परिपूर्णा कलावती ।
कासि त्वमिह रम्भोरु किमर्थं चेह संगता ।
अविज्ञाप्य प्रभुं नेह प्रवेशं लप्स्यसे ध्रुवम् ॥ ७१३ ॥

नवप्रमदोवाच

प्रमदाहं भग्नदर्पा भवतीनां तनुत्विषा ।
प्राप्तास्मि सहजाराममलीलालालित्यदृष्टये ॥ ७१४ ॥

ततः कलावती गत्वा स्वामिनोश्चरणान्तिकम् ।
उवाच सदयं स्निग्धं यथावृत्तं नवस्त्रियः ॥ ७१५ ॥

ततो मयेरिता सद्यो नवयोषित्प्रवेश्यताम् ।
गत्वा कलावती तां च प्रवेशयितुमानयत् ॥ ७१६ ॥

कक्षान्तरे त्वथ मुहुरनया वेत्रहस्तया ।
निरुद्धा यायिनी संगे कलावत्या नवाङ्गना ॥ ७१७ ॥

ततः कलावती भूयो मत्पार्श्वं समुपागता ।
उवाच सदयं वाक्यं तस्या हितचिकीर्षया ॥ ७१८ ॥

कलावत्युवाच

प्रभो पञ्चमकक्षायां निरुद्धा वेत्रहस्तया ।
नान्तःप्रवेष्टुं दत्ता सा नवस्त्री दर्शनार्थिनी ॥ ७१९ ॥

ततः सम्प्रेषिता तावन्मया चरणदासिका ।
तत्संगयायिनी सा सु रुद्धा कक्षान्तरे पुनः ॥ ७२० ॥

सहजाज्ञैककारिण्या अन्यया वेत्रहस्तया ।
ततश्चरणदासी सा मत्पार्श्वं समुपागता ।
उवाच तस्यास्तद्वृत्तं यथा रुद्धानवाङ्गना ॥ ७२१ ॥

चरणदासिकोवाच

प्रभो सप्तमकक्षायां रुद्धा सा वेत्रहस्तया ।
एषा श्रीसहजानन्दामुखादाज्ञा प्रतीक्षते ॥ ७२२ ॥

ततोऽहं सहजानन्दामुखं तूष्णीं विलोकयन् ।
न किंचिदूचे वचनं न स्वतन्त्रोऽस्मि तद्वशः ॥ ७२३ ॥

ततः श्रीसहजानन्दा प्रेषयामास चेटिकाम् ।
तस्या आनयनार्थाय प्राप्ताया नवयोषितः ॥ ७२४ ॥

ततः प्रवेशिता सान्तर्नवयोषित् समुत्सुका ।
यत्रासौ सहजा देवी मया सह विराजिता ॥ ७२५ ॥

यत्र ताम्बूलिकाहस्तो देवीं परिचराम्यहम् ।
भक्षयामि च भक्षामि तद्दत्तां पर्णवोटिकाम् ॥ ७२६ ॥

वीक्ष्य तां सहजा देवी जहास मृदुहासिनी ।
तस्या रदत्विषा कुञ्जभवनं तत् प्रकाशितम् ॥ ७२७ ॥

यथा शारदचन्द्रांशुदद्योतैः कुमुदिनीवनम् ।
गवाक्षनिर्गतैरंशुसन्दोहैस्तरुवल्लिकाः ॥ ७२८ ॥

सद्यश्चकाशिरे सर्वाः श्रीकुञ्जभवनान्तरे ।
सा नवप्रमदा वीक्ष्य सहजामुखचन्द्रिकाम् ॥ ७२९ ॥

सदयः सम्भ्रान्तचित्ताभून्मूर्छिता निपपात च ।
अथो कथं कथमपि तां परिप्राप्तचेतनाम् ॥ ७३० ॥

देवी श्रीसहजोवाच लीलाकौतुककारिणी ।
कस्य गोपस्यकन्येयं किं नामेति तु पृच्छ्यताम् ॥ ७३१ ॥

सत्यं वदतु सा चैषा नैवानृतमिह स्थितम् ।
नो चेत् कालान्तरेऽप्यस्या नागमोऽत्र भविष्यति ॥ ७३२ ॥

ततश्च कम्पमानेव प्रोवाच वचनं सती ।
शिवोऽस्म्यहमिह प्राप्तो लीलादर्शनलालसः ॥ ७३३ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा सहजा स्वयमब्रवीत् ।
एतत्प्रमोदविपिनं मम लीलानिकेतनम् ॥ ७३४ ॥

पुरुषाभिमतिर्भूत्वा कथमत्र समागतः ।
लोकेऽन्यस्यापि वै राज्ञो याति नान्तःपुरं पुमान् ॥ ७३५ ॥

किमुताखिललोकेशमहाराजस्य मत्प्रभोः ।
इहैक एव पुरुषः सर्वास्तस्य च योषितः ॥ ७३६ ॥

इति विज्ञाप्य सख्योऽसौ दूरे सम्यग्विधीयताम् ।
नास्मै क्रोधं करोम्यद्धा मत्स्वाम्यङ्घ्रिरजोजुषे ॥ ७३७ ॥

पुरुषाभिमतिश्चास्य नाधुनापि निवर्त्तते ।
शिवा नाम सखी भूत्वा पातुकालान्तरे त्विह ॥ ७३८ ॥

ततः प्रणम्य सहजानन्दिनीं मां च शङ्करः ।
भूयो वलक्षवदनस्तस्मात्स्थानाद्विनिर्गतः ॥ ७३९ ॥

प्रमोदविपिनस्यैकदेशेऽद्यापि तपस्यति ।
व्रजभक्तपदाम्भोजरजोधूसरविग्रहः ॥ ७४० ॥

सहजानन्दिनीलीलागुणगानपरायणः ।
प्रेमानन्दसमुद्भूतवाष्पसिक्तकलेवरः ॥ ७४१ ॥

रोमाञ्चितवपुः स्तब्धः सरयूपुलिनाङ्गणे ।
यो मञ्जुवट इत्युक्तो जटासंकुलविग्रहः ॥ ७४२ ॥

आगामिद्विपरार्द्धान्ते मम लीलां प्रवेक्ष्यति ।
इत्युक्तोऽस्याः प्रभावोऽयं सख्यः सम्यग् विचिन्त्यताम् ॥ ७४३ ॥

तस्माद्भवत्यः सततं सहजायाः कृपावशात् ।
लब्ध्वा पदमिमं रामाः कृतार्था नात्र संशयः ॥ ७४४ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् रामः कोटिकन्दर्पमोहनः ।
दिव्ये लङ्कावने तत्र रासमारब्धवान् मुदा ॥ ७४५ ॥

ततस्तत्परिवस्तासां मण्डलानि चकाशिरे ।
फुल्लानां हेमपद्मानां मध्यइन्दीवरं यथा ॥ ७४६ ॥

रराज भगवान् रामो रासक्रीडनकौतुकी ।
विधाय तावद्रूपाणि सहजानन्दिनी स्वयम् ॥ ७४७ ॥

रेमे श्रीपतिना सार्द्धं तावद्रूपवपुर्जुषा ।
चक्रे नटवरो दिव्यां नाट्यकेलीं मनोहराम् ॥ ७४८ ॥

तासां शिक्षागुणव्यूहं प्रेक्षमाण उदारधीः ।
ततानि वितातान्येव घनानि सुषिराणि च ॥ ७४९ ॥

षट्त्रिंशद्भेदयुक्तानि प्रत्येकं समवादयत् ।
तास्ता मनोरमारामा यथामानं यथाक्रमम् ॥ ७५० ॥

यथास्थानं यथागानं यथानृत्यं यथोदितम् ।
सर्वासां रागजातीनां गह्वरः समवर्तत ॥ ७५१ ॥

सर्वासां स्वरजातीनामहमहमिकाभवत् ।
सर्वासां वाद्यजातीनामेकं रूपमदृश्यत ॥ ७५२ ॥

सर्वासां नृत्यजातीनां संकरः समपद्यत ।
ताण्डवं पृथगेवासीन्नृत्यं चाप्यभवत्पृथक् ॥ ७५३ ॥

श्रीरामहृदयानन्दः सर्वाभिः समवर्धत ।
सुखकोलाहलो जातः क्षोणीगगनपूरणः ॥ ७५४ ॥

सुवेलाद्रिगुहाश्चापि प्रतिध्वानैः प्रपूरिताः ।
मन्दं मन्दं जलनिधिरन्वगर्जन्मृदङ्गवत् ॥ ७५५ ॥

मृदङ्गानां मुरजानां झर्झराणां महाध्वनिः ।
सहजारामरासेऽस्मिन्नश्रूयत समंततः ॥ ७५६ ॥

श्रीराममुरलीनादमोदिताः सरितोऽखिलाः ।
निजं वेगं परित्यज्य जाताः सिन्धुपराङ्मुखाः ॥ ७५७ ॥

वृक्षाणां विटपस्कन्धपत्रेभ्यश्चामृतस्रवः ।
समजायत लङ्कायां पशुपक्षिमुदावहः ॥ ७५८ ॥

शिवः समाधिं तत्याज ब्रह्मा स्वाध्यायमप्युत ।
अनादीच्च महान् कालः सर्वभूतमनोरमः ॥ ७५९ ॥

स्थगितश्चौषधीनाथः सार्द्धंतारावधूगणैः ।
मुनयस्त्यक्तपसः सद्य आसन् सुनिर्वृताः ॥ ७६० ॥

कदाचित्प्रकटा तासु कदाचिच्च तिरोहिता ।
सहजानन्दिनी साक्षात्पुपोष रसकौतुकम् ॥ ७६१ ॥

तडिल्लतामण्डलमञ्जुलानां चलन्महाहेमलतोपमानाम् ।
विलोलचिन्तामणिमालिकानां ज्वलाच्छिखावह्निविदोपितानाम् ।। ७६२ ।।

मुदान्वितानां नटनोद्धुराणां वादयत्पदाम्भोरुहनूपुराणाम् ।
स्विदयत्तनूनां प्रचलाञ्चलानां श्रीरामनृत्योत्सवचञ्चलानाम् ।। ७६३ ।।

शब्दायमानोद्धुरिकिंकिणीनां स्वान्दोलशोभामणिमालिकानाम् ।
चलाधरीयोद्भटघूर्णिकानां विलोलकान्तालकमञ्जरीणाम् ।। ७६४ ।।

ऊर्ध्वं विलोलद्भुजवल्लरीणामधः समुदयत्करपङ्कजानाम् ।
तनुत्विषा रञ्जितकाननानां स्वेदाञ्चितेषद्धसिताननानाम् ।। ७६५ ।।

भ्रमत्तरङ्गाभुकुटीलतानां कटाक्षनिक्षेपभृतेक्षणानाम् ।
तत्थेइतत्थेइरवोन्मदानां भावोद्धुराकुञ्चितनासिकानाम् ।। ७६६ ।।

कण्ठस्वरैस्तर्जितकोकिलानां वेणीभ्रमैर्भीषितपन्नगीनाम् ।
त्विषां गणैर्निर्जितह्लादिनीनां तासां चमत्कारभरः स कोऽप्यभूत् ।। ७६७ ।।

झणज्झणध्वानरवाः समंततो बभूवरासां तनुभूषणोद्भवाः ।
सताननुप्रादुरभून्मृदङ्गजो वीणाविमिश्रः सुमनोहरध्वनिः ।। ७६८ ।।

कदाचिन्नृत्यमेवासीत्ताण्डवं च कदाचन ।
कदाचिद्भावसंदर्शि समजायत तत्स्वयम् ।। ७६९ ।।

तोषयामास ताः सर्वाः सुविचित्रकलापटुः ।
रामो गायन्नटन्नृत्यन् पृथक् संगीतभेदवित् ।। ७७० ।।

अभवत्पौरुषंनाट्यं स्त्रैणं चातिमनोरमम् ।
परस्परस्य संतोषि सुविभिन्नं परस्परम् ।। ७७१ ।।

कांचिन्नृत्यकलामांशिक्षत महालीलारसावेशवान्-
श्रीरामः स्वयमादरेण विविधाक्रीडाक्रियाकौतुकी ।
कांचिन्नाट्यकलामशिक्षयत तास्तृष्णातुराःकामिनीः-
शिष्याचार्यपदस्पृशामिति परं तासामभूत क्रीडनम् ।। ७७२ ।।

अन्यामालिङ्गति स्वैरमन्यां चुम्बति राघवः ।
अन्यां संस्पृश्य रमतेचान्यां सम्पीड्य तिष्ठति ।। ७७३ ।।

अन्यां प्रसादयत्येष भामिनीं भावकोविदः ।
अन्यां विमोहयत्येष रतिकेलिविनोदनः ।। ७७४ ।।

अन्यां पिबत्यधरतश्चान्यां मिलति वेगतः ।
अन्यां धावति वेगेन अन्यां सम्पीड्य गच्छति ।। ७७५ ।।

अन्यां रदैः खण्डयति कपोलस्थलमण्डले ।
अन्यामर्पयति स्वाङ्के अन्यां दयति नखक्षतैः ।। ७७६ ।।

अन्यां नितम्बयोर्विध्यत्यन्यां वक्षसि कौतुकी ।
अन्यामाकर्षति कचेष्वन्यां तुदति जङ्घयोः ॥ ७७७ ॥

अन्यामासज्जति हठादन्यां मृशति कक्षयोः ।
अन्यां चुम्बति गण्डाभ्यामन्यां चुम्बति नेत्रयोः ॥ ७७८ ॥

अन्यां नाभिस्थले मृश्य करोति मदनोन्मदाम् ।
सहजानन्दिनीचित्तमनस्तर्पणहेतवे ॥ ७७९ ॥

करीव गाहतेऽत्यर्थं तरुणीपद्मिनीवनम् ।
अन्यां स्खलयति स्वैरमन्यां क्षोभयते भृशम् ॥ ७८० ॥

अन्यामञ्चलमाकृष्य निवारयति [1]गच्छतीम् ।
इत्थमाक्रीडरसिको रेमे प्रतिवधूजनम् ॥ ७८१ ॥

रममाणस्य तस्याभून्मन्मथः प्रीतिवर्द्धनः ।
आस्फालितधनुःसूत्रभ्रूयुगैर्हरिणीदृशाम् ॥ ७८२ ॥

आविद्धो रामहृदयो ममाद रसिकाङ्गणे ।
एकैककामिनीः कान्तो निन्ये कुञ्जकुटीगृहे ।
रतवान् विविधैर्बन्धैर्नवैर्निधुवनोत्सवैः ॥ ७८३ ॥

ताः सम्भोगेमृदितवसनालंकृतिव्यस्तवेशाः-
स्विन्नै रङ्गैः पुलकतनुतोत्कम्पभावादियुक्ताः ।
स्वस्वालीभिः समुपहसिताः सेर्ष्यसासूयनेत्रा-
मन्दं मन्दं द्विरदगतयो निर्ययुः केलिकुञ्जात् ॥ ७८४ ॥

पुनर्भूषाः संविधाय वासोरञ्जनमालिकाः ।
उपतस्थुर्वल्लभं तं रुचिरैरासमण्डले ॥ ७८५ ॥

रासोत्सवः पुनरभूत्पूर्णकामकलाभृतः ।
संगीतभेदविदुषो रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ ७८६ ॥

काश्चिन्मानवतीस्तत्र दूतिसम्प्रेषणादिभिः ।
रामः प्रसादयामास पादयोः पतनेन च ॥ ७८७ ॥

काश्चिदुत्कण्ठिता रामाः श्रीकान्तः समतोषयत् ।
एकान्तकुञ्जलीलाभिरत्यासक्तिप्रदर्शनः ॥ ७८८ ॥

काश्चित्सप्रेमकलहादन्तरायमुपागताः ।
सम्प्रेषितसखीदूतीर्जगाम रसिकाग्रणीः ॥ ७८९ ॥

काश्चिद्रूपमहामाना नरनागेन्द्रकन्यकाः ।
स्वाधीनपतिका भावैर्मानयामास राघवः ॥ ७९० ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

काश्चित्प्रत्यक्षविरहा अतिभूयोऽभिलाषिणीः ।
अविश्रान्तसुखस्तोमदायकः समतोषयत् ॥ ७९१ ॥

सर्वासां हरिणाक्षीणां मानदो रघुनन्दनः ।
अरीरमत रासेऽस्मिन् श्रीरामो बहुशक्तिमान् ॥ ७९२ ॥

कामलौल्यं विलोक्यास्य कुटिला हरिणीदृशः ।
तिरोहितैश्वर्यदृशस्तमन्यन्त लौकिकम् ॥ ७९३ ॥

काश्चित्स्त्रियो देवकन्याः शुद्धज्ञानावलोकिनीः ।
कश्चितपुरुषशार्दूलममन्यन्त रमा पतिम् ॥ ७९४ ॥

काश्चित्स्थूलदृशः कान्ता रतिलीलारसोन्मदाः ।
अमन्यन्त शठं धृष्टं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ ७९५ ॥

प्रेमानन्दस्वरूपोऽत्र मन्मथः समवर्तत ।
स्वयमेव रामचन्द्रो रसलीलाभिराप्तये ॥ ७९६ ॥

ताः पिबन्त्योऽस्य सौन्दर्यरूपसारसुधारसम् ।
अतृप्तहृदया आसुरनिमेषैर्विलोचनैः ॥ ७९७ ॥

उत्फुल्लकमलामोदवह शीतलमारुतः ।
सिषेवे रघुशार्दूलं रतिलीलामहोत्सवे ॥ ७९८ ॥

चित्राः सुवेलाद्रिदरीर्मणिमाणिक्यदीपकैः ।
केलिगृहं कल्पयित्वा रेमे राजीवलोचनः ॥ ७९९ ॥

महीरुहलताकुञ्जपिहितान् गिरिगह्वरान् ।
मलयद्रुमसौरभ्यशीलितान् शीतनिर्झरान् ॥ ८०० ॥

तुङ्गानि गिरिशृङ्गाणि विपुलास्तदधित्यकाः ।
उपत्यकाश्च रुचिराश्चक्रे केलिरसस्थलीः ॥ ८०१ ॥

तासां तनुत्विषा सर्वं रञ्जितं केलिकुञ्जकम् ।
सचम्पकाकीर्णमिव विरेजे च समंततः ॥ ८०२ ॥

अन्यतो रामचन्द्रस्य तनुद्योतैर्मनोहरैः ।
तदिन्द्रनीलरत्नांशुवृन्दाञ्चितमिवाबभौ ॥ ८०३ ॥

झणज्झणितभूषाणां कूजितैः सकुतूहलैः ।
कामिनीनां कलालापैः कोकिलास्वरनिर्जयैः ॥ ८०४ ॥

सुवेलाद्रिदरी वेश्म व्याप्तं प्रतिरवोर्जितैः ।
ओषध्ये दीपकप्रायास्तत्रासन् केलिकौतुके ॥ ८०५ ॥

महती सा निशा चासीदखण्डविधुचन्द्रिका ।
मध्यंदिवगतो रेजे शशाङ्कः पूर्णमण्डलः ॥ ८०६ ॥

कोटिचन्द्रसमुद्भासी एक एव व्यदृश्यत ।
महानिद्रावशं प्राप्ता मोहिताश्च निशाचराः ।
निभृतं राघवो रेमे सम्पन्ने रक्षसां पुरे ॥ ८०७ ॥
आविर्भाववशात् प्रमोदविपिनस्याङ्घ्रिप्रसादात्तथा-
तस्य श्रीरघुपुङ्गवस्य पतितव्यूहैकसंतारिणः ।
आसीदासुरभावतो विरहितं स्थानं विशुद्धं ततः-
केलीभाजनतां गतं कमलया संशोभिवैकुण्ठवत् ॥ ८०८ ॥
त्रैलोक्यं स्थगितं बभूव सहजारामस्य रासोत्सव-
क्रीडायां ववृधे महारसमयप्रेमप्रमोदार्णवः ।
तस्यैवोच्छलिताः कणाः कतिपये व्याप्ता समंतात् पर
ब्रह्मानन्दमयाः सुरासुरवरव्यालात्मविद्योतिषु ॥ ८०९ ॥
स्वस्वस्थानस्थिता देवा असुराश्चापि तादृशाः ।
नरा भुजङ्गमाश्चैव पातालतलवासिनः ॥ ८१० ॥
ज्ञानिनो योगिनश्चापि तथा पश्वादियोनयः ।
निवृत्ताखिलव्यापाराः सर्वेन्द्रियलयं गताः ॥ ८११ ॥
अकस्मात् सम्मुमुदिरे येषां गोत्रभवाश्च ताः ।
इत्येवं परमानन्दः सर्वविस्मारणो नृणाम् ॥ ८१२ ॥
अकस्माद्धृदि संजातास्त्रैलोक्यस्थानवासिनाम् ।
केचिद्भक्तवरास्तत्र नारदाद्याः सुरर्षयः ॥ ८१३ ॥
प्राप्ताः सुविपुलोत्कण्ठा अन्तरिक्षपथे स्थिताः ।
कौतूहलसमाविष्टा ददृशुः केलिनिर्भरम् ॥ ८१४ ॥
एवं तास्त्रिजगद्रामाः कृत्वा पूर्णमनोरथाः ।
तासां मनः समाकृष्य स्वात्मैकविषयं स्थिरम् ॥ ८१५ ॥
केलीसरोवरे स्नात्वा दत्त्वा रतिसुखं महत् ।
अन्योन्यमुक्षणं कृत्वा सुधानिर्मलपाथसा ॥ ८१६ ॥
स्थले केलीवने केलीं विधाय विपुलां विभुः ।
वितीर्य विविधं ताभ्यो मनोऽभिलषितं वरम् ॥ ८१७ ॥
सुप्रभातोन्मुखीं रात्रिं निरीक्ष्य भगवान् स्वयम् ।
सर्वा आज्ञापयामास यथास्थानं निवेशितुम् ॥ ८१८ ॥
काश्चिदत्युत्सुका रामा विलीनास्तस्य रश्मिषु ।
आविर्भावः पुनस्तासां प्रमोदवनकेलये ॥ ८१९ ॥
काश्चित् सीतासखीभूय तस्याः पार्श्वेषु संस्थिताः ।
काश्चिल्लतास्वोषधीषु संलीय निभृतं स्थिताः ॥ ८२० ॥

अनुज्ञाय प्रियां रामो माल्यवन्तमुपागमत् ।
अथ सुग्रीवमादाय सुमित्रातनयः स्वयम् ।
किष्किन्धायाः संनिवृत्तः कृत्तिकायां महामतिः ॥ ८२१ ॥

चरित्रमिदमद्भुतं किमपि राघवेन्द्रस्य यः-
शृणोति भवमङ्गलं रसविलासरासाभिधम् ।
स याति परमां मुदं जगति भक्तिमासादये-
दयथा रघुवरः स्वयं भजति वश्यतां तद्धृदि ॥ ८२२ ॥

त्रैलोक्यवरकन्यानां समुद्धारं महाद्भुतम् ।
सहजायाश्च प्राकाम्यं भक्तेषु करुणां तथा ॥ ८२३ ॥

लीलां श्रीरामचन्द्रस्य स्वप्रियायाश्च वश्यताम् ।
यो जानाति नरश्चित्तेसन मुह्येत् कदाचन ॥ ८२४ ॥

एकैव परमा लक्ष्मीः प्रमोदवनचन्द्रिका ।
सहजानन्दिनी साक्षाद्रमते रामसंगिनी ॥ ८२५ ॥

सैव श्रीजानकी सीता नित्यमद्भुतकेलिनी ।
नाम धाम स्वरूपं च तस्या वेदाद्यगोचरम् ॥ ८२६ ॥

विपुलं च यशस्तस्या गीतं कविवरैर्मुहुः ।
यस्तां संसेवते प्रेम्णा नित्यानुकूल्यवृत्तिना ॥ ८२७ ॥

स धन्यः स पुमांल्लोके पुरुषार्थनिकेतनः ।
स एव सर्ववेदानां रहस्यं वेत्ति नापरः ॥ ८२८ ॥

तस्मात् सर्वात्मना सैव सर्वभावेन चानघे ।
संसेवनीया लोकेऽस्मिन् सहजानन्दरूपिणी ॥ ८२९ ॥

अनन्तनामरूपा सा चरित्रैः सर्वमङ्गला ।
रामानन्दनिधिः साक्षाद्विचित्रगुणगुंफिता ॥ ८३० ॥

सैव श्रीराजिनि तव पुत्रीयं सुभगोत्तमा ।
सर्वासां रामलीलानां स्वेच्छयैव प्रवर्तिनी ॥ ८३१ ॥

सहजा मोदिनी सीता नामत्रयसमन्विता ।
मयाप्युपास्यते नित्यमेषा श्रीरामसंयुता ॥ ८३२ ॥

इत्युक्त्वा राजिनीं गोपीं शिवस्तदभिपूजितः ।
कैलासं जग्मिवान् देवो विमरोहीकृत्य गोपिकाम् । ८३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये
शिवराजिनीसंवादे रामायणचरितोक्तौ शिवगीते
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं शिवस्य वचसा विज्ञाय परमार्थतः ।
स्वरूपं सहजेशान्या ननन्द खलु गोपिका ॥ १ ॥

सहजारामयोर्लीलां पश्यन्ती रसरञ्जिता ।
परमानन्दपाथोधिं विजगाह दिने दिने ॥ २ ॥

सौगन्धिकगिरौ रम्ये रत्नाद्रौ च मनोरमे ।
कन्दरासु च शृङ्गेषु दरीगह्वरवेश्मसु ॥ ३ ॥

कुञ्जेषु च निकुञ्जेषु सर्वर्तुसुखदायिषु ।
भूरूहेषु च वल्लीषु घनेषु विपिनेषु च ॥ ४ ॥

प्रासादशिखरेष्वेवं विमलादर्शवेश्मसु ।
आरामेषु मनोज्ञेषु चतुःशालविराजिषु ॥ ५ ॥

विप्रकृष्टेषु रम्येषु वनेषु विविधेषु च ।
लतापिहितवृक्षेषु गुल्मराजीघनाध्वसु ॥ ६ ॥

संनिकृष्टेषु कान्तारगहनेषु समंततः ।
गृहवापीषु रम्यासु पद्मोत्पलसुगन्धिषु ॥ ७ ॥

सरसीषु सुगन्धासु मदान्धकलहंसकैः ।
संनिनादितमध्यासु कुमुदोत्पलहल्लकैः ॥ ८ ॥

समंततः सुगन्धासु पिशङ्गजलवीचिषु ।
परागरागव्याप्तासु छायाशीततलास्वपि ॥ ९ ॥

मृगोषु च कपोतीषु राजहंस।षु केलिभिः ।
मयूरीषु कोकिलासु कोकीषु लक्ष्मणासु च ॥ १० ॥

नानाविधासु क्रीडासु नानानुकरणात्मसु ।
तलनादमनोज्ञेषु मन्दिरेषु मुदान्वितौ ॥ ११ ॥

क्रीडन्तौ विविधाः केलीः कलाकौशलशालिनौ ।
विचित्रवेषालङ्कारौ विचित्रवनमालिनौ ॥ १२ ॥

वसन्ते वनकेलीभिः पुष्पावचयलीलया ।
रसगाथास्वरोद्गानैर्डफाभुरजवादनैः ॥ १३ ॥

मुरलीवल्लकीघोषैर्यूथगालीविनोदनैः ।
ग्रीष्मे जलविहारैश्च नौकाजलविरहणैस्तथा ॥ १४ ॥

सेतुबन्धविधानैश्च सरसीजलमध्यतः ।
वापीहिन्दोलनैश्चैव सरितां तरणैस्तथा ॥ १५ ॥

स्निग्धच्छायावस्थितिभिः कल्लोलानिलसेवनैः ।
चन्दनद्रवसंदोहस्निग्धकर्पूरसेवनैः ॥ १६ ॥

व्यजनानिलसंस्पर्शैर्जलयन्त्रनिषेवणैः ।
चन्द्रज्योत्स्नादर्शनैश्च सायं स्नाननिषेवणैः ॥ १७ ॥

वर्षासु नीपकुञ्जेषु सौरभानिलसेवनैः ।
घनाम्बुदघटारम्यबलाकातनिदर्शनैः ॥ १८ ॥

कृष्णाभिसारविधिभिस्तडिल्लेखाकुतूहलैः ।
इन्द्रचापचमत्कारवीक्षणैर्घनविन्दुभिः ॥ १९ ॥

रक्तवस्त्रभिरुचिभिः शाद्वलासनकौतुकैः ।
मयूरनादश्रवणैर्घनधारानिरीक्षणैः ॥ २० ॥

प्रासादशिखरारोहैश्चानकध्वनिशीलनैः ।
मल्लाररागबन्धैश्च सरिद्वृद्धिनिभालनैः ॥ २१ ॥

प्रमत्तकोकिलालापे रसालफलसौरभैः ।
मयूरताण्डवकलादर्शनैः कलनिःस्वनैः ॥ २२ ॥

घनव्यूहसमारोहकौतुकाम्बरवीक्षणैः ।
घनान्धकारनिविडतमालतरुसेवनैः ॥ २३ ॥

पर्णच्छत्रतलावासैः कदलीवनसेवनैः ।
शिलीन्ध्रशोभाकुतुकैरपराजित[1]दर्शनैः ॥ २४ ॥

अनेकवल्लिकारोहकौतुकोत्सवदर्शनैः ।
दर्दुरध्वनिहासैश्च केकिनादाभिनन्दनैः ॥ २५ ॥

कन्दरागृहवासैश्च गिरिशृङ्गाधिरोहणैः ।
गिरिशाद्वल भूमीनां निभालन कुतूहलैः ॥ २६ ॥

विचित्रविन्दुवसनपरिधानकुतूहलैः ।
हिन्दोलाकुतुकैश्चैव गोपीगानकुतूहलैः ॥ २७ ॥

विचित्रवसनारम्भकौतुकैर्ललनागणैः ।
शरत्सु श्वेतजलदव्योमनैर्मल्यदर्शनैः ॥ २८ ॥

सप्तच्छदसुमोल्लासकुतूहलनिभालनैः ।
कैरवोल्लासकलनैश्चान्द्रोनैर्मल्यकौतुकैः ॥ २९ ॥

---

१. अपराजितः पुष्पजातिविशेषः ।

तारकागणशोभाभिर्मुनिद्रुमसुकोरकैः ।
मल्लिकावल्लिकुसुमविकासोद्गारिसौरभैः ॥ ३० ॥

जलनैर्मल्यशोभाभिः सरित्पुलिनदर्शनैः ।
विकासिकासशोभाढ्यदिगनन्तपरिदर्शनैः ॥ ३१ ॥

तुषारकणसम्पातमौक्तिकक्षणदर्शनैः ।
नित्यभोजनसंतोषपितृब्राह्मणदर्शनैः ॥ ३२ ॥

नवदुर्गार्चनोत्साहैर्विजयादशम्युत्सवैः ।
कार्तिकस्नानमिलितनरनारीसुसङ्गमैः ॥ ३३ ॥

प्रत्यूषसमयोन्निद्रस्तनसंगतकाहलैः ।
प्रकाशदीपमालानां शोभादर्शनकौतुकैः ॥ ३४ ॥

सितमन्दिरशोभाभिर्दीपावलिमहोत्सवैः ।
द्यूतकेलिविनोदैश्च तुलसीवनपूजनैः ॥ ३५ ॥

अन्नकूटोत्सवसुखै रत्नाचलसमर्चनैः ।
सरयूसलिलस्नानसंगताप्सरसां गणैः ॥ ३६ ॥

कुञ्जमन्दिरशोभाभिर्नृत्यगीतविनोदनैः ।
स्वयं रासविलासैश्च गानतालविधानकैः ॥ ३७ ॥

हरिप्रबोधकुतुकैः किन्नरीगणनर्तनैः ।
सर्वतोभद्रपद्मादिमहामण्डमण्डनैः ॥ ३८ ॥

पञ्चभीष्मविधानोत्थनृत्यवादयादिदर्शनैः ।
दम्पतिव्रजपूजाभिः सुन्दरीगणदर्शनैः ॥ ३९ ॥

प्रातःस्नानसमायातस्निग्धगोपीनिभालनैः ।
अनेकमिषसम्प्राप्तपट्टाम्बरधराङ्कुतैः ॥ ४० ॥

गोपीगणैः कृतानेकहावभावनिरीक्षणैः ।
नवीनशीतसमयप्रादुर्भूतकुतूहलैः ॥ ४१ ॥

कर्पासशीलनैः शोभिविचित्रपटधारणैः ।
हेमन्तेषु वसन्तीभिर्गृहाभ्यन्तरवेश्मभिः ॥ ४२ ॥

कूर्पासकञ्चुकवरशीलनैर्धर्मशीलनैः ।
ताम्बूलभोजनैर्भूरिघुसृणान्तरिताशनैः ॥ ४३ ॥

दीपिकाभासितगृहान्तःकालागुरुधूपनैः ।
सुगन्धितैलाभ्यङ्गैश्च सूर्यांशुस्पर्शशीलनैः ।
हेमन्तोक्तैर्महाभोगैः शिशिरेऽपि निषेवणैः ॥ ४४ ॥

क्रीडन्तौ सहजारामौ जनयामासतुर्मुदम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलभरं सुखं पुपुषतुश्च तौ ॥ ४५ ॥

श्यामां चैव तथा रामां समस्नेहेन मोदयन् ।
रामानुगत एवासौ ववृते केलिकोविदः ॥ ४६ ॥

मुक्ताहारधरः किरीटतटयोः प्रोद्बद्धमुक्तासरः-
क्रीडानाट्यकरः कलापटुतरः कैशोरवेशोत्तरः ।
वद्धाधोनटकच्छसुन्दरवरः प्रोल्लासिपीताम्बरः-
श्रीरामः शुशुभेतरां त्रिजगतामेकानुकम्पाकरः ॥ ४७ ॥

प्रमोदवनचन्द्रमाः सकलसत्कलाभूषितः-
समस्तसुखितव्रजप्रवणगोपिकासौख्यदः ।
अनेकपरिलालनप्रचयकारिमाङ्गल्यका निकेतन-
महामणिर्विजयते रघूणांपतिः ॥ ४८ ॥

शृङ्गारस्यैष सीमा परममधुरताधोरिणीनां धुरीणः-
श्रीमान् श्रीमत्प्रियायाः प्रणयरसधुनीस्रोतसिस्नानशीलः ।
पूर्णानन्दव्रजेन्दुस्त्रिजगति वितरन् भक्तिपीयूषपानं-
श्रीमन्माङ्गल्यका यास्त नय इतिमुदं राघवेन्द्रो विधत्ते ॥ ४९ ॥

इत्यहं राघवेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनाः ।
तवपुत्र्याश्च सीतायाः स्वरूपमिदमुक्तवान् ॥ ५० ॥

इयं श्रीसहजा साक्षाच्छ्रीरामानन्दरूपिणी ।
सततं भाव्यतां राजन् जन्मबन्धहृतीच्छया ॥ ५१ ॥

कर्माण्यस्यां समर्प्याथ छिन्नकर्माशयो नृप ।
नित्यब्रह्मभयो भूत्वा मा शोचस्त्वं कृताकृते ॥ ५२ ॥

इदं ते गोपनीयं च सहजाकेलिकौतुकम् ।
अभक्तेभ्यो निन्दकेभ्यो नैष्कृतेभ्यस्तथा नृप ॥ ५३ ॥

प्रकाशनीयं रसवर्त्मवेदिने भक्ताय रामाद्भुतकेलिशालिने ।
निवृत्तमायासदमोहबुद्धये रामं परब्रह्म सदा भजिष्णवे ॥ ५४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणोये-श्रीशुकजनकसंवादे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥



अष्टषष्टितमोऽध्यायः

जनक उवाच

तव प्रसादान्मुनिवर्य तत्त्वं ज्ञातं मया सहजायाः परं यत्।
इयं चिदानन्दघनासनातनी पूर्णा कला योगविदामगोचरा ॥ १ ॥

ब्रह्मतत्त्वं परं यत्तदक्षरं परमं पदम्।
सर्ववेदान्तवाक्यानां स्थानमेकं निरूपितम् ॥ २ ॥

समासव्यासयोगेन शब्दब्रह्म प्रतिष्ठितम्।
यत्र दिक्कालसम्बन्धरहिते परमात्मनि ॥ ३ ॥

तदेव सर्वभूतानामन्तर्यामितया स्थितम्।
अवतारकलानां च स्रोतसामिव तत्सरः ॥ ४ ॥

अनवद्यं पदं पूर्णं मायासम्बन्धवर्जितम्।
प्रकृतिं पुरुषं चापि यदतीत्य व्यवस्थितम् ॥ ५ ॥

पूर्णं चिदानन्दमयं नभश्च यद्योगीश्वराणां धिषणाभिरस्पृशम्।
सर्वक्ष साम्येन युतं निरन्तरं क्षरातिगं च प्रतियोगिशून्यम् ॥ ६ ॥

ततः परं तत्पुरुषोत्तमाख्यं परं तत्त्वं सहजारामशब्दितम्।
अर्वाग् यतो ब्रह्म यदक्षरं तद्दीपस्य यद्वच्च विभा प्रसृत्वरी ॥ ७ ॥

इति त्वदाख्यातगिरां मुनीन्द्र सर्वस्वमेतन्मयका न्यबोधि।
अतोऽहमग्रेतनयोगसंविदां संशीलनादस्मि सुमन्थरादरः ॥ ८ ॥

विहाय कर्माणि च तत्त्वसंविदां परिश्रमोक्ताश्च हिता उपासाः।
श्री श्रितोऽस्मि सर्वस्य फलं स्वरूपतः प्रमाणमेकं सहजारामसंस्थम् ॥ ९ ॥

धन्यास्ते भक्तिभावैर्निजहृदि सहसा रामलीलानुभावे
हृष्यन्तो मुक्त्यतीते पथि परमतमानन्दपूर्णे प्रतिष्ठाः।
रोमाञ्चस्वेदसंस्तम्भननयनजलोद्भावकम्पादियुक्ता
मुक्ताः संसारदुःखैरहमिह सततं दासदासोऽस्मि तेषाम् ॥ १० ॥

येषां रामे सहजासंगयुक्ते श्रीमत्प्रमोदाटविवासहृष्टे।
नित्यं मनः प्रेमसमाधिमग्नं तेऽसि धन्या यूयमेते मुनीन्द्राः ॥ ११ ॥

इमां चिदानन्दकलां स्वयंभुवं स्वरूपतः श्रीसहजात्मिकामहम्।
विज्ञाय पूर्णेश्वरतागुणाक्तां धियं किमु स्नेहपथे निवेशये ॥ १२ ॥

ऐश्वर्यमस्याः स्मरतः प्रतिक्षणं कथं नु वात्सल्यरसो भविष्यति।
इत्यस्मि चिन्ताकुलितोऽधुना मुने त्वयोपदिष्टे निभृते प्रेममार्गे ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच

अस्याः काचित् परामाया या लीलाङ्गोपयोगिनी ।
तयैव विस्मृतैश्वर्यवात्सल्येनु भविष्यसि ॥ १४ ॥

पुत्रीस्नेहमयीं बुद्धि प्राप्य ब्रह्मरसातिगाम् ।
लीलानुभवसानन्दः कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ १५ ॥

अनुग्रहो मयीशस्य रामस्य परमात्मनः ।
यल्लीलानुभवं दातुमुद्यतोऽसौ भवादृशे ॥ १६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सेव श्रीशुकजनकसंवादेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥



एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

इत्युदीर्य शुको नाम योगीन्द्रः परमोहभित् ।
दयोतयन् हरितः कान्त्या जगाम जनकालयात् ॥ १ ॥

तमनुप्रययुः केचिन्मुनयस्तत्त्वदृष्टयः ।
आसाकेतपरं धाम व्रजत्येष महामुनिः ।
आ च शेषालयमधो जगत्कल्याणदायकः ॥ २ ॥

तदानतात्परिज्ञाय रामतत्त्वं परात्परम् ।
कृतकृत्योऽभवद्राजा नेमिचन्द्रः समात्मवित् ॥ ३ ॥

भुवमप्सु समावेश्य तास्तेजसि मरुत्सु तत् ।
मरुतो व्योमनि व्योम मनस्तत्त्वे प्रवेश्य च ॥ ४ ॥

मनो बुद्धौ च बुद्धितामहंकृतिगतां स्मरन् ।
अहंकृतिं स्मरेच्चित्ते चित्तं विज्ञानगं स्मरन् ॥ ५ ॥

विज्ञानं महति प्राप्य महत् प्रकृतिगं स्मरन् ।
प्रकृतिं बहिरङ्गायां मायाशक्तौ प्रवेश्य च ॥ ६ ॥

मायाशक्तिं च पुरुषे पुरुषं चाक्षरे परे ।
अक्षरं चित्स्वरूपायां सहजायां परात्मनि ॥ ७ ॥

सहजां भावयन् रामे पुरुषोत्तमशब्दिते ।
परमे ब्रह्मणि सदा पूर्णानन्दे विपश्चिता ॥ ८ ॥

तद्भावभाविताभावात्सदा तद्भावभावितः ।
ततः सप्रमोदवनगुहायां निहितं च तत् ॥ ९ ॥
भावयानः परं ब्रह्म भूयो न व्युदतिष्ठत ।
गच्छञ्जल्पञ्जगत् पश्यन् बाधिताकारमात्मनि ॥ १० ॥

कुर्वन् विविधकर्माणि लोकयात्रावहान्यपि ।
जिघ्रंश्च रसयन्नश्नन् स्पृशन्निन्द्रियगोचरात् ॥ ११ ॥
न व्यवच्छिद्यत ततो वस्तुनः परमार्थिकात् ।
निर्दिष्टं यच्छुकेनास्मै सहजानन्दिनीपदम् ॥ १२ ॥

ध्यानधारणयोगेन यत्नानेन स्थिरीकृतम् ।
आत्मनीषच्चिदानन्दसम्पर्कानुमितं बलात् ॥ १३ ॥

ईक्षाञ्चक्रे तदप्येष प्रकटं दिव्यचक्षुषा ।
एकदा क्षुधिता बाला मातुस्तन्यपिपासया ॥ १४ ॥

न गृहीता जवादेत्य मात्रा गौर्यर्चनस्थया ।
तावज्जनक आगत्य स्वापत्यस्नेहकातरः ॥ १५ ॥
उत्थाप्यैनां निजाङ्कस्थां कर्तुं समकरोन्मतिम् ।
तावत्प्रदर्शयामास परमैश्वर्यमात्मनः ॥ १६ ॥

यत्रानेकरवीन्दुमण्डलचयं वह्नित्रयं दृष्टवा
निन्द्राद्यानदशदिक्पतींश्च बहुधा ब्रह्मादिकांल्लोकपान् ।
अन्यान् स्थावरजङ्गमस्थविषयग्रामान् जगच्चाखिलं-
स्थूलं सूक्ष्ममथो परं च सकलं तस्याः शरीरस्थितम् ॥ १७ ॥
अपश्यत्तामेव क्वचन पुरुषं पीतवसनं
परं सुद्विभुजं धनुर्बाणधरं किरीटिनम् ।

अलौकिक्या कान्त्या त्रिभुवनपरिव्याप्तमया
तपन्तं श्रीरामाह्वयमयमथो तां च महिषीम् ॥ १८ ॥

कदाचित्पुरुषाकारं स्त्र्याकारं च कदाचन ।
दृष्ट्वा महो विचित्रं तन्निश्चेतुं नाशकन्नृपः ॥ १९ ॥

उज्ज्वलोज्ज्वलमत्यर्थं प्रसृत्वरमनन्तकम् ।
विश्वव्यापकमात्मैकं महस्तदतिनिर्मलम् ॥ २० ॥

त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्यत्रिदशालयसंश्रयम् ।
अपूर्वमपराबाह्यमनन्तरमनश्वरम् ॥ २१ ॥

चिदेकाकारविस्फूर्जद्दूर्जस्वलमुदित्वरम् ।
विश्वप्रवाहरूपत्वं प्रत्यग् वीक्ष्य मुमोद सः ॥ २२ ॥

आसीच्च विस्मितप्रायो भूयो भूयो विलोक्य सः ।
कालोऽस्यास्तनावैक्षिष्ट संवर्तः प्रलयात्मकः ॥ २३ ॥

महच्च भूतमतुलमुदग्रसर्वसाम्यवत् ।
पञ्चभूतान्यहंकारो मात्राश्चैव पृथक् पृथक् ।
समष्टिं चैव व्यष्टिं च सविशेषमुदैक्षत ॥ २४ ॥

वेदांश्च चतुरस्तत्र स्तुवतः शब्दरूपिणः ।
परं चैवापरं विश्वं विलोक्यैष विसिस्मिये ॥ २५ ॥

यावतीधीर्विकल्पाख्या शब्दार्थव्याप्तिगोचरा ।
तावती सं बभूवास्य स्फुटमेनां प्रपश्यतः ॥ २६ ॥

ततो विस्मृतयोगोऽसौ बहिःप्रत्ययभाङ् नृपः ।
चिदानन्दं परं धाम ज्ञात्वा तुष्टाव तुष्टिमान् ॥ २७ ॥

जनक उवाच

त्वं वै न देवा न च मर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषा जयतात्पराचित् ॥ २८ ॥

इद महन्मूलमशेषबीजं सत्यं चिदानन्दमयं चकास्ति ।
विष्वक्समुद्भासि महोऽत्युदग्रं गुणाद्भुतं चापि गुणातिगं च ॥ २९ ॥

एतत्समालम्बितुमस्त्यनर्हा मच्चित्तवृत्तिर्विषयानुशीला ।
अदर्शि यच्चापि तया स्फुटं तदेवानुकम्पा दयनीयजन्तौ ॥ ३० ॥

यस्यास्तनौ संततमेतदोतं प्रोतं च विश्वं प्रतिभाति सम्यक् ।
प्रत्यक् चितिं तां जगदेककर्त्रीं भर्त्रीं च हर्त्रीं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ ३१ ॥

यदाह मेऽसौ भगवान् मुनीन्द्रः शुकोऽखिलाचार्यगुरुर्गुरुर्मे ।
व्यलोकि तत्सर्वमिहाप्रमेयमूर्तौ चिदानन्दपदे तथैव ॥ ३२ ॥

किमत्र शक्यं करणीयमन्यदस्माद्दृशैर्जीवितमैर्विधातुम् ।
इति प्रविज्ञाय नतोऽस्मि नित्यं प्रेमैकवश्येत हृदा प्रपन्नः ॥ ३३ ॥

सहजानन्दिनीमेतां श्रीरामाभिन्नमूर्तिकाम् ।
मुहुः परमया भक्त्या नतोऽस्मि प्रणतोऽस्मि च ॥ ३४ ॥

न यस्यादिर्न वा मध्यं नान्तं कुत्रापि दृश्यते ।
तदहं प्रणतोऽस्म्येतच्चिदानन्दमयं महः ॥ ३५ ॥

न कर्म न तपो ज्ञानं न वा योगस्तथा व्रतम् ।
सा धनं खलु सम्पूर्णं फलेनैवानुमीयते ॥ ३६ ॥

अथवैककृपामात्राद् दृश्यते मे दृशा महः ।
निःसाधनानां स्वीकारे ह्रीदमेव निदर्शनम् ॥ ३७ ॥

[1]लक्ष्मण उवाच

इति स्तुवत एवास्य प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
तद्रूपमुपसंजह्रे सहजानुग्रहात्मकम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये सीताजन्मोत्सवे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥



सप्ततितमोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

ततस्तां बालवेशेन शोभयन्तीं स्वमालयम् ।
विलोक्य जनको राजा अपत्यस्नेहकातरः ॥ १ ॥

तत्क्षणाद्विस्मृतैश्वर्यो बभूव प्रीतमानसः ।
बाल्यक्रीडनकैः सा तु क्रीडमाना स्वमातृभिः ॥ २ ॥

लाल्यमाना गृहे राज्ञ्या अङ्कभृशमभूषयत् ।
शिक्यस्था दोल्यमाना सा तात तातेति भाषती[2] ॥ ३ ॥

उद्वर्तनेन संस्निग्धा साञ्जनाञ्जनबिन्दुभिः ।
डाकिनीनां दृष्टिदोषादुत्तरारसवैभवात् ॥ ४ ॥

डाकिनी पूतना या तु कूष्माण्डा भैरवादयः ।
बालां तामुपसंयातास्तेजसागुः पराहताः ॥ ५ ॥

इत्थमैश्वर्यकलिता गुणसंदोहभाविता ।
तयोर्मनसि दम्पत्योः प्रेमपुष्टिं ततान सा ॥ ६ ॥

तज्जन्मदिवसादेव राज्ञो जनकभूपतेः ।
मन्दिरं सर्वशोभाढ्यमवर्तत रमालयम् ॥ ७ ॥

वैकुण्ठमिव भूमिष्ठं जनकस्य पुरं बभौ ।
भूरभूत् काञ्चनमयी तत्क्षणात् पश्यतां नृणाम् ॥ ८ ॥

१. नास्ति—बड़ौ० । २. आर्षप्रयोगः ।

कमलेशी घोषवती साक्षादमृतवाहिनी ।
जातरूपमहाकूला जनकस्य पुरे बभौ ॥ ९ ॥

शिवलिङ्गानि दिव्यानि तत्र तत्र चकाशिरे ।
सद्यः पूजयतां नृणां मनसः कामदानि च ॥ १० ॥

श्रीमन्नारायणस्तत्र श्रीरामस्य कलांशकः ।
निवासं तत्र कृतवान् यथा वैकुण्ठगः स्वयम् ॥ ११ ॥

इतः प्रमोदविपिनं जनकस्य पुरं ततः ।
मध्ये ब्रह्मादिदेवानां वासस्थानं बभूव तत् ॥ १२ ॥

सर्वर्तुसुखशोभाढ्यं चन्दनानिलसेवितम् ।
जनकस्य पुरं रम्यमयोध्यासदृशं बभौ ॥ १३ ॥

निवासः सर्वसिद्धानां योगसिद्धेः सदैव तत् ।
जनकेन्द्रपुरं नित्यं तत्क्षणेन व्यरोचत ॥ १४ ॥

सरांसि फुल्लत्कमलानि नित्यं मादयन्महाराजहंसीकुलानि ।
रत्नोप्तहेमोज्ज्वलक्लृप्तपुष्पनिःश्रोणिकाशोभितनिर्मलानि ॥ १५ ॥

वनानि वल्गुस्फुरितच्छदानि संफुल्लपुष्पाणि फलान्वितानि ।
गुञ्जत्प्रमत्तभ्रमरावलीभिर्मुहुः समास्वाद्य मधुश्रवाणि ॥ १६ ॥

देशः स तावन्मिथिलेति संज्ञो मिथः प्रमोदाः खलु यत्र लोकाः ।
नार्यश्च सर्वाः सुभगा रमाभा भास्वन्मणिद्योतितहैमभूषाः ॥ १७ ॥

सीताजनुर्भूरिमहोत्सवेन व्याप्तान्तरा याज्ञवल्क्यादयोऽपि ।
विस्मृत्य चित्तेषु समाधियोगं प्रेमैकमग्ना मुनयो बभूवुः ॥ १८ ॥

स्थले स्थलेऽभूत कमलाविलासो विलासिनीनां मतिविभ्रमेषु ।
वीथीषु यत्रस्फुटहेमयूथीसवर्णभासां प्रमदोत्तमानाम् ॥ १९ ॥

पर्यङ्कपुष्पास्तरणान्वितेषु शुद्धान्तसौधेषु सुमङ्गलानि ।
गीतानि वीणास्वरवादनीनां स्त्रीणां महासौभगभूषितानाम् ॥ २० ॥

स्खलद्गतीनां मदमन्थराणां मधूत्तमास्वादसुविह्वलानाम् ।
कटाक्षनिक्षेपभुजोन्नतिश्रीवश्या बभूवुः [1]कमनाप्रियाणाम् ॥ २१ ॥

बाला युवानश्च तथैव वृद्धाः सर्वे जनाः सोत्सवपूर्णचित्ताः ।
सीताजनौ जातमुदो विरेजुर्यथैव साकेतपुराधिवासाः ॥ २२ ॥

कलाकलापाः सहसाऽविरासुर्विलासभूमौ जनकेन्द्रपुत्र्याः ।
दिने दिने शैशवमुत्तरन्ती कैशोरमेषा वयसा प्रपेदे ॥ २३ ॥

---

१. कमनाः—कामुकाः ।

कैशोरमारभ्य रघूत्तमस्य संशृण्वती साथ गुणान् मनोज्ञान् ।
रोमाञ्चसंदोहचिताङ्गयष्टिः प्रकम्पमाना ददृशे सखीभिः ॥ २४ ॥

नवं प्रमोदप्रचुरं वयः सा कैशोरमासाद्य विराजमाना ।
अत्यर्थमादौ सुरभेर्बभूव सपल्लवा काञ्चनवल्लरीव ॥ २५ ॥

अथास्याश्चरितं वक्ष्ये मुक्तिदानक्रियात्मकम् ।
ये जीवा वेदशास्त्राणां निन्दका गुरुनिन्दकाः ॥ २६ ॥

अभ्यागतार्चारहिताः शुद्धकायाश्च पुण्यतः ।
ते जीवा जानकीजन्मत्युत्पन्नाः कर्मयोगतः ॥ २७ ॥

वृक्षगुल्मलतारूपाः पशुपक्ष्यादिरूपिणः ।
तद्वीक्षणक्षणेनैव धूतपापकदम्बकाः ॥ २८ ॥

जीवन्मुक्ता बभूवुर्वै येषां भक्तिश्च नान्यतः ।
ये जीवाः कार्मिकाश्चैव यज्ञकर्मपरायणाः ॥ २९ ॥

शुद्धान्वयोद्भवा देवादयोध्यारामनिन्दकाः ।
सीमानः कर्मनिष्ठानां भक्तिनिष्ठाविदूषकाः ॥ ३० ॥

सीतोपासननिन्दायां प्रसक्ता भवदूषकाः ।
तेषामासुरनिष्ठानां जीवानां मूढचेतसाम् ॥ ३१ ॥

सीताजन्मोद्भवानां वै वृक्षगुल्मादिरूपिणाम् ।
पशुपक्ष्यादिदेहानां विमुक्तिर्दर्शनात्तदा ॥ ३२ ॥

रामेण मोचिता ये न ये न ज्ञानेन मोचिताः ।
दृढपाशैः कर्मभिर्ये बद्धाः सांसारिकाः जनाः ॥ ३३ ॥

सीता जन्मप्रसंगेन तांस्तारयति निश्चितम् ।
इममर्थं पुरस्कृत्य प्रादुर्भूतेयमद्भुता ॥ ३४ ॥

नान्यथा मोचनं तेषां जानक्या दर्शनं विना ।
अयमेवानुभावोऽस्या आनन्दिन्याश्चिदाकृतेः ॥ ३५ ॥

स्वरूपेणैव सामर्थ्याद्यन्मोचयति चेतनान् ।
दर्शनात् स्पर्शनाल्लापात्पादनिक्षेपणात्तथा ॥ ३६ ॥

अङ्गप्रसंगिनो वातात्तारिता बहवस्तया ।
एतद्धि शैशवं कर्म तस्याः सामर्थ्यसंयुतम् ॥ ३७ ॥

मूढभावानुकरणे मर्यादात्रयलङ्घिता ।
मूढभावं समुत्तीर्य कैशोरे सा व्यवस्थिता ॥ ३८ ॥

मुनीनां ज्ञानिनां चित्ते योगिनां च विशेषतः ।
निजदर्शनमात्रेण प्रेमाणं साव्यवर्द्धयत् ॥ ३९ ॥

ततः प्रेमप्रभावेण बभूवुर्भक्तिसंयुताः ।
एतत्कैशोरकं कर्म तस्या लीलानुभावनम् ॥ ४० ॥

श्रोतव्यं स्मरणीयं च रामलीलारसाधिकम् ।
अन्यत्त्वापि वयस्तस्या नित्यलीलाचिदाकृतेः ॥ ४१ ॥

अवस्थारूपनियतं चरित्रैर्जन्मतारकम् ।
लीला गुणाश्चरित्रं च तस्याः संसारतारकम् ॥ ४२ ॥

अस्या जनिस्त्वेतदर्थं विज्ञेयाखिलकोविदैः ।
तारयन्ती जनांस्तांस्तात् स्वलीलारसरञ्जिता ॥ ४३ ॥

ववृधे जानकी गेहे पितुरानन्दकारिणी ।
बाललीलारसं भूयः शीलयन्ती स्वभावतः ॥ ४४ ॥

कैशोरं जुषमाणापि ददृशे बाल्यशालिनी ।
रूपं तस्याः समुद्वीक्ष्य त्रैलोक्यवरयोषिताम् ॥ ४५ ॥

व्यगलत्सौन्दर्यमदः सद्य एव समंततः ।
तन्मायामोहिताः केचिच्चित्ते च कमिरे जनाः ॥ ४६ ॥

रावणस्तां समाकर्ण्य त्रैलोक्येऽनन्यसुन्दरीम् ।
वाणश्चापि महावीरश्चुक्षोभ हृदये स्वके ॥ ४७ ॥

अथो जनकराजेन पणीचक्रे स्वके हृदि ।
य इदं शाम्भवं चापं समाकृष्याधिरोपयेत् ॥ ४८ ॥

स मेकन्यां समुद्वाह्य पाणिग्रहविधानतः ।
लोकोत्तरगुणारामो यास्यते मम मान्यताम् ॥ ४९ ॥

सर्वे वितथसंरम्भा वभूवुश्चापरोपणे ।
जातः स्वयंवरारम्भेस्तस्याः षड्वार्षिके[1] वये ॥ ५० ॥

विश्वामित्रेण मुनिना कृतदिव्यपराक्रमः ।
दत्तास्त्रशस्त्रसंदोहस्तत्रार्यो नीत एव सः ॥ ५१ ॥

स भङ्क्त्वा शाम्भवं चापं महावीर्यं दुरासदम् ।
पश्यतां सर्ववीराणामुद्वाह स्वयं प्रियाम् ॥ ५२ ॥

आद्वीपान्तस्थिता भूपाः सर्वे ये तत्र संगताः ।
गतमानास्तनुं पूजां समादाय गृहान् ययुः ॥ ५३ ॥

संजाता महती पूजा तत्रार्यस्य स्वयं वरे ।
कथमन्यस्य सा चार्हा सिंहस्येव बलिः पशो ॥ ५४ ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

तत्र स्वयंवरे पूर्वं संगतौ वाणरावणौ ।
भग्नमानौ ततौ भूत्वा हरचापाधिरोहणे ॥
ययतुः स्वगृहे तौ च श्रीरामासूययाञ्चितौ ॥ ५५ ॥

समासाद्य प्रियां रामः स्वयं श्रीपुरुषोत्तमः ।
जनकस्य गृहे रम्ये मुमोद परया मुदा ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे पश्चिमखण्डे भरतलक्ष्मणीये श्रीशुकजनकसंवादे सीताजन्मोत्सवे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

पश्चिमखण्डः समाप्तः ॥



श्रीमदादिरामायणम्

(भुशुण्डरामायणम्)

उत्तरखण्डः

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एकदा विबुधाः सर्वे सुखिता रावणे हते ।
मघवन्तं पुरस्कृत्य ब्रह्मलोकमुपाययुः ॥ १ ॥

तत्र गत्वा स्वयं देवं परमेष्ठिनमीश्वरम् ।
रावणस्य वधादेशादूचुः स्वकृतकृत्यताम् ॥ २ ॥

देवा ऊचुः

कृतकृत्याः स्म भगवान् स हतो राक्षसेश्वरः ।
रामेण देवदेवेन [1]रसिकेन लोकरञ्जिना ॥ ३ ॥

स्वर्गे वयं स्वस्वपदानि[2] सर्वे लभेम दुःखं विनिवारितं ततः ।
स्वाहास्वधाकारकृतानि हव्यकव्यानि संस्थामगमन् स्वकीयाम् ॥ ४ ॥

एवं त्रिलोकस्य निवारितं तमस्तत्पापसंज्ञं हरचण्डीवरोत्थम् ।
लङ्काधिराज्ये चाभिषिक्तोः वरेण्यो विभीषणो वैष्णवः स्वस्य भक्तः ॥ ५ ॥

त्रयी च[3] धर्मश्च चिरेण नष्टौ संस्थापितौ गोद्विजविप्रभक्तिः ।
स्वीया च भक्तिस्त्रिदशैरप्यलभ्या प्रसादनाम्नोर्महिमा वैष्णवानाम् ॥ ६ ॥

कृतानि कर्माणि तथा विचित्राण्यानन्ददानिस्वेषु दुःखं परेषु ।
तीर्थानि सीताचरणाङ्कितानि विनिर्मितानि स्वपदैरङ्कितानि ॥ ७ ॥

नामानि देवेन सुमङ्गलानि स्फुटीकृतान्यद्भुतपावनानि ।
चाण्डालहूँणोत्खसपुष्कसाद्यैः स्मृतानि सद्यो निजसायुज्यदानि ॥ ८ ॥

कृतानि रामेण नरोत्तमेन पुण्यस्थलानिस्वपदानिभूम्याम् ।
सीतासुमित्रातनयाभ्यां हनूमता युक्तः स्वयं यत्र सदावतिष्ठते ॥ ९ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

२. 'सर्वे' नास्ति–बड़ौ० ।

३. 'च' नास्ति–बड़ौ० ।

विक्रीडितं प्रमुदकाननमध्यगेन माङ्गल्यकासुखितयोः सदने परेण ।
आभीरबालवनितावधितन्निजस्य वैकुण्ठधाम नयता निशि सुप्तलोकम् ॥ १० ॥

विक्रीडितं दशरथस्य गृहे तथोच्चैरीशेन दिव्यवपुषा पुरुषोत्तमेन ।
स्वांशैः समं भरतलक्ष्मणशत्रुसूदैर्देव्या स्वयं कमलया च युतेन नित्यम् ॥ ११ ॥

तच्चित्रकूटगिरिवर्यचरित्रमीशकः स्तोस्तुमीष्ट इति किं भगवन्नवेत्सि ।
यत्रार्यपादरजसाशतशः स्थलेषु भक्तिप्रदं प्रतिपदं खलु कोटितीर्थम् ॥ १२ ॥

यद्दण्डकावनभुवि प्रभुणानुजेन विक्रान्तमेवमितरेषु च काननेषु ।
तत्तत्र तत्र विपुलं स यशो दधार पुण्याश्रमेषु च महत्कुशलं मुनीनाम् ॥ १३ ॥

शत्रुर्हतश्च जगतां सगणः सवर्गः सद्यः प्रसादसुमुखेन विभीषणश्च ।
राज्ये सुनिश्चलतरे वचसाभ्यषिञ्चद्दूरीकृतश्च दयिताविरहोऽविषह्यः ॥ १४ ॥

भूर्यश्वमेधमखमङ्गलदीक्षितेन यूपाङ्किताः सरयुकूलभुवः कृताश्च ।
अभ्युद्धृताश्च भवसागरतो मनुष्या आपामरा अपिशठा अधिकारहीनाः ॥ १५ ॥

रामेति नाम रसनेन सकृद्रमन्तः पश्यन्त्यजा अपिजयन्त्युररीकृताश्च ।
जाता वयं च कृतकार्यसमस्तकृत्या भूमिः सनाथमभवद्बहुलक्ष्यवल्लिः ॥ १६ ॥

को वर्णयेदपि सहस्रमुखो गिरीशो नामानि तस्य चरितानि गुणांश्च भर्तुः ।
नायं प्रभुः स्पृहयते भुवि राज्यलक्ष्मीं वैकुण्ठनाथप्रतिपूजितपादपद्मः ॥ १७ ॥

किं तु स्वभक्तजनदुःखनिवारणायसम्भूय भूरि वितनोति शुभं चरित्रम् ।
सम्पन्नमद्य तदशेषमनन्तकीर्त्तेर्भूयोऽद्भुतैर्भुजबलैः प्रबलैर्निजांशैः ॥ १८ ॥

स्वं धाम सर्वजनगुह्यमतोऽभ्युपैतु देवः परात्परवरः परमस्त्र्यधीशः ।
जातं सदा भुवनमङ्गलमीशितुश्च ते तेंऽशकाः स्वनिलयेषु वहन्तु राज्यम् ॥
ये येऽधुना समुदिताः पुरुषे परस्मिन् स्वयं भगवति स्पृहणीयमूर्त्तौ ॥ १९ ॥

नारायणो हरो ब्रह्मा शक्राद्यास्त्रिदिवालयाः ।
सहस्रशीर्षा भगवान् महानारायणस्तथा ॥ २० ॥

सर्वेषामंशसंव्यूहो रामे लीनोऽद्य तिष्ठति ।
न च विद्योतितुं शक्तो दिवसे तेजसामिव ॥ २१ ॥

तस्मात्स्वयं स भगवान् निजधामैतु सम्प्रति ॥
अधर्षितप्रभावाश्च राजन्तु दिवि देवताः ॥ २२ ॥

इत्थं निगद्य विरतेषु सुरेश्वरेषु देवोऽब्रवीदखिलधातृपतिः सुरौघान् ।
स्वयं सुशीलाचरितोभगवांस्तदर्थमभ्यर्थनीय इव वेत्ति च सर्वमेषः ॥ २३ ॥

कालात्मना कलयते सकलं सदीश एतस्य नाविदितमग्रविधेयकार्यम् ॥
प्रार्थ्यस्तथापि भजनीयगुणः स एतत्कालेन कालकलनः किल कालकालः ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा सकलान् देवान् विरंचिर्विससर्ज ह ।
भगवन्तं कालमीशं सस्मार च महामतिः ॥ २५ ॥

स्वस्यापि यः कलयता मघोनः शङ्करस्य च ।
सृष्टिस्थितिलयाधारः स कालः समुपाययौ ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे [1]कालदमनोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वेधास्तमागतं वीक्ष्य कालं लोकभयङ्करम् ।
श्यामं कठिनसर्वाङ्गं लेलिहानं समंततः ॥ १ ॥

घोरास्यं दीर्घनिःश्वासं घोरनासातिभीषणम् ।
विद्युदुद्द्योतिरसनं तीव्रचित्तं ज्वलन्मुखम् ॥ २ ॥

ज्वलन्तं सर्वतो वक्त्रं गृह्णन्तमिव पावकम् ।
सहस्रवदनं घोरं सहस्राक्षशिरोधरम् ॥ ३ ॥

सहस्रपादोरुभुजं कोटिजिह्वाभयानकम् ।
करालभ्रुकुटीयुग्मं दुष्प्रेक्षं त्रिदशैरपि ॥ ४ ॥

समुत्तुङ्गतनुं दीर्घं महान्तं विपुलं गुरुम् ।
तीक्ष्णद्रंष्टाकरालास्यं विमुञ्चन्तं स्फुलिङ्गकान् ॥ ५ ॥

महोल्कारोमकूपाढ्यं महावायुसुवेगिनम् ।
धावन्तं विश्वतोदीप्तं ग्रासीकृतजगत्त्रयम् ॥ ६ ॥

विरूपसर्वावयवं कोटिव्याघ्रभयानकम् ।
महावेगनदीपूरजविनं जरया युतम् ॥ ७ ॥

महाकालसर्पनिभं गम्भीरवनसंनिभम् ।
दंष्ट्राकरालविपुलं शब्दब्रह्माण्डभेदिनम् ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वकेशातिजटिलं दुष्पूरजठरं सदा ।
ब्रह्माण्डैकग्रासकरं विकटं विद्युदाननम् ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वग्रीवं ज्वलद्वक्त्रं विद्योतन्तं[2] दिशो दश ।
तमाह भगवान् वेधाः कालं भुवनभीषणम् ॥ १० ॥

---

१. कालदमने उत्तरखण्डे–बड़ौ० ।

२. आर्षप्रयोगः ।

विधिरुवाच

गच्छ त्वं काल साकेतनगरे भुविभूषणे।
यत्र रामः स्वयं भाति सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ११ ॥
जानकीशः समस्तेशः परमात्मा स्वयं प्रभुः।
तवापि स नियन्तेति प्रार्थनीयस्त्वया विभुः ॥ १२ ॥
अवतारचरित्राणि कृतानि भगवंस्त्वया।
अतः परं निजं धाम प्रमोदविपिनाभिधम् ॥ १३ ॥
अभ्यायाहि महाराज न हिते व्यक्तिरन्यथा।
भृतस्त्वया त्रयीधर्मो रक्षिता द्विजदेवताः ॥ १४ ॥
किमर्थमधुना देव स्थीयते भवता प्रभो।
न हिते समवस्थानं प्रकटं भुवि सर्वदा ॥ १५ ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय व्यक्तिस्तव युगे युगे।
कृतानि देवकृत्यानि समस्तानां हितानि च ॥ १६ ॥
प्रमोदवनमागच्छ राम त्वमधुना प्रभो।
निवारय व्रजस्त्रीणां वेदनां विरहोद्भवाम् ॥ १७ ॥
पुत्रस्नेहातिवश्याया माङ्गल्यायाः सुखं कुरु।
सुखितस्य गवेन्द्रस्य दुःखं हर वियोगजम् ॥ १८ ॥
इति सम्प्रार्थ्य संस्तूय रामं त्रिभुवनेश्वरम्।
यथाऽऽज्ञापयते देवस्तथा कुरु च सत्वरम् ॥ १९ ॥
इत्युक्तः स जगत्कालः प्रणम्य वेधसं प्रभुम्।
अयोध्यामागमद्यत्र रामस्तत्र विभीषणः ॥ २० ॥
ददर्श तत्र प्रासादे रामं सिंहासनोपरि।
कोटिकालाग्निदुर्धर्षं कोटिकालार्कवर्चसम् ॥ २१ ॥
कोटिकालघनश्यामं कोटिकालाब्धिभीषणम्।
कोटिकालातिदुर्धर्षं कोटिदंष्ट्राभयानकम् ॥ २२ ॥
कोटिभ्रूपुटकौटिल्याद्वमन्तं कालकूटकम्।
कोटिजिह्वाज्वलद्वक्त्रं कोटिज्वालाजटाधरम् ॥ २३ ॥
संवर्त्तानलसंदोहविस्फुलिङ्गकणानि च।
मुञ्चन्तं कोटिनयनं दुर्धर्षं दुःसहप्रभम् ॥ २४ ॥
करालविग्रहं चोग्रं कोटिरुद्रातिकोपनम्।
ज्वालामाला परिव्याप्तत्रैलोक्यस्थिरजङ्गमम् ॥ २५ ॥
कालकालं भीमभीमं घोरघोरतमं नृणाम्।
कोटिब्रह्मकृतग्रासं कोटिनारायणाशिनम् ॥ २६ ॥

कोटिरुद्रभुजं कोटिवसिष्ठादिविनाशकम् ।
कोटिदेवेन्द्रविलयं कोटिदेवभवं तथा ॥ २७ ॥

आधिदैविकमध्यात्ममाधिभौतिकमेव च ।
अक्षरं त्रिगुणातीतं त्रिभवं त्रिभवातिगम् ॥ २८ ॥

त्रिविष्टपेशसम्पूज्यं ब्रह्मरुद्रादिभीषणम् ।
एवंविधं प्रभुं रामं दृष्ट्वा कालो व्यकम्पत ॥ २९ ॥

न्यमीलयद् दृशौ भीत्या द्रष्टुं नाशकदीश्वरम् ।
स्थातुं च नाशकत् स्थानेऽपलायत दिशो दश ॥ ३० ॥

ततः सौम्यतरो भूत्वा कथंचित्पुनराययौ ।
धैर्यं बद्ध्वा दृढं धीरो निदेशं ब्रह्मणः स्मरन् ॥ ३१ ॥

स्फुटीचकार सहजानात्मनः सकलान् गुणान् ।
सिषेच पुरवीथीश्च शीतलैश्चन्दनोदकैः ॥ ३२ ॥

प्रफुल्लकुमुदाम्भोजमकाण्डमभवत्सरः ।
अकाले चाग्निहोत्राणि हव्यगन्धानि जज्वलुः ॥ ३३ ॥

ववुर्वाताः सुखस्पर्शाः सुनक्षत्रमभून्नभः ।
ऋतुराजः प्रादुरासीत्प्रोत्फुल्लकुमुदाकरः ॥ ३४ ॥

केकीशुकपिकध्वानचकोरीध्वनिमञ्जुलः ।
श्रियमाकालिकीं वीक्ष्य मेने कालकृतं विभुः ॥ ३५ ॥

अद्य कालः समायास्यन् कुरुते मे प्ररोचनम् ।
फलस्तावितदेहे च कर्मकाण्डेऽतिदुष्करे ॥ ३६ ॥

ततः पार्श्वस्थितं शेषं लक्ष्मणं लोकमङ्गलम् ।
प्रतिहारपदं दत्त्वा स्थापयद् द्वारि राघवः ॥ ३७ ॥

तत एकान्तगं दूरे रामं भुवनभूषणम् ।
आजगाम स्वयं कालः कालकालं कृपानिधिम् ॥ ३७ ॥

अतिसौम्यं वपुः कृत्वा कोटिचन्द्रसुशीतलम् ।
सुवेशं सुमुखं स्वक्षं सुरूपं सुन्दरोत्तमम् ॥ ३९ ॥

सोऽपश्यन्मणिपीठस्थं रामचन्द्रं जगद्धितम् ।
प्रावृषेण्यघनश्यामं सुधावर्षिणमद्भुतम् ॥ ४० ॥

फुल्लेन्दीवरसंकाशं मनोज्ञकरणेक्षणम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं कौस्तुभोद्भासितं गले ॥ ४१ ॥

पादाङ्गुलिनखद्योतपराभूतेन्दुमण्डलम् ।
शृङ्गारमिव मूर्त्याढ्यं प्रेमाणमिव भासुरम् ॥ ४२ ॥

साक्षाच्छ्रीसहजाकान्तं पादपङ्कजकोमलम् ।
दूरादेव प्रभुं दृष्ट्वा साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥ ४३ ॥
तुष्टाव चाञ्जलिं बद्ध्वा भक्त्या नमितमस्तकः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



तृतीयोऽध्यायः

काल उवाच

त्वमादिकालः पुरुषः पुराणो ममापि कालः स्वजनैकबन्धो ।
अहं ग्रसामि त्रिजगत्समस्तं त्वां यः प्रपन्नस्तमृते विचक्षणम् ॥ १ ॥
नतोऽस्मि ते नाथ पदारविन्दं न यत्प्रपद्याश्वशुभं लभन्ते ।
भयं मदीयं विषहं दुरन्तं पादावधिस्तम्बमुपात्तविक्रयम् ॥ २ ॥
तवाज्ञया नाथ शशिनं कुवेरं ब्रह्माणमुच्चैरधरेऽप्यनन्तम् ।
हरामि वेगेन निजेन दुर्धरो महानदीपूरजवातिगामी ॥ ३ ॥
कृत्यं ममैतद्विहितं त्वयैव यद्भूतमात्रग्रसनं जवेन ।
न मां निरोद्धुं प्रभवन्ति केचिन्महामुनीन्द्रा अपि योगसिद्धाः ॥ ४ ॥
दुर्वारवेगोऽस्मि तवाज्ञया प्रभो त्वदीहितं संघटयामि नित्यम् ।
भिन्दामि शैलान् प्रहरामि वज्रं हरामि लोहालयमध्यगानपि ॥ ५ ॥
भवत्कृपा यत्र च राम तं जनं विहाय दूरे विचरामि भीतवत् ।
न यत्र माया प्रभवेद् दुरत्यया कथं नु तत्र प्रभवामि वर्त्तितुम् ॥ ६ ॥
त्वमेक ईशोऽसि ममाप्यधीश्वर ब्रह्मादयो मद्वशगाः समंततः ।
त्वमीशितारं मम विष्टपानां गच्छामि त्वां नाथ शरणं शरण्यम् ॥ ७ ॥
किं तु प्रभो ब्रह्मशक्रादिभिः कृतां विज्ञप्तिमेकां विनिवेदयामि ।
स्वेच्छा समग्रैकवशो भवांस्तथाप्यर्वितुमर्होऽसि विभो रघूद्वह ॥ ८ ॥
त्वं भूमिभारसंहृत्यै सम्प्राप्तोऽसि रघोः कुले ।
रचितानि चरित्राणि लौकिकालौकिकानि च ॥ ९ ॥
उद्धृताश्च निजा भक्ताः पादच्छायावलम्बिनः ।
विपदो नाशितास्तेषां दृप्तराक्षसनाशनात् ॥ १० ॥
देवानां च हितं यच्च यच्च वै मानुषं हितम् ।
त्रैलोक्यस्य हितं यच्च तत्त्वया रचितं प्रभो ॥ ११ ॥

ज्यास्फालनेन धनुषो वीरेन्द्रेण त्वया जिताः ।
सुबाहुमारीचमुखा राक्षसा अतिमायिनः ॥ १२ ॥

बहुबाहुप्रहरणा बहुयुद्धविशारदाः ।
बहुमायाविनो धूर्ता रात्रियद्धेषु कोविदाः ॥ १३ ॥

उल्कामुखा अग्निमुखा विकटाङ्गा विलोचनाः ।
करालदर्शना घोरा भूतसैन्यसहायकाः ॥ १४ ॥

रुद्रदत्तवरास्तीव्रास्तीव्रप्रहरणास्तथा ।
ईदृग्विधाः सुसंरब्धास्त्वया दैत्या निवारिताः ॥ १५ ॥

ते चापि रिपवो राम त्वया स्वात्मनि वेशिताः ।
मोचिता घोरसंसारक्लेशाद्भक्तपदं गताः ॥ १६ ॥

इदमद्भुतमाहात्म्यं तव राम निशामय ।
राक्षसा अपि यन्मुक्तिं गमिताः स्वपदाङ्किताम् ॥ १७ ॥

किं तु भक्ताः स्वपादाब्जसेवकाः साधुवर्त्मगाः ।
मोचिता भवदुःखेभ्यो नाथेनामिततेजसा ॥ १८ ॥

अतः परं प्रभो श्रीमन् विश्वस्याभ्युदयोऽभवत् ।
तवैव कृपया नाथ राम सुभगवर्ष्मणः ॥ १९ ॥

न ते योनिं विदुर्देवा न मर्त्या नापि ये परे ।
त्वमेकान्तस्वधाम्न्येव रममाणोऽसि नित्यशः ॥ २० ॥

न ते गुणांस्तथा कर्माण्यन्याचरितान्यपि ।
विदन्ति ते सूक्ष्मदृशो ये मायां कालमत्यगुः ॥ २१ ॥

त्वमेव स्वात्मनः स्थानं जानासि रघुनन्दन ।
न ते व्यक्तिः क्वापि भवे दृश्यते भूयतेऽपि वा ॥ २२ ॥

त्वं सूर्यस्त्वं शशाङ्कश्च त्वं सर्वे ग्रहतारकाः ।
जङ्गमं स्थावरं चापि त्वमेव रघुपुङ्गव ॥ २३ ॥

स्वच्छन्दं क्रीडतो नाथ तव लीलारसात्मनः ।
बहूनि कोटिवर्षाणि व्यतीतानि रमापते ॥ २४ ॥

रुद्धो यमपुरीमार्गस्त्वयि जाग्रति भूतले ।
विधेश्च सृष्टिवैषम्यसामर्थ्यं प्रविलोपितम् ॥ २५ ॥

सर्वे मनुष्याः सुखिनः सर्वे भाग्येन पूरिताः ।
सर्वे पूर्णायुषो राम सर्वे स्वेच्छैकमृत्यवः ॥ २६ ॥

यत्र यत्र पदाम्भोजस्पर्शो जातस्तव प्रभो ।
तत्र तत्र न पश्यामि दौर्भाग्यमपि दुर्गतिम् ॥ २७ ॥

एते त्वयैवाधिकृताः सुरेश्वरा व्यर्थाधिकारा अभवन् समस्ताः ।
सर्वं जगद् राम त्वयाभिपाल्यमानं सुखाम्भोनिधिमग्नमस्ति ॥ २८ ॥

नित्योत्सवो नित्यमहोदयश्च नित्यं शुभं नित्यसुखं गृहे गृहे ।
राज्यं भवे कुर्वति राघवेन्द्र त्वयि गृहाः सर्वसुखाय चाभवन् ॥ २९ ॥

एवं कृत्वा जगत्सर्वं मङ्गलायतनं प्रभो ।
अभ्युपेहि परं दिव्यं स्वंधाम त्रिगुणातिगम् ॥ ३० ॥

न यत्र वाङ् नैव मनःप्रसारो न कालमायादिगुणप्रवेशः ।
तदेव ते धाम प्रमुद्वनं हि लीलालयं दिव्यदिव्यं परात्परम् ॥ ३१ ॥

नित्यरासविलासाय सरयूपुलिनस्थितम् ।
ब्रह्मशक्रादयो देवा ईक्षन्ते बहुभाग्यतः ॥ ३२ ॥

इति विज्ञापितो नाथ ब्रह्मणा लोकभर्त्तृणा ।
तन्निशम्य यथा स्वेच्छं क्रियतां कोविदेश्वर ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



चतुर्थोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

एवमेतत्त्वया काल यथोक्तं ब्रह्मणो वचः ।
सम्पादितं मया कार्यं देवानां च तथा नृणाम् ॥ १ ॥

नाधुना मम कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
उज्जासिता यद्रिपवो महान्तो राक्षसाधिपाः ॥ २ ॥

तथापि ब्रह्मणो वाच्यं त्वया मद्वचनादिदम् ।
कालमायातिगां लीलां कथं तौ वर्जयिष्यतः ॥ ३ ॥

किं चतुर्दश लक्ष्याणि किमायुर्ब्रह्मणोऽपि च ।
किं कल्पाः कोटिकल्पाश्च पुरुषश्चायुरेव च ॥ ४ ॥

किं कालस्य च माहात्म्यं किं कालकलनापि च ।
न मे भवेत्परिच्छेदो ब्रह्मकल्पशतैरपि ॥ ५ ॥

कथं त्वया ज्ञातमिदं विरञ्चे चतुर्दश प्रययुर्वर्षपूगाः ।
भवादृशाः कोटिविरञ्चयोगता विक्रीडतो मे सहजं प्रमुद्वने ॥ ६ ॥

वर्षाण्यतीतानि चतुर्दशेति त्वयोदितं नोभयथापि संगतम् ।
निमेषमात्रं मम तु प्रयातं स्वच्छन्दलीलस्य सलक्ष्मणस्य ।। ७ ।।
निजवर्षप्रमाणेन न मे वर्षाणि वै विधे ।
नाहं पर्यनुयोगार्हस्तव वान्यस्य कस्यचित् ।। ८ ।।
इति वक्तव्यमसकृद्ब्रह्मणे मूढबुद्धये ।
उक्त्वा च पुनरागच्छ मन्त्रः कार्यस्त्वया सह ।। ९ ।।
तथेत्युक्त्वा विभुं भक्त्या प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
ब्रह्मलोकेऽगमत्कालः साष्टाङ्गं च प्रणम्य तम् ।
उवाच तत्समस्तं यत् प्रभुराह रघूद्वहः ।। १० ।।

ब्रह्मोवाच

एवमेव स वै नाथः कालमायागुणेश्वरः ।
स्वच्छन्दलीलः स्वच्छन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः ।। ११ ।।
श्रीमान् सहजशोभाढ्यो गुणी च गुणनायकः ।
कस्तं निरोद्धुं प्रभवेद्भगवन्तं सनातनम् ।। १२ ।।
स्वयं लक्ष्मीपतिं वीरं स्वयं सर्वशुभाकरम् ।
यथा तस्य प्रभोरिच्छा तथा कार्यं करोतु च ।
वयं सर्वे वशे तस्य न तस्येशश्च कश्चन ।। १३ ।।

काल उवाच

मया प्रदर्शितं घोरं स्वरूपं कालमेधसे ।
साधारणं नरं ज्ञात्वा पुरुषं पुरुषोत्तमम् ।। १४ ।।
तस्य रूपं च परमं मत्तोऽप्यतिभयानकम् ।
घोरघोरतरं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवम् ।। १५ ।।
भयेन प्रस्खलत्पादः प्रस्खलन्मूर्द्धजावलिः ।
पदे पदे कम्पमानो नाहं धैर्यधरोऽभवम् ।। १६ ।।
ततः सौम्यं वपुः कृत्वा गतोऽहं प्रभु संनिधौ ।
गृहीत्वा तस्य पादौ तु तूष्णीमास भयानतः ।। १७ ।।
ततोऽतिकृपया पूर्णः प्रभुर्मां स ददर्श ह ।
कृपया मां स विज्ञाप्यं त्वदुक्तं च न्यवेदयम् ।। १८ ।।
तच्छ्रुत्वा भगवान् राम इदमूचे कृपानिधिः ।
न मे लीला परिच्छेद्या ब्रह्मणा च त्वयापि च ।। १९ ।।

ब्रह्मोवाच

महानविनयो जातो यद् रामस्य विभीषिकाम् ।
कर्तुं प्रदर्शयामास स्वस्वरूपं भवान् प्रभोः ।। २० ।।

तेनैव निर्मितस्त्वं वै अहं चान्ये तथा सुराः।
कस्तं भीषयितुं शक्तो रामदेवं जनार्दनम् ॥ २१ ॥

यस्य घोरतरं रूपं दृष्ट्वा सद्यः पलायते।
भवान् भवस्य सर्वस्य भीषणो भूरि विक्रमः ॥ २२ ॥

यस्य घोरं वपुर्दृष्ट्वा राक्षसा ब्रह्मराक्षसाः।
कूष्माण्डभूतवेताला धावन्ति हरितोदश ॥ २३ ॥

यस्य घोरं वपुर्दृष्ट्वा विघ्नौघाश्च विनायकाः।
दुर्दर्शना घोररूपा धावन्ति कृतभीतयः ॥ २४ ॥

तं भीषयितुमीशानं प्रवृत्तो यदि वै भवान्।
तदापराधः संजातः प्रभावविनयात्मकः ॥ २५ ॥

तस्यापराधस्य शमं विधातुं प्रभोः समीपं तु पुनः प्रया हि।
शीघ्रप्रसादो भगवान् राघवेन्द्रोऽचिरात् प्रसन्नो भविता न संशयः ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा कालं सद्यो व्यसर्जयत्।
स च नत्वा विधिं पश्चाद् रामसंनिधिमागमत् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

आयातं कालमाज्ञाय रामस्त्रिभुवनेश्वरः।
स्वजन विसर्जयामास प्रातीहार्ये च लक्ष्मणम् ॥ १ ॥

सहजानन्दिनीं देवीं जानकीं स्वस्वरूपिणीम्।
सिंहासने समास्थाप्य स्वयमन्तर्दधे विभुः ॥ २ ॥

कालस्त्रैलोक्यमहिषीं प्रमोदवननायिकाम्।
नत्वा दूरात्सविनयं यावत्प्रैक्षत राघवम् ॥ ३ ॥

तावत्सापि परालक्ष्मीः स्वयमन्तर्दधे शनैः।
तौ दिव्यकेलिरसिकौ प्रमोदवनमीयतुः ॥ ४ ॥

सहजारामचन्द्रौ च रासलीलां वितेनतुः।
कुञ्जमन्दिरमध्यस्थौ सखीकोटिनिषेवितौ ॥ ५ ॥

तुल्यतारुण्यकौ शूरौ रतियुद्धविशारदौ ।
सरयूमन्दपवनपरिश्रान्तातिवीजितौ ॥ ६ ॥

दाम्पत्यप्रेमरसिकौ चन्द्रिकायास्तमन्मथौ ।
वेतसीवनविश्रान्तौ वर्षतावद्रिसेविनौ ॥ ७ ॥

रत्नाद्रिशिखरोत्तुङ्गमञ्जुकुञ्जविहारिणौ ।
चित्राद्रिस्फटिकशिलागङ्गास्रोतोविलासिनौ ॥ ८ ॥

न यत्र कालगमनं न मायागमनं तथा ।
यत्रानन्दमयी भूमिर्यत्रानन्दमयी सरित् ॥ ९ ॥

यत्रानन्दमयः शैलो यत्रानन्दमयं सरः ।
सर्वं परब्रह्ममयं यत्र श्रीरामपत्तनम् ॥ १० ॥

एवं सिहासनं शून्यं दृष्ट्वा कालः समंततः ।
त्रैलोक्ये मृगयामास सीतारामात्मकं युगम् ॥ ११ ॥

नैव लेभे ततो गन्तुं प्रमोदवनमागतः ।
यावत्प्रविशते तत्र तावत्तद्द्वार्यदृश्यत ॥ १२ ॥

सहस्रवदनो घोरः पुरुषोऽतिभयानकः ।
तमनादृत्य सोऽन्तः स्थो भवितुं प्रारभद्बलात् ॥ १३ ॥

स तेन वारितस्तत्र कालस्तं चाप्यपृच्छत ।
ममान्तर्गमनं देहि वनेऽस्मिन् घोरपूरुष ॥ १४ ॥

ततस्तमाह पुरुषो मां युद्धेन पराभव ।
ततस्त्वमस्मिन् विपिने प्रवेशं लप्स्यसे बलात् ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तयोर्युद्धमभून्महाघोरतरं परम् ।
परस्परप्रहरणौ विदारितपरस्परौ ॥ १६ ॥

परस्परातिदुर्धर्षौ परस्परप्रकोपनौ ।
परस्परोच्चण्डवेगौ परस्परनिपातिनौ ॥ १७ ॥

एवं वर्षसहस्राणि तयोर्युद्धं परस्परम् ।
अभूदत्र कियांल्लोकस्त्वन्यां प्रकृतिमागतः ॥ १८ ॥

ततः पराजितः कालः पुरुषेणामितौजसा ।
मूर्छितो न्यपतद्भूम्यां वाताहत इव द्रुमः ॥ १९ ॥

पतितो धरणौ तं च सोऽपृच्छच्छनकैर्गिरा ॥ २० ॥

काल उवाच

कस्त्वं पुरुषशार्दूल कच्चिद्भक्तोऽसि मत्प्रभोः ।
न चेदेवं विक्रमस्ते कथमेवंविधो भवेत् ॥ २१ ॥

पुरुष उवाच

अहं रामस्य भक्तोऽस्मि प्रमोदवनरक्षकः ।
कोऽन्तःप्रवेष्टुमर्होऽस्ति व्रजभक्तजनं विना ॥ २२ ॥

ततः कालः पराभूतोन्यवर्तत दिवं प्रति ।
मध्येपथं तु सविधे वसिष्ठस्याश्रमे शुचौ ॥ २३ ॥

निर्वाणे गण्डकीगङ्गासंगमे ह्यतिपावने ।
तत्र दिव्यवने रामं ददर्श स किरातिनम् ॥ २४ ॥

मृगयाभिरतं वीरं सीतासंशोभिविग्रहम् ।
खेलन्तं मृगयूथेन मृगराजमिवोद्धुरम् ।
उपरिष्टाच्छ्वेतहये पर्यारूढं घनोपमम् ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा प्रणनामैष प्रभुं त्रैलोक्यनायकम् ।
पपात पादयोः पश्चात्परिपूर्णदयानिधेः ॥ २६ ॥

पूर्वापराधशमनाय विधेर्नियोगात् तुष्टाव राघववरं करुणासमुद्रम् ।
उन्निद्रपुष्करदलायतलोचनान्तं दृष्ट्वामितामृतकृपारसभूरिधारम् ॥ २७ ॥

नमस्ते करुणासिन्धो नमस्ते भक्तवत्सल ।
नमस्ते दीनलोकाप्त क्षमस्व मम दुर्नयम् ॥ २८ ॥

नमस्ते राम राजीवनेत्र लालितविग्रह ।
भक्तौघनयनानन्द क्षमस्व मम दुर्नयम् ॥ २९ ॥

नमस्ते कालमायादिगुणवश्यैकवारक ।
स्ववश्य कमलाकान्त क्षमस्व मम दुर्नयम् ॥ ३० ॥

नमस्ते त्रिजगन्नाथ ब्रह्मरुद्रादिदैवत ।
मायाधीश हि सर्वेश क्षमस्व मम दुर्नयम् ॥ ३१ ॥

भीषणानां भीषणस्त्वं सुन्दराणां च सुन्दरः ।
सौम्यानां च तथा सौम्यः कठोराणां कठोरकः ॥ ३२ ॥

मृदूनां मृदुलश्चासि पृथूनां त्वं पृथुः प्रभो ।
नियन्तॄणां नियन्ता च लोकेशो लोकरक्षिणाम् ॥ ३३ ॥

प्रचण्डानां प्रचण्डस्त्वमुद्धतानां तथोद्धतः ।
यद्वस्तु यद्यादृशं च तस्य रूपं त्वमेव हि ॥ ३४ ॥

आधिदैविकमध्यात्ममधिभूतमथापि च ।
तस्यते नाथ मत्तोऽपि भीषणस्य मदीशितुः ॥ ३५ ॥

विभीषिकार्थं यदहं निजरूपमदर्शयम् ।
स एव मेऽपराधोऽभूत्प्रभो दुर्विनयात्मकः ॥ ३६ ॥

तस्यापराधस्य शमाय राम तवाङ्घ्रिमूलं शरणं प्रपद्ये ।
स्वानामभीतिप्रदमात्मदीयं निवृत्तमायागुणमीशवन्द्यम् ।। ३७ ।।

तस्यापराधस्य शमाय राम भजामि ते नामपदार्णयुग्मम् ।
एकं तु मायेन्धनदाहनेन्धं परं पदं नाथपरं पदं ददत् ।। ३८ ।।

तस्या पराधस्य शमाय राम पश्यामि रूपं तव योगिमृग्यम् ।
यदीहते द्रष्टुमनन्तनामा शेषः स्वयं श्रीश्च परापरेशा ।। ३९ ।।

तस्या पराधस्य शमाय राम करोमि ते भक्तिमपारवीर्याम् ।
यदाश्रयात्तः प्रियतामुपागताः श्रीमच्छुकव्यासपराशराद्याः ।। ४० ।।

एवं स्तुत्वा स्थिते तस्मिन् प्रणते दीनदीनवत् ।
उवाच प्रहसन् रामः करुणारस वारिधिः ।। ४१ ।।

श्रीराम उवाच

कुत्र कुत्र गतः काल मदन्वेषणकारकः ।
तत्र तत्र च किं वृत्तं ज्ञातं मे किन्तु वैभवम् ।। ४२ ।।

काल उवाच

गतः साकेतनगरे तत्र त्वां समलोकयम् ।
अदर्शनं प्रभो स्मृत्वां रमादेवीमलोकयम् ।। ४३ ।।

ततो राम रमादेवी तिरोधानमुपागमत् ।
ततस्तद्युगलान्वेषी बभ्रामाहं त्रिलोकगः ।। ४४ ।।

ततः प्रमोदविपिनं गन्तुमारब्धवानहम् ।
तद्द्वाःस्थेनातिघोरेण पुरुषेण महौजसा ।। ४५ ।।

सहस्रवदने नाहं युद्धं कृत्वा पराजितः ।
ततो विवर्णवदनो यातुं ब्रह्मगृहं प्रति ।। ४६ ।।

इयेषाहं मध्यपथे भाग्याच्च तव दर्शनम् ।
प्राप्तवान् रघुशार्दूल गतश्चाहं कृतार्थताम् ।। ४७ ।।

श्रीराम उवाच

अत्राप्यस्मि च तत्रास्मि साकेतनगरोत्तमे ।
प्रमादविपिने वास्मि सर्वत्रास्मि निजे वशः ।। ४८ ।।

अधुना गच्छ तत्रैव यत्र सिंहासनं मम ।
साकेतनगरस्थाने शुभेप्रासाद वेश्मनि ।। ४९ ।।

ततो नत्वागमत्कालः साकेतनगरीं प्रति ।
यत्र सिंहासनं रम्यं नित्यं रामस्य राजते ।। ५० ।।

प्रासादतलवेश्मस्थं सौवर्णरत्ननिर्मितम् ।
अधस्थदिव्यसौवर्णमणिमत्पादुकायुगम् ॥ ५१ ॥

दिव्यातपमच्छायाढ्यं स्थिते चामरराजितम् ।
महास्फटिकपीठेन राजितं रत्नशोभितम् ॥ ५२ ॥

अनेकमणिसौवर्णकिंकिणीजालमण्डितम् ।
त्रैलोक्यव्याप्तपरमप्रभासंदोहभूषितम् ॥ ५३ ॥

सुवर्णरत्ननिःश्रेणीछत्रदिव्यदुकूलकम् ।
दिव्यवस्त्रपरीधानं स्वाराज्यपदभाजनम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मशक्रादिमुकुटमणिघृष्टान्तभागकम् ।
स्वयंलक्ष्मीनिजस्थानं साम्राज्यस्थानमुत्तमम् ॥ ५५ ॥

अनन्यसाधारणपरं श्रीमच्चरणाङ्कितम् ।
सहजानन्दिनीपादपद्माङ्कित मनोहरम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसम्वादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत्र गत्वा ददर्शासौ रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ।
ननाम दण्डवद्भूमौ प्रीतः पुलकविग्रहः ॥ १ ॥

उवाच रघुशार्दूलस्तं प्रपन्नतरं पुनः ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

काल त्वं ममभक्तोऽसि मदीहितकरस्तथा ॥ ३ ॥

सम्पादितं देवकार्यं मया तावत् समंततः ।
अधुना रन्तुमिच्छामि प्रमोदविपिने सुखम् ॥ ४ ॥

सत्यं ब्रह्मवचः कर्तुं त्वदीयं त्र तथा हितम् ।
तेन त्वां मन्त्रयाम्यद्य स्वसामर्थ्यं प्रसारय ॥ ५ ॥

अन्यथा कुरुलोकं त्वं स्वबलावेशधारणात् ।
मदाज्ञया तु वै तावत्तवशक्तिर्व्यजृम्भत ॥ ६ ॥

मदाज्ञयैवाधुना त्वं निजां शक्तिं प्रसारय ।
वसुधां वसुभिः पूर्णां संकोचय बलादिमाम् ॥ ७ ॥
मणीनामाकरेष्वङ्ग सौवर्णेष्वाकरेषु च ।
कन्दरासु निधिस्थानेष्वनन्यश्रीप्रदायिषु ॥ ८ ॥
बनेषु च फलाढ्येषु रत्नशैलेषु भूरिषु ।
प्रत्यक्षलक्ष्मीस्थानेषु प्रसारय निजं बलम् ॥ ९ ॥
सरःसु पद्मपूर्णेषु परागौघसुगन्धिषु ।
राजहंसकलध्वानमनोहारिषु वीचिषु ॥ १० ॥
रत्ननिःश्रेणिकाशोभामण्डितेषु महत्सु च ।
समुद्रतुल्यरूपेषु दिव्यरत्नाकरेषु च ॥ ११ ॥
मुक्तामाणिक्यशोभाढ्येष्वनन्तगुणवत्सु च ।
देवाङ्गनादेवयानमानसादिषु भूरिशः ॥ १२ ॥
श्रीसंकोचकरं तेषु प्रसारय निजं बलम् ।
अग्निहोत्रेषु विप्राणां यज्ञस्थानेषु कोटिशः ॥ १३ ॥
प्रत्यक्षवह्निस्थानेषु धर्मकर्मालयेषु च ।
ब्रह्मादिषु च देवेषु रुद्रशक्रादिकेषु च ॥ १४ ॥
श्रीविद्यादिषु विद्यासु महाविद्यासु सर्वशः ।
चिन्तामणिपराढ्येषु मन्त्रेष्वद्वयवाचिषु ॥ १५ ॥
द्वयवात्रिषु चाग्र्येषु महासाम्राज्यदायिषु ।
नृसिंहे च हयग्रीवे श्रीमद्गोपालमन्त्रके ॥ १६ ॥
स्वयंलक्ष्म्याश्च मन्त्रेषु मन्त्रशक्तिबलासु च ।
स्वयं कामकलायां च बहुशक्तिषु वस्तुषु ॥ १७ ॥
स्वयंसिद्धेषु चार्थेषु रत्नभेषजवस्तुषु ।
गुटिकायक्षवेतालचेटकेषु च सर्वशः ॥ १८ ॥
महोषधिषु सर्वासु कल्पवृक्षादिशाखिषु ।
लतासु देवताख्यासु शिलासु दैवतात्मसु ॥ १९ ॥
प्रत्यक्षशक्तिसिद्धेषु पदार्थेष्वेषु भूरिषु ।
तिरोभावकरं कार्यं स्वसामर्थ्यं प्रसारय ॥ २० ॥
इति सम्मन्त्र्य कालेन रघूणां वल्लभो नृपः ।
यावत्ताम्बूलिकामस्मै ददाति निजपाणिना ॥ २१ ॥
रत्नाङ्गुलीयकगणैर्भूषितेनामितौजसा ।
यावद्विसर्जयेत्तं च कालं त्रैलोक्यभीषणम् ॥ २२ ॥

सिंहासनान्तपार्श्वस्थं निरुक्ताज्ञाकरं प्रभोः ।
तावदत्रेः सुतो योगी दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥ २३ ॥

प्रकृत्या कोपनोऽशान्तः शापमूर्त्तिरुपागतः ।
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो द्वाःस्थः सद्य एवोदतिष्ठत ॥ २४ ॥

प्रणनाम महीं स्पृष्ट्वा यावत्पाद्यार्चनादिभिः ।
गृह्णाति मुनिशार्दूलं तावदाह मुनिः स्वयम् ॥ २५ ॥

दुर्वासा उवाच

गच्छ लक्ष्मण यत्रास्ति रामस्त्रैलोक्यवल्लभः ।
मदागमनमेतस्मै निवेदय च सत्वरम् ॥ २६ ॥

ततः स चिन्तयाविष्टो लक्ष्मणः प्रत्युवाच तम् ।
एवमेव करिष्यामि क्षणं विश्रम्यतां मुने ॥ २७ ॥

यावत्कार्यान्तरे व्यग्रं रामदेवं जगत्प्रभुम् ।
यास्यामि यत्प्रतीहार्ये स वै मामभ्यषेचयत् ॥ २८ ॥

दुर्वासा उवाच

रघूणां राजवर्याणां ग्रहे रीतिः सनातनी ।
मुनयोऽवारितद्वारा विशन्त्यन्तःपुरेष्वपि ॥ २९ ॥

त्वं चेदद्य समायान्तं मां तस्मै न वदिष्यसि ।
सद्यो लक्ष्मण शप्स्यामि कोपेन विकटाकृतिः ॥ ३० ॥

ततः स लक्ष्मणो वीरश्चिन्तामाप महत्तराम् ।
शापभीतो मुनेः किं नु गच्छामि भ्रातुरन्तिकम् ।
ततो भ्राता भवेत् क्रुद्धः प्रातिहार्यव्यतिक्रमात् ॥ ३१ ॥

अथ चेन्नैव गच्छामि तदा शापं ददात्ययम् ।
आत्रेयः कोपनो विप्रो विलम्बासहनो मुनिः ॥ ३२ ॥

इति चिन्ताद्वयाविष्टो जगाम भ्रातु रन्तिकम् ।
समं कालेन यत्रासौ भगवान् मन्त्रयन् स्थितः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः सुमित्रातनयो ददर्श तौ भीषणौ राघवरामकालौ ।
अवर्षकालाम्बुदकालरूपौ ज्वालावलीकोटिपरीतकालौ ॥ १ ॥
जगद्ग्रसन्तौ ससुरासुरं स्वैर्मुखैर्वमद्भिः प्रलयाग्निकीलम् ।
कोट्यर्कसंदोहकराल दंष्ट्राजिह्वाग्रविद्युल्ललनातिभीमौ ॥ २ ॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रौ नक्षत्रताराग्रहचित्रदेहौ ।
व्रजंप्रपातप्रसभोद्धताक्षिकोणप्रभाशोणधरान्तरिक्षौ ॥ ३ ॥
परिज्वलन्तौ प्रलयाग्नितुल्यौ सुघोरनिर्ह्लादगम्भीरघोषौ ।
दंष्ट्राग्रलग्नाधिकचूर्णिताङ्गब्रह्मादिशक्रादिसुरोघरावौ ॥ ४ ॥
अनेकदंष्ट्रातपनोग्रतेजोनिवारिताशेषभवान्धकारौ ।
महस्तपन्तौ तपनीयभासा करालदुर्दर्शशरीरभासौ ॥ ५ ॥
तयोः शरीरे पुनरेषोऽभ्यपश्यत् पञ्चाशकोटिप्रमितां धरित्रीम् ।
सकाननां साब्धिजलाद्रिकुञ्जां सद्वीपवर्षां सपुरग्रामदेशाम् ॥ ६ ॥
वरुणास्यालयं चैव तथैव यमसादनम् ।
नरकान् विविधांश्चैव स्वर्गांश्चैवातिसुन्दरान् ॥ ७ ॥
देवानां च तथा लोकान् गन्धर्वाणां गृहांस्तथा ।
इन्द्रस्याप्यालयं दिव्यं ब्रह्मरुद्रालयांस्तथा ॥ ८ ॥
अथोभागात्समस्तांश्च वलिसद्म तथैव च ।
सर्वाश्चर्यमयं विश्वं तयोर्देहे व्यलोकयत् ॥ ९ ॥
उभौ च समरूपौ तावुभौ तुल्यपराक्रमौ ।
एकं जगत्पालयन्तं ग्रसन्तं च परं विभुम् ॥ १० ॥
कालः पापच्यते विश्वं ग्रसते राम ईश्वरः ।
अत्ता चराचरस्यापि महाभोगरसोत्सुकः ॥ ११ ॥
एवंविधौ तौ दृष्ट्वाथ महतीं भीतिमागतः ।
अदृष्टपूर्वं रामस्य स्वरूपं सद्वितीयकम् ॥ १२ ॥
विलोक्य लक्ष्मणो भूरि संशयं च जगाम ह ।
अनयोः को रामचन्द्रः किं वा कोऽपि न राघवः ॥ १३ ॥
ईदृशो न मया दृष्टो रावणस्य वधेऽपि सः ।
न वा सुबाहुसंग्रामे न वापि ताटकावधे ॥ १४ ॥
न छायासुरसंग्रामे नान्तकालेऽपि चेदृशः ।
अन्यादृशो मम भ्राता कथमद्य विलोक्यते ॥ १५ ॥

द्वितीयश्च तथा कोऽयं रुद्रो वान्तक एव वा ।
इत्थं चिन्तासमाविष्टो लक्ष्मणः स्तिमितो भिया ॥ १६ ॥

मूर्च्छामाय ततः सद्यो निजेनेत्रे न्यमीलयत् ।
तावत्तथैव पुरतो रामचन्द्रो व्यदृश्यत ।
यथा पूर्वं स्थितो दृष्टः सिंहासनवरे नृपः ॥ १७ ॥

कालश्च प्रभुणा दत्तां ताम्बूलदलवीटिकाम् ।
प्रसादत्वेन संगृह्य जगाम निजसादनम् ॥ १८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे कालदमनोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अष्टमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

य इदं शृणुयात् पुण्यं श्रीरामचरितान्वितम् ।
आख्यानं कालदमनं तस्य कालोऽतिदूरतः ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि न स कालवशे भवेत् ॥ १ ॥

य इदं प्रपठेद्यज्ञे हव्यकव्यादिभोजने ।
तस्य देवाश्च पितरस्तृप्ता वर्षाणि भूरिशः ॥ २ ॥

यः कालदमनं नाम पठेदाख्यानमादरात् ।
कृतानि तेन धर्म्याणि कर्माणि बहुशो द्विज ॥ ३ ॥

भुशुण्ड उवाच

ब्रह्मन् कालेगते पश्चात्किं वृत्तम भवत्तयोः ।
रामलक्ष्मणयोस्तत्र वीरयोरितरेशयोः ॥ ४ ॥

दुर्वासश्चैव किं वृत्तं मुनेरात्रेयशर्मणः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

रामभक्त भशुण्ड त्वं शृणु ह्येतत् कथानकम् ।
रामस्य चरितं पुण्यं सर्वपापौघनाशनम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणो रघुशार्दूलं मुनिं प्राप्तं न्यवेदयत् ।
ततो रामः समुत्थाय स्वर्णसिंहासनोत्तमात् ॥ ७ ॥

द्वारपर्यन्तमागत्य मुनिमन्तर्न्यवेशयत् ।
पाद्यादिभिस्तथा दिव्यैरुपचारैश्च सोऽग्रहीत् ॥ ८ ॥

स्वयं लक्ष्मीश्च सा देवी सहजानन्दिनी प्रिया ।
शनैः पर्यचरत्तत्र मुनिपूजाविधौ सति ॥ ९ ॥

दुर्वासा उवाच

सत्य प्रभो त्वं पुरुषः सनातनः समागतोऽद्धाभुबने स्वधामतः ।
साकेतनाथः कृपया जनानामत्यार्तिभाजामसुराणां भयेन ॥ १० ॥

सा तेषामार्तिरत्युग्रा तथैव दिवि वासिनाम् ।
रावणारिविद्रुतानां निरस्ता निजलीलया ॥ ११ ॥

नहि तेऽन्यत् कश्चित्कार्यमव्यक्तस्यात्मलिङ्गिनः ।
कृते परं देवकृत्यं भक्तानां च मनीषितम् ॥ १२ ॥

स त्वं भक्तजनोद्धारणायैव धरणीतले ।
अवतीर्णः स्वयं राम धनुर्बाणाधरः प्रभुः ॥ १३ ॥

तं त्वां परेशमाज्ञाय प्राप्तोऽस्मि मधुसूदन ।
ब्रूहि गुह्यतमं ज्ञानं येन मर्त्यो भवं तरेत् ॥ १४ ॥

अस्यात्मनो गतिं ब्रूहि विश्वाधारस्य च प्रभो ।
किं कार्यं मर्त्यलिङ्गानां कथं स्वात्मानमुद्धरेत् ॥ १५ ॥

जानीयात् त्वां परात्मानं त्रैलोक्यस्थिविकारकम् ।
कथं च गुरुपादाब्जमुपसीदेद्भवाम्बुधौ ॥ १६ ॥

किं गुरोर्लक्षणं राम संसारोद्धारकारणम् ।
किं ज्ञानं च ततः शिक्षेत्प्रपन्नः शिष्यसत्तमः ॥ १७ ॥

शिष्यस्य लक्षणं ब्रूहि प्रपन्नस्य मनीषिणः ॥ १८ ॥

श्रीराम उवाच

सम्यक् ते बुद्धिरुत्पन्ना मुनेरात्रेयशर्मणः ।
यदध्यात्मगतिं ज्ञातुमेवं व्यवसितोऽसि भोः ॥ १९ ॥

एकमेव परं ज्ञानं परब्रह्मात्मकं मुने ।
येन विज्ञातमात्रेण जनोऽज्ञो भवसागरम् ॥ २० ॥

समुत्तरति शोकाढ्यं दुस्तरं ज्ञानिनामपि ।
यथा वृक्षो भवेत्स्तम्भः शखाश्च प्रतिशाखिकाः ॥ २१ ॥

पत्राणि चैव पुष्पाणि फलानि च फलान्तरम् ।
त्वचश्च विविधाकारा एक एव तरुर्भवेत् ॥ २२ ॥

वृक्षत्वेन न भेदोऽस्ति स्तम्भत्वादिकृता भिदा।
एवं जगदिदं सर्वं ब्रह्मैवेति न संशयः॥ २३॥

पञ्च भूतानिमात्राश्च चित्तं बुद्धिस्तथा मनः।
अहंकृतिर्महत्तत्त्वं प्रकृतिश्च सनातनी॥ २४॥

प्रत्येकं भेदनियतमभिन्नं ब्रह्मसर्वतः।
अचलं चैव कूटस्थं भेदाभेदोपयोगि तत्॥ २५॥

अवाच्यं सर्वतोऽतीतमुच्चैः स्थानं परं पदम्।
तस्यविद्या च महती विद्या चापि तदात्मिका॥ २६॥

अविद्यया न जानाति विद्यया वेत्ति तत्परम्।
विद्याविद्ये अतिक्रम्य परमं सुखमश्नुते॥ २७॥

न यत्र भेदसम्बन्धो नाभेदश्च परस्परम्।
न बन्धो यत्र विषमो न मुक्तिश्च समात्मिका॥ २८॥

यथा राजा भवेत्कश्चित् समस्ते भूमिमण्डले।
स लोकैर्ज्ञायिते राजा वाङ्मनोव्यवहारतः॥ २९॥

स नित्यं नैव जानाति राजास्मीति निरन्तरम्।
एवं स्वरूपं प्राप्तस्य ब्रह्मास्मीति मुहुर्मुहुः॥ ३०॥

चित्तवृत्तिर्नशिमेति तदेव परमं पदम्।
क्षीरनीरवदैक्यं स्याल्लवणोदकवत् पुनः।
एकमेव च तज्ज्ञानं ज्ञातव्यं मुक्तिमिच्छता॥ ३१॥

नानाज्ञानानि बालानां प्रबोधाय समंततः।
निबन्धेषु निबध्यन्ते वस्तुतो नैव तत्र हि॥ ३२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे[1] श्रीरामात्रेयसंवादे ऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥



नवमोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

यदिदं ज्ञानमाख्यातं भवता रघुपुङ्गव।
उपयोगी न बालानां क्षुद्राणामल्पचेतसाम्॥ १॥

१. नास्ति बड़ौ०।

ये क्षुद्रा निस्तितीर्षन्ति भवसागरजं भयम् ।
तेषां करुणया राम वद गुह्यतरं वचः ॥ २ ॥

श्रीराम उवाच

बालाः सुमन्दमतयो भवाब्धि निस्तितीर्षवः ।
सगुणं समुपासीरन् ज्ञानं ज्ञेयं च यत्पदम् ॥ ३ ॥
गुरोरधीत्य छन्दांसि सरहस्यानि सर्वतः ।
अनुत्कटे तु वैराग्ये गृहमेधीयमाचरेत् ॥ ४ ॥
अग्निहोत्रमुपासीत विधिवत्पूतमानसः ।
दर्शं च पौर्णमासं च पशुबन्धक्रतुं तथा ॥ ५ ॥
चातुर्मास्यानि सत्कृत्य पिबेत् सोमं महामखे ।
रामार्पणधिया सर्वं कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥ ६ ॥
फलभोगेच्छुना कर्मं कृतं फल समर्पकम् ।
तत्फलं नश्वरं विन्द्यादैहिकामुत्रिकं तथा ॥ ७ ॥
फलं हि परमानन्द ऐहिकः पारलौकिकः ।
पूर्णानन्दसमुद्रस्य मम मात्रास्तु ताः किलः ॥ ८ ॥
न मां लोकाः कामयन्ते पूर्णानन्दपयोनिधिम् ।
मम मात्राः कामयानाः क्षुद्रास्ते क्षुद्रचेतसः ॥ ९ ॥
मां प्राप्य नान्यकामेषु सज्जन्ते भूरिबुद्धयः ।
उदाराः सर्वतः कामा निष्कामा भवसागरे ॥ १० ॥
मोक्षकामाः कृतधियो गुरूपास्तिफलोत्सुकाः ।
छर्दितान्नसमं सर्वं पश्यन्तो ब्रह्मम्प्युत ॥ ११ ॥
कष्टं कर्मापि कुर्वन्तो विनाशायाल्पमेधसः ।
विना मदर्पणधियं कर्मदोषापहारिणीम् ॥ १२ ॥
प्रयाजाद्यखिलाङ्गानि साधनानि च सर्वशः ।
सुगादीनि समेतानि दध्याज्यादीनि वै तथा ॥ १३ ॥
मद्रूपाणि समस्तानि भावयेत् सुविचक्षणः ।
तथा यज्ञं मत्स्वरूपं भावयेत् कर्मदीक्षितः ॥ १४ ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यमेवं कुर्यादितन्द्रितः ।
कर्मरूपस्य च मम पदाभिव्यक्तिरुद्भवेत् ॥ १५ ॥
[1]परापरविभेदेन सुखं तद्द्विविधं मतम् ।
तदा कर्तुर्ज्ञानवतो मुक्तिः सा क्रमतो भवेत् ॥ १६ ॥

१, सुखं तद् द्विविधं प्रोक्तं परापर विभेदतः—बड़ौ० ।

ज्ञानाभावे स्वर्गसुखं लभते मूढमानसः।
परं नियतलोकाख्यं वाक्यशेषेण गद्यते॥ १७॥

श्रद्धा चैव तथासूया दुःखानि विविधानि च।
स्वर्गिणामपि जायन्ते तथान्यैश्च पराभवः॥ १८॥

प्रवृत्तिमार्गनिष्ठा हि ध्रुवाधस्तात् स्थिता अमी।
न ध्रुवोपरि वै तेषां स्वर्गिणां गतिरिष्यते॥ १९॥

न च स्वर्गेषु लोकेषु वाक्यशेषोदितं सुखम्।
नित्यमात्मसुखं तद्धि सत्त्ववृद्ध्या प्रजायते॥ २०॥

शुद्धे सत्वगुणे चैव स्वर्गः सत्त्वभवो भवेत्।
कामाभावेऽपि तन्मुख्यं फलमुक्तं न संशयः॥ २१॥

सार्वकामिकमेतद्धि फलं वेदे निगद्यते।
यागस्य मत्स्वरूपत्वान्मुक्तिरेव फलं भवेत्॥ २२॥

परोक्षकथनद्वारा तदेवाह गिरां पतिः।
अलसा अनुशास्यन्ते प्ररोचनगिरा मुहुः॥ २३॥

यजेत पशुबन्धेन स्वर्गलोकफलाप्तये।
अक्षय्यं सुकृतं लब्धुं चातुर्मास्यैर्यजेन्नरः॥ २४॥

आत्मानन्दस्वरूपं तदक्षयं समुदीर्यते।
तदेव सर्वलोकाख्यं वेदेषु च निगद्यते॥ २५॥

सर्वे लोकाः स्वयं ह्यात्मा सच्चिदानन्दलक्षणः।
आदित्यानां च विश्वेषां वसूनां वरुणस्य च॥ २६॥

अग्नीनां तु चितानां च भास्वराणां दिवौकसाम्।
मरुतां चैव साध्यानां रुद्राणां गणपां तथा॥ २७॥

कुबेरस्य ब्रह्मणश्च तथैवानन्तसंज्ञिनः।
सर्पाणां देवजनानां देवानां च विशेषतः॥ २८॥

देवानां कर्मदेवानां ये ये लोकाः सनातनाः।
सच्चिदानन्दरूपाश्च तत्तद्भोगभयास्तथा।
सर्वेपरिसमाप्यन्त आत्मन्येव न संशयः॥ २९॥

आत्मा स्वयंज्योतिरजः सनातनः सच्चित्सदानन्दमयः स्वयं प्रभुः।
अनन्यतन्त्रः कुशलैकभाजनं स्वभासकः सन् परभासकश्च सः॥ ३०॥

स्वर्ग एव फलं नित्यं नान्यत्क्वापि श्रुतेर्मतम्।
पश्वादिकं तु विकृतौ फलमुक्तं मदात्मकम्॥ ३१॥

मदात्मकं तद्धि तथा मद्रूपं नियतं श्रुतौ।
नित्यकर्माणि पोष्यन्ते काम्यकर्माद्युदीरणात्॥ ३२॥

अभावे पशुपुत्रादिबहुवित्तस्य संसृतौ ।
नित्यकर्म कथं सिद्धेद्बहुवित्तव्ययोर्जितम् ॥ ३३ ॥

सर्वोपायगिरा वेदो नित्यमेव प्रसाध्यते ।
नित्यं कर्म सदा कार्यमनित्यं न कथंचन ।
एतद्धि नियतं लोके मत्स्वरूपं विभावयेत् ॥ ३४ ॥

ध्यानेन धारणाभिश्च समाधिभिरथापि च ।
परमात्मा यथा नृणामभिव्यक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

एवमाधानप्रमुखैः कर्मभिर्वेदबोधितैः ।
यज्ञरूपश्च भगवान् अभिव्यक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥[1]
अहं यज्ञस्वरूपात्मा यज्ञकर्ताहमच्युतः ।
यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता यज्ञसाधनमप्यहम् ॥ ३६ ॥

अहं यज्ञे सम्प्रदानमपादानमहं मुने ।
अहं च यज्ञशेषोऽपि शेषी यज्ञोऽहमुत्तमः ॥ ३७ ॥

यज्ञाधारोऽहमतुलो यज्ञो वै मामकी तनुः ।
इति ज्ञात्वा यज्ञपरो भवेदस्मिन् बुधोऽपसन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



दशमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

पुरुषार्थपरो नित्यं तत्त्वज्ञः पुरुषो भवेत् ।
व्यासतस्ते तु चत्वारो द्वावेव तु समासतः ॥ १ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्याः क्रमशः परिकीर्तिताः ।
द्वौ च वेदे निगद्येते दुःखाभावसुखात्मकौ ॥ २ ॥

दुःखाभावस्तु मोक्षः स्यात्परः कामोऽपि सम्भवेत् ।
तयोरङ्गं भवेद्धर्मः स च भूयोऽर्थसाधितः ॥ ३ ॥
अहमेव फलं वेदे तस्य साधनमप्यहम् ।
नामरूपप्रपञ्चात्मा नित्य एवाहमच्युतः ॥ ४ ॥

---

१. भ्रमाद्विर्लिखितं—बड़ौ० ।

रूपप्रपञ्चाशक्तानां कर्तुर्नामिप्रपञ्चके ।
अहं चक्रे श्रुतिं दिव्यां भूतभव्यानि यत्र वै ॥ ५ ॥
आत्मप्रसादकरणीं जगौ तां भगवान् विधिः ।
स च दिव्यःश्रुतेरर्थः सात्त्विकानां हृदि स्फुरन् ॥ ६ ॥
समन्वयेनाविरोधाद्वेदार्थं च समर्थयेत् ।
त्रिविधोजीवसंघातो देवदानवमानवाः ॥ ७ ॥
सर्वेऽपि ते वेदविदो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
स्वभावगुणभेदेन वेदार्थस्यैव वर्णकाः ॥ ८ ॥
बुद्धिवैचित्र्यतस्तेषां वेदार्थो बहुधास्फुटः ।
केचिद्वेदविदो विप्राः स्वीचक्रुः कर्म मात्रकम् ॥ ९ ॥
कर्मैव सारोवेदानां न ज्ञानं नापि वेश्वरः ।
ज्ञानमेवाहुरपरे भक्तिमेव तु मामकाः ॥ १० ॥
कर्मापि मत्प्रभावेणसूते फलमुदारवत् ।
ज्ञानं चापि मदाधारस्वरूपं बोधयत्यहो ॥ ११ ॥
तस्मान्मत्सेवका लोका भक्तिं कुर्युर्मदात्मिकाम् ।
अपुनर्जन्मनिष्कामां निषेधः कर्मणि श्रुतः ॥ १२ ॥
अन्यथा पुनरुत्पत्तिक्षयिष्णुकर्मणां भवेत् ।
भवेषु वै नोत्पद्यन्ते प्रपाता अर्चिरादिना ॥ १३ ॥
धूमादिना प्रयातानां नियतः पुनरुद्भवः ।
एकमेव भवेत् कर्म प्रकाशस्तस्य भूरिशः ॥ १४ ॥
एक एव च वेदोऽपि नित्या सामतनुर्यतः ।
लौकिकानामात्मधियां जनानां भवजन्मिनाम् ॥ १५ ॥
न पाठशक्तिर्नैवापि ज्ञानशक्तिरनन्तदृक् ।
ततो मदात्मको व्यासश्चातुर्होत्रविभागतः ॥ १६ ॥
व्यस्तवान् सकलं वेदं ततस्तत्प्रेरितैर्मुने ।
तच्छिष्यैर्भेदिताः शाखाः कृत्स्नं तन्त्रं वदन्ति ताः ॥ १७ ॥
कर्मणां जैमिनिस्तत्त्वं जानाति स महामुनिः ।
सर्वज्ञो भगवान् व्यासो ज्ञाननिर्णयमुक्तवान् ॥ १८ ॥
मुनिद्वयनिबन्धार्थैः सर्ववेदार्थनिर्णयः ।
बहुभिर्ऋषिभिर्वादैः कृत्स्नं तन्त्रं प्रकोपितम् ॥ १९ ॥
वेदराशिमुपासीत पुरुषं तन्मनीषया ।
करौ पादौ शिरो वक्ष एवं वै पुरुषो मतः ॥ २० ॥

शिरस्तत्परमं ब्रह्म यदौपनिषदं ह्यदः ।
पञ्चसंस्थात्मको यज्ञोऽपराङ्गानि निबोधय ॥ २१ ॥
वेदस्यानुगतो ह्यर्थः स्मृतिरित्युच्यते मुने ।
पूर्वानुभूतवस्तूनां स्मरणं चोच्यते स्मृतिः ॥ २२ ॥
पारम्पर्याचारतः सालोकतापि मता क्वचित् ।
क्वचिन्न्यात्क्वचिन्नित्यानुमेयश्रुतिमूलतः ॥ २३ ॥
श्रुतिस्मृती उभे एव धर्मस्य परिपोषिके ।
जातानां जन्मना पूर्वं गर्भाधानादिकाः क्रियाः ॥ २४ ॥
तथैव सन्ध्योपास्यापि नित्यश्राद्धादिकाः क्रियाः ।
पाकयज्ञादिकं चापि प्रायश्चित्तं तथैव च ॥ २५ ॥
इत्येष पञ्चधा धर्मः संगृहीतः पुरातनैः ।
अयं नित्य इति प्रोक्तः परमो वेदमूलकः ॥ २६ ॥
व्रतं तीर्थं तथा सर्वं नित्यकार्यमिति स्मृतम् ।
पारम्पर्यवशात्प्राप्तं सद्भिरेव समादृतम् ॥ २७ ॥
पुराणमूलकं चापि तदनुष्ठेयमुच्चकैः ।
शुद्धिरेव तु संस्कारः कर्म त्रैवर्णिकस्य यत् ॥ २८ ॥
स चापि बहुधा प्रोक्तो देशकालादिभेदतः ।
दैशिकः कालिकश्चापि तथा च द्रव्यकृन्मतः ॥ २९ ॥
कर्त्तृतो मन्त्रतश्चापि कर्मतश्चापि कीर्तितः ।
षोढा संस्कारमित्याहुः कर्माङ्गं तन्निगद्यते ॥ ३० ॥
वेदतुल्यं पुराणं च प्रमाणत्वे स्मृतं बुधैः ।
पुराणानां विभागश्च वेदशाखाविभागवत् ॥ ३१ ॥
सात्त्विकादिविभेदेन पुराणमपि भिद्यते ।
योगसांख्ये अपि तथा मद्रूपे सत्त्वसाधिके ॥ ३२ ॥
तत्सत्त्वं सनकादीनां नित्यमेव निगद्यते ।
तद्वेदोपनिषद्भागफलभूतमुदाहृतम् ॥ ३३ ॥
सत्त्वतः सम्भवेज्ज्ञानं यत्तदात्मनिदर्शकम् ।
उभयोश्चफलं भक्तिर्भावरूपा महोदया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधित श्रीरामगीतायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



एकादशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

अथो रघुकुलोत्तंस ब्रूहि भक्तिं निजां पराम्।
ययानुष्ठितया लोकस्त्वत्सम्बन्धमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

आत्रेय शृणु वक्ष्यामि मम भक्तिं मदात्मिकाम्।
कर्मभिः शुद्धचित्तत्वादात्मज्ञो जायते नरः ॥ २ ॥

आत्मज्ञे स परो भावः समुदेति मदात्मकः।
मन्निष्ठेऽभ्युदिते भावे नान्यत्प्राप्तव्यमिष्यते ॥ ३ ॥

सोत्कण्ठो जायते नित्यं मत्पुण्यचरितश्रुतौ।
मन्नामस्मरणोद्भूतपरमानन्दनिर्भरः ॥ ४ ॥

मदाधारपरो भूत्वा नान्यत्स्पृहयति क्वचित्।
मृत्योर्मूर्द्ध्नि पदं दत्त्वा विहरेत समंततः ॥ ५ ॥

ऐहिकामुष्मिके लोके विरक्तो मत्पदाश्रयः।
नित्यं मम वने तिष्ठेत् प्रमोदवनसंज्ञिनि ॥ ६ ॥

ततो मां पश्यते तत्र निर्भरप्रेमसम्प्लुतः।
खेलन्तं सहजानन्दासंगसंगतमङ्गलम् ॥ ७ ॥

विचित्रवंशीरवगायनोद्धुरं विचित्रवेषं मणिरत्नमण्डितम्।
मृदुस्मृतापूरितचन्द्रमण्डलप्रभामुखं मोदवतीविहारिणम् ॥ ८ ॥

विचित्ररत्नाद्रिदरीस्थधातुभिर्विचित्रितोरस्कमनन्यसुन्दरम्।
मुक्तावतंसप्रविभूषितस्फुरत्तुङ्गोत्तमाङ्गं स्मर मां रामचन्द्रम् ॥ ९ ॥

ततो मामीदृशं पश्यन् बद्धप्रेमा भवेन्मयि।
प्रेमाणमाशु लभते मत्प्रसादादनन्यधीः ॥ १० ॥

न हिमत्प्रेमणि प्राप्ते प्राप्तव्यान्तरमस्ति च।
ईदृशा रसिका भक्ता वैष्णवाः प्रेमभागिनः ॥ ११ ॥

अति दुर्लभसम्बन्धाः कथं लभ्याः शुभं विना।
तेषां चरणपाथोजनिषेवणकृतां सताम् ॥ १२ ॥

सुलभोभगवत्प्रेमा क्षेमाकर उदग्रभाः।
तेषां वाक्यागमेनैव शुद्धता मनसो भवेत् ॥ १३ ॥

[1]तत्कृपालेशमात्रेण निस्तरेद्भवसागरम्।
तदुच्छिष्टान्नभोज्येन सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात्।
तेषां स्वरूपं त्रिदशैरज्ञेयं विष्णुवेदिभिः ॥ १४ ॥

---

१ तत्कृपालेशमात्रेण—बड़ौ०।

ते दृश्यमाना अपि चक्षुषा मुने साक्षात्स्वयं मत्तनवः प्रकीर्तिताः ।
वशीकृतो यैरहमप्रमेयः परापरज्ञः परमप्रेमभाग्भिः ॥ १५ ॥

ते मद्भक्ता मत्स्वरूपज्ञातारो मम केलिषु ।
दत्तप्रज्ञाः दत्तगिरो दत्तश्रवस उद्भटाः ॥ १६ ॥

सर्वेषु व्यवहारेषु मामेवाखिलरूपिणम् ।
नित्यं व्यवहरन्तस्ते ब्रह्मज्ञा इति कीर्तिताः ॥ १७ ॥

नान्ये मनुष्या ब्रह्मज्ञा भवन्तीह कदाचन ।
मन्नामरूपलीलानां ऋते ज्ञानादनुत्तमात् ॥ १८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



द्वादशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

त्वय्यर्पितमनोबुद्धिरैहिकामुष्मिकादिभिः ।
स्वरूपज्ञैर्ब्रह्मविद्भिः कथं स्थेयं वदस्व तत् ॥ १ ॥

किं कर्त्तव्यं किमध्येयं सगुणं निर्गुणं च वा ।
किं वक्तव्यं किमुन्नेयं किं प्राप्यं राम सत्यते ॥ २ ॥

तदेतत् कृपया नाथ ममाख्याहि सतां गते ॥ ३ ॥

श्रीराम उवाच

आत्रेय शृणु वक्ष्यामि भक्तानां प्रीतिभागिनाम् ।
मय्यर्पिताखिलानां च या चर्या तां विशेषतः ॥ ४ ॥

संक्षेपतस्ते पूर्वोक्तामनुभावस्वरूपिणीम् ।
भक्तिर्नाम परो भावश्चर्या तस्याणुभावका ॥ ५ ॥

सा तेषां स्थितिरत्युग्रा ह्यसिधारापथानुगा ।
स्ववर्ग्यान्नं तु भुञ्जीत समर्प्य श्रीराममपि ॥ ६ ॥

समर्पणं त्रिविधं प्राहुर्मम मूर्तौ समक्षकम् ।
परोक्षं मानसं प्रोक्तं तृतीयं वैष्णवाग्रतः ॥ ७ ॥

भुञ्जीत तस्यावशिष्टं प्राणस्य स्थापनं मितम् ।
नामानि च गृणीतैवं प्रेम्णा मम दिवानिशम् ॥ ८ ॥
नृत्यगायनवादित्रैस्तोषयेन्मां विशेषतः ।
मत्प्रसादोपलब्धं च धारयेदम्बरादिकम् ॥ ९ ॥
तुलसीदलमालां च धारयेत्कण्ठदेशतः ।
काले शुष्कतमां शाखां तुलस्यासितमेचकाम् ॥ १० ॥
गृहीत्वा मणिसंदोहं सच्छिद्रं रचयेन्नरः ।
तैर्निर्मितां महामालां धारयेदुपवीतवत् ॥ ११ ॥
शिखायां वैष्णवो भाले कण्ठे वाह्वोश्च हस्तयोः ।
सर्वतो धारयेन्मालास्तुलसीकाष्ठसम्भवाः ॥ १२ ॥
धनुर्बाणं परं श्रेष्ठं मन्नामानिच धारयेत् ।
चक्रात् कोटिगुणं प्रोक्तं मन्नामानि च वै क्रमात् ॥ १३ ॥
धनुर्बाणौ परात्परौ मन्नामानि च वा पुनः ।
आयुधैः सकलैर्बाह्वोर्मन्नाम परिवेष्टयेत् ॥ १४ ॥
बाणं च वेष्टयेत् सर्वैरायुधैवक्षसः स्थले ।
भालेन धारयेन्नाम मन्नामानि च भूरिशः ॥ १५ ॥
सर्वत्र धारयेद्बाणं शरीरे तत्परात्परम् ।
काश्मीरेण समायुक्तं श्वेतचन्दनमुत्तमम् ॥ १६ ॥
यावकेन समायुक्तं पुण्ड्रयेदूर्ध्वतः सुधीः ।
त्रिपुण्ड्रं नैव कुर्वीत विशेषेण विवर्जयेत् ॥ १७ ॥
अङ्गवस्त्रमपिस्नाने न तिर्यग्धारयेद्बुधः ।
यत्प्रमोदवने रम्ये रत्नाद्रितट भूमिषु ॥ १८ ॥
पीतपाण्डुरकं रम्यं रजस्तद्धारयेत्तनौ ।
वशीकुर्यात्स मां भक्त्या यो वहेतद्धनं रजः ॥ १९ ॥
पवित्रं सहजानन्दाश्रीचारुचरणाङ्कितम् ।
सहजप्रेमदं सर्वकामदं शशिमङ्गलम् ।
ममापि सा प्रियाधूलिस्तद्बिन्दुं मूर्द्ध्न धारयेत् ॥ २० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां भक्तचर्याकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥



त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

नोष्णीषं धारयेद्भक्तः पुरुषाहंकृतिं तथा।
श्मश्रूणि कंचुके चैव[1] पूर्वनाम च यद्भवेत् ॥ १ ॥
वर्णाश्रमादिचिह्नानि सोपवीतां शिखां पुनः।
ॠगादिसर्वभागांश्च सर्ववेदायतोऽस्य हि ॥ २ ॥
सर्ववेदसमं तद्धि यत्प्राप्तं मामकं पदम्।
स्मार्तानि च निषिद्धानि स्वविरोधेन पालयेत् ॥ ३ ॥
दहेच्च भुजयोर्युग्मं मामकैर्धनुवीरुधैः।
कुर्याच्च सर्वगात्रेषु संस्कारं पुण्ड्रकाभिधम् ॥ ४ ॥
पवित्रं धारयेन्नाम रामदासादिरूपभाक्।
तदुच्चारणमात्रेण पूतो भवति मानवः ॥ ५ ॥
यथा रामभगवतो नामोच्चारणतो मम।
तथा पावयति ब्रह्मन् नाम सम्बन्धिनोऽपि मे ॥ ६ ॥
तादृशानि तु नामानि यान्ति लौकिकतां न च।
तन्नामयोगमात्रेण मदीयो जायते नरः ॥ ७ ॥
यदात्मा मत्पदं प्राप्तः साक्षान्मद्दासतां गतः।
तादृशं यस्य नामास्ति न तस्य गृहकल्पनम् ॥ ८ ॥
रामो देवः सदा येषां राम एव च तारकः।
राम एव तथा कर्त्ता वैष्णवान् पूजयेत् सदा ॥ ९ ॥
तन्नामवति वै भक्ते न भवेद्यमयातना।
तस्माल्लौकिकनामानि परित्यज्य सदा नरः ॥ १० ॥
तादृशं धारयेन्नाम यादृशं वैष्णवोचितम्।
ततः स रामदासाख्यः श्रीगुरुं सततं भजेत् ॥ ११ ॥
स तं करुणया ब्रह्मन् दिव्यमन्त्रमुपादिशेत्।
मन्त्रश्च द्विविधः प्रोक्तो द्वयश्चाद्वय एव च ॥ १२ ॥
देशिकोक्तप्रकारेण तं मन्त्रं प्रजपेन्नरः।
मन्त्रजापीभवेत्पूतो मन्त्रजापीभवेन्मुनिः ॥ १३ ॥
मन्त्रजापी भवेद्दिव्यस्तस्मान्मन्त्रं सदा जपेत्।
बीजमन्त्रं जपेद्वापि नाममन्त्रं जपेन्मुने ॥ १४ ॥

---

१. जन्मनाम–टि० बडौ०।

बीजमन्त्रं चिरात्सिध्येन्नाममन्त्रं तु तत्क्षणात् ।
रामरामादिकं नाम बीजं मायारसादिकम् ॥ १५ ॥

बीजचैतन्यसाक्षात्त्वे बीजं सिध्यति तत्क्षणात् ।
तत्तु दूरतरं लोकं भावनावसचेतसाम् ॥ १६ ॥

कोटिबालार्कसंकाशं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ।
कोटिविद्युत्प्रतीकाशं चमत्कारकलानिधिम् ॥ १७ ॥

भावयेन्मन्त्रचैतन्यं स्वात्माभेदेन साधकः ।
तत्प्रभापुञ्जसंजातहस्तपादादिविग्रहम् ॥ १८ ॥

भावयेन्मन्त्रदेवं च रामचन्द्रं परात्परम् ।
या यस्य भावनासक्तिः सा मूर्तिस्तस्य विस्फुरेत् ॥ १९ ॥

साक्षात्कृतो देवदेवो दत्ते कामपरं पुरः ।
आचारपूततां ब्रह्मा विष्णुः श्रियमनश्वराम् ॥ २० ॥

ऐश्वर्यं भगवानीशो बलं तु मघवा हरिः ।
सूर्यस्तेजः शशी चायुरग्निरोजः प्रयच्छति ॥ २१ ॥

सरस्वती सरस्वतीमुमादेवी पराक्रमम् ।
कुबेरश्च धनं भूरि वायुर्दत्ते बलोद्भवम् ॥ २२ ॥

वरुणः शान्तिमतुलां यमो धर्मबलोदयम् ।
निर्ऋतिः कुरुते वृद्धिमन्ये देवास्तथा वरान् ॥ २३ ॥

अहं पुनरभीतिं च प्रपन्नेभ्यो ददामि वै ।
एवं मन्त्रं समाराध्य कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ २४ ॥

नहि मन्त्रेण सदृशं शीघ्रोपायेषु विद्यते ।
नामोपात्रस्ततः शीघ्रः प्रवक्ष्यामि च तं मुने ॥ २५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

नामैव मम जीवातुर्भक्तानां दृढचेतसाम् ।
नामैव तारकं ब्रह्म भवाब्धेरतिदुस्तरात् ॥ १ ॥

नामश्रीनामसंयुक्तं मम वित्तैकपारकम् ।
तारकं पारकं ब्रह्म यो जानाति स पण्डितः ॥ २ ॥

स एत्व वैष्णवो भक्तः प्रेमसत्कृतमानसः ।
स एव सर्वदर्शी च स एव मम बल्लभः ॥ ३ ॥

नामामृतमुदारं मे मोहध्वान्तविनाशकम् ।
ब्रह्मानन्दाधिकं नाम रामचन्द्रपदात्मकम् ।
प्रेमानन्दमयं ज्ञेयं रामेति द्व्यक्षरं पुनः ॥ ४ ॥

ग्रह्णन्ति रामेति च नाम नित्यं भक्ता भवाब्धेस्तरणाय तावत् ।
रामेति मे नाम पुनर्गृणन्तः प्रेमामृतं भूरितरं पिबन्ति ॥ ५ ॥

रामेवि रेफोऽनलकीलयोगो मकारचन्द्रः स्रवतेऽमृतानि ।
संस्नाति यस्तत्र नरोऽतिधन्यः स मे प्रियो वैष्णवभक्त राजः ॥ ६ ॥

प्रणवादपि मन्नाम मद्रूपत्वप्रदायकम् ।
अधिकं खलु विज्ञेयं साक्षान्मद्रूपबोधनात् ॥ ७ ॥

अन्तरङ्गात्मिका सृष्टिर्नामरूपात्मिका मम ।
उभे अपि सदा नित्ये अविनाभाववत्यपि ॥ ८ ॥

नामसृष्टिः समस्तापि रामेत्यत्र समाप्यते ।
रूपसृष्टिस्तथा सर्वा श्यामे धाम्नि समाप्यते ॥ ९ ॥

मन्नाम द्व्यक्षरं ब्रह्मन् ममापि प्रीतिदायकम् ।
रमेऽहमपि मे धाम्नि श्यामे परमसुन्दरे ॥ १० ॥

आकाशमतसीपुष्पं तापिच्छद्रुम कोरकम् ।
ममाङ्गतुलनाप्राप्तं लोके धन्यतमं खलु ॥ ११ ॥

मद्धर्मबोधकं नाम यद्राम इति गोपितम् ।
तद् गृणंल्लभते तादृक् स्वरूपं सहजोज्ज्वलम् ॥ १२ ॥

मद्रूपमविनाभूतं ध्यायन् मुच्येत पातकात् ।
अमुनाद्व्यक्षरेणैव रामेति रुचिरात्मना ॥ १३ ॥

रामेति द्व्यक्षरं नाम गोपयेन्निजचेतसि ।
उपांशुना जपेन्नित्यं स्फोरयेन्न गलाध्वना ॥ १४ ॥

उच्चैःशब्देनापि नियमेकान्ते राममुच्चरेत् ।
एवं मां नामरूपाभ्यां भावयेत्सुसमाहितः ॥ १५ ॥

मन्नित्यलीलासम्बन्धं प्रमोदविपिने लभेत् ।
तस्मान्नामपरो नित्यं भवेदेकान्तवैष्णवः ॥ १६ ॥

नामशक्त्याशया जातु न कुर्यात्पातकं जनः ।
नामग्रहणगर्वं च न कुर्याद्भक्तसंसदि ॥ १७ ॥

नामोद्धारं न कुर्वीत गृह्णीयात्प्रयतः सदा ।
अन्यदेवस्य यन्नाम मन्नाम्ना तुलयेन्न तत् ॥ १८ ॥
स्वरूपे सविधे चापि न कुर्यान्नामभूरिताम् ।
न परश्रवणार्थं च नामकीर्त्तनमाचरेत् ॥ १९ ॥
अविश्वासेनापिनामग्रहणं परिवर्जयेत् ।
तथान्यदेवतानामजापो नैमित्तिकादिषु ॥ २० ॥
तथा पुत्रादिकं नाम मन्नाममहिमाङ्कितम् ।
न कुर्यात् किंतु तदा सनामाङ्कं कुरुते पुनः ॥ २१ ॥
नान्त्यजाया दिशेन्नाम श्रद्धादिरहिताय च ।
न द्विजायापि मन्नामविश्वासरहिताय च ॥ २२ ॥
न श्रावयेन्नीचकर्णे न विक्रीणीत लोभतः ।
न वृत्त्योयदि शेत्कापि नाचार्यख्यापनाय च ॥ २३ ॥
न जपेदशुचित्वेऽपि न रुद्राक्षादिभिर्जपेत् ।
तुलसीकमलाक्षाणां मणिमालिकया जपेत् ॥ २४ ॥
यद्वान्तर्मालिकां धृत्वा जपेन्मन्नाममन्त्रकम् ।
जाग्रत्स्वयंस्तथा जिघ्रन् पश्यन् गच्छंल्लपञ्श्वसन् ॥ २५ ॥
भुञ्जानो जृम्भमाणश्च शयानो विसृजत् रुजन् ।
क्षुवन्नमान्नुन्नमंश्च तिष्ठन् कुर्वन् स्पृशन्नपि ॥ २६ ॥
सर्वेषु व्यवहारेषु मम नामपरो भवेत् ।
वसनं वासनं भूषामुष्णीषं कंचुकं तथा ॥ २७ ॥
उत्तरीयं चाङ्गुलीयं मन्नामाङ्कितमुद्वहेत् ।
पत्नीः पुत्रांश्च पुत्रीश्च तथा दासजनं निजम् ॥ २८ ॥
मन्नामाङ्कितदासाख्यान् कुर्यात् प्राकारकादिषु ।
नाम गायेन्नाम रटेन्नामैव भृशमाश्रयेत् ॥ २९ ॥
ब्रह्मयज्ञादिकालेषु नामैवाध्ययनं चरेत् ।
अनुध्यानं प्रकुर्वीत नामस्वाध्यायमाचरेत् ॥ ३० ॥
पातकं हरते विष्णोर्नाम दैत्यवधाङ्कितम् ।
[1]मुक्तिं ददाति गोविन्दो मुकुन्दादिस्वभावतः ॥ ३१ ॥
आयुधैरङ्कितं नाम ददात्यभयमेव च ।
आनन्द वर्धयेन्नाम ह्यवतारक्रियाङ्कितम्[1] ॥ ३२ ॥

---

१. १ बड़ौदा ।

श्रीनामाङ्कितमन्नाम मत्स्वरूपं ददाति च ।
तत्रापि सहजानन्दासम्बद्धं मम नाम यत् ।
तत्सुगोप्यतमं साक्षात्प्रेमसायुज्यदायकम् ॥ ३३ ॥

अन्यत्कृष्णमकुन्दादिनाममाहात्म्यं वर्त्तते ।
रामनामस्वरूपं तु मयापि किमु वर्ण्यताम् ॥ ३४ ॥

न चत्वारोऽपि वै वेदाः समन्त्राः सप्तकोटयः ।
न यज्ञा अश्वमेधाद्यास्तीर्थानां चापि कोटयः ॥ ३५ ॥

न मेरुतुल्यदानानि न योगाश्च तपांसि च ।
रामेति नाममात्रस्य तुलां यान्ति महामने ॥ ३६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामनामाख्यगीतायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥



पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

उपचारैर्बहुविधैर्मां यजेत विधानतः ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वा विशेषतः ॥ १ ॥

प्रातर्गुरुपदं ध्यात्वा ध्यात्वा हृत्कमले च माम् ।
देहकृत्यं विनिर्वर्त्य मन्त्रस्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

गृहीत्वा मूलमन्त्रेण मृदमस्त्राभिमन्त्रिताम् ।
विशोध्य शिखया गात्रं मूलेनैव विसर्जयेत् ॥ ३ ॥

सम्मुखीकरणं कृत्वा प्राणरोधनपूर्वकम् ।
नाभिदघ्ने जले स्थित्वा प्राणायामं विधाय च ॥ ४ ॥

षडङ्गं परिकल्प्याङ्गे चक्राकारं जलं स्मरेत् ।
उपकल्प्यजले तीर्थं सूर्याद्यावाहयेत् सुधीः ॥ ५ ॥

अङ्कुशेन च सम्भिद्य एकीकुर्याज्जलेन च ।
तत्र मत्पादसलिलं बुद्ध्वामज्जेत् पुनः पुनः ॥ ६ ॥

देवं संतर्प्य निर्मज्ज्य स्कन्धे वक्षसि मूर्द्धनि ।
धौताम्बरेपरीधाय संध्यातर्पणमाचरेत् ॥ ७ ॥

गृहीत्वा देवसलिलं यागभूमिमथाविशेत् ।
धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सामान्यार्घं विधाय च ॥ ८ ॥

गन्धपुष्पोदकैः सर्वाः पूजयेद्द्वारदेवताः ।
सिंहासनं समापूज्य पात्राणि स्थापयेत्सुधीः ॥ ९ ॥

पाद्यार्घ्याचमनादीनि नैवेद्यान्तानि च क्रमात् ।
देवमावाह्य विधिवत् पूजयेत् सुसमाहितः ॥ १० ॥

आवाहनं स्थापनं च संनिधापनमेव च ।
संनिरोधनमप्युक्तं सकलीकरणं तथा ॥ ११ ॥

अवगुण्ठनमप्युक्तममृतीकरणं तथा ।
आप्यायनं च परमीकरणं जलबिन्दुभिः ॥ १२ ॥

गन्धं पुष्पं तथा धूपं नैवेद्यारार्तिके तथा ।
आचमनं ततो दत्त्वा वैजयन्तीं समर्पयेत् ॥ १३ ॥

तुलस्याः सुदलैर्माला पञ्चवर्णप्रसूनकैः ।
ग्रथिता पादपद्मान्ता वैजयन्ती निगद्यते ॥ १४ ॥

भूषयेच्चैव भूषाभिर्मूर्तिप्रतिकृती पुनः ।
शालग्रामशिलायां मे पूजनं नित्यमुत्तमम् ॥ १५ ॥

ततोऽप्युत्तमकं यन्त्रे परिवारगणान्विते ।
यन्त्रादप्युत्तमं मूर्तौ स्थापितायां विधानतः ॥ १६ ॥

अचलायां महामूर्तौ तत्रा[१]प्युत्तमपक्षता ।
रङ्गनाथे वेंकटे च श्रीमद्विठ्ठलवल्लभे ॥ १७ ॥

जगन्नाथे बदर्यां च दिव्यपूजाफलं भवेत् ।
अन्यासु चापि दिव्यासु प्रतिमासु विशेषतः ॥ १८ ॥

काले काले यजेद्भूरिसंविदाभिरुदारधीः ।
वसन्ते पूजयेन्नित्यं पुष्पैर्दमनकोद्भवैः ॥ १९ ॥

रसालपल्लवैर्लग्नमञ्जरीकैः प्रपूजयेत् ।
चम्पकैर्वकुलैश्चापि माधुरीलतिकोद्भवैः ॥ २० ॥

अन्यैश्च विविधैः पुष्पैः कुसुमाकरसम्भवैः ।
अतियुक्तैर्मल्लिपुष्पैर्ह्रस्वशाखासिकोद्भवैः ॥ २१ ॥

ग्रीष्मे चन्दनलेपैश्च तथैव व्यजनानिलैः ।
शीतोदकैश्च नैवेद्यैरेलाकर्पूरगन्धिभिः ॥ २२ ॥

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीया या भवेद्दिवा ।
तस्यां चन्दनयात्रायां चन्दनैर्मां विलेपयेत् ॥ २३ ॥

---

१. नास्ति–बड़ौ० ।

चैत्रे च दोलयेद्भूरि दक्षिणाभिमुखं हि माम् ।
तं ये पश्यन्ति मनुजास्तेषां न पुनरूद्भवः ॥ २४ ॥
रसालमञ्जरीपत्रपुष्पाच्छादितदोलके ।
आरूढं मां न पश्यन्ति किं ते धन्या नरा भुवि ॥ २५ ॥
ज्येठाभिषेकं कुर्वीतं ज्येष्ठपूर्णादिने पुनः ।
सुवर्णं धर्ममित्याद्यैर्यजुःपुरुषसूक्तकैः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणान् वैष्णवान् भक्तांश्चन्दनादिभिरर्चयेत् ।
ततो रथोत्सवः कार्यो रथारूढे हरौमयि ॥ २७ ॥
रथारूढं च ये भक्ताः पश्यन्ति श्रद्धया युताः ।
न तेषां जायते जन्म संसारे दुःखसागरे ॥ २८ ॥
ततः श्रावणके मासि नद्यां हिन्दोलयेच्च माम् ।
हरितावनिभागेषु निकुञ्जेसु च कालतः ॥ २९ ॥
हरितत्वं प्रयातेषु स्थापयेत् प्रियया सह ।
नीलापराजितापुष्पैः कदम्बकुसुमैस्तथा ॥ ३० ॥
ग्रथितां कारयेन्मालां तां मह्यं विनिवेदयेत् ।
पवित्रारोपणं कुर्यान्मन्त्रविद्भिर्द्विजैः सहः ॥ ३१ ॥
श्रावणस्य सिते पक्षे एकादश्यां शुभे दिने ।
रामं गुरुं च मृद्वीभिः पवित्राभिः प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥
ब्राह्मणैः कारयेद्देवे रक्षाबन्धनकर्म च ।
जन्माष्टमीव्रतंकुर्यादुत्सवं च विशेषतः ॥ ३३ ॥
कृष्णो ममांशतां जातो देवकीवसुदेवयोः ।
रामोऽहं रघुशार्दूलः श्रीमद्दशरथाङ्गजः ॥ ३४ ॥
प्रयातः सुखिताख्यस्य गोपराजस्य गोपतेः ।
रावणस्यैव दुर्बुद्धेर्वञ्चनाय न संशयः ॥ ३५ ॥
अहं पूर्णं परब्रह्म सेवनीयो निरन्तरम् ।
भक्तैर्भवभयंघोरं तत्क्षणान्निस्तितीर्षुभिः ॥ ३६ ॥
अनन्तस्य व्रतं चैव पूजनं च समाचरेत् ।
एतदावश्यकं कार्यमनन्यैरपि मज्जनैः ॥ ३७ ॥
विजयां दशमीं प्राप्य कुर्यादुत्सवमुत्तमम् ।
मत्सम्बन्धाद्विशेषेण मम भक्तैः सुकोविदैः ॥ ३८ ॥
ततो बाहुलके मासि कर्त्तव्यं मम सेवनम् ।
दीपैश्च धूपगन्धाद्यैः सुगन्धाक्तैर्दिवानिशम् ॥ ३९ ॥

पीतवासकपुष्पैश्च दिव्यहारं प्रकल्पयेत् ।
भक्त्या निवेदयेन्मह्यं हेममालार्पणादिकम् ॥ ४० ॥

हरिप्रबोधिनीं यावत्कुर्याद्दीपगणार्पणम् ।
दीपमालाविशेषेण पूरयेन्मम मन्दिरे ॥ ४१ ॥

तुलसीसविधे चैव गवां गोष्ठे द्विजन्मनाम् ।
अन्नकूटोत्सवे चापि पूजयेन्मम गोकुलम् ।
सौगन्धाद्रिं च रत्नाद्रिमन्नकूटैः प्रपूरयेत् ॥ ४२ ॥

मदग्रतो गवां क्रीडा चान्नकूटं मदग्रतः ।
मदग्रतो दीपमाला हन्ति पापं त्रिजन्मजम् ॥ ४३ ॥

पञ्चभीष्मव्रतं कुर्याद्यावत्पूर्णादिनावधि ।
कार्तिकादधिकं पुण्यं मार्गशीर्षे निरूपितम् ॥ ४४ ॥

यत्र मां गोपिकाः प्रापुर्वरत्वेनात्य भीप्सितम् ।
हेमन्ते प्रोज्ज्वलाङ्गारहसन्तीर्मम मन्दिरे ॥ ४५ ॥

स्थापयेद् दिव्यधूपेन धूपिताश्च सुगन्धिताः ।
तूलवस्त्रपरीधानं सेवयेन्मां श्रिया सह ॥ ४६ ॥

एवमात्मानुरागेण सेवते सां सदैव यः ।
स याति मम सायुज्यमात्मारामो न संशयः ॥ ४७ ॥

एवं यः सततं भक्तो देशकालानुसारतः ।
सेवते मां स्वशक्त्या च स मे प्रियतमः सदा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



षोडशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

बाह्ययागेष्वशक्तश्चेदान्तरं यजनं चरेत् ।
सहस्रदलमध्यस्थं दिव्यं ज्योतिः परं पदम् ॥ १ ॥

हृत्पङ्कजे समानीय भावयेत्साधकोत्तमः ।
श्यामं पीताम्बरं देवं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ॥ २ ॥

धनुर्धरं कौस्तुभाढ्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
स्मितरञ्जितबिम्बोष्ठं कमलासेवित सदा ॥ ३ ॥
स्वर्णोपवीतसंवीतं स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
स्फुरन्मकरिकाकारकुण्डलद्वयभूषितम् ॥ ४ ॥
लम्बालकलताशोभिवदनाम्भोजसुन्दरम् ।
सर्वावयवशोभाढ्यं त्रिवलीराजितोदरम् ॥ ५ ॥
गम्भीरनाभिसंस्थानं सूक्ष्ममध्यस्थलं तथा ।
द्विभुजं मां बालकेलिं स्मरेद्दशरथालये ॥ ६ ॥
सुखितस्य गृहे चापि क्रीडन्तं मोदकानने ।
सहजानन्दिनीकान्तं कुञ्जकेलिविशारदम् ॥ ७ ॥
मानसैरूपचारैश्च तोषयेद्भूरिभोगदैः ।
न मानससमा सेवा न मानससमा क्रिया ॥ ८ ॥
न मानससमा भक्तिर्न मानससमा मतिः ।
तस्मान्मानसरूपाभिः संविधाभिः प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥
आसनं वसनं चैव पाद्यार्घाचमनादिकम् ।
गन्धादिकं सनैवेद्यं तथैवारार्तिकादिकम् ॥ १० ॥
बालभोगादिकं चापि मनसैव प्रकल्पयेत् ।
कुर्याच्च मनसा गानं मनसा नृत्यमाचरेत् ॥ ११ ॥
प्रादक्षिणं च मनसा दण्डवत्प्रणतिस्तथा ।
यावन्न जायतेऽभ्यासो मानसे कर्मणि स्फुटम् ॥ १२ ॥
तावद्बाह्यानि कर्माणि कुर्वीत प्रयतो नरः ।
अभ्यस्ते मानसेकर्मण्यलं बाह्येनकर्मणा ॥ १३ ॥
शतवर्षकृतं कर्म भगवत्सेवनादिकम् ।
तत् क्षणे मानसंकर्म न तुलां याति तस्य तत् ॥ १४ ॥
ब्रह्माण्डगोलकं भित्वा दृढज्ञानासिना नरः ।
एकं प्रपूरयेत् क्षीरैरन्यं भूरिसिताभरैः ॥ १५ ॥
आहवनीयेन सम्पाच्य पायसं दिव्यतण्डुलैः ।
एकीकृत्य सिताभारान् विभवे मह्यमर्पयेत् ॥ १६ ॥
एव मानससेवासु सौकर्यं भूरितापि च ।
तस्मात्को नाम न नरो मानसं कर्त्तुमर्हति ॥ १७ ॥
मानसे सुलभा दिव्या गन्धपुष्पादिसम्पदः ।
मानसे सुलभो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ १८ ॥

तस्मान्मानसकर्मैव कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
मम सेवां विधायादौ परिवारं ममार्चयेत् ।। १९ ।।

श्रीमद्दशरथं तातं कौसल्याद्याश्च मातरः ।
भ्रातरं लक्ष्मणं शेषं परौ कीरौ च तत्स्त्रियः ।। २० ।।

जानकीं हनुमन्तं च कपिवर्गं च मे प्रियम् ।
प्रत्येकमुपचारौघैर्माङ्गिल्यां सुखितं तथा ।। २१ ।।

प्रमोदविपिनं दिव्यमर्चेत्परिकरैः सह ।
एवं पूजां समाचर्य कृतकृत्यो भवेन्नरः ।। २२ ।।

ऐहिके चामुष्मिके च कर्त्तव्यं नावशिष्यते ।
प्रेम्णायुतोऽखिलं कुर्यात्तदभावे तु मध्यमम् ।। २३ ।।

ज्ञानाभावे प्रेमसत्त्वे नैव मध्यमता भवेत् ।
तस्मात् प्रेम पुरस्कृत्य सर्वसेवादिकं चरेत् ।। २४ ।।

यथा स्त्रियो विना भूषां भोजनं च घृतं विना ।
भाग्यं विना च पुरुषस्तथा प्रेम विना कृतम् ।। २५ ।।

अयं रसो भक्तिरूपो भावरूपः सनातनः ।
तद्वन्तो रसिका ज्ञेया रसभावविदो जनाः ।। २६ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।



सप्तदशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

चैत्रे मासि सिते पक्षे नवम्यां शुभवासरे ।
मम जन्मोत्सवं कुर्याद्बहुवित्तव्ययादिभिः ।। १ ।।

विपुलं मण्डपं कुर्यात् पुष्पमाल्याम्बरादिभिः ।
वासितं पटवासाद्यैः कर्पूरघुसृणादिभिः ।। २ ।।

कुर्यान्नव शुभान् दिव्यघटान् नीरप्रपूरितान् ।
ममाभिषेकं कुर्वीत कुम्भैः शङ्खकुशोदकैः ।। ३ ।।

उद्वर्त्य घुसृणक्षोदैः स्नानं पञ्चामृतैस्ततः ।
शुद्धोदकेन संस्नाप्य जातकोत्सवमाचरेत् ।। ४ ।।

यथैव दुर्लभे पुत्रे वार्धके वयसि स्थिते ।
जाते कुर्यादुत्सवं च तथैवोत्सवमाचरेत् ॥ ५ ॥

मिष्टान्नभोजनान्युच्चैर्दद्यान्मत्प्रीतिहेतवे ।
वैष्णवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो मम भक्तेभ्य एव च ॥ ६ ॥

कुण्डले मुद्रिकावस्त्रे दद्यान्मत्प्रीतिहेतवे ।
महान्तमुत्सवं कुर्वन् मृदङ्गध्वनिपूर्वकम् ॥ ७ ॥

जातस्य मम संवृद्ध्यै विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणाः ।
एवं वैशाखमासेऽपि नवम्यां शुक्लपक्षके ॥ ८ ॥

सहजायाः शुभं कुर्याज्जन्मोत्सवमुदारधीः ।
सुवासिनीभ्यः कन्याभ्यो दद्याद्भूषणमम्बरम् ॥ ९ ॥

अलंकृत्य स्नानलेपसौरभार्पणभूषणैः ।
भोजयेद्भूरि भक्त्यैव सहजाप्रीतिहेतवे ॥ १० ॥

प्रमोदविपिनग्रामे राजिनीनन्दनालये ।
उत्पन्ना सहजालक्ष्मीर्मम रासविनोदिनी ॥ ११ ॥

तस्मिन् दिने व्रतं कुर्यादुत्सवं च विशेषतः ।
माघशुक्ले च पञ्चम्यामवतीर्णा पुनः प्रिया ॥ १२ ॥

जनकस्य गृहे यज्ञवेद्यां मङ्गलशालिनी ।
तत्रापि चोत्सवं कुर्याद्भक्त्या मत्प्रीतिहेतवे ॥ १३ ॥

ततः प्रदोषसमये दोलयेद्दोलया प्रियाम् ।
मत्सार्धं सहजानन्दां गोपितां भुवनत्रये ।
रत्नभूषणवासांसि नर्तकेभ्यः प्रदापयेत् ॥ १४ ॥

एवं यो वार्षिकं दिव्यमुत्सवं कुरुते नरः ।
स याति मत्पदं दिव्यं यत्र याताः शुकादयः ॥ १५ ॥

अबन्ध्यं तद्दिनं कुर्यान्मत्कथाश्रवणादिभिः ।
वैष्णवान् पूजयेद्भक्त्या मम प्राणा हि ते मताः ॥ १६ ॥

ममापराधं जनितं क्षमेऽहं न वैष्णवानामपराधलेशम् ।
विनाचतद्वैष्णवसेवयाहं गृह्णामि सेवां न कदापि लोके ॥ १७ ॥

यत्र मद्वैष्णवा लोकाः कुपिता यान्ति कारणात् ।
तं देशं सहसा त्यक्त्वा व्रजामि खलु दुर्भगम् ॥ १८ ॥

अपि नाम महापापकारी मल्लक्षणाङ्कितः ।
न दूष्यो वैष्णवीलोकैः पक्षपातोममेदृशः ॥ १९ ॥

तवास्मीति वदेद्यो मां सकृदप्यसकृच्च वा ।
कृतान्तेनापि घोरेण स वै नेतुं न शक्यते ॥ २० ॥

तवास्मीत्यक्षरं लोके मामुद्दिश्य समीरितम् ।
मदीय एव स नरो नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

किमर्थं बहुनामानि किमर्थं बहुमन्त्रकान् ।
किमर्थं बहुशास्त्राणि कण्ठशोषकराणि च ॥ २२ ॥

गृणन्ति च किमर्थं वै स्वाध्यायान् भूरिकष्टदान् ।
मामुद्दिश्य तवामीति सकृज्जल्पेद्दिने नरः ॥ २३ ॥

अयमेव महायागो ह्ययमेव महान् जपः ।
अयमेव महान् योगस्तवास्मीति यदुच्चरेत् ॥ २४ ॥

ममैव निहितं तिष्ठेन्नान्यस्य कस्यचिद्भवेत् ।
देवानां वा पितॄणां वा मनुष्याणामथापि वा ॥ २५ ॥

असंगः सर्वदातिष्ठेत्तथा वर्णाश्रमादिषु ।
अहमेव तस्य वर्णोऽप्यहमेवाश्रमस्तथा ॥ २६ ॥

अहमेव तथाऽऽधार ऐहिके पारलौकिके ।
मामेव सर्वविश्वासादाश्रयेद्भवसागरे ॥ २७ ॥

तमहं मोचयाम्यद्धामयि भारसमर्पिणम् ।
अहंकारोऽयमेव स्यादैहिकादिभरः स्वतः ॥ २८ ॥

मयि संन्यस्य तं भारं सुखी तिष्ठेत मत्परः ।
सर्वं एव भरो विष्णौ (रामे) मयि ब्रह्माण्डरक्षके ।
तमात्मनि शठः पश्यन् बन्धनं याति मानवः ॥ २९ ॥

एवं भक्तिपथः प्रोक्तो मया तुभ्यं महामुने ।
उत्तमः सर्वधर्माणां शरीराणां यथा शिरः ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



अष्टादशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अथ योगं प्रवक्ष्यामि शृणु ह्येकमना मुने ।
येन विज्ञातमात्रेण नरैः कैवल्यमश्नुते ॥ १ ॥

कर्मिणां कर्मयोगः स्याज्ज्ञानिनां ज्ञानमेव सः ।
भक्तिमान् भक्तियोगेन निरुध्याच्चित्तमात्मनः ॥ २ ॥

मूलाधारस्थितं ज्योतिः कुण्डल्यामाविर्भावयेत् ।
प्रणवाख्येन दण्डेन नादरूपेण चालयेत् ॥ ३ ॥

नादोद्भूतः प्राणवायुरपाने बलवत्तरः ।
पराधारंनुदेदग्नि तच्छिखा कुण्डलीं स्पृशेत् ॥ ४ ॥

तया प्रचोदितं तीव्रं कुण्डल्याख्यं परं महः ।
व्याप्य सूक्ष्माणि मार्गाणि हृद्देशं गच्छति द्रुतम् ॥ ५ ॥

तत्र जीवात्मना सार्द्धं विद्युत्तेजःप्रभासुरम् ।
भ्रूपुटे सद्य आगत्य परं चैतन्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

तदूर्ध्वं रोधिनीं भित्त्वा सहस्रदलमश्नुते ।
ब्रह्मानन्दसमुद्रस्य वेला सा रोधिनी भवेत् ॥ ७ ॥

अन्यथा वृद्ध एवासौ सर्वतः प्लावयेज्जगत् ।
सर्वेऽपि च विमुक्ताः स्युः पशुपक्ष्यन्त्यजा अपि ॥ ८ ॥

तान् रुणद्धि ततो विद्या त्रिगुणा रोधिनी हि सा ।
तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकोऽस्ति मत्प्रभात्माक्षरात्मकः ॥ ९ ॥

तं प्राप्य मुक्तिसाम्राज्यं सद्यः प्राप्नोति मानवः ।
न तत्र कालकलना न मायाकृतविस्मृतिः ॥ १० ॥

न जरा नापि दुःखाद्यास्त्रिगुणप्रसूतिस्तथा ।
योगी तस्य प्रविश्यान्तस्तुरीयामश्नुते कलाम् ॥ ११ ॥

निमेषोन्मेषरहितां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
तस्य हेतुर्बोधमयी दोक्षा सद्गुरुगोपिता ॥ १२ ॥

शक्तिसंचारतो लभ्या सद्य एव प्रजायते ।
परमेश्वरसंतोषाच्चिरमेव प्रजायते ॥ १३ ॥

तदर्थं भूरिकर्माणि योगाङ्गानि प्रसाधयेत् ।
पूर्वजन्माभ्यासवशाद् वैराग्ये स्थिरतां गते ॥ १४ ॥

अथ ज्ञानकलोदेति सापि योगो निगद्यते ।
द्विविधोऽपि च योगोऽयं स्वाश्रया मुक्तिरुच्यते ॥ १५ ॥

पराश्रया भवेन्मुक्तिर्भक्तियोगेन चात्रिज ।
परो नाम सदानन्दो राम एवाहमच्युतः ॥ १६ ॥

क्षराक्षरावतिक्रम्य भासमाने निजे पदे ।
तदाश्रया तु या मुक्तिदुर्लभा मत्कृपां विना ॥ १७ ॥

ऐक्यसायुज्यभेदेन सा द्विधा परिकीर्तिता।
पूर्वतोऽप्यधिकानन्दा द्वितीया सातिदुर्लभा ॥ १८ ॥

मल्लोकनित्यलीलाख्यमद्भोगानन्दरूपिणी ।
सांख्येऽप्ययं समुद्दिष्टो योगो मद्योगकारकः ॥ १९ ॥

सर्वेषामपि योगानां भक्तियोगो विशिष्यते ।
अल्पायासो बहुफलो मत्स्वरूपप्रदस्तथा ॥ २० ॥

योगो योग इति ग्रन्थेष्वसंदेहान्निरूपितः ।
केचिदेव मुनिश्रेष्ठास्तं जानन्ति मदात्मकम् ।
नास्माद्व्युत्तिष्ठते योगी मद्भक्तो मयि संगतः ॥ २१ ॥

तस्मादेनं द्विजश्रेष्ठ नित्यमभ्यस्य चेतसा ।
चित्तेऽपि खण्डशो जातमखण्डं कुरु यत्नतः ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥



एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रिगुणाः परिकीर्तिताः ।
पुरुषः प्रकृतिश्चैव महांश्चाहंकृतिस्तथा ॥ १ ॥

शब्दस्पर्शौ रूपरसौ गन्धो मायाश्च पञ्चकाः ।
खं वायुर्ज्योतिरापो भूः पञ्चभूतानि च क्रमात् ॥ २ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्रसाः ।
पञ्च कर्मेन्द्रियाण्येव वाग्गोर्मेढाङ्घ्रिपायवः ॥ ३ ॥

तथैव सर्वसंयोगिषड्ज्ञानकरणं मनः ।
आध्यात्मिकस्तु यो वर्गः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ ४ ॥

आधिभौतिकवर्गश्चएकत्रैवप्रतिष्ठितः ।
मदंशाधिष्ठिताः सर्वे भासन्तेऽमी प्रदीपवत् ॥ ५ ॥

माया गुणानां सम्भेदादेकैव बहुरूपिणी ।
कालस्तु भगवान् साक्षान्मद्रूपो नित्य एव सः ॥ ६ ॥

सूत्रं चैव महान् प्राणो बुद्धिश्चाहंस्वरूपिणी ।
परमात्मा च सर्वाद्यः प्रकृतिः पुरुषस्तथा ॥ ७ ॥
एक एव द्विधाजातस्तदेवाक्षरमुच्यते ।
मद्रूपं परमानन्दस्तिरोभूयात्र तिष्ठति ॥ ८ ॥
सत्त्वस्य व्यवधानेन मुख्यजीवः स ईरितः ।
सृष्टोच्छावशगोभूतः सोऽहमेव न संशयः ॥ ९ ॥
अयमेव च कूटस्थो ब्रह्माव्यक्तादिशब्दितः ।
अण्डानि कोटिशस्तस्य प्रतितिष्ठन्ति विग्रहे ॥ १० ॥
अक्षरं ब्रह्म तद्धाम ममैव ज्ञानिनां गतिः ।
अहं प्रभुर्भक्तिगम्यो मम लोकोऽयमक्षरः ॥ ११ ॥
पादो मे सर्वभूतानि त्रिपाद् ब्रह्मेदमक्षरम् ।
ब्राह्मणश्च ममांशोऽस्य परस्य पुच्छमुच्यते ॥ १२ ॥
ज्ञानात्तस्योपासनया तन्मयो जायते नरः ।
भक्त्या ममोपासनया मन्मयो भवति ध्रुवम् ॥ १३ ॥
एतदेव ज्ञानमार्गे सेव्यमक्षरमुत्तमम् ।
अहं ततोऽधिको ज्ञेयः पूर्णानन्दैकविग्रहः ॥ १४ ॥
चिदानन्दौ तिरोभाव्य सत्त्वांशव्यक्तिमात्रतः ।
रूपान्तरं चाक्षरस्य कालः सकलसम्भवः ॥ १५ ॥
तत्र नित्या क्रियाशक्तिः प्राधान्येन प्रतिष्ठिता ।
सर्वोत्पत्त्यन्तकरणी चिच्छक्तिर्विकृतौ स्फुटम् ॥ १६ ॥
काले पुनर्यदैश्वर्यं तन्ममैव न संशयः ।
अत एवेश्वरः कालः सर्वस्यान्तर एव च ॥ १७ ॥
आसुरस्तमुपासीत कालरूपं मदात्मकम् ।
तत्रैव लीनतां गच्छेन्महातमसि भीषणे ॥ १८ ॥
ममाधिकारिणां मुख्यः काल एव न संशयः ।
यथाहं साम्यवैषम्यात्तथासौ फलदायकः ॥ १९ ॥
तद्भेदाः सूर्यगतय आधिभौतिकरूपकाः ।
एवमेव भवेत्कर्ममद्रूपं नियतं फले ॥ २० ॥
अग्रपश्चाद्भावभेदाद्द्विधैव प्रकटं च तत् ।
एवं स्वभावोऽपिभवेन्मत्तनुः सर्ववस्तुगः ॥ २१ ॥
आविर्भावतिरोभावैः परिणामस्तु तत्कृतः ।
अक्षरं वासुदेवश्च कालः संकर्षणो हि वै ॥ २२ ॥

कर्म प्रद्युम्न एवास्ति स्वभावश्चानिरुद्धकः ।
एवं चतुर्व्यूहतनुः प्रकटः सर्वो ममांशतः ॥ २३ ॥

अष्टाविंशतिरेव स्युस्तत्त्वानि मेकलक्षतः ।
तद्रूपं विधिना ज्ञेयं ममसायुज्यसिद्धये ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



विंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

कथं तत्त्वात्मकं राम त्वां ध्यायन् मुच्यते नरः ।
एतन्मे रघुशार्दूल कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

पद्भ्यामाजानुपर्यन्तं भूतधात्री प्रतिष्ठिता ।
चतुरस्रा पीतवर्णा स्ववीर्यसहितापि च ॥ २ ॥

तत्र चित्तं शनैः स्थित्वा तन्मयं जायते ध्रुवम् ।
तन्मात्रां च ग्रसित्वा तदपां मण्डलमाविशेत् ॥ ३ ॥

जानुभ्यां नाभिपर्यन्तमपां मण्डलमुत्तमम् ।
शुक्लवर्णं स्ववीर्येण युक्तं वरुणदैवतम् ॥ ४ ॥

तत्र चित्तं शनैः स्थित्वा तन्मयं जायये ध्रुवम् ।
तन्मात्रां च ग्रसित्वा तत्तेजोमण्डलमाविशेत् ॥ ५ ॥

नाभेर्हृदयपर्यन्तं तेजोमण्डलमुत्तमम् ।
रक्तवर्णं त्रिकोणं च वह्निदैवतवीर्यभाक् ॥ ६ ॥

तत्र चित्तं शनैः स्थित्वा तन्मयं जायटे ध्रुवम् ।
तन्मात्रां च ग्रसित्वा तद् वायुमण्डलमाविशेद् ॥ ७ ॥

हृदयात्कण्ठपर्यन्तं वायुमण्डलमुत्तमम् ।
षट्कोणं च हरिद्वर्णं स्ववीर्यसहितं सदा ॥ ८ ॥

तत्र चित्तं शनैः स्थित्वा तन्मयं जायते ध्रुवम् ।
तन्मात्रां च ग्रसित्वा तन्नभोमण्डलमाविशेत् ॥ ९ ॥

कण्ठाद्भ्रूमध्यपर्यन्तं नभोमण्डलमुत्तमम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं वर्तुलं वीर्यसंयुतम् ॥ १० ॥

तत्र चित्तं शनैः स्थित्वा तन्मयं जायते ध्रुवम् ।
तन्मात्रां च ग्रसित्वा तन्मनःस्थानं समाविशेत् ॥ ११ ॥

संकल्पं च विकल्पं च तद्वृत्तिं निरसेद्ध्रुवम् ।
ततो बोद्धव्यरूपं तन्निश्चितं जायते मनः ॥ १२ ॥

बोद्धव्यं बुद्धिविज्ञानं जायते तच्चवै ध्रुवम् ।
विज्ञानं हीनविषयं चैतन्यं जायते ततः ॥ १३ ॥

मनो बुद्धिश्च विज्ञानं चित्तं चाहंकृतिस्तथा ।
भवेत् पञ्चात्मकमिदमन्तःकरणशब्दितम् ॥ १४ ॥

ततो भ्रूदेशतश्चोर्ध्वं सहस्रदलतोऽप्यधः ।
अहमस्मीति संवित्या शुद्धात्मानं च लक्षयेत् ॥ १५ ॥

अहंतायां निवृत्तायामस्मीतिद्योतते विभुः ।
अस्मितायां निवृत्तायां स्वरूपमवभासते ॥ १६ ॥

ज्ञातृज्ञेयाख्य सम्बन्धे ततः शान्तिमुपागते ।
गुणातीत पदं गत्वा न ततो विनिवर्त्तते ॥ १७ ॥

यतो निवर्त्तते नैव यत्रोच्चैः सुखमश्नुते ।
यत्र चात्येति त्रिपथं गुणातीतपदं हि तत् ॥ १८ ॥

एषा ते तत्त्वसंदोहसंस्था प्रोक्ता मया मुने ।
रहस्यं योगिनामेतज्ज्ञानिनां च विशेषतः ॥ १९ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



एकविंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अथतेऽहं प्रवक्ष्यामि ज्ञानं सिद्धान्तशब्दितम् ।
मार्गस्त्रेधापिपूर्वोक्तः फलसिद्ध्यै भवेद्ध्रुवम् ॥ १ ॥

कर्मोपास्तिज्ञानरूपस्तेषु भक्तिर्विशिष्यते ।
कर्मज्ञाने पृथक् तेन काण्डद्वये निबोधिते ॥ २ ॥

विशिष्ट रूपो वेदार्थो ह्यहमेव न संशयः ।
तत्साधनं भवेत्प्रेम तस्य साधनमीर्यते ॥ ३ ॥
तेषां वक्ता स्वयं देवोऽभ्यासपूर्वं निषेवितः ।
भक्तिशास्त्रेषु सर्वेषु तदेव प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥
तेषां वक्ता स्वयमहं मत्कलाश्च विशेषतः ।
भगवांश्च हयग्रीवो मत्स्यः श्रीकपिलस्तथा ॥ ५ ॥
वेदव्यासस्तथाऽऽत्रेयो भगवानृषभस्तथा ।
नारायणो रमाशेषौ ब्रह्मा चैव सनातनः ॥ ६ ॥
सनत्कुमारो भगवान् नारदश्च सुदर्शनः ।
इत्याद्या भक्तिशास्त्रस्य ह्याचार्यश्च प्रवर्त्तकाः ॥ ७ ॥
ममांशा मन्मतविदो भक्तप्रीतिविवर्द्धनाः ।
एतेषां मतमाज्ञाय श्रवणादिपरो भवेत् ॥ ८ ॥
मोहशास्त्राणि सर्वाणि तदाचारांश्च वर्जयेत् ।
छलयोगस्तथा सांख्यं वामं शाक्तं तथैव च ॥ ९ ॥
सिद्धान्तः कौलमार्गश्च कर्मासक्तश्च वैदिकः ।
इत्यादीन् वर्जयेन्मार्गान् लोकव्यामोहकारकान् ॥ १० ॥
मार्गोऽयं सर्वमार्गाणामुत्तमः परिकीर्तितः ।
यत्र पातभयं नास्ति प्रायश्चित्तं तथैव च ॥ ११ ॥
मोचकः सर्वथैवाहं सप्रमेयफलात्मकः ।
यत्र वर्णाश्रमाचाराः सर्वे नश्यन्ति कालतः ॥ १२ ॥
तत्र धर्मः कथं सिद्धयेत्कथं वा भवमोचनम् ।
तस्मात्सर्वेषु धर्मेषु वैदिके तान्त्रिकेऽपि च ॥ १३ ॥
विश्वासं चादरं त्यक्त्वा मम भक्तिं समाश्रयेत् ।
भक्तौ वापि विशेषेणमत्प्रपत्तिपरो भवेत् ॥ १४ ॥
नास्मिन् विरुद्धकरणं प्रकृत्या न विरुद्धयते ।
अहं प्रमाणं चैवात्र भवेन्मार्गः क्व चेदृशः ॥ १५ ॥
परन्तु मत्कृपाहीनः सर्वथा सुतरामपि ।
मार्गेऽस्मिन्नन्तरं[१] तस्मान्मत्कृपाहेतुतत्परः ॥ १६ ॥
भवेद् विद्वान् घोररूपं भवं यो निस्तितीर्षति ।
मत्सेवातत्परं प्राज्ञं रम्भादिदोषवर्जितम् ॥ १७ ॥
भक्तिशास्त्रैकतत्वज्ञं भजेत्सद्गुरुमादरात् ।
तदभावे च मन्मूर्त्तिं कृत्वा भावपरायणः ॥ १८ ॥

१ अन्तरम्–विघ्नबाहुल्यम्–टि० बड़ौ० ।

नित्यं परिचरेद्भक्त्या मद्रूपाभेदभावनात् ।
साकारं व्यापकं ब्रह्म मन्त्रस्यापि च वैभवम् ॥ १९ ॥
तस्मात्प्रपूजयेन्मूर्त्तिमुपचारैर्विधानतः ।
वस्त्रैर्विभूषणैश्चापि कृत्वा सुन्दरतां नयेत् ॥ २० ॥
अलंकुर्वीत सप्रेम स्थानतश्च स्वरूपतः ।
अनुकूलांश्च भार्यादीन् परिचर्यां प्रकारयेत् ॥ २१ ॥
उदासीनेषु वा तेषु स्वयं कार्यं स्वभावतः ।
प्रतिकूलेषु वा तेषु गृहमेव परित्यजेत् ॥ २२ ॥
तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतोरामपराङ्मुखाः ।
असौकार्यं जीविकाया एकं यामं तथा नयेत् ॥ २३ ॥
याममात्रकृता सेवा कुर्याद्दिनमबन्ध्यकम् ।
सहेत परुषं सर्वं सर्वेषां मत्प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत् ।
एतद्देहावसाने च कृतार्थः स्यान्न संशयः ॥ २५ ॥
इति निश्चित्य मनसा स मां परिचरेत्सदा ।
सर्वापेक्षां परित्यज्य कृत्वा चैव मतिं स्थिराम् ॥ २६ ॥
दृढविश्वासतो युक्त्या यथा सिध्येत्तथा चरेत् ।
वृथाऽऽलापं वृथा ध्यानं सर्वथैव परित्यजेत् ॥ २७ ॥
आत्मनो यत्प्रियं लोके तन्महयं विनिवेदयेत् ।
भक्तिश्रद्धोपपन्नं च दृढं निर्वृत्तिकारि च ॥ २८ ॥
उदकाहरणं वस्त्रक्षालनं मार्जनं तथा ।
लेपनं परिकर्मेत्यादिभिः सेवककर्मभिः ॥ २९ ॥
देह सम्बन्धिभिः स्वेशं नित्यं परिचरेन्नरः ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेष्वादरात्परिपूजयेत् ॥ ३० ॥
एवं स्वधर्मं कुर्वीत न निवर्त्तेत् स्वधर्मतः ।
इन्द्रियाणि निगृह्णीयात् स्वविरोधि परित्यजेत् ॥ ३१ ॥
धर्मार्थकाममोक्षेभ्यो भक्तिं चैव विशेषयेत् ।
एवं स्वधर्मनिष्ठेषु मदावेशो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
तथा साधनवर्गेषु भूयो निष्ठाविवर्द्धनम् ।
मयि सर्वात्मके नित्यं स्वस्व दैन्यं विभावयेत् ॥ ३३ ॥
विवर्जयेदहंकारं प्रतिष्ठां स्पृहयेन्न च ।
मद्गुणान् मम नामानि रूपकर्माङ्कितानि च ॥ ३४ ॥

चरित्राणि च भूरीणि नित्यं संकीर्तयेन्नरः।
जनानां च समक्षं वै शैवशास्त्रपरेःष्वपि ॥ ३५ ॥
निर्भयः स्वेन भावेन गृणन्मामेव मत्परः।
न कस्यापि स्पृहां कुर्यात् सर्वंभूमिपतेरपि ॥ ३६ ॥
रामेति जनसर्वस्वं मम नाम सदा वदेत्।
स्वीयं करोमि चैकेन द्वितीयेन सदा ऋणी ॥ ३७ ॥
यावन्तो ब्रह्मणोवक्त्रान्निर्गता वेदराशयः।
ते च सर्वेऽप्यधीताः स्युर्नाम्निनारायणात्मके ॥ ३८ ॥
नारायणस्य यावन्ति पुराणेष्वागमेषु च।
दिव्यनाम्नां सहस्राणि कीर्त्तयन् यत्फलं भवेत् ॥ ३९ ॥
ततः कोटिगुणं पुण्यं फलं दिव्यं मदात्मकम्।
लभते सहसा ब्रह्मन् सकृद् रामेति कीर्तनात् ॥ ४० ॥
ममातिवल्लभतमं मम नाम मदात्मकम्।
ततोऽपि वल्लभतमं सहजेति प्रियं वचः ॥ ४१ ॥
सहजानन्दिनी सीता सीता श्रीर्मोदिनी रमा।
स्वयंलक्ष्मीर्जानकीति नामाष्टकमुदीरयेत् ॥ ४२ ॥
मन्नामतोऽप्यतिफलं नरः प्राप्नोति वै मुने।
आविर्भावे चावतारे मयैव सह जन्मतः ॥ ४३ ॥
सहजानन्दिनीत्याख्यां गता सीता प्रिया मम।
सीता नाम्ना ततो व्याप्ता मयि मद्धर्मरूपिणी ॥ ४४ ॥
यथा हलस्यपद्धतिस्ततः सीतेति कीर्तिता।
सीता सुधारसमयीधारारूपरसात्मिका ॥ ४५ ॥
आनन्दयति विश्लेषात् सन्तप्तं भावरूपिणी।
श्रीः समाश्रीयतेसैव श्रुतिभिः स्मृतिभिस्तथा ॥ ४६ ॥
आगमैर्निगमैर्देवैर्मया च ब्रह्मणापि च।
सनातनेन धर्मेण छन्दोभिः प्रणवेन च ॥ ४७ ॥
तेन सा श्रीरिति प्रोक्ता सहजानन्दिनी प्रिया।
आविर्भावे स्फुटं नित्यं तिरोभावेऽपि चास्फुटम् ॥ ४८ ॥
कैशोरादिषु रूपेषु नित्यं मोदयते हिमाम्।
ततः सा मोदिनी शक्तिः सहजैव प्रकीर्तिता ॥ ४९ ॥
आनन्दरूपिणी नित्यं रमते ब्रह्णणि स्थिता।
तथा रमयते तं च सा रमा कीर्त्तिता बुधेः ॥ ५० ॥

लक्ष्योऽहं सर्वशास्त्राणां स्वयं सा लक्ष्मणं मम।
तेन चोक्ता स्वयं लक्ष्मीर्महालक्ष्मीश्च मे प्रिया॥५१॥
जानाति सैव मे रूपमक्षरात्परतः स्थितम्।
तेन सा जानकी नाम प्रोच्यते ब्रह्मकोविदैः॥५२॥
इति नामाष्टकं दिव्यं निरुक्तं तुभ्यमत्रिज।
य एतद्धारयेद् भक्त्या स मे श्रीरसिको मतः॥५३॥
मन्नाम कीर्त्तयेन्नित्यमेतैर्नामभिरङ्कितम्।
रामेति रामचन्द्रेति माङ्गल्यातनयेति च॥५४॥
प्रमोदवनचन्द्रेति रामेति रमणेति च।
तथा कुञ्जविहारीति रत्नाद्रिरसिकेति च॥५५॥
एतान्यपि च नामानि नित्यमष्टौ प्रकीर्तयेत्।
किं तस्य बहुभिश्चान्यैः साधनैः फलदायकैः॥५६॥
एतन्मुख्यतमं लोके साधनं नामकीर्तनम्।
अवृत्तिदर्परहितो विश्वस्तो भक्तिसंयुतः॥५७॥
आलस्यरहितो नित्यं नामकीर्तनमाचरेत्।
धनुर्बाणाङ्कितो भूत्वा पूजां नित्यं समाचरेत्॥५८॥
पद्माक्षतुलसीमालां ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा वहेत्।
एतद्धि विप्रलिङ्गं यदुपवीतादिधारणम्॥५९॥
एतद्वैष्णवलिङ्गं यदूर्ध्वपुण्ड्रादिधारणम्।
एकादशीव्रतं चैव तथा जन्माष्टमीव्रतम्॥६०॥
श्रीगुरोरुत्सवं चैव रामस्य नवमीं च मे।
जयन्तीं नरसिंहस्य तथा श्रीवामनव्रतम्॥६१॥
वर्जयेत्पूर्वसंयुक्तं मम संतोषसिद्धये।
अन्येऽपि चोत्सवा नित्यं कर्त्तव्या मम तुष्टिदाः।
एवं धर्मैर्गृहस्थानां प्रसीदामि द्रुतं मुने॥६२॥
वर्णाश्रमानामन्येषां नैष्ठिकब्रह्मचारिणाम्।
एष मुख्यतमो धर्मो नित्यं मत्प्रीतिकारकः॥६३॥
सिद्धः सर्वेषु वेदेषु तन्त्रेषु च शुभाध्वसु।
आचार्याणां सद्गुरूणामृषिष्वमृतसूक्तिषु॥६४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायामेकविंशोऽध्यायः॥२१॥

✲

द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

यतिश्च श्रद्धया युक्त एवमुक्तं समाश्रयेत् ।
धर्माणां परमो धर्मो यस्ते पूर्वं निरूपितः ॥ १ ॥

तस्य तीर्थविशेषेषु भवेत् पर्यटनं वरम् ।
एकस्थानाश्रयादेव विक्षेपो मनसो भवेत् ॥ २ ॥

भजने प्रतिबन्धश्च जनानामाग्रहस्तथा ।
परपीडादिकं चापि तेन पर्यटनं शुभम् ॥ ३ ॥

यथा यज्ञास्तथा तीर्थान्युपक्लृप्तानि विष्णुना ।
तदन्नान्नाधिकं भैक्षं प्रतिगृह्णीत सद्यतिः ॥ ४ ॥

नामानि च चरित्राणि पठेन्नित्यं गतत्रपः ।
एकाकी निःस्पृहः सन्तो मोहाहंकारवर्जितः ॥ ५ ॥

कुर्यात्पर्यटनं नित्यं मत्परो वीतकल्मषः ।
देहपातनपर्यन्तमव्यग्रं पर्यटेत्सदा ॥ ६ ॥

उत्तमोत्तमधर्मोऽसौ पूर्वमुत्तमं ईरितः ।
गृहं सर्वात्मना त्याज्यं संसृतिं निस्तितीर्षुभिः ॥ ७ ॥

न शक्यते चेत् संत्यक्तुं तन्मदर्थं निवेदयेत् ।
अहं हि घोरसंसारमोचको गृहमेधिनाम् ॥ ८ ॥

त्यजेत्सर्वात्मना चार्थं स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
मदर्थं सम्प्रयुञ्जीत सर्वानर्थनिवारणात् ॥ ९ ॥

न्यासिनां कठिनो धर्मः प्रतिकूलस्तथा क्वचित् ।
अतश्च सर्वदा भाव्यं भक्तेन गृहमेधिना ॥ १० ॥

इन्द्रियाणि हरन्त्येनं घनौघमिव वायवः ।
अतश्च सर्वदा भाव्यं वैष्णवैर्गृहमेधिभिः ॥ ११ ॥

पत्नीपुत्रास्तथापत्यं बान्धवाः सुहृदस्तथा ।
यत्र सर्वेऽपि मद्भक्ता ईदृशं दुर्लभं गृहम् ॥ १२ ॥

गृहमेध्याश्रमेतत्र तिष्ठन् मद्भक्तितत्परः ।
कर्माण्यपि प्रकुर्वाणो ह्यञ्जसा तरते नरः ॥ १३ ॥

सात्त्विकादिप्रभेदेन तेषां कर्माणि च त्रिधा ।
सात्त्विकं कर्मकुर्वाणे यथाश्रुतफलोत्सुकः ॥ १४ ॥

साधयेत्स्वर्गलोकं वा विमानस्त्रीसुखात्मकम् ।
पुण्ये क्षीणे पुण्यशेषं समादाय धरातले ॥ १५ ॥

समीचीनेषु लोकेषु जायते स्वेन कर्मणा ।
राजसं कर्मकुर्वाणो मेर्वादिषु सुखं लभेत् ॥ १६ ॥

तामसं कर्म कुर्वाणः पातालेषु सुखी भवेत् ।
राजसं सात्त्विकं कुर्वन् दैत्यस्वर्गानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

राजसं कर्म कुर्वाणश्चन्द्रलोके महीयते ।
पुण्यशेषे ततो वृष्टिद्वारा भूत्वात्र रूपभाक् ॥ १८ ॥

रेतोरूपं समास्थाय रेतोजन्मसु जायते ।
तामसं कर्म कुर्वाणो गन्धर्वेषु प्रजायते ॥ १९ ॥

तामसं सात्त्विकं कुर्वन् गन्धर्वप्रवरोभवेत् ।
क्षीणे पुण्ये पुनर्भूत्वा वृष्टिद्वारा स जन्मभाक् ॥ २० ॥

तामसं कर्म कुर्वाणः सर्पादिषु सुखी भवेत् ।
एवं त्रयी धर्मपराः पुनरावृत्तिमाप्नुयुः ॥ २१ ॥

देवताश्चेदुपासीत आजन्म नियतव्रतः ।
तत्तत्सायुज्यमात्रं तु तस्य स्यात्परमं फलम् ॥ २२ ॥

एवं कर्मगतिर्ब्रह्मन् ब्रह्मणोऽपि दुरत्यया ।
दुर्बोधा चैव सर्वेषां फले चाल्पत्वकारिणी ॥ २३ ॥

मदर्पितं पुनः तत् स्यान्मद्भक्त्यङ्गं न संशयः ।
ज्ञानस्य कर्मणश्चापि तथोपास्तेरवद्यताम् ॥ २४ ॥

भक्तिर्हरतिमन्निष्ठा सद्य एव न संशयः ।
तत्तत्सर्वं प्रकुर्वाणोऽप्याश्रयेन्मामनन्यधीः ॥ २५ ॥

केवलं कर्मनिष्ठानां प्रवाहपतनं भवेत् ।
तस्मादुद्धर्तुमात्मानं मत्प्रेमपरमो भवेत् ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे-
आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥



त्रयोविंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

त्वमेव परमं ब्रह्म सदसत्परमव्ययम् ।
प्रकृतेः परमो दिव्यः पुरुषश्च ततः परम् ॥ १ ॥

अक्षरं ब्रह्म यत्पूर्णं तत्ते धाम परं पदम् ।
ततोऽपि परमः पूर्णस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥

त्वत्तः परतरो नान्यः पूर्णानन्दैकविग्रहात् ।
रसात्मकं त्वत्स्वरूपं रस आनन्द ईरितः ॥ ३ ॥

परन्तु मानुषं रूपं राजलीलां च पालयन् ।
न ज्ञायते परं ब्रह्म पुरुषैः प्राकृतैरिह ॥ ४ ॥

केचिद्द्विषन्ति कलयन्ति परं सखाय-
मन्ये यितेति च विदन्ति परे सुतेति ।
कान्तेति केऽपि कलयन्त्यबला जनास्त्वा-
मित्थं भवे रमसि मानुषभावमेत्य ॥ ५ ॥

तस्य ते रूपमानन्दमात्रं सुन्दरविग्रहम् ।
नेति नेति पुराविद्भिर्गदितं ब्रह्मणः परम् ॥ ६ ॥

कथं ज्ञेयं रामचन्द्र दृष्ट्वाद्धानुभवात्मकम् ।
न हि प्राकृतजीवैस्त्वं याथातथ्येन दृष्यसे ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

अहं महद् ब्रह्मणि वीक्षणात्मकं बीजं निधायाद्यममोघरूपम् ।
गर्भं दधाम्यस्य प्रभवस्ततोऽभूच्चराचरस्याखिलभौतिकस्य ॥ ८ ॥

ममांशशक्त्या पुरुषः परोऽभून्नारायणः शङ्खगदादिपाणिः ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्ततोऽभूद्यन्नाभिपद्मे भगवान् विरिंचिः ॥ ९ ॥

प्रादुरासीत्ततो मेधा वैदिकी ब्रह्मणो हृदि ।
स जगाद ततो वेदांश्चतुरः प्रणवादिकान् ॥ १० ॥

शब्दब्रह्ममयी सृष्टिः प्रादुरासीत्तदात्मिका ।
नामरूपप्रपञ्चोऽभूत्ततोऽतिविपुलः स्फुटः ॥ ११ ॥

अहं यज्ञः क्रतुरहमहं सूर्याग्निचन्द्रमाः ।
अहं विद्युदहं वर्षमहं वायुर्घनाशनः ॥ १२ ॥

अहं स्वाहा स्वधाकारश्चाहमेव दिवौकसः ।
अहमेव पितॄणां च गणो धूमाज्यपायिनाम् ॥ १३ ॥

अहं विधिर्नामध्येयान्यहं मन्त्रगणः पृथक् ।
अर्थवादश्चाहमेव प्रयोगोऽहं क्रियात्मकः ॥ १४ ॥

अहं विश्वमहं चैव विश्वेशो विश्वकारकः ।
अहं विश्वस्य संहर्ता कल्पोऽहं प्रतिसर्गकः ॥ १५ ॥

उपादानं निमित्तं वाप्यहमेव सदा मुने ।
अक्षरात्मा ह्युपादानं निमित्तं पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

अक्षरेण ततां सृष्टिं क्रीडयाम्यहमिच्छया ।
मम देहे ततं विश्वं प्रकृतिः पुरुषस्तथा ॥ १७ ॥

ब्रह्माद्याः पुरुषांशाश्चशब्दोऽर्थश्च विशेषतः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाश्च देवताः ॥ १८ ॥

एवं मम शरीरान्तः पश्यन्तो दिव्यचक्षुषा ।
भीषणं मां प्रपश्यन्ति कलिकालं परात्परम् ॥ १९ ॥

भीषया चैव वर्तन्ते ममैवाज्ञा वषानुगाः ।
सामन्ता लोकसामन्तास्तथा कल्पायुषः सुराः ॥ २० ॥

केचित्तु कालरूपं मां पश्यन्ति पुरुषं परे ।
अमृतं मृत्युमेवापि बिभ्रच्छक्त्या स्वविग्रहे ॥ २१ ॥

अपरे लीलया पूर्णं रसानन्दैकविग्रहम् ।
पश्यन्ति रसकेलीनामाश्रयं पुरुषोत्तमम् ॥ २२ ॥

एवं यथायथं स्वेच्छावशगो लोकलोचनः ।
मद्भक्तांश्च विशेषेण रमयामि रमामि च ॥ २३ ॥

मय्यात्माशमतां याते प्रपञ्चस्य लयो भवेत् ।
अन्तरङ्गस्य शक्त्यैव तदा ब्रह्मन् रमाम्यहम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥



चतुर्विंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

प्रयच्छमे परं चक्षुस्त्वत्स्वरूपैकदर्शकम् ।
दिव्यं ज्ञानमयं राम कृपया पुरुषोत्तम ॥ १ ॥

प्रपन्नं मां विजानीहि पादयोस्तव राघव ।
यथा त्वां परिपश्येयं तथा कुरु रमापते ॥ २ ॥

त्वत्तोऽन्यस्त्वत्स्वरूपस्य ज्ञापको नैव विद्यते ।
तेन त्वां शरणं यातो भीतो घोरभवार्णवात् ॥ ३ ॥

अयं हि कालो दुर्वेगो विना त्वच्छरणागतिम् ।
प्रणाशयत्यतो मां त्वं त्रायस्व निजकिंकरम् ॥ ४ ॥

पुरा वसिष्ठादिषु संगतेषु ब्रह्मर्षिवर्येषु विरंचिलोके ।
अन्योन्यवादे खलु जायमाने रामेति सारं परमश्रौषमुच्चैः ॥ ५ ॥

ततस्त्वमेवासि परावरेश्वरो विभुश्चिदानन्दमयैकविग्रहः ।
पश्यामि येन परमं स्वरूपं तदेव मे दिव्यचक्षुः प्रदेहि ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विज्ञापितो रामो भुशुण्ड परमर्षिणा ।
स्वरूपं दर्शयामास सर्वश्रुतिशिरोगतम् ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

पश्य मे मुनिशार्दूल स्वरूपं दिव्यचक्षुषा ।
मया तुभ्यं प्रपन्नाय दत्तेन ज्ञानरूपिणा ॥ ८ ॥

पुरुषं च परं चैव पुरुषादपि पश्य माम् ।
सर्वाश्चर्यमयं ब्रह्मन् प्रपञ्चं यत्र द्रक्ष्यसि ॥ ९ ॥

ततोऽसौ रामचन्द्रस्य शरीरे सर्वमपश्यत् ।
भूतधात्रीं साब्धिवर्षद्वीपपर्वतकाननाम् ॥ १० ॥

वियच्च विस्तृतं लोकैर्ब्रह्मादिसुरसंश्रयैः ।
ज्योतिश्चक्रं वसून् वायूनग्नीन् वरुणमेव च ॥ ११ ॥

स्वस्वलोकसमेतांश्च सर्वान् देवगणानपि ।
शेषं पातालभागांश्च दैत्यस्वर्गान् पृथग्विधान् ॥ १२ ॥

कालं दश दिशश्चैव प्रकृतिं पुरुष स्तथा ।
एवं विधाश्च पुरुषाः शरीरे यस्यकोटिशः ॥ १३ ॥

स तं पुरुषधौरेयं रामदेहे व्यपश्यत् ।
सहस्रशिरसं देवं तपन्तं विश्वतोमुखम् ॥ १४ ॥

किरीटिनं कुण्डलरत्नभासा सहस्रसूर्येन्दुगणं जयन्तम् ।
पीताम्बरं शङ्खचक्रे गदाब्जे दधानमीशं कमलासखायम् ॥ १५ ॥

सहस्रबाहुं च सहस्रनेत्रं सहस्रपादोदरवक्त्रकर्णम् ।
शब्दार्थसृष्टिप्रभवं पुराणं सहस्रशाखागणवेदगानम् ॥ १६ ॥
संस्तूयमानं मुनिभिः सुरौघैरणोच्यवर्णं घनसंघवर्णम् ।
तथेन्दुवर्णं महसा विभक्तं कूटं परं ब्रह्मविदेकरूपम् ॥ १७ ॥
कूटस्थमुग्रं विपुलं च कालं करालकायं विलसत्कोटिदंष्ट्रम् ।
प्रभूततेजो विशदाकृतिं विभुं विभासितं ज्वालमालापरीतम् ॥ १८ ॥
विरजां च नदीं पूर्णां ब्रह्माण्डगणकोटिभिः ।
अपश्यत्तस्य देवस्य दण्डेन खलु कालितैः ॥ १९ ॥
कालग्रस्तानि तत्रैव भुवनानि चतुर्दश ।
अपश्यच्च ततोऽप्युच्चैरक्षरं परमं पदम् ॥ २० ॥
पूर्णानन्दघनं धाम ज्ञानगम्यं सुयोगिभिः ।
त्रिपाद्ब्रह्मेति निर्दिष्टं सगुणं निर्गुणं तथा ॥ २१ ॥
स्थूलं सूक्ष्मं विभुं परं श्रीराममहसाञ्चितम् ।
अवतारांस्तथा सर्वांश्चतुर्विंशदशादिभिः ॥ २२ ॥
अनेकधा ह्यसंख्यातान् दिव्यलीलाविनोदिनः ।
अक्षरात्परतोऽपश्यदवतारेभ्य एव च ॥ २३ ॥
रामं त्रैलोक्यसुभगं सहजानन्दिनीयुतम् ।
प्रमोदवनमध्यस्थं दिव्यकान्ताकदम्बकैः ॥ २४ ॥
क्रीडन्तं रासलीलाभिर्नटवेशं किरीटिनम् ।
बर्हिरत्नावलीभूषामुद्रामणिविभूषितम् ॥ २५ ॥
युगलं कामिनीवृन्दमध्यमण्डलवर्तिनम् ।
नटवेशोचितमहारङ्गकच्छविरोचिभिः ॥ २६ ॥
काञ्चीगुणैर्भासमानं दिव्यवेणुरवामृतम् ।
वर्षन्तं प्रावृषेण्याभं विदद्युत्पीताम्बरावृतम् ॥ २७ ॥
पीताम्बरप्रभामध्योच्छनच्छ्रीप्रभया युतम् ।
प्रमोदवनमानन्दस्वरूपं पर्यपश्यत ॥ २८ ॥
रत्नाद्रिं सरयूं चैव रामकुण्डं मनोहरम् ।
सहजायास्तथा कुण्डं तथा रामवनं महत् ॥ २९ ॥
चतुर्विंशवनालीं च रामकुञ्जं तदन्तरे ।
तत्र दिव्यसखीयूथं गायन्तं रामसद्गुणान् ॥ ३० ॥
आभीरराजं सुखितं प्रसन्नां माङ्गल्यकां पितरौ गोकुलेन्दोः ।
अनेकगोपेन्द्रसमूहजुष्टं श्रीनन्दनं राजिनीं चैव देवीम् ॥ ३१ ॥

चरित्राणि च भूरीणि नित्यं संकीर्तयेन्नरः ।
जनानां च समक्षं वै शैवशास्त्रपरेःष्वपि ।। ३५ ।।
निर्भयः स्वेन भावेन गृणन्मामेव मत्परः ।
न कस्यापि स्पृहां कुर्यात् सर्वंभूमिपतेरपि ।। ३६ ।।
रामेति जनसर्वस्वं मम नाम सदा वदेत् ।
स्वीयं करोमि चैकेन द्वितीयेन सदा ऋणी ।। ३७ ।।
यावन्तो ब्रह्मणोवक्त्रान्निर्गता वेदराशयः ।
ते च सर्वेऽप्यधीताः स्युर्नाम्निनारायणात्मके ।। ३८ ।।
नारायणस्य यावन्ति पुराणेष्वागमेषु च ।
दिव्यनाम्नां सहस्राणि कीर्त्तयन् यत्फलं भवेत् ।। ३९ ।।
ततः कोटिगुणं पुण्यं फलं दिव्यं मदात्मकम् ।
लभते सहसा ब्रह्मन् सकृद् रामेति कीर्तनात् ।। ४० ।।
ममातिवल्लभतमं मम नाम मदात्मकम् ।
ततोऽपि वल्लभतमं सहजेति प्रियं वचः ।। ४१ ।।
सहजानन्दिनी सीता सीता श्रीर्मोदिनी रमा ।
स्वयंलक्ष्मीर्जानकीति नामाष्टकमुदीरयेत् ।। ४२ ।।
मन्नामतोऽप्यतिफलं नरः प्राप्नोति वै मुने ।
आविर्भावे चावतारे मयैव सह जन्मतः ।। ४३ ।।
सहजानन्दिनीत्याख्यां गता सीता प्रिया मम ।
सीता नाम्ना ततो व्याप्ता मयि मद्धर्मरूपिणी ।। ४४ ।।
यथा हलस्यपद्धतिस्ततः सीतेति कीर्तिता ।
सीता सुधारसमयीधारारूपरसात्मिका ।। ४५ ।।
आनन्दयति विश्लेषात् सन्तप्तं भावरूपिणी ।
श्रीः समाश्रीयतेसैव श्रुतिभिः स्मृतिभिस्तथा ।। ४६ ।।
आगमैर्निगमैर्देवैर्मया च ब्रह्मणापि च ।
सनातनेन धर्मेण छन्दोभिः प्रणवेन च ।। ४७ ।।
तेन सा श्रीरिति प्रोक्ता सहजानन्दिनी प्रिया ।
आविर्भावे स्फुटं नित्यं तिरोभावेऽपि चास्फुटम् ।। ४८ ।।
कैशोरादिषु रूपेषु नित्यं मोदयते हिमाम् ।
ततः सा मोदिनी शक्तिः सहजेव प्रकीर्तिता ।। ४९ ।।
आनन्दरूपिणी नित्यं रमते ब्रह्णि स्थिता ।
तथा रमयते तं च सा रमा कीर्त्तिता बुधैः ।। ५० ।।

लक्ष्योऽहं सर्वशास्त्राणां स्वयं सा लक्ष्मणं मम।
तेन चोक्ता स्वयं लक्ष्मीर्महालक्ष्मीश्च मे प्रिया ॥ ५१ ॥
जानाति सैव मे रूपमक्षरात्परतः स्थितम्।
तेन सा जानकी नाम प्रोच्यते ब्रह्मकोविदैः ॥ ५२ ॥
इति नामाष्टकं दिव्यं निरुक्तं तुभ्यमत्रिज।
य एतद्धारयेद् भक्त्या स मे श्रीरसिको मतः ॥ ५३ ॥
मन्नाम कीर्त्तयेन्नित्यमेतैर्नामभिरङ्कितम्।
रामेति रामचन्द्रेति माङ्गल्यातनयेति च ॥ ५४ ॥
प्रमोदवनचन्द्रेति रामेति रमणेति च।
तथा कुञ्जविहारीति रत्नाद्रिरसिकेति च ॥ ५५ ॥
एतान्यपि च नामानि नित्यमष्टौ प्रकीर्तयेत्।
किं तस्य बहुभिश्चान्यैः साधनैः फलदायकैः ॥ ५६ ॥
एतन्मुख्यतमं लोके साधनं नामकीर्तनम्।
अवृत्तिदर्परहितो विश्वस्तो भक्तिसंयुतः ॥ ५७ ॥
आलस्यरहितो नित्यं नामकीर्तनमाचरेत्।
धनुर्बाणाङ्कितो भूत्वा पूजां नित्यं समाचरेत् ॥ ५८ ॥
पद्माक्षतुलसीमालां ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा वहेत्।
एतद्धि विप्रलिङ्गं यदुपवीतादिधारणम् ॥ ५९ ॥
एतद्वैष्णवलिङ्गं यदूर्ध्वपुण्ड्रादिधारणम्।
एकादशीव्रतं चैव तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥ ६० ॥
श्रीगुरोरुत्सवं चैव रामस्य नवमीं च मे।
जयन्तीं नरसिंहस्य तथा श्रीवामनव्रतम् ॥ ६१ ॥
वर्जयेत्पूर्वसंयुक्तं मम संतोषसिद्धये।
अन्येऽपि चोत्सवा नित्यं कर्त्तव्या मम तुष्टिदाः।
एवं धर्मैर्गृहस्थानां प्रसीदामि द्रुतं मुने ॥ ६२ ॥
वर्णाश्रमानामन्येषां नैष्ठिकब्रह्मचारिणाम्।
एष मुख्यतमो धर्मो नित्यं मत्प्रीतिकारकः ॥ ६३ ॥
सिद्धः सर्वेषु वेदेषु तन्त्रेषु च शुभाध्वसु।
आचार्याणां सद्गुरूणामृषिष्वमृतसूक्तिषु ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

✲

द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

यतिश्च श्रद्धया युक्त एवमुक्तं समाश्रयेत् ।
धर्माणां परमो धर्मो यस्ते पूर्वं निरूपितः ॥ १ ॥

तस्य तीर्थविशेषेषु भवेत् पर्यटनं वरम् ।
एकस्थानाश्रयादेव विक्षेपो मनसो भवेत् ॥ २ ॥

भजने प्रतिबन्धश्च जनानामाग्रहस्तथा ।
परपीडादिकं चापि तेन पर्यटनं शुभम् ॥ ३ ॥

यथा यज्ञास्तथा तीर्थान्युपक्लृप्तानि विष्णुना ।
तदन्नान्नाधिकं भैक्षं प्रतिगृह्णीत सद्यतिः ॥ ४ ॥

नामानि च चरित्राणि पठेन्नित्यं गतत्रपः ।
एकाकी निःस्पृहः सन्तो मोहाहंकारवर्जितः ॥ ५ ॥

कुर्यात्पर्यटनं नित्यं मत्परो वीतकल्मषः ।
देहपातनपर्यन्तमव्यग्रं पर्यटेत्सदा ॥ ६ ॥

उत्तमोत्तमधर्मोऽसौ पूर्वमुत्तमं ईरितः ।
गृहं सर्वात्मना त्याज्यं संसृतिं निस्तितीर्षुभिः ॥ ७ ॥

न शक्यते चेत् संत्यक्तुं तन्मदर्थं निवेदयेत् ।
अहं हि घोरसंसारमोचको गृहमेधिनाम् ॥ ८ ॥

त्यजेत्सर्वात्मना चार्थं स चेत्यक्तुं न शक्यते ।
मदर्थं सम्प्रयुञ्जीत सर्वानर्थनिवारणात् ॥ ९ ॥

न्यासिनां कठिनो धर्मः प्रतिकूलस्तथा क्वचित् ।
अतश्च सर्वदा भाव्यं भक्तेन गृहमेधिना ॥ १० ॥

इन्द्रियाणि हरन्त्येनं घनौघमिव वायवः ।
अतश्च सर्वदा भाव्यं वैष्णवैर्गृहमेधिभिः ॥ ११ ॥

पत्नीपुत्रास्तथापत्यं बान्धवाः सुहृदस्तथा ।
यत्र सर्वेऽपि मद्भक्ता ईदृशं दुर्लभं गृहम् ॥ १२ ॥

गृहमेध्याश्रमेतत्र तिष्ठन् मद्भक्तितत्परः ।
कर्माण्यपि प्रकुर्वाणो ह्यञ्जसा तरते नरः ॥ १३ ॥

सात्त्विकादिप्रभेदेन तेषां कर्माणि च त्रिधा ।
सात्त्विकं कर्मकुर्वाणे यथाश्रुतफलोत्सुकः ॥ १४ ॥

साधयेत्स्वर्गलोकं वा विमानस्त्रीसुखात्मकम् ।
पुण्ये क्षीणे पुण्यशेषं समादाय धरातले ॥ १५ ॥

समीचीनेषु लोकेषु जायते स्वेन कर्मणा ।
राजसं कर्मकुर्वाणो मेर्वादिषु सुखं लभेत् ॥ १६ ॥

तामसं कर्म कुर्वाणः पातालेषु सुखी भवेत् ।
राजसं सात्त्विकं कुर्वन् दैत्यस्वर्गानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

राजसं कर्म कुर्वाणश्चन्द्रलोके महीयते ।
पुण्यशेषे ततो वृष्टिद्वारा भूत्वात्र रूपभाक् ॥ १८ ॥

रेतोरूपं समास्थाय रेतोजन्मसु जायते ।
तामसं कर्म कुर्वाणो गन्धर्वेषु प्रजायते ॥ १९ ॥

तामसं सात्त्विकं कुर्वन् गन्धर्वप्रवरोभवेत् ।
क्षीणे पुण्ये पुनर्भूत्वा वृष्टिद्वारा स जन्मभाक् ॥ २० ॥

तामसं कर्म कुर्वाणः सर्पादिषु सुखी भवेत् ।
एवं त्रयी धर्मपराः पुनरावृत्तिमाप्नुयुः ॥ २१ ॥

देवताश्चेदुपासीत आजन्म नियतव्रतः ।
तत्तत्सायुज्यमात्रं तु तस्य स्यात्परमं फलम् ॥ २२ ॥

एवं कर्मगतिर्ब्रह्मन् ब्रह्मणोऽपि दुरत्यया ।
दुर्बोधा चैव सर्वेषां फले चाल्पत्वकारिणी ॥ २३ ॥

मदर्पितं पुनः तत् स्यान्मद्भक्त्यङ्गं न संशयः ।
ज्ञानस्य कर्मणश्चापि तथोपास्तेरवद्यताम् ॥ २४ ॥

भक्तिर्हरतिमन्निष्ठा सद्य एव न संशयः ।
तत्तत्सर्वं प्रकुर्वाणोऽप्याश्रयेन्मामनन्यधीः ॥ २५ ॥

केवलं कर्मनिष्ठानां प्रवाहपतनं भवेत् ।
तस्मादुद्धर्तुमात्मानं मत्प्रेमपरमो भवेत् ॥ २६ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे-
आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥



त्रयोविंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

त्वमेव परमं ब्रह्म सदसत्परमव्ययम् ।
प्रकृतेः परमो दिव्यः पुरुषश्च ततः परम् ॥ १ ॥

अक्षरं ब्रह्म यत्पूर्णं तत्ते धाम परं पदम् ।
ततोऽपि परमः पूर्णस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥

त्वत्तः परतरो नान्यः पूर्णानन्दैकविग्रहात् ।
रसात्मकं त्वत्स्वरूपं रस आनन्द ईरितः ॥ ३ ॥

परन्तु मानुषं रूपं राजलीलां च पालयन् ।
न ज्ञायते परं ब्रह्म पुरुषैः प्राकृतैरिह ॥ ४ ॥

केचिद्द्विषन्ति कलयन्ति परं सखाय-
मन्ये यितेति च विदन्ति परे सुतेति ।
कान्तेति केऽपि कलयन्त्यबला जनास्त्वा-
मित्थं भवे रमसि मानुषभावमेत्य ॥ ५ ॥

तस्य ते रूपमानन्दमात्रं सुन्दरविग्रहम् ।
नेति नेति पुराविद्भिर्गदितं ब्रह्मणः परम् ॥ ६ ॥

कथं ज्ञेयं रामचन्द्र दृष्टाद्धानुभवात्मकम् ।
न हि प्राकृतजीवैस्त्वं याथातथ्येन दृष्यसे ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

अहं महद् ब्रह्मणि वीक्षणात्मकं बीजं निधायाद्यममोघरूपम् ।
गर्भं दधाम्यस्य प्रभवस्ततोऽभूच्चराचरस्याखिलभौतिकस्य ॥ ८ ॥

ममांशशक्त्या पुरुषः परोऽभून्नारायणः शङ्खगदादिपाणिः ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्ततोऽभूद्यन्नाभिपद्मे भगवान् विरंचिः ॥ ९ ॥

प्रादुरासीत्ततो मेधा वैदिकी ब्रह्मणो हृदि ।
स जगाद ततो वेदांश्चतुरः प्रणवादिकान् ॥ १० ॥

शब्दब्रह्ममयी सृष्टिः प्रादुरासीत्तदात्मिका ।
नामरूपप्रपञ्चोऽभूत्ततोऽतिविपुलः स्फुटः ॥ ११ ॥

अहं यज्ञः क्रतुरहमहं सूर्याग्निचन्द्रमाः ।
अहं विद्युदहं वर्षमहं वायुर्घनाशनः ॥ १२ ॥

अहं स्वाहा स्वधाकारश्चाहमेव दिवौकसः ।
अहमेव पितॄणां च गणो धूमाज्यपायिनाम् ॥ १३ ॥

अहं विधिर्नामधेयान्यहं मन्त्रगणः पृथक् ।
अर्थवादश्चाहमेव प्रयोगोऽहं क्रियात्मकः ॥ १४ ॥

अहं विश्वमहं चैव विश्वेशो विश्वकारकः ।
अहं विश्वस्य संहर्ता कल्पोऽहं प्रतिसर्गकः ॥ १५ ॥

उपादानं निमित्तं वाप्यहमेव सदा मुने ।
अक्षरात्मा ह्युपादानं निमित्तं पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

अक्षरेण ततां सृष्टिं क्रीडयाम्यहमिच्छया ।
मम देहे ततं विश्वं प्रकृतिः पुरुषस्तथा ॥ १७ ॥

ब्रह्माद्याः पुरुषांशाश्चशब्दोऽर्थश्च विशेषतः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाश्च देवताः ॥ १८ ॥

एवं मम शरीरान्तः पश्यन्तो दिव्यचक्षुषा ।
भीषणं मां प्रपश्यन्ति कलिकालं परात्परम् ॥ १९ ॥

भीषया चैव वर्तन्ते ममैवाज्ञा वषानुगाः ।
सामन्ता लोकसामन्तास्तथा कल्पायुषः सुराः ॥ २० ॥

केचित्तु कालरूपं मां पश्यन्ति पुरुषं परे ।
अमृतं मृत्युमेवापि बिभ्रच्छक्त्या स्वविग्रहे ॥ २१ ॥

अपरे लीलया पूर्णं रसानन्दैकविग्रहम् ।
पश्यन्ति रसकेलीनामाश्रयं पुरुषोत्तमम् ॥ २२ ॥

एवं यथायथं स्वेच्छावशगो लोकलोचनः ।
मद्भक्तांश्च विशेषेण रमयामि रमामि च ॥ २३ ॥

मय्यात्माशमतां याते प्रपञ्चस्य लयो भवेत् ।
अन्तरङ्गस्य शक्त्यैव तदा ब्रह्मन् रमाम्यहम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥



चतुर्विंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

प्रयच्छमे परं चक्षुस्त्वत्स्वरूपैकदर्शकम् ।
दिव्यं ज्ञानमयं राम कृपया पुरुषोत्तम ॥ १ ॥

प्रपन्नं मां विजानीहि पादयोस्तव राघव ।
यथा त्वां परिपश्येयं तथा कुरु रमापते ॥ २ ॥

त्वत्तोऽन्यस्त्वत्स्वरूपस्य ज्ञापको नैव विद्यते ।
तेन त्वां शरणं यातो भीतो घोरभवार्णवात् ॥ ३ ॥

अयं हि कालो दुर्वेगो विना त्वच्छरणागतिम् ।
प्रणाशयत्यतो मां त्वं त्रायस्व निजकिंकरम् ॥ ४ ॥

पुरा वसिष्ठादिषु संगतेषु ब्रह्मर्षिवर्येषु विरंचिलोके ।
अन्योन्यवादे खलु जायमाने रामेति सारं परमश्रौषमुच्चैः ॥ ५ ॥

ततस्त्वमेवासि परावरेश्वरो विभुश्चिदानन्दमयैकविग्रहः ।
पश्यामि येन परमं स्वरूपं तदेव मे दिव्यचक्षुः प्रदेहि ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विज्ञापितो रामो भुशुण्ड परमर्षिणा ।
स्वरूपं दर्शयामास सर्वश्रुतिशिरोगतम् ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच

पश्य मे मुनिशार्दूल स्वरूपं दिव्यचक्षुषा ।
मया तुभ्यं प्रपन्नाय दत्तेन ज्ञानरूपिणा ॥ ८ ॥

पुरुषं च परं चैव पुरुषादपि पश्य माम् ।
सर्वाश्चर्यमयं ब्रह्मन् प्रपञ्चं यत्र द्रक्ष्यसि ॥ ९ ॥

ततोऽसौ रामचन्द्रस्य शरीरे सर्वमपश्यत् ।
भूतधात्रीं साब्धिवर्षद्वीपपर्वतकाननाम् ॥ १० ॥

वियच्च विस्तृतं लोकैर्ब्रह्मादिसुरसंश्रयैः ।
ज्योतिश्चक्रं वसून् वायूनग्नीन् वरुणमेव च ॥ ११ ॥

स्वस्वलोकसमेतांश्च सर्वान् देवगणानपि ।
शेषं पातालभागांश्च दैत्यस्वर्गान् पृथग्विधान् ॥ १२ ॥

कालं दश दिशश्चैव प्रकृतिं पुरुष स्तथा ।
एवं विधाश्च पुरुषाः शरीरे यस्यकोटिशः ॥ १३ ॥

स तं पुरुषधौरेयं रामदेहे व्यपश्यत् ।
सहस्रशिरसं देवं तपन्तं विश्वतोमुखम् ॥ १४ ॥

किरीटिनं कुण्डलरत्नभासा सहस्रसूर्येन्दुगणं जयन्तम् ।
पीताम्बरं शङ्खचक्रे गदाब्जे दधानमीशं कमलासखायम् ॥ १५ ॥

सहस्रबाहुं च सहस्रनेत्रं सहस्रपादोदरवक्त्रकर्णम् ।
शब्दार्थसृष्टिप्रभवं पुराणं सहस्रशाखागणवेदगानम् ॥ १६ ॥
संस्तूयमानं मुनिभिः सुरौघैरणोच्यवर्णं घनसंघवर्णम् ।
तथेन्दुवर्णं महसा विभक्तं कूटं परं ब्रह्मविदेकरूपम् ॥ १७ ॥

कूटस्थमुग्रं विपुलं च कालं करालकायं विलसत्कोटिदंष्ट्रम् ।
प्रभूततेजो विशदाकृतिं विभुं विभासितं ज्वालमालापरीतम् ॥ १८ ॥

विरजां च नदीं पूर्णां ब्रह्माण्डगणकोटिभिः ।
अपश्यत्तस्य देवस्य दण्डेन खलु कालितैः ॥ १९ ॥

कालग्रस्तानि तत्रैव भुवनानि चतुर्दश ।
अपश्यच्च ततोऽप्युच्चैरक्षरं परमं पदम् ॥ २० ॥

पूर्णानन्दघनं धाम ज्ञानगम्यं सुयोगिभिः ।
त्रिपाद्ब्रह्मेति निर्दिष्टं सगुणं निर्गुणं तथा ॥ २१ ॥

स्थूलं सूक्ष्मं विभुं परं श्रीराममहसाञ्चितम् ।
अवतारांस्तथा सर्वांश्चतुर्विंशदशादिभिः ॥ २२ ॥

अनेकधा ह्यसंख्यातान् दिव्यलीलाविनोदिनः ।
अक्षरात्परतोऽपश्यदवतारेभ्य एव च ॥ २३ ॥

रामं त्रैलोक्यसुभगं सहजानन्दिनीयुतम् ।
प्रमोदवनमध्यस्थं दिव्यकान्ताकदम्बकैः ॥ २४ ॥

क्रीडन्तं रासलीलाभिर्नटवेशं किरीटिनम् ।
बर्हिरत्नावलीभूषामुद्रामणिविभूषितम् ॥ २५ ॥

युगलं कामिनीवृन्दमध्यमण्डलवर्तिनम् ।
नटवेशोचितमहारङ्गकच्छविरोचिभिः ॥ २६ ॥

काञ्चीगुणैर्भासमानं दिव्यवेणुरवामृतम् ।
वर्षन्तं प्रावृषेण्याभं विद्युत्पीताम्बरावृतम् ॥ २७ ॥

पीताम्बरप्रभामध्योच्छनच्छ्रीप्रभया युतम् ।
प्रमोदवनमानन्दस्वरूपं पर्यपश्यत ॥ २८ ॥

रत्नाद्रिं सरयूं चैव रामकुण्डं मनोहरम् ।
सहजायास्तथा कुण्डं तथा रामवनं महत् ॥ २९ ॥

चतुर्विंशवनालीं च रामकुञ्जं तदन्तरे ।
तत्र दिव्यसखीयूथं गायन्तं रामसद्गुणान् ॥ ३० ॥
आभीरराजं सुखितं प्रसन्नां माङ्गल्यकां पितरौ गोकुलेन्दोः ।
अनेकगोपेन्द्रसमूहजुष्टं श्रीनन्दनं राजिनीं चैव देवीम् ॥ ३१ ॥

सहजां तत्सुतां रामां श्रीभूलीलादिरूपिणीम् ।
समस्तगुणसम्पन्नां राधिकां रासकेलिनीम् ॥ ३२ ॥

लीलापरिकरं सर्वं नित्यरूपे व्यवस्थितम् ।
एकं रामं च वै पूर्णं दृष्ट्वास्तौषीन्महामुनिः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥



पञ्चविंशोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

नमो नमस्ते पुरुषात्मने विभो तस्यापि धौरेयमथो नमाम्यहम् ।
तस्याश्रयं चापि भवन्तमीश्वरं स्तवैः सुकल्पैर्वचनैश्चपौरुषैः ॥ १ ॥

धन्योऽस्म्यहं नाथ तवात्यनुग्रहाद्धन्या कृपा ते करुणार्णवस्य ।
यया स्वरूपं तव रामचन्द्र द्रष्टास्म्यहं ब्रह्मशिवाद्यदृश्यम् ॥ २ ॥

अहो विचित्रं भगवंस्तेवदृशं स्वरूपमद्धा परितः प्रकाशते ।
अवाङ्मनोगोचरमिच्छयैव ते प्रमोदलीलाधिप दृश्यतां गतम् ॥ ३ ॥

अमी सहस्रार्कमरीचिभासो वर्षन्ति पीयूषमहो दृशोर्मे ।
न चेदृशी कापि पुरा परा मे दृष्टा प्रभा तेन विचित्रितोऽस्मि ॥ ४ ॥

अमी प्रभो ते बहवोऽवताराः शरीरतो राम समुल्लसन्ति ।
अनन्ततां तेन तवाप्रमेय प्रत्येमि लीलारसरञ्जितस्य ॥ ५ ॥

रामप्रमोदविपिनाय नमो नमस्ते रत्नाद्रये च सरयूपुलिनावनीभ्यः ।
त्वद्रासकेलिसविलाससमस्तगोपी भूषामणिक्वणितकुञ्जदरीगृहाभ्यः ॥ ६ ॥

किं मे तपः किं विज्ञानं का भक्तिः पदयोस्तव ।
केवलं करुणा राम त्वदीया साधनं मम ॥ ७ ॥

किं ते विधेयमथ न ह्यतिरिक्तमीश पूर्णस्य पूर्णशुभदानसदाकरस्य ।
किं तु प्रपत्तिमनयोः पदपद्मयोस्ते भक्त्या प्रणम्य जगदीश सकृत्करोमि॥८॥

कैवल्यदाननिरतस्य तव स्वभावो भक्तिप्रदानविषये विरलोऽस्ति राम ।
ब्रह्मादिकेष्वसुलभा फलवृन्दभूमा सा वै कृपा रघुपतेमयितेऽवतीर्णा ॥ ९ ॥

किं रावणाद्यसुरकोटिजयेन राम त्वद्वीर्यवृद्धिममरा परितो गृणन्ति ।
यस्याक्षरं परमधाम पदं चकास्ति यस्यांशभाज इतरे परपूरुषौघाः ॥ १० ॥

परात्परस्त्वमसि राम परोपरेशो साकेतराज्यपदभासितपूर्णलील: ।
श्रीलोचनान्तसुखलालितवक्त्रपद्मलोलालकावलिविनिर्जितकोटिकाम: ॥११॥

त्वत्कोमलाङ्घ्रिकमलप्रभवैः परागैः पूर्णैर्विलिप्ततनुरङ्गुलिशोणभाभिः ।
धन्यो जनो रसिकराजशिरोमणि:स यो वै सदैव तव रूपविलोककारी ॥१२॥

यस्येदृशस्य तव राम रसालशीला लीलाललामललनाः पशुवृत्तयोऽपि ।
नित्यं जयन्ति सर्वोपरि वर्तमाना नामैव ते भुवनभूषण मङ्गलाढ्यम् ॥१३॥

रूपं पुनर्नयनदुर्लभमप्सराणां धन्या इमे वत जनास्तव भक्तमुख्याः ।
साकेतवासिमनुजाश्च मुहुर्गृणन्ति किं ते स्तुतिर्निगममानसराजहंस ॥१४॥

किं तेऽर्चनं विविधभोगरसोत्सवाढ्यं यद्दर्शनेन करुणासुलभेन राम ।
स्वानन्द सिन्धुलहरीषु विशामितावद् राम प्रपन्नजनकामदपारिजात ॥१५॥

लीलारसं तवनिभाल्य विमोहितोऽस्मि नातः परं प्रिय कदापि पुनः सहिष्ये ।
श्रीमत्पदाम्बुजवियोगमसह्यदुःखं या कापि राम तव दिव्यसखी भवेयम् ॥१६॥

इच्छामि ते विरहजं भय मद्य मोक्तुं नो चेदतीव विरहानलतापतप्तः ।
स्थास्यामि किं नु करुणारसवारिराशे..................... ....॥ १७ ॥

इत्थं स्तुत्वा पुनः स्तुत्वा पादयोश्च पुनः पुनः ।
निपत्य च निपत्यासौ वाष्पधाराभिषेचितः ॥ १८ ॥

पुनः पुनः समुत्थाय ववन्दे दैवतोत्तमम् ।
रूपसंहरणार्थाय प्रार्थयामास भीतवत् ॥ १९ ॥

आत्रेय उवाच

दृष्टं परं स्वरूपं ते श्रीराम करुणानिधे ।
अतः परं चक्षुषी मे दृष्टुमेतन्न शक्नुतः ॥ २० ॥

कोटिसूर्यप्रभाधारचाकचक्यप्रभासुरे ।
चरणाङ्गुष्ठनखरे मीलतोमम चक्षुषी ॥ २१ ॥

तस्मादिदं संहर नाथ पूर्ववत्तदेव मे दर्शय राम रूपम् ।
शान्तं स्वसाकेतपुरीगृहस्थं प्रमोदलीलारसरञ्जितं च ॥ २२ ॥

श्रीराम उवाच

मा मेरिदं करुणया मम दृष्टवास्त्वं रूपं व्यतीतगुणसंसृतिकालमायम् ।
नातः परं तव मुने भविता प्रवाहो मन्नित्यधामनि पुनः सततं रमेथाः ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो रामस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
तथैवासीत् प्रथमवत् स्वर्णसिंहासनस्थितः ॥ २४ ॥

य एतां रामचन्द्रेण गीतामात्रयसंनिधौ ।
संहितां पाठते मर्त्यस्तं देव कृपयेत् स्वयम् ॥ २५ ॥

दुर्वाससंश्च संवादं रामस्य च प्रभोरिमम् ।
योऽधीयीत द्विजः प्राज्ञः स ज्ञानी भवति ध्रुवम् ॥ २६ ॥

भक्तिमान् भक्तिवृद्धिं च लभते नात्र संशयः ।
तथा कर्मफलं दिव्यं सद्योः प्राप्नोति मानुषः ॥ २७ ॥

धर्मार्थकाममोक्षार्थी पुरुषार्थांस्तथा लभेत् ।
विस्तृतोऽष्टादशाध्यायैः प्रबन्धोऽयं महामखः ॥ २८ ॥

नैतत्प्रकाश्यमप्राज्ञे रामभक्तिविवर्जिते ।
शास्त्रं श्रीरामगीताख्यं दिव्यं सर्वोपरि स्थितम् ॥ २९ ॥

पठनीयं प्रयत्नेन श्रीरामेभक्तिमिच्छता ।
परब्रह्मणि सर्वेशे सर्वोपास्यशिरोमणौ ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे श्रीरामात्रेयसंवादे आत्रेयबोधितश्रीरामगीतायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
समाप्तेयमष्टादशाध्यायी श्रीरामगीता ॥



षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मुनेर्निर्बन्धमाज्ञाय वियोगासहने पुनः ।
रामः प्रोवाच करुणो भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

मम नित्यं परं धाम प्रमोदवनमुत्तमम् ।
अत्रैव विहरिष्यामि नृणामव्यक्तमद्भुतम् ॥ २ ॥

अन्तर्हिते मयि ततो निजधाम्नि महामुने ।
अनुयास्यन्ति मामेव सर्वे श्रीलक्ष्मणादयः ॥ ३ ॥

साकेतपुरसंस्था ये ये च कोमलदेशगाः ।
प्रमोदवनसंस्था ये ये च रत्नाद्रिवासिनः ॥ ४ ॥

मल्लीलास्थानसंस्था ये ये च श्रीचित्रकूटगाः ।
ते सर्वे नरनार्यश्च पशुपक्ष्यन्त्यजाअपि ॥ ५ ॥

पिपिलिका मक्षिका या दंशाश्च मशकादयः ।
जन्तवः स्थूलसूक्ष्माद्या योगिनो ब्राह्मणा अपि ॥ ६ ॥

सर्वे चतुर्भुजा भूत्वा व्याधव्याघ्रादिका अपि ।
अनुयास्यन्ति मामेव क्रीडन्तं निजधामनि ॥ ७ ॥

प्रमोदवनलीला च नित्यान्तर्हितमेष्यति ।
प्रमोदवनमेतच्च अन्तर्भाव्यपरांश्रियम् ॥ ८ ॥

स्थास्यति क्षमातले नित्यं मत्पदाङ्कैर्नृपावनम् ।
प्रमोदवनकेलीश्च तथा साकेतलीलितम् ॥ ९ ॥

तथा[1] सरयूतटे रम्ये नित्यं रासे च खेलितम् ।
अवतारचरित्राणि नित्यानि चरितानि नः ॥ १० ॥

श्रद्धया भक्तिभावाभ्यां कीर्तयिष्यन्ति ये जनाः ।
तेषां कालभयं नैव भविष्यति कदाचन ॥ ११ ॥

स्थानानि ये च द्रक्ष्यन्ति मल्लीलाभवनानि च ।
प्रमोदवनरत्नाद्रिप्रभृतीनि पदानि च ॥ १२ ॥

ते यास्यन्ति नराभक्ति स्नानदानार्चनादिभिः ।
अयोध्यादर्शनेनॄणां पलायन्तेऽघकोटयः ॥ १३ ॥

रामकुण्डे नरः स्नात्वा तथा दशरथोदके ।
स्नात्वा दशरथस्थाने तस्य सायुज्यमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

अश्वमेधस्थलीं दृष्ट्वा दृष्ट्वावेदिस्थलीं पुनः ।
कोटिजन्मकृतं पातं धुनुते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

प्रमोदविपिनं दृष्ट्वा गत्वा कुञ्जरहस्यके ।
सहजाया वने स्नात्वा नरो मद्योगमाप्नुयात् ॥ १६ ॥

रत्नाद्रि त्रिः परिक्रम्य कृत्वोत्सवमुदारधीः ।
वैशाखेभोजयेद्विप्रांस्तस्य पुण्यं न गण्यते ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिसंख्यानि वनानि मम यानि च ।
श्रावणे तानि पश्येत ह्यपुनर्जन्मसिद्धये ॥ १८ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

एवमेतानि तीर्थानि शुभानि सुखदानि च ।
न गच्छेन्मम भक्तो यस्तं च नित्यं त्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥

मम पादतलस्पर्शाज्जातानि धरणीतले ।
बहूनि खलु तीर्थानि पावनानि विशेषतः ॥ २० ॥

नामभिस्तारयिष्यामि जनान् मद्भक्तिसंयुतान् ।
कर्मभिर्मत्परैर्भावैः सेवया भजनेन च ॥ २१ ॥

नाहं च सुलभः क्वापि कदाचिल्लोकजन्मिनाम् ।
इच्छयामद्भक्तिलाभात् कुर्वन्ति सुलभं च माम् ॥ २२ ॥

सोऽहमन्तर्हितोभूत्वा नित्यभाव्यां निजां तनुम् ।
स्थास्यामि तेषां चित्तेषु ये मे प्रियतमा जनाः ॥ २३ ॥

त्वं च मे दर्शितं नित्यं स्वरूपं सर्वदा स्मरन् ।
उन्मत्तवद्भावयुक्तो भवस्वात्रेय भूतले ॥ २४ ॥

मम स्थानेषु पुण्येषु प्रमोदविपिनादिषु ।
रत्नाद्रे रुपत्यकासु दिव्यश्रीव्रजभूमिषु ॥ २५ ॥

आभीरराजग्रामेषु दिव्येषु ममधामसु ।
पुण्यलीलावटस्थाने सरयूपुलिनेषु च ॥ २६ ॥

तिलोत्तमासरित्संगे सरयूपुण्यभूमिषु ।
पूर्वपश्चिमयोर्मध्ये दक्षिणोत्तरयोस्तथा ॥ २७ ॥

अयोध्याद्वयकोष्ठयोश्च मातृवात्सल्यभूमिषु ।
कौमारलीलास्थानेषु सरित्कुञ्जदरीषु च ॥ २८ ॥

कैशोरकेलिस्थानेषु मम नामगणं जपन् ।
मद्भावभक्तियुक्तात्मा सहजाभावतत्परः ॥ २९ ॥

सहजां नित्यमाराध्य मामेव फलमाप्नुवन् ।
आत्रेय सुमहायोगिन् न य कालं तपश्चरन् ॥ ३० ॥

तीव्रेण मम भावेन मामेव त्वमवाप्स्यसि ।
न ते बाधिष्यते ब्रह्मन् दुःसहो विरहो मम ॥ ३१ ॥

आगामिनि तु योगीन्द्र कल्पे सारस्वताभिधे ।
मन्नित्यलीलासम्बन्धमवाप्स्यसि ततः क्रमात् ॥ ३२ ॥

सहजायाः सखी काचिच्चन्द्रचूडा भविष्यसि ।
यस्याश्चूडागतश्चन्द्रः सुखमिष्यति मीरते ॥ ३३ ॥

[1]एवं न ते मद्विश्लेषो भविष्यति महामुने ।
वंशस्था ऋषयः सर्वे वेदरूपा न संशयः ॥ ३४ ॥

१. नास्ति–बड़ौ० ।

ते यूयं मत्प्रियतमाः सर्वेमुनिजना भुवि ।
प्राप्तावताराऽस्तपसा मामेव समवाप्स्यथ ।। ३५ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे
षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।



सप्तविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामाज्ञां समनुप्राप्य मुनिरत्रेस्तनूजनिः ।
कृताभिवन्दनस्तेन श्रीमता विश्वमूर्तिना ।। १ ।।

प्रणम्य तं चाथ मुहुराश्लिष्य च मुहुर्मुहुः ।
व्यलप्य च मुहुर्योगी गलद्वाष्पनिषेचितम् ।। २ ।।

प्रयास्यन् स्वाश्रमपदमिदमुच्चैः समुज्जगौ ।
चतुःश्लोकीं रामगीतामात्रेयमुनिवर्णिताम् ।। ३ ।।

जय जय रामचन्द्र तव भक्तिरनन्तगुणा-
परमफलात्मिका जयतु मे हृदि नित्यमसौ ।
प्रमुदवनव्रजाधिपभवन्तमिहेन्दुमुखं
द्विविदिविदृक्चकोरयुगलेनपिबामि सदा ।। १ ।। ४ ।।

तव सहजाप्रियाचरणपद्मपरागभरैरह-
मभिषिक्तदिव्यतनुरश्रुकलाञ्चितदृक् ।
अनुसवमब्जलोचन भजे भवतोः सविधं-
विधिशिवनारदादिपरिवाकमलभ्यतमम् ।। २ ।। ५ ।।

अपि हृदयेशशेषविधिशक्रशिवादिषु-
यत्किमपि कलांशमात्रमहसां विभवो जयति ।
स इह तव प्रमोदविपिने पशुपालवधू-
पदकमलैर्विमर्दितद्रवस्फुल्यावरसैः ।। ३ ।। ६ ।।

जयतु सदैव भक्तमनुजेषु भवत्करुणा भवजल वीचिलोलितमनः ।
सुविषैर्विषयै[1]र्भवति यथा प्रपत्तिरपि ते
पदपङ्कजयोरसुलभंनन्ततप सां प्रचयेन विभो ।। ४ ।। ७ ।।

---

१. विषतुल्यैरित्यर्थः टि०—बड़ौ० ।

इति गानमसौ कृत्वा मुनि. प्रणयविह्वलः।
श्रीरामपदयोर्न्यस्य हृदयं स्वाश्रमं ययौ ॥ ८ ॥

रामस्य गुणसंदोहं गायन् कौमारकादिषु।
तदेव संस्मरन्नित्यं रूपं भुवनमङ्गलम् ॥ ९ ॥

चरित्राणि गृणन्नुच्चैः प्रियाणि सरसानि च।
रामलीलारसोन्मत्तो मन्मनास्तृणवज्जगत् ॥ १० ॥

नन्दिग्रामे गोकुले च सुखितस्यालये तथा।
सौगन्धिगिरौ रत्नाद्रौ प्रमोदवनमण्डले ॥ ११ ॥

श्रीमज्जनकपुर्यां च चित्रकूटे महागिरौ।
उदद्यानेषु च दिव्येषु भरतादिस्थलेषु च ॥ १२ ॥

श्रीलक्ष्मणस्य चावासे ब्रह्मावर्त्ते तथैव च।
रामक्रीड़ामनोज्ञेषु स्थानेषु विविधेषु च ॥ १३ ॥

रामचन्द्रं ध्यायमानो व्यचरन्मूर्खमत्तवत्।
तत्र तत्र महर्षीणां मण्डलेषु वदत्सु यः ॥ १४ ॥

शृण्वानो रामचरितं प्रमत्तवदघूर्णत।
वर्षवातातपक्लेशान् सहमानस्तपोनिधिः ॥ १५ ॥

पुण्यं पापं सुखं दुःखं शापं चानुग्रहं तथा।
जयाजयादिकं चैव लाभालाभादिकं तथा ॥ १६ ॥

तुल्यमेतन्मन्यमानो ज्ञानवैराग्यबृंहिताम्।
रामभक्तिं प्रकुर्वाणः श्रुतश्रोतव्यपारगः ॥ १७ ॥

न्यवर्तत स सर्वेभ्यो धर्मेभ्यः सर्ववर्जितः।
यावत्सारस्वतं कल्पं मुनिवेशमुपाश्रितः ॥ १८ ॥

कल्पे सारस्वते प्राप्ते रामचन्द्ररसोत्सुकः।
ततः स भविता योगी चन्द्रचूडाह्वया सखी ॥ १९ ॥

एवं वेदर्षयः सर्वे भवितारः सखीपदम्।
श्रीरामकृपया प्राप्तं रसभोगफलात्मकम्।
दुर्लभं भुवनेष्वन्यैर्देवदानवमानवैः ॥ २० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

✲

अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

एवं वसिष्ठो भविता वसिष्ठा नाम या सखी ।
चन्द्रं यथा चकोरो हि द्रक्ष्यते युगलं वपुः ॥ १ ॥

अहर्निशं तु पार्श्वस्था चामरव्यजनादिभिः ।
सेवयिष्यति सम्प्रीत्या सहजारामचन्द्रयोः ॥ २ ॥

कौण्डिन्यो मुनिशार्दूलः प्रेमोर्जितमहोदयः ।
लप्स्यते सहजारामसहजानन्दपात्रताम् ॥ ३ ॥

वामदेवो महायोगी मनोऽभिलषितं वरम् ।
प्राप्स्यति श्रीरामहिता वामा नाम सखीपदम् ॥ ४ ॥

वामभावं शिक्षयन्ती स्वाधीनपतिका प्रिया ।
प्रेम्णः कौटिल्यविषये निपुणा भावभूषिता ॥ ५ ॥

याज्ञवल्क्यो महायोगी श्रुतिसार रहस्यवित् ।
याज्ञवल्क्या सखी नाम भविता रामकेलिनी ॥ ६ ॥

पयःसारदधिक्षीरनवनीतघृतादिकम् ।
समर्पयन्ती युगलं नित्यं पर्यचरिष्यति ॥ ७ ॥

भारद्वाजो मुनिश्रेष्ठो भक्तिभूषणभूषितः ।
भविता प्रमोदवने भारती नाम तत्सखी ॥ ८ ॥

कवितां या शिक्षयन्ती सहजायै तु शैशवे ।
येन प्रवीणतां याति रामलीलाविनोदिनी ॥ ९ ॥

वात्स्यायनो मुनिर्देवः शृङ्गाररसपोषकः ।
भरतश्च कलाकान्तो भवितारौ सखीपदम् ॥ १० ॥

कला कलावती चैव तयोः सर्वकलागुरुः ।
व्यासश्च भविता रामसखी प्रेमविचक्षणा ॥ ११ ॥

शमादिभिरुपायैर्या मानं मोचयितुं क्षमा ।
रामलीलागुणालापपूर्वस्मरविवर्धिनी ॥ १२ ॥

श्रीसखी वासिनी नाम व्रजलीलारसोत्सुका ।
शुकश्च सुखदा नाम भविता श्रीप्रियासखीः ॥ १३ ॥

[1]सर्वोपायेन या नित्यं तयोः प्रणयसंगमम् ।
वाञ्छन्ती कुञ्जदेशेषु पुष्पतल्पं तनोति वै ॥ १४ ॥

---

१. नास्ति–ब्रड़ौ० ।

अगस्त्यो नाम योगीन्द्रो रामभक्तिप्रभावतः ।
अगस्त्या नाम कुञ्जस्था भविता सत्सखी तयोः ॥ १५ ॥

यया प्रसादितं नित्यं व्रजस्त्रीणां मनोजलम् ।
दृष्ट्वापराधे कान्तेऽपि रामेसर्वगुणाकरे ॥ १६ ॥

गौतमो मुनिरभ्यर्च्य तपसा परमेश्वरम् ।
तत्प्रसन्नेन रामेण मालाकारीपदं व्रजे ।
लब्ध्वा श्रीरामसहजां वैजयन्तीसमर्पिणी ॥ १७ ॥

आंगिरसो महायोगी सहजारामसन्निधौ ।
आङ्गी नाम सखी रम्या भविता वेत्रधारिणी ॥ १८ ॥

माण्डव्यो नाम योगीन्द्रो महावैखानसार्चितः ।
भविता मण्डनी नाम सखी श्रीराममण्डिनी ॥ १९ ॥

आथर्वणो महायोगी भविता सहजासखी ।
व्यजने चैव ताम्बूले महावैदग्ध्यभूषिता ॥ २० ॥

वत्स्यो नाम मुनिश्रेष्ठः श्रीरामकृपया पुनः ।
भविता वत्सला नाम सखी वात्सल्यको विदा ॥ २१ ॥

बौधायनश्च गार्ग्यश्च भवितारौ सखीयुगम् ।
एका दर्पणधारिणी परा पानीयपायिका ॥ २२ ॥

आपस्तम्बो मुनिश्रेष्ठः पाककारी भविष्यति ।
सूपौदनादिसम्भारे श्रीरामप्रभुसेविनी ॥ २३ ॥

शाण्डिल्यो भगवान् नित्यं भगवद्भक्तिभावतः ।
कुञ्जस्था शाण्डिला नाम सत्सखी भविता तयोः ॥ २४ ॥

कठकौथुमकौशीतिमादिसांख्यायनादयः ।
सर्वे पृथक् पृथग् जाताः सख्यः श्रीरामसन्निधौ ॥ २५ ॥

असंख्याता मुनिश्रेष्ठाः सख्य एव न संशयः ।
यथाधिकारं लब्धारः सखीस्थानानि चैतयोः ॥ २६ ॥

एषा हि परमा मुक्तिर्यल्लीलापदसंगमः ।
अर्वाक् पदं ततः सर्वं ब्राह्ममक्षरमव्ययम् ॥ २७ ॥

सर्वेऽप्यानन्दसंदोहास्तत एव विनिर्गताः ।
विश्रामस्थानमेकं तं निःसीमानन्दवत्पदम् ॥ २८ ॥

मात्रानन्दरतानां तु तल्लोकप्राप्तिरीप्सिता ।
महानन्दरता भक्ताः प्राप्तुमर्हन्ति तत्पदम् ॥ २९ ॥

श्रीरामाख्यं परं प्राप्य फलभूमानमव्ययम् ।
शुद्धभक्त्या परिप्राप्य नासव्यान्तरमिष्यते ॥ ३० ॥

श्रीरामेति च रामेति रमापतिमुदीरयन् ।
श्रीरामसन्निधौ भक्तो मोदते नात्र संशयः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसम्वादे उत्तरखण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥



एकोनत्रिंशोऽध्यायः

भुशुण्ड उवाच

दुर्वाससि मुनिश्रेष्ठे गते स्वाश्रममुत्तमम् ।
किं कृतं रामचन्द्रेण तद्वदस्व मम प्रभो ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रतिहारिपदे भ्रात्रा नियुक्तस्तद्व्यतिक्रमात् ।
भीतवल्लक्ष्मणः प्राह प्रणतो रामसंनिधौ ॥ २ ॥

लक्ष्मण उवाच

भगवन् सर्वदेवेश स्वच्छायावशगो हरिः ।
आदिमूर्तिस्त्वमेवासि कालस्यापि नियोजकः ॥ ३ ॥

एतन्मे दर्शितं रूपं कृपयैवातिभीषणम् ।
प्राय एतद्भयेनैव वशगास्ते सुरासुराः ॥ ४ ॥

कोऽसौ द्वितीयः कालात्मा भीषणो भीमविग्रहः ।
पाचको भवदन्नस्य भवान् भोक्तेव लक्ष्यते ॥ ५ ॥

किं चैकं प्रार्थयाम्यद्धा करुणाजलधावपि ।
त्वयि सर्वकलाधीशे भ्रातर्यपि भयानके ॥ ६ ॥

त्वया प्रतीहार्यपदे नियुक्तस्तद्व्यतिक्रमात् ।
सापराधोऽस्मि संवृत्तस्तेन दण्ड्योऽस्मि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

दण्डनीयतमो लोके प्रभुणा करुणेन वा ।
सापराधो दासजन इत्याज्ञा नृपशासने ॥ ८ ॥

त्वमेव जगतां नाथः सागसां दण्डकारकः ।
तेन मां दण्डय स्वामिन् सागसं ते व्यतिक्रमात् ॥ ९ ॥
इत्येवं प्रार्थितो रामो लक्ष्मणेन विशेषतः ।
प्रोवाच करुणः श्रीमांल्लीलाकारणमानुषः ॥ १० ॥

श्रीराम उवाच

असौ यः सेवकः कालो मदाज्ञापरिपालकः ।
मया सह स्वकार्यार्थं प्रभुणा मन्त्रयन् स्थितः ॥ ११ ॥
स एषो मम भोगार्थं त्रैलोक्यं पाचयन् प्रभुः ।
करोति सर्वभोगार्थं मह्यं फलसमर्पकः ॥ १२ ॥
तेन सम्मन्त्रयन् कार्यं भीषणेनातिभीषणः ।
दृष्टस्त्वया लक्ष्मणेत्थं मा भैः संश्रद्धितोऽसि मे ॥ १३ ॥
मदीयनित्यलीलायां नित्यमेव सुसंगतम् ।
मदीयभ्रातरं पूर्णं मद्वत्सर्वगुणोत्करैः ॥ १४ ॥
प्रतीहार्याद्व्यतिक्रान्तो नैव दण्ड्योऽसि मे सखे ।
लीलाकालक्रमेणैव सर्वं सम्पादयमेव च ॥ १५ ॥
प्रमोदवनलक्ष्मीश्च प्रकाशयति भूतलम् ।
कृतानि देवकार्याणि रक्षिता वेदराशयः ॥ १६ ॥
रक्षितश्च परोधर्मो गोवैष्णवद्विजन्मनाम् ।
रक्षिताश्च मखा नित्या रक्षिता मम मूर्त्तयः ॥ १७ ॥
प्रवृत्तो भक्तिमार्गश्च कर्मज्ञानोपबृंहितः ॥ १८ ॥
नातः परं न करणीयमात्रं त्रैलोक्यरक्षा विहिता समंतात् ।
प्रमुद्वनं धाम परं व्रजामः समस्तमर्वाग्यत एतदस्ति ॥ १९ ॥
अव्यक्तमुच्चैः परमं पदं तदत्रानिशं तात वयं रमामः ।
अव्यक्तरूपाभिरपारलीलासुशक्तिभिर्नित्यविलासिनीभिः ॥ २० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥



त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं लक्ष्मणो भ्रातुरोजसः।
हर्षदैन्यावेगचिन्तासमाविष्टो बभूव ह ॥ १ ॥

अहो वयं गमिष्यामः प्रमुद्वनमनुत्तमम्।
यदानन्दस्य मात्राभिरूपजीवन्ति लोकगाः ॥ २ ॥

इति हर्षो बभूवास्य श्रुत्वा प्रियसुहृद्वचः।
अहो अतः परं कासावयोध्या सरयूतटम् ॥ ३ ॥

क्व रत्नाद्रिसुखं क्वासौ प्रियभातृसुहृत्पदम्।
क्वैतच्च नगरीसौख्यं ब्रह्मादिसुरदुर्लभम् ॥ ४ ॥

क्वैतत्प्रभोः श्याममणीन्द्रमेचकं दृश्यं वपुः प्रेमजुषा दृशा भगैः।
क्वानन्द एष प्रियसंगजातः संदर्शनाद्यो जनकात्मजायाऽ ॥ ५ ॥

इति दैन्यं महज्जातं लक्ष्मणस्यापि चेतसि।
भ्रातुः प्रियस्य लीलानां ज्ञातुः पारङ्गतस्य च ॥ ६ ॥

आवेगश्च महान् जातो भीरोर्विश्लेषदुःखतः।
चिन्ता च महती जाता लीलादर्शनकारणात् ॥ ७ ॥

लीलारसः प्रियो यस्माल्लक्ष्मणस्य प्रियात्मनः।
नित्यं जनकजारामरम्यरूपरसस्पृहः।
दुर्मना इव संजातो भातुः स्वे दण्डकारिणः ॥ ८ ॥

एवं दुर्मनसं वीक्ष्य लक्ष्मणं प्राणसम्मतम्।
रामचन्द्रः प्रसन्नात्मा प्रोवाच रुचिरं वचः ॥ ९ ॥

श्रीराम उवाच

दण्डोऽभियाचितोऽद्धैव त्वयैन्द्रारिनिषूदन।
तेनैतद्गदितं तात कथं वृत्तोऽसि दीनवत् ॥ १० ॥

न मया दण्डनीयस्त्वं प्राणस्यापि व्यतिक्रमात्।
को दण्ड्यः को दण्डयिता सर्वथैक्ये द्वयोरपि ॥ ११ ॥

आवयोर्नैव भेदोऽस्ति त्वमक्षरमहं परः।
शेषः संकर्षणः साक्षाद्यदंशो मेदिनीधरः ॥ १२ ॥

शेषरूपः परिकरो भाष्यकर्ता मदागमे।
आचार्यः परमो नित्यो वैष्णवप्रियकारकः ॥ १३ ॥

सर्वावतारमूलश्च ईश्वरः प्रकृतेः परः।
त्वया विना न चैवाहं लीलासु पुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥

त्वं साक्षात्पुरुषो विष्णुर्निश्चिन्तोऽहं त्वया विभो।
सृजस्यवसि भूतानि हंसि कालो दुरासदः॥ १५॥

अहं कदाचिद्वटपत्रशायी स्वाङ्गुष्ठपादास्वदने रसज्ञः।
माङ्गल्यकाश्रीजननीपयोऽर्थे रुदन् रमे बालमुकुन्दनामा॥ १६॥

कदाचित् प्रमोदाटवीकुञ्जभूमौ समुद्भासिरत्नाद्रिभूगह्वरस्थः।
रमे रामनामा सदारामकुञ्जे स्वयम्भूः स्वयं शक्तिलक्ष्मीपरीतः॥ १७॥

कदाचिद्रमे चित्रकूटान्तराले शिलां स्फाटिकां तामधिश्रित्य तिष्ठन्।
प्रियानेत्रलास्यानुकारीणि पश्यन् कृपापूर्णदृष्ट्या कुरङ्गीकुलानि॥ १८॥

एत्य कदाचिद्दक्षिणमधुरां कृष्णातटेऽधिगोवर्द्धनगिरि।
ताम्रपर्णीसागरसंगमविप्रसखैर्मुनिभिश्चरन् रमामि॥ १९॥

त्वं करोष्यवतारार्थं गोद्विजधर्मपालनम्।
असुराणां निरसनं मम सौख्यविशारदः॥ २०॥

तस्मात्कालत्रयेऽपि त्वं न मे कोपस्य भाजनम्।
किंतु द्विर्भाषणं कुर्वे नाहं लक्ष्मण किंचन। २१॥

नियुक्तस्त्वं प्रतीहार्ये तद्व्यतिक्रमकारणात्।
न दण्ड्यसे चेन्मयका मर्यादा मे विनङ्क्ष्यति॥ २२॥

इति लोकजने वादो भविता वेदविप्लवी।
तेन लीलातिरोधानं मम दण्डो भविष्यति॥ २३॥

कस्मात्त्वं विमना जातो दुर्मनाश्चिन्तयाकुलः।
आविग्नो मूढवद्भ्रान्तो विरहातुरभीरवत्॥ २४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥



एकत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

दृष्टाते विविधा लीलाः समस्तरससंगताः।
रसो नाम भवद्रूपं ब्रह्मैवेदं न संशयः॥ १॥

शृङ्गारवीरकरुणारौद्राद्यास्तस्य चाद्भुतम्।
एकस्य चापि नित्यस्य स्थायिनश्चित्सुखाकृतेः॥ २॥

अन्तःकरणवृत्तीनां भेदतस्तस्य वै भिदा।
त्वं शृङ्गारी परानन्दरूपिणीं सहजामनु ॥ ३ ॥

प्रमोदविपने चैव चित्रकूटे मनोहरे।
कोटिकन्दर्पसुभगः क्रीडसे त्वं रमायुतः ॥ ४ ॥

एतदर्थमेव भुवि प्रकटोऽभूः सनातनः।
सहजानन्दिनी चापि प्रमोदवनसुन्दरी ॥ ५ ॥

अनेकरूपिणी भूत्वा त्वां वै रमयति प्रभो।
सोऽयं लीलारसानन्दो दृढतां समुपागतः ॥ ६ ॥

तस्य साक्षी त्वहं ब्रह्म त्वत्प्रकाशमयोऽक्षरः।
तत्र तत्र नियुक्तोऽहं त्वया रमणकोविद ॥ ७ ॥

तत्तद्रूपमुरीकृत्य लीलापरिकरोऽभवम्।
अहं रसालविपिने रसालद्रुमवाटिका ॥ ८ ॥

अशोकविपिने चाहमशोकद्रुमवाटिका।
तन्मञ्जरीमधुकराः पल्लवाश्चारुणप्रभाः ॥ ९ ॥

शीतलः सुरभिर्मन्दः समीरश्चन्दनस्पृशः।
कीरकोकिलकेक्याद्याः पक्षिणो मधुरस्वराः ॥ १० ॥

ऋतवस्ते वसन्ताद्याश्चन्द्रचन्दनचन्द्रिकाः।
अहं सर्वस्वरूपेण त्वन्नियोगादिहाभवम् ॥ ११ ॥

स कथं तव विश्लेषं सहिष्ये रघुपुङ्गवः।
पूर्वमाचान्तममृतमधुना विषमुल्वणम् ॥ १२ ॥

आत्रमिष्यामि भगवन् त्वद्विग्नोऽहं ततः प्रभो।
सर्वं जानाति भगवान् कार्याकार्यविवेचनम् ॥ १३ ॥

वीरश्चापि भवानक्ष्णो रददात्परमां मुदम्।
वैश्वामित्रे यज्ञवाटे तथा भार्गवसंगमे ॥ १४ ॥

सुबाहुमथने चापि सहस्त्ररामरूपधृक्।
लङ्कायां राक्षसहतौ वीरो भूत्वा व्यरीरमः ॥ १५ ॥

राक्षसेन्द्रमहोद्दण्डतरङ्गगणमार्जिते।
सिन्धोर्मध्ये दुर्गमे त्वां न व्यमुञ्चमहं क्वचित् ॥ १६ ॥

अहं वाणाधनुश्चैव रथः पत्तिर्हयास्तथा।
कंबलः कवचं चापि तत्र तत्राभवं ह्यहं ॥ १७ ॥

स कथं मोक्तुमिच्छेयं तव सार्थं रमापते।
किमर्थं तादृशो स्वादे पूर्वमस्मि नियोजितः ॥ १८ ॥

नियोजितश्चेत्प्रभुणा न वियोज्योऽस्मि सम्प्रति ।
तस्मात्तद् हृदयं भ्रातः स्फुटतीव च मामकम् ॥ १९ ॥

विशीर्यन्ति ममाङ्गानि तापश्चापि प्रजायते ।
शून्या दिशः प्रपश्यामि न विन्दामि धृतिं हरे ॥ २० ॥

प्रत्यङ्गं ज्वलति वपुर्मदीयमङ्गं स्मारं स्मारमतिबिसह्यमेतदुच्चैः ।
अग्रे भाव्यं न भवन्नागतंमे कीदृग्जातं देहजं दुःखमस्तिमह्यम् ॥ २१ ॥

एतत्तेऽनुचितं राम भक्तेर्मे दुःखदर्शनम् ।
तदप्यशनिपातोत्थवेदना मे दिवानिशम् ॥ २२ ॥

दूरादेव वितर्कयामि भवतः संयोगजं यत्सुखं-
यादृग्विस्तृतमस्ति निस्तुलतरं भक्तानुभूत्यास्पदम् ।
दुःखं चापि तु तादृगेव भविता विस्तारि सर्वोत्तम-
प्रेमोत्थं खलु कोटिजन्मनिबहैर्भोग्यं यदेकक्षणे ॥ २३ ॥

तदहमिह सहिष्ये नैव मत्तः कदाचित्-
परममशनिपाताच्चापि काठिन्ययुक्तम् ।
वितर रघुपते हा राम कारुण्यकोणां-
दृशमसदृशं तां पापसंघातहर्त्रीम् ॥ २४ ॥

सर्वथा दण्डनीयोऽहमपराधे महत्यथ ।
चरणाम्भोजसंसर्गादत्रापि त्वपयातु नः ॥ २५ ॥

अस्तु नाथ महान् दण्डः संगतस्यैव मे त्वया ।
असंगतस्य तु स्वामिन् महानन्दोऽपि मास्तु मे ॥ २६ ॥

पशुपक्षिलतागुल्मवृक्षादिजनिमाप्नुयाम् ।
तत्र तत्र भवेयं ते चरणाम्भोजसंगमी ॥ २७ ॥

प्रमोदवनलीला च दृष्टा संस्मर्यतेऽधुना ।
तत्रैव देहि रामेन्दो यां कांचिज्जनिमद्भुताम् ॥ २८ ॥

प्रमोदवनलीला चे दृष्टा प्रेमाङ्कुरस्पृशी ।
उच्चै वितर संस्थानमधो वापि प्रवेशय ॥ २९ ॥

न पुनस्तव विश्लेषो भूयान्मम मनागपि ।
वज्रादपि ह्यसह्यं यदात्मपातादपि द्रुतम् ॥ ३० ॥

सर्वमस्तु प्रभो दण्डाद् दुःखं परमदुःसहम् ।
मा ते लीलोपसंहारो भवतु श्रीरमापते ॥ ३१ ॥

लीलैवहि ममाधारो लीलैव मम जीवनम् ।
लीलैव मम सर्वस्वं लीलैव मम लोचनम् ॥ ३२ ॥

मच्छरीरसुरक्षायै लीलारक्षा विधीयताम् ।
लीलाभावे महद्दुःखं मम राम भविष्यति ॥ ३३ ॥

तुलसीमालिका नाम चरणाम्भोजचिन्तनम् ।
नित्यं लीलारसानन्द एतद्भक्तस्य जीवनम् ॥ ३४ ॥

धनुर्वाणाङ्कितततनू राममन्त्रं सदा जपन् ।
तव लीलारसानन्दी भूयासं नित्यमीश्वरा ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥



द्वात्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रीमत्संकर्षणाख्यस्य लक्ष्मणस्य वचस्त्विदम् ।
आर्त्या विक्लिवतं श्रुत्वा प्रोवाच सहजापतिः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

नाभावो मम लीलानां लक्ष्मण क्वापि विद्यते ।
कालमायागुणादीनामस्पृश्योऽहं निरूपितः ॥ २ ॥

मद्रूपं नित्यमेवेदं यद्यद् भक्तैः प्रतीयते ।
तथैव मम लीलानां नित्यता विनिरूपिता ॥ ३ ॥

मया च तव विश्लेषो न कदाचन विद्यते ।
पुरुषोत्तमसंज्ञं तल्लीला वै शिष्यभोगिना ॥ ४ ॥

द्विविधा मम सा लीला ज्ञेया नित्यापि लक्ष्मण ।
प्रकटाप्रकटा चापि कालमायागुणातिगा ॥ ५ ॥

पूर्वावतारकालीना तिरोभूता परा मयि ।
अहं हि सहजानन्दी प्रमोदवनकेलिभृत् ॥ ६ ॥

निमित्तं किंचन प्राप्य भक्तसम्पालनादिमत् ।
युक्तो लीलापरिकरैः प्रादुर्भूय प्रदर्शये ॥ ७ ॥

सहजाकेलिरसिकं निजरूपं मनोहरम् ।
मय्येवाहं तिरोभूय तिष्ठामि प्रथमं सखे ॥ ८ ॥

ततो महन्महिम्नोऽहं मत्स्वरूपाच्चिदात्मनः ।
आविर्भवामि लोकानामभ्युद्धरणहेतवे ॥ ९ ॥

आत्मानाहं निजात्मानं विसृजामि निजात्मनः ।
अहमेव ममाधारो निलयश्चाहमेव हि ॥ १० ॥
मयैव मत्परिच्छेदो निश्चयेन विभाव्यते ।
तदाकालश्च देशश्च स्वरूपं च मदात्मकम् ॥ ११ ॥

कोसलाख्यं पुरं नित्यं कोटिकल्पावसानगम् ।
कालस्यापि च कालोऽहं यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः ॥ १२ ॥
भवांश्च न स्वस्वरूपं वेद मत्प्रेममोहितः ।
मत्परोक्षे निजैश्वर्यं प्रकाशयसि लक्ष्मण ।
मयि स्थिते मम प्रेमसुधासिन्धौ निमज्जसि ॥ १३ ॥

भवांश्च हनुमान् वीरो लक्ष्मीः प्रद्युम्न एव च ।
अनिरुद्धश्च भगवान् अमी ईशाः पृथक् पृथक् ॥ १४ ॥
मयि स्थिते न वः शक्तिरभ्युपैति प्रकाशताम् ।
पुरुषोत्तम ता सेयं मम सर्वोत्तमाकृतेः ॥ १५ ॥

अक्षरं चापि यद्ब्रह्म कालमायातिगं बृहत् ।
तदेतन्मत्प्रकाशत्वान्न स्वातन्त्र्यमिहार्हति ॥ १६ ॥

लीला सृष्टिविलासित्वं स्वातन्त्र्यं नाम कीर्तितम् ।
अक्षरस्य द्विधा भावः प्रकृतिः पुरुषश्च सः ॥ १७ ॥

ज्ञानमार्गं उपास्यं यत् स्वरूपं तन्निगद्यते ।
न तस्यलीलाकारित्वं मदावेशेन तु स्फुटम् ॥ १८ ॥

अहं च त्वामधिष्ठाय क्रीडामि पुरुषोत्तमः ।
प्रकाश्चैव सूर्यश्च यथैवाव्यभिचारिणौ ॥ १९ ॥

त्वयैवाव्यभिचारेण तथैवाहं प्रतिष्ठितः ।
दृश्यसे मदभिन्नोऽपि त्वं भिन्नइवलक्ष्मण ॥ २० ॥
सेयं लीलाश्रया शक्तिर्ममैव विनिरूप्यताम् ।
अयमज्ञानजो मोह इतरेषु विभाव्यते ॥ २१ ॥

ये जीवा मम मायाभिर्मोहिता अज्ञसंज्ञकाः ।
न तु त्वपि महाप्राज्ञे देवदेवे जगद्गुरौ ॥ २२ ॥

मत्स्वरूपान्न्यूनकक्षे श्रीविष्णौ परमेश्वरे ।
अवतारास्तु वै चैते मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः ॥ २३ ॥

अवतारी त्वमेवैकोऽस्यवतारी तथाप्यहम् ।
भ्रातस्त्वमेव शेषोऽसि मम धाम सनातनम् ॥ २४ ॥

यस्यांशो धरणीं सर्वां शिरस्यादाय तिष्ठति ।
कल्पान्ते त्वन्मुखोद्गीर्णो महावह्निः प्रचण्डभाः ॥ २५ ॥

तापयिष्यंस्त्रिभुवनं समिधोऽभून्निरिन्धनः ।
शोषयित्वा जगत्सर्वं ज्वालयत्येव निश्चितम् ॥ २६ ॥

ततः कालघनो भूत्वा वर्षिष्यति महज्जलम् ।
एकार्णवां भुवं कृत्वा रुद्रग्रासायितां सखे ॥ २७ ॥

शमं यास्यसि मे तल्पो भूत्वा निद्रासुखं महत् ।
मह्यं दास्यसि भोगेन कोमलेन स्ववर्ष्मणा ॥ २८ ॥

इदं ते परमं रूपं मम लीलासुखाय च ।
लीलापरिकरः सर्वस्त्वमेव विनिरूपितः ॥ २९ ॥

[1]त्वमेवोपादानरूपश्च सर्वस्य जगतः प्रभो ।
तस्मादेवं मनोमोहं न त्वं कर्तुमिहार्हसि ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्मण उवाच

परब्रह्मस्वरूपस्त्वं राम राजीवलोचन ।
त्वमेव परमं धाम जीवानां त्वं परा गतिः ॥ १ ॥

न हि ते भगवंस्तत्त्वं विदन्ति विबुधा अपि ।
न वेदा नापि योगाङ्गैः साधितात्मान ईश्वराः ॥ २ ॥

त्वमेव ते परं तत्वं जानासिदितिजार्दन ।
तव भक्त्या त्वत्स्वरूपं भक्ताः केचन जानते ॥ ३ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

तवैवानुग्रहे हेतुर्विद्वत्ता नोपयुज्यते ।
शब्दः खलु भवद्रूपमुपदेष्टुमथार्हति ॥ ४ ॥
सोऽपि ताटस्थ्यभावेन न स्वरूपेण कर्हिचित् ।
लक्ष्मणं तव नास्त्येव लक्ष्यरूपात् परं प्रभो ॥ ५ ॥

लक्ष्यलक्षणयोरैक्यं त्वत्स्वरूपनिरूपणे ।
मयि लीलारसानन्दोभूयान् विस्तारितस्त्वया ॥ ६ ॥
तेनैव प्रसृतं प्रेम विश्लेषभयवर्द्धनम् ।
स्वरूपाकलनेनैतत्स्थिरंमयि विधेहि भोः ॥ ७ ॥

अपि नाम यदानाथ तव लीला रसात्मिका ।
प्राकट्यमभ्युपैत्येषा तदा संस्थास्ति कालतः ॥ ८ ॥
अप्राकट्यं यदा नाथ प्रयासि लीलया सह ।
तदा चकास्ति संस्थानो रामैतत्प्रतिबोधय ॥ ९ ॥
नहि नो भगवन् राम वासनान्या विजृम्भते ।
ऋते त्वच्चरणाम्भोजधूलिधूसरतां तनोः ॥ १० ॥

एतावदेव नः प्रार्थ्यं नाथ जन्मनि जन्मनि ।
श्रीराम तव पादाब्जतललग्ना वयं सदा ॥ ११ ॥
श्रीश्च शेषश्च ब्रह्मा च रुद्रश्चेन्द्रश्चयत्स्पृहाम् ।
नित्यं कलयते राम तादृशं नेतरत्सुखम् ।
मुक्त्यानन्दादिकं सर्वमिहैवान्तर्विशत्यहो ॥ १२ ॥

[1]एतस्मादतिरिक्तं यत्पारमेष्ठ्यं महेन्द्रताम् ।
सार्वभौमपदं वापि न वयं स्पृहयामहे ॥ १३ ॥
वयं नित्यं भवत्संगे कथं नाथ रमामहे ।
ऐक्याद्वा भेदतो वापि संस्थानो वक्तुमर्हसि ॥ १४ ॥

श्रीराम उवाच

भूमेर्भारं परिज्ञाय क्लेशं च स्वर्गवासिनाम् ।
भक्तानां च महद् दुःखं स्वेच्छया च विशेषतः ॥ १५ ॥
प्रेमभक्तेः प्रपोषार्थं भूयस्तत्साधनाय च ।
विहरामि स्वेमहिम्नि प्रमोदवनसंज्ञिनि ॥ १६ ॥

प्रादुर्भवामि चेद्भ्रातः सहैव भवदादिभिः ।
भवाञ्च्छेषोऽशेषसंज्ञः श्रीश्च शक्तिः सुखप्रदा ॥ १७ ॥

---

१. नास्ति–बड़ौ० ।

लीलापरिकराश्चान्य इत्येते भवदादयः ।
सर्वत्र माययाच्छन्नः स्वेच्छामात्रेण तां पुनः ॥ १८ ॥

[1]विभिद्य भित्त्याद्यावरणमपसार्य यथा नभः ।
प्रादुर्भूतः सर्वमुक्तिस्तिरोधाय नराकृतिः ॥ १९ ॥

यावदिच्छाप्रसारो मे तावन्मायाप्रसारणम् ।
तदा सर्वे प्रपश्यन्ति मां सच्चित्सुखरूपिणम् ॥ २० ॥

दितिजा दनुजाश्चापि राक्षसास्तामसा जनाः ।
पशवः पक्षिणः कीटा अन्ये च विविधा जनाः ॥ २१ ॥

तेषु येषामहं स्वेच्छामात्रेण परमोहिनीम् ।
दूरीकरोमि तां मायां लोके मामुपयान्तिते ॥ २२ ॥

मदिच्छामात्रमाश्रित्य न भवेन्मुक्तिसाधनः ।
अव्यक्तत्वात्सखे तस्याः प्रयतेत्किल्विषैरिह ॥ २३ ॥

एतत्कार्यं बुद्धिमता प्रशस्तं कर्म यद्भवेत् ।
वैराग्यं चित्तसंशुद्धिर्नामानिमम भावनम् ॥ २४ ॥

सद्गुरोराश्रयश्चैव विश्वासो नामकीर्तने ।
एवं कुर्वन् नरः सर्वकर्माण्यतितरेद्ध्रुवम् ॥ २५ ॥

यावत् प्रारब्धशेषं पु तिष्ठेदायुः परिक्षिपन् ।
आयुरन्ते व्रजेन्नित्यं मम धाम मदाश्रयः ॥ २६ ॥

लक्ष्मण उवाच

भगवन् रघुशार्दूल तव भक्तिर्मलापहा ।
यथैव सर्वकर्माणि क्षिणोति शतजन्मनाम् ।
प्ररब्धान्यपि कर्माणि तथा किं न क्षिणोति सा ॥ २७ ॥

श्रीराम उवाच

सत्यं लक्ष्मण मद्भक्तिः प्रारब्धमपि धावति ।
अनुद्दीप्ता न तु सखे समुद्दीप्तैव सा तथा ॥ २८ ॥

महाभावं परिप्राप्ता समुद्दीप्तेति वर्ण्यते ।
प्रेमानन्दरसाकाराधिका मुक्तिपदादपि ॥ २९ ॥

तस्यां तु सम्प्रजातायां वशीभूतो भवाम्यहम् ।
स्वर्गापवर्गगतिदे स्वस्वरूपप्रदेऽपि च ॥ ३० ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षं ।

वशीभूते मयि पुंसां किमशक्यं नु विद्यते ।
साधनावधिसंजाता साधनेऽप्यूनवृत्तिका ।
अनुद्दीप्तेति सा प्रोक्ता नित्यमेव फलोन्मुखी ॥ ३१ ॥

किं तु कर्मध्वंसकरी ज्ञानमार्गाद्गरीयसी ।
साधनानां च सर्वेषामेका मुख्यतमा त्वियम् ॥ ३२ ॥

सर्वाण्येव च कर्माणि भस्मीकुर्यादियं तथा ।
हित्वा प्रारब्धकर्मैकं भोगनाश्यं यतोहितत् ॥ ३३ ॥

इदं ते सर्वमाख्यातं मत्प्राकट्यप्रयोजनम् ।
प्राकट्यान्ते तथैवाहमप्राकट्यं व्रजामि च ॥ ३४ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥



चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

यत्र[1] पूर्वं स्थितश्चान्तर्हितो लीलाप्रवर्त्तकः ।
यत एवोपगच्छामि जनदृग्गोचरत्वकम् ॥ १ ॥

तत्रैवाहं पुनर्यामिव्यापके निजधामनि ।
इह तत्रामुत्र सदा सर्वत्र प्रतिभाति सत् ॥ २ ॥

ज्ञानिनां चापि भक्तानां नित्यलीलारसात्मकम् ।
आदाय[2] परिकरं सर्वं कार्यान्ते प्रविशाम्यहम् ॥ ३ ॥

आत्मन्येव वियोगेन चात्मानं संहराम्यहम् ।
निर्गुणं सच्चिदानन्दं कालमायातिरस्करम् ॥ ४ ॥

प्रमोदवनसंज्ञं तन्मम धाम विराजते ।
गमनं गगनाकारं सुविशालं मनोहरम् ॥ ५ ॥

कल्याणगुणसम्पन्नं नित्यरूपं सनातनम् ।
सर्वर्तुसुखसंयुक्तं नाना भोगविशारदम् ॥ ६ ॥

---

१. प्रमोदवने–टि० बड़ौ० । २. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

नानालक्ष्मीविलासोत्थकोटिब्रह्मसुखोत्तरम् ।
तुच्छीभवन्महायोगनिरन्तरमहत्सुखम् ॥ ७ ॥

पीयूषद्रवनिर्जत्रमहामधुरिमास्पदम् ।
अनन्तगुणसम्बद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ ८ ॥

अनेककौतुकागारं समस्तरसरञ्जितम् ।
ऊधोभारभराक्रान्तैः पयःपीयूषसंस्रवैः ॥ ९ ॥

हरिच्छाद्वलमध्यस्थैः सवत्सैः शृङ्गमञ्जुलैः ।
चन्द्रवर्णैतर्घनश्यामैः स्वर्णवर्णैर्मनोहरैः ॥ १० ॥

अयुतप्रयुतातीतगणसौहार्दवारिभिः ।
[1]एकवर्णसमाकारमख्यपृष्ठगतापरैः ॥ ११ ॥

गवेन्द्रसुखिताधीशसर्वस्वार्पितसद्व्रतैः ।
गोकुलैः क्रीडनोत्साहैर्नैचिकीचक्रमण्डलैः ॥ १२ ॥

वत्सैर्वत्सतरीभिश्चा तथा वत्सतरैः शुभैः ।
ललाटोदितचन्द्राङ्कैः साक्षाल्लक्ष्मीमहोदयैः ॥ १३ ॥

इतस्ततः कूर्दमानैर्गोष्ठाङ्गणमहोत्सवैः ।
हंभारवतिमधुरस्वरैर्मण्डितमद्भुतम् ॥ १४ ॥

हेमाद्रिदिव्यरत्नाद्रिसानुच्छायावनावृतम् ।
आनन्दपर्वतानेकशृङ्गच्छायावनान्वितम् ॥ १५ ॥

सहजानन्दिनीनित्यकेलिपर्वतमञ्जुलम् ।
विरजाख्यसदानन्दासरयूनीरसेविभिः ॥ १६ ॥

महाचन्द्रसरस्तोयसम्बन्धतुहिनोपमैः ।
सततं पवनाक्रान्तिपरागपटलाञ्चितैः ॥ १७ ॥

कदम्बवनसम्बन्धान्महामधुरसौरभैः ।
सहजासहजेशानप्रसादसमवाप्तकम् ॥ १८ ॥

वहद्भिरिव माङ्गल्यभाजनं पीतमम्बरम् ।
रणन्मधुकरारावकिंकिणीजालमालिभिः ॥ १९ ॥

समीरणैः सुमधुरैरितस्तत उदीरितम् ।
नानारासरसोल्लासिगुणवन्मत्तगोपिकम् ॥ २० ॥

गोपालबालकेलीनामाश्रयं सर्वसुन्दरम् ।
अनेककौतुकोत्कण्ठ्यप्रेमानन्दकलाकुलैः ॥ २१ ॥

---

१. एकवर्णास्तुल्याकाराः मुख्याः पृष्ठरक्षकाश्चपरे गोपालपेषु तानितैः टि०—बड़ौ० ।

निरन्तरोत्साहवद्भिर्नागरैर्विविधैर्जनैः ।
साम्यैरपिधृतानेकनगराचारकोविदैः ॥ २२ ॥

सदा मण्डयिष्यमाणं मण्ड्यमानं च मण्डितम् ।
गोपैश्च गोपिकाभिश्च नागरीभिर्निषेवितम् ॥ २३ ॥

अलंकाराङ्गरागादिश्रृंगाररचनामयम् ।
वस्त्रभूषणवैविध्यविधिक्रान्तं गृहे गृहे ॥ २४ ॥

श्रीरामरमणीवृन्दकृतकन्दर्पकेलिकम् ।
मानप्रसादनोद्युक्तश्रीरामरमणान्वितम् ॥ २५ ॥

हरिनामाधारपरैर्वैष्णवैः प्रेमपालिभिः ।
सखीदूत्यादिविविधसमाचारनिरन्तरैः ॥ २६ ॥

सहजारामसंयोगरसास्वादपरायणैः ।
विप्रयोगरसस्वादपरितप्तैः क्वचित् क्वचित् ॥ २७ ॥

आकीर्णं रसिकैर्जीवैर्विशुद्धैर्नित्यनिर्गुणैः ।
सांसारिकजनोद्धारकरुणापाङ्गभङ्गिभिः ॥ २८ ॥

मुग्धाप्रगल्भादिभेदकान्ताजनसमावृतम् ।
रामप्रेमसमाचारमाङ्गल्यावत्सलोत्तमम् ॥ २९ ॥

श्रीरामगुणसंश्रावपरायणसखीजनम् ।
स्वाधीनपतिकाश्रीमत्सहजानन्दिनीकृतैः ॥ ३० ॥

लीलाचरित्रकलनैरुद्भूतयशसाऽञ्चितम् ।
आधिदैविककालोत्थसर्वदिव्यगुणन्विताम् ॥ ३१ ॥

श्रीरामप्रेमकीर्तिभ्यां मण्डितं प्रतिमन्दिरम् ।
विस्तीर्णपणविन्यस्तनवनिध्यधिकैरपि ॥ ३२ ॥

अनेकरूपसंचारिश्रीमद्दिव्यरमाश्रितम् ।
कोकिलामधुपारावसन्तश्रीविराजितम् ॥ ३३ ॥

नृत्यन्मत्तमयूरश्रीशोभाप्रावृड्घनद्युति ।
श्रीरामरूपमाधुर्यसहजातनुकान्तिभिः ॥ ३४ ॥

एकतः प्रावृषाकारं परतः शरदाश्रितम् ।
चकोरचञ्चूपुटकाचान्तरामेन्दुचन्द्रिकम् ॥ ३५ ॥

सर्वोत्तमगुणावास सर्वोत्तमशुभान्वितम् ।
सर्वोत्तमरसाभ्यक्तं महाभावविभावितम् ॥ ३६ ॥

हावभावकलामूलं कुसुमाकरशोभितम् ।
सर्वनित्यपुरीवासं मथुरादिपुरीगणैः ॥ ३७ ॥

मूर्तिमद्भिर्महोदाररामानन्दैकहेतवे ।
उपास्यमानं नितरां महासौभाग्यकाङ्क्षिभिः ॥ ३८ ॥

खेलत्खञ्जननिर्जैत्रसहजालिविलोचनम् ।
किशोरीकोटिपादाब्जनूपुरध्वनिनादितम् ॥ ३९ ॥

नित्यकाम[1]दुधोत्फुल्लमहावृक्षकदम्बकम् ।
लतानित्यनिकुञ्जाढ्यं संकेतस्थलमञ्जुलम् ॥ ४० ॥

अनेकवल्लीविपिननृत्यत्केकिगणावृतम् ।
मनोज्ञकुञ्जपुञ्जाढ्यं सकलर्तुसुखावहम् ॥ ४१ ॥

अनेकपर्वतवरस्रवन्निर्झरनादितम् ।
रत्नधातुमयानेकशिखरोतुङ्गमन्दिरम् ॥ ४२ ॥

दरीमन्दिरविश्रान्तश्रीरामरमणीगणम् ।
कूजत्पक्षिगणस्थानवृक्षशाखाविराजितम् ॥ ४३ ॥

निर्मलाम्बुसरिद्वीचीक्षालितानेकसत्तरूम् ।
विचित्ररत्नसोपानयुक्तानेकसरोवरम् ॥ ४४ ॥

हंसकारण्डवादद्याभिः पक्षिराजीभिराचितम् ।
बहुरासविलासादिकेलीनित्यरसोत्तरम् ॥ ४५ ॥

माङ्गल्यकाकीर्तिगानमत्तानेकपुरन्ध्रिकम् ।
कदम्बवनमध्यस्थवीणावेणुनिनादितम् ॥ ४६ ॥

अवाङ्मनससंस्कारं निर्गुणं च निरञ्जनम् ।
चिन्मात्रमानन्दमयमक्षरब्रह्ममध्यगम् ॥ ४७ ॥

आविर्भावावतारांशकलाव्यूहप्रसूतिदम् ।
नित्याविर्भावललिताभवतारिपदालयम् ॥ ४८ ॥

निरंशंनिष्कलंशान्तं सर्वोपनिषदीडितम् ।
अप्राकृतमवाच्यं चाप्रमेयमभिधातिगम् ॥ ४९ ॥

नित्यैः परिकरैर्युक्तं नित्यलीलारसात्मकम् ।
नित्यानन्दस्वरूपं च नित्यविग्रहशोभितम् ॥ ५० ॥

सर्वावतारमूलं यदविदद्यैकतिरोहितम् ।
विदद्यामात्राधिकारेण भक्तिमात्रस्फुरत्वकम् ॥ ५१ ॥

प्रमोदविपिनं नित्यं रामलीलासमाकुलम् ।
यस्य धाम सुप्रकाशं नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ॥ ५२ ॥

---

१. आर्षप्रयोगः ।

सर्वकामफलैर्भोगैराक्रीडत्स्वजनैः सह ।
श्रीरामोऽहंसदाऽऽस्तेवै नित्यं क्रीडन्ति तेन ते ॥ ५३ ॥

मन्मयास्तत्परं स्थानं ततोऽहं प्रकटोऽभवम् ।
तत्र रमामि लीलाभिः सर्वाभिः परितोऽव्यथः ॥ ५४ ॥

लीलापरिकराश्चापि ततो मे प्रकटा इह ।
सर्वानुभवसिद्ध्यर्थं साधूनां भाव्यसिद्धये ॥ ५५ ॥

दुःखस्य हरणार्थं च भक्तानां सानुवर्त्मनाम् ।
स्थापयित्वा पदाम्भोजं नौकावद्भवसागरे ॥ ५६ ॥

प्रमोदविपिने नित्यं विहरामि परात्परम् ।
सीता लोकेति विख्यातं सहजानन्दिनीपदम् ॥ ५७ ॥

न हि मे लौकिकी व्यक्तिः परस्य ब्रह्मणः सखे ।
लीलापरिकराः सर्वे भवदादयाः प्रकीर्तिताः ॥ ५८ ॥

तत्र मां सहजाकेलिसक्तं चित्सुखविग्रहम् ।
स्तुवन्त्यप्राकृतैः शब्दैर्वेदा मूर्तिधराः सखे ॥ ५९ ॥

सहजानन्दिनीं पूर्णां परां लक्ष्मीं सनातनीम् ।
आलिङ्ग्य नित्यविपिने प्रमोदवनसंज्ञिनि ॥ ६० ॥

रमामि रमणैर्नित्यैः शरन्माधव सम्भवैः ।
सोऽयं मम परो लोकोऽस्म्यक्षरान्दमध्यगः ॥ ६१ ॥

प्रेमानन्दमयः साक्षान्नित्यनित्यः परात्परः ।
एवं मे सम्भवं नित्यं प्रमोदवनलोकतः ॥ ६२ ॥

यो वेत्ति स नरः साक्षान्मम भक्ति परां लभेत् ।
मम रूपं च लोकं च नाम लीलां च मत्कृताम् ॥ ६३ ॥

लीलापरिकरांश्चापि वेत्ति नित्यतया तु यः ।
स लभेन्नित्यलीलायां प्रवेशं नित्यधामगः ॥ ६४ ॥

एवं यो वेत्ति मद्भावं तव संस्थां च मानवः ।
स लभेन्मे प्रेमभक्तिं प्रेमानन्दस्वरूपिणः ॥ ६५ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं प्राकट्यं यत एव मे ।
अप्राकट्यं च यत्राहं रमामि समये सखे ॥ ६६ ॥

समयश्चापि मद्रूपः कालः परमभीषणः ।
आधिदैविकाध्यात्मिकाधिभौतिकसुविस्तरः ॥ ६७ ॥

सेवकः परमोऽयं मे विश्वं विपरिणामयन् ।
यथाहं फलसंसिद्धौ हेतुस्तद्वदयं सखे ॥ ६८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥



पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं समाहितो भ्राता रामेण प्रभुणा स्वयम् ।
लीलातिरोधानभवं संक्लेशं विरहात्मकम् ॥
मुमोच लक्ष्मणः सद्यो बहुधा सम्प्रबोधितः ॥ १ ॥

सहजानन्दिनीं शक्तिं ज्ञात्वास्य परमात्मनः ।
सर्वां लीलां नित्यतया मन्यमानः सुनिर्भयः ॥ २ ॥

तदिच्छामात्रतश्चास्यास्तिरोभावं विदन्नभूत् ।
सर्वत्र विगताशङ्कस्तदेकाश्रयतत्परः ॥ ३ ॥

लक्ष्मण उवाच

सत्यं तव परा लीला कालमायातिगा प्रभो ।
सैवास्ति जीवनं नाथ भक्तानां प्रेमचेतसाम् ॥ ४ ॥

गतं विरहकातर्यं त्वत्स्वरूपप्रबोधनात् ।
नित्यमेव भवत्सङ्गे रमयामि च राघव ॥ ५ ॥

एकान्तिनो वयं दासा भवत्सङ्गे रमामहे ।
नित्यानन्दसुखे मग्ना निर्भयाः स्म प्रभो सदा ॥ ६ ॥

लीलापरिकरैः साकं सदैव रमसेऽनिशम् ।
विशिष्टमेव रूपं ते प्रमुद्वनमहीतले ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणो रामं सरयूतीरमाश्रितः ।
निजप्रासादवर्ये स रेमे परमनिर्वृतः ॥ ८ ॥

आमन्त्र्य रामं भ्रातरं स्वपुरं समगात्ततः ।
सुवर्णरत्नप्रासादप्रभाद्योतितदिक्तटम् ॥ ९ ॥

अनेकवापिकावारिफुल्लेन्दीवरपङ्कजम् ।
गुञ्जद्भ्रमरसंदोहसम्बद्धकुसुमाकरम् ॥ १० ॥

अनेकवाटिकावृन्दविकासिबहुभूरुहम् ।
अनेकलक्ष्मीप्रसरं गायत्किन्नरसुन्दरम् ॥ ११ ॥

गन्धर्वललनागीतगम्भीरध्वनिमञ्जुलम् ।
चलत्कुरङ्गनयनामञ्जीरध्वनिनादितम् ॥ १२ ॥

नर्तकीनृत्यवलितं विलासशतसंकुलम् ।
ऊर्मिलाभोगललितं कोकिलाकुलनादितम् ॥ १३ ॥

विचित्रचित्ररचनारामणीयकसंयुतम् ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीशोभाढ्यं बहुसम्पद्विराजितम् ॥ १४ ॥

सारिकावदनोत्थेन रामनाम्ना निनादितम् ।
स्थले स्थले क्वणद्वीणासम्बद्धरामनामकम् ॥ १५ ॥

रत्नप्रासादकिरणप्रकाशितदिगन्तरम् ।
मणिकुट्टिमसंक्रान्तलक्ष्मणप्रतिमाकुलम् ॥ १६ ॥

नित्यंवसन्तसदनं नित्यवर्षासुखप्रदम् ।
आराम नृत्यत्प्रमदमयूरगण संकुलम् ॥ १७ ॥

लक्ष्मणः स्वपुरं गत्वा विरेजे रामसेवकः ।
यथा भोगवतीमध्ये वासुकिर्नाम सर्पराट् ॥ १८ ॥

तत्र श्रीरामसहितो रेमे भोगैरनेककैः ॥ १९ ॥

लीलामहारसालं त भावयानः प्रतिक्षणम् ।
किंचित्समुद्विग्नमना राम सांनिध्यनिर्वृतः ॥ २० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥



षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कदाचिद्रघुशार्दूलं रामं त्रैलोक्यसुन्दरम् ।
प्रभाविर्णं विक्रमिणमुत्त[1]रौत्तरगुणाकरम् ॥ १ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

ज्ञात्वा पुरुषवर्यं तं साक्षाद् रामं परं विभुम् ।
अयोध्यास्था जनाः सर्वे ऊचिरेऽन्योन्यमादृताः ॥ २ ॥

जना ऊचुः

अहो अयं कोऽपि महान् वरेण्यो रामः कलाकोटिधरोऽवतारी ।
आजन्मतोऽद्यावधि सर्वमुत्तमं चक्रे चरित्रं परदुःखवारणः ॥ ३ ॥

तथा ह्यनेन प्रसभं निपातिता दैतेयवंशाः कति नो धरण्याम् ।
येषां बलं शक्रमुखैः सुरैरपि प्रभावयुक्तैरपि दुर्निवार्यम् ॥ ४ ॥

अनेन बालेन हृता जिघांसुः सा राक्षसी द्वित्रिमासोद्भवेन ।
याभूद् बहुक्रोशमितोग्रविग्रहा शैलेन्द्रवक्षोजवतीव पूतना ॥ ५ ॥

हृतः स खट्वामधिशय्य तिष्ठता खट्वासुरो नामपरः शिशुग्रहः ।
अदृश्यरूपः खलुरावणस्य यो हितप्रदः कुञ्जरकोटिविग्रहः ॥ ६ ॥

हृतः स वात्या प्रचयात्मना चरन् महासुरो बालकेलीपरेण ।
येनान्तरिक्षेऽप्युपात्तवेगिना बलाधिकेन प्रसभं हारकेण ॥ ७ ॥

यः कावपि क्षितिरुहौ गगनस्पृशाङ्गौ-
शाखाभुजैरपि गतौ घनमण्डलान्तम् ।
स्पृष्ट्वा पदाम्बुजयुगेन च शापजातौ-
कौचित्सुरौ समुदपाटयदात्तलीलः ॥ ८ ॥

येनातिवेगा दुदपाटि भूरुहौ माङ्गल्य कामात्तृनिबद्धदाम्ना ।
ततो विनिर्गम्य च केनचित्स्तुतः पुंसा सुवेशेन कृताञ्जलेन ॥ ९ ॥

साक्षान्महाविष्णुरिति प्रतीयते भाग्येन तेनामितवैभवाढ्यः ।
यः कुञ्जरैरप्यतिविक्रमोद्धुरैर्न भञ्जनीयोऽप्यतियत्नेन तावत् ॥ १० ॥

यः कालमेघामितवृष्टिवेपितं संलक्ष्य लोकं निजमातपत्रम् ।
विस्तारयामास दशैकयोजनच्छायाकरं गोपतिगोधनोपरि ॥ ११ ॥

यस्मिंश्च सापश्यदशेषविश्वकं माङ्गल्यका श्रीजननी समंततः ।
सपर्वतं साब्धिजलं सकाननं विचित्ररूपं सर्वमेकत्र संस्थम् ॥ १२ ॥

वितर्कयामास प्रथमं ततस्तं लोक धात्रा सहितं सभूधरम् ।
कदाचित्कर्तुं श्रीभगवान् राघवेन्द्रः परीक्षणं समवेक्ष्य विचित्रलीलः ॥ १३ ॥

योऽयं ततः समभवत्सकलस्वरूपः स्वांशके न हि रचिताखिलसत्प्रपञ्चः ।
दृष्ट्वा च यस्य बहुरूपतााया व्रजान्तरत्यद्भुतां भवनशक्तिमनन्तशक्तेः ॥ १४ ॥

धाता पदाम्बुरुहयोर्न्यपतत्प्रभग्न लोकेशमानविभवोन्नतिरात्तदास्यः ।
गावश्च येन परतः खलु पाल्यमानाः साक्षान्महोपनिषदश्च तदेकदेशाः ॥ १५ ॥

शाखाः पयश्च परमाः खलु भक्तिरासोत्तद्दोहनं विहितवान् ननु यः परोक्षः ।
गोपाश्च ते वै गुरवः सम्प्रतीता वेदाचार्याः केवलं दिव्यरूपाः ॥ १६ ॥

गोप्यस्तथा भक्तितन्व्यः प्रतीतास्तावत्प्रतीता भुवने सन्ति नान्याः ।
पश्चेन्द्रयागविभवैर्निजवैष्णावानां पूजां विधापयितवान्नृपतिं समर्थः ।
तेनोद्दुःखं च सुरराजमपीपतद्यो लोकेशगर्वगुरुशैलभरात्प्रमत्तम् ॥ १७ ॥

यो रासभाकृतिधरं खलु राक्षसेन्द्रं सद्यो व्यनाशयदनन्तबलः प्रमत्तः ।
पश्चादहिं च निरकाशयदुद्वमन्तं ज्वालाविषं व्रजगवामहितं सख्याः ॥ १८ ॥

यश्च द्विजेषु कृतयाचनकोऽन्नहेतोर्यागक्रियाविवशमूढसमस्तधीषु ।
तेषां बधूश्च परमान्नकृतोपहाराअभ्युद्धार पतिभिः सह दिव्यकेलिः ॥ १९ ॥

माङ्गल्यकापतिमथो सुखिताख्यगोपं नीतं यमेन निजसादनमुग्रशक्तिः ।
पश्चान्निनाय च स्वयं विहितात्मपूजावित्रासयन् प्रसभमन्तुमनन्तसारः ॥२०॥

यश्चस्वसौन्दर्यविमोहिताभ्यो व्रजाङ्गनाभ्यो व्रतकर्शिताभ्यः ।
ददौ स्वरूपं जनकेन्द्रपुत्रो प्रसादकाले प्ररमप्रसन्नः ॥ २१ ॥

दुर्वास सादापयदात्मलब्धये यो जानकीमन्त्रवरं तथाभ्यः ।
आविष्ट रूपाश्च तया तथैता रासप्रसंगेऽरमयत् प्रवीणः ॥ २२ ॥

यश्च व्रजान्तर्निवसन्गवेन्द्रं माङ्गल्यकां चैव विमुक्तभेदौ ।
तौ पुत्रभावेन पुपोष पूर्णप्रेमामृतेनातिसुदुर्लभेन ॥ २३ ॥

यश्च स्वरूपं विधिशेषलक्ष्मीरुद्रादद्यलभ्यं परमं ब्रह्मसंज्ञम् ।
वितीर्णवांञ्छीपशुयाङ्गनाभ्यः प्रेमप्रवृत्तिं भुवि दर्शयानः ॥ २४ ॥

यः प्रायशो लभ्यत एव नागमैर्न योगदृष्टिप्रसरैस्तपोभिः ।
न ज्ञानमार्गेण न कर्मणा च प्रेमाख्यभक्तिप्रियतामभ्युपेतः ॥ २५ ॥

यो मोहयन् मुरलीनाददिव्य पीयूषधाराभिरनङ्गगर्वभित् ।
नागीर्नरीश्चैव नारीः सुरीश्च गन्धर्वयक्षोत्तमकन्यकाश्च ॥ २६ ॥

योऽपाद्दवानलमनल्पमुदग्ररूपं संशुष्कतिन्दुकवनीतरुजातलग्नम् ।
उज्ज्वालजिह्वमपिधाय नभोग्रसन्तं गोसंघगोपतिसमूहकृतासुरक्षः ॥ २७ ॥

इच्छामात्रेण यश्चक्रे बाण प्रेरणया परम् ।
लङ्केशसैन्यकदनं लङ्केशं च न्यपातयत् ॥ २८ ॥

यो तौ शरौ प्रहितौ राघवेण तौ भूत्वा च स्वं रूपमङ्गीकृतवन्तौ ।
गोदावरीतीरमुपेत्य चक्रेतु दिव्यां केलिं सीतया सार्द्धमुच्चैः ॥ २९ ॥

इत्यादधनेकानि दधच्चरित्राण्युपागतो राघवेन्द्रस्य गेहे ।
कौसल्याया दृष्टिसुखं वितन्वन्नेको रामः सम्प्रतीतश्चतुर्धा ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥



सप्तत्रिंशोऽध्यायः

जना ऊचुः

अहो अतः श्रीरघुवर्यगेहे श्रीमत्ययोध्यानगरे तदैव ।
अत्यद्भुताः सम्पद आविरासुर्यास्ताः प्रमोदाख्यवने प्रसिद्धाः ॥ १ ॥
ऋतुर्वसन्तोऽत्र समावसत्सदा गुञ्जद्द्विरेफावलिरुत्कणात्मिकः ।
गृहे गृहे चात्र समृद्धयोऽभवन् साक्षाद्रमावल्लभवासयोयाः ॥ २ ॥
कदाचिदेष प्रभुरात्मनः पितुश्चक्रे गृहादानयनं प्रचेतसः ।
दधत्स्रजं चापि तदोपढौकितां महार्हरत्नप्रकरैरूपेताम् ॥ ३ ॥

रमन् वसन्तोत्स्तवजैर्विलासैः समागतश्चारुसाकेतपुर्याम् ।
छायामयं संन्यवधीन्महासुरं शरेण रुद्रादिसुरानिवार्यम् ॥ ४ ॥

वसन्नयोध्यानगरे यदीशः करोति विश्लेषरुजां निवारणम् ।
आभीरिकाणां हृदयेषु नित्यं जगत्त्रयव्यापकरूपसारः ॥ ५ ॥

प्राणाधारश्च यस्यापि प्रायः प्रमुदकाननम् ।
विना तेन क्षणमपि वर्त्तते घनसुन्दरः ॥ ६ ॥

व्रजं दृष्ट्वा व्रजतः प्रेममग्नं यः स्वात्मदूतप्रवरान् कुमारान् ।
संस्थापयामास निजैकपार्श्वे तत्रैव संदर्श्य व्रजं समस्तम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रेण तौ ज्ञात्वा पूर्णौ श्रीपुरुषोत्तमौ ।
नीतवान् स्वगृहं यज्ञविघ्नराक्षसहन्तवे ॥ ८ ॥
न ह्यन्येन विना रामं भगवन्तं रमापतिम् ।
विश्वामित्रयज्ञरक्षां कर्त्तुं शक्या स्ववीर्यतः ॥ ९ ॥

मैथिलीं चोपयेमे यो सह भ्रात्रा रमां प्रियाम् ।
साक्षात्परां स्वयं लक्ष्मीं चतुर्धा शर्मसंगिनीम् ॥ १० ॥

निन्ये सुबाहुप्रमुखानसुरान् यमसादनम् ।
यज्ञं प्रवर्त्तयामास यज्ञभुक्प्रवरः स्वयम् ॥ ११ ॥

विश्वामित्रस्य तुष्टाव यज्ञऋक्सामसूक्तिभिः ।
भङ्क्त्वाहरधनुः सद्यः प्रचलद्बाहुलीलया ॥ १२ ॥
मैथिल्या च स्वयंलक्ष्म्या शोभयामास सुन्दरः ।
अजयत्समरे पश्चाद् भार्गवं स्वांशमूर्जितम् ॥ १३ ॥

न ह्यन्योऽपि विधातुंस्याच्छक्त ईदृशं कर्म तत् ।
येन त्रिःसप्तकृत्वो भूर्द्विजेभ्यः प्रतिपादिता ॥ १४ ॥
लतारूपास्ततो नारीर्विधिमानससम्भवाः ।
स्वाङ्घ्र्याब्जधूलिसंस्पर्शमुदिता ऊढवान् विभुः ॥ १५ ॥

इदं चापि ऋते साक्षाद् रामचन्द्रं करोति कः ।
परस्तात् प्राकृतं सर्गमनादृत्य स्थिताश्चिरात् ॥ १६ ॥
अप्राकृतं मनोहारि दृष्ट्वा रूपं रमापतेः ।
मोहिताः कामतश्चैता विधिमानसजाः श्रियः ॥ १७ ॥
कदाचिद्भगवाञ्छेषो साकेतं श्रीहरेः पदम् ।
ययौ तत्र च भूरीणि दृष्ट्वा सिंहासनानि सः ॥ १८ ॥

अपश्यत्तेषु निखिलानवतारांश्च मध्यतः ।
दिव्ये सिंहासने पश्चादमुमेव वरं प्रभुम् ॥ १९ ॥
अन्यांश्च रामवदने दत्तदृष्टीन् व्यलोकत ।
ततः क्षणेन सर्वांस्तान् विलीनान् रामविग्रहे ॥ २० ॥

दृष्ट्वा प्रमुदितः शेषः पूर्णमेनममन्यत ।
इदमद्भुतचारित्रमस्य पूर्णत्वबोधकम् ॥ २१ ॥
सीतापतेः श्रीरामस्य भगवत्त्वं च शुश्रुम ।
पितुश्चाप्यश्वमेधांश्च गन्धर्वान् प्रविजित्य यः ॥ २२ ॥
समानिन्ये हयांश्चान्यान् गान्धर्वीश्चापिकन्यकाः ।
ताभ्यः स्वरूपं समदाद् भक्ताभ्यः पूर्वजन्मनि ॥ २३ ॥

इदमस्य श्रीरामस्य चरित्रं परमाद्भुतम् ।
भुवि कर्त्तुं क्षमः कः स्याद्विनाश्रीपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥

अग्नींश्चैष समानिनाय भगवान् यत्रेति कोऽन्यस्ततः-
श्रीनारायणधामतः परमम् दृष्ट्वा च नारायणः ।
तुष्टाव प्रणवाधिदैवतवरः पूर्णः पुरा पुरुषं
प्राप्यानन्यनिजाधिदैवततया प्रेमप्रमोदालयम् ॥ २५ ॥

एतान्यस्य चरित्राणि सकलान्यनुशुश्रुम ।
गुरुभ्यः पुराणेभ्यो वेदविद्भ्यो वयं सदा ॥ २६ ॥

तदत्र भगवान् साक्षात्पूर्णः श्रीपुरुषोत्तमः ।
सर्वावताराणां मूलभूतः श्रीराम उच्यते ॥ २७ ॥

रामेति द्व्यक्षरं मन्त्रं जपतां पठतां सदा ।
संसारातपसंतापः शान्तिमेति निरन्तरम् ॥ २८ ॥

धन्या ह्यस्य पदाम्भोजं भजन्ते प्रकृतेः परम् ।
विशुद्धं सच्चिदानन्दरूपमक्षरतः परम् ॥ २९ ॥

नाम्नां श्लोकेन रूपस्य ध्यानेन भगवान् स्वयम् ।
विमोचयति संसारादित्येवमनुभूयते ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥



अष्टात्रिंशोऽध्यायः

जना उचु

अहो अयं पश्यतां नो मनांसि दृष्टीः समाकर्षति नित्यमेव ।
पारेपरार्द्धेन्दुविभासिनीभिरनल्पश्रीविग्रहमाधुरीभिः ॥ १ ॥

कदाचिद्भवसंतप्ता नाम चेदस्य जिह्वया ।
गृह्णीमस्तद्भवत्येव मनःपीयूषशीतलम् ॥ २ ॥

रूपेण कान्त्या वयसा माधुर्येण स्वभावतः ।
गुणैश्चारित्रकैर्लीलासौन्दर्यैः सर्वमोहनः ॥ ३ ॥

नात्र संदेहलेशोऽस्ति साक्षादेष स्वयं रामः ।
कारणं द्विजगोभूमिरक्षणं प्राप्य दृश्यते ॥ ४ ॥

लीलामानुषनाट्योऽसौ परब्रह्म स्वरूपतः ।
शरणं गृह्यता मेष गृह्यतां च दृढं प्रभुः ॥ ५ ॥

श्रद्धया भक्तितो मर्त्याः सर्वस्वं क्रियते निजम् ।
तथा ह्यनेन कार्याणि कृतप्रायाणि सर्वशः ॥ ६ ॥

अधुना रमतेपारं निजं धाम परात्परम् ।
अक्षरं कालमायादि समतीत्य तदूर्जितम् ॥ ७ ॥

तदाकारं न जानन्ति ह्यासुरं भावमाश्रिताः ।
तैरात्मा वञ्चितः स्वस्य भवसागरजैर्भ्रमैः ॥ ८ ॥

केचिदेनं वदन्तीह मानुषं भावमाश्रितम् ।
नहि कापि परं ब्रह्म दृश्यरूपं यदक्षरम् ॥ ९ ॥

केचिदेनं जगुर्लोकाः पुरुषं प्रवरं भुवि ।
न तु रामचन्द्रं साक्षान्मोहितास्तस्य मायया ॥ १० ॥

केचिदनं परब्रह्म प्रवदन्ति स्वबुद्धितः ।
अनुभावविशेषेण विस्फुरन्तं निजैर्गुणैः ॥ ११ ॥

ते सर्वे दुरदृष्टेन वञ्चिताः प्रभुमायया ।
कृतार्था न भवन्त्येव दैवोपहतमानसाः ॥ १२ ॥

वयं त्वेनं भजिष्यामो ज्ञात्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
अनादिनिधनं साक्षात्सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ १३ ॥

वयं हि ज्ञातवन्तोऽस्य स्वरूपं परमेशितुः ।
अभाग्यास्तंमृतयो वै ह्यधुना न भजेम चेत् ॥ १४ ॥

को विशेषः पशुभ्यो नो ज्ञात्वैनं संत्यजाम चेत् ।
अयं श्रीभगवानस्मानुद्धर्त्ता दुःखसागरात् ॥ १५ ॥

य एनं भेजिरे पूर्वे त्यक्त्वाहंभावमात्मनः ।
मोचितास्तेऽनेकजन्मसंचिताद् दुःखसागरात् ॥ १६ ॥

कर्मणापि ह्यमुं देवं भेजिरे सनकादयः ।
ततः पक्वकषायास्ते स्वात्मबोधमवाप्नुवन् ॥ १७ ॥

अमुमेव ज्ञानमार्गं ये विदुःशुद्धचेतसः ।
वामदेवप्रभृतयस्तेऽपि चैनमवाप्नुवन् ॥ १८ ॥

तथा हि वामदेवेन प्रतिपेदे स्वतेजसि ।
अहं हि मनुरभवं लोकमर्यादपालकः ॥ १९ ॥

स्वस्वरूपाखिलान् देवान् जानामि ज्ञानचक्षुषा ।
आत्मोपादानकं विश्वमात्मन्येव प्रलीयते ॥ २० ॥

मृदुपादानका अर्थाः प्रलीयन्ते यथा मृदि ।
आदावन्ते च मध्ये च मृद्रूपेण महीयते ॥ २१ ॥

तथानादिः कालमानरहितोऽहं न संशयः ।
देशतः कालतश्चापि स्वरूपाच्च न मे त्विमाः ॥ २२ ॥

इत्येवं प्रतिपन्नः स बभूवामृतरूपकः ।
आत्मन्येव तथा ह्येनमुपासीत विचक्षणः ॥ २३ ॥

न ह्येतस्मात्परः कश्चिदुपासा विधिगोचरः ।
भक्तिस्तु सुतरामस्मिन् क्रियमाणा शुभप्रदा ॥ २४ ॥

चातुर्विध्येन मार्गस्य साधयन्ति प्रयोजनम् ।
स्वकं स्वकं जनाः सर्वे ह्यधिकारप्रभेदतः ॥ २५ ॥

तद्रूपमस्मिन् मनुजा यथारुचिप्रभेदतः ।
आसंजयन्तु हृदयं नित्यं फलमवाप्स्यथ ॥ २६ ॥

अथवा प्रकटे देवे साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमे ।
सर्वान् मार्गान् परित्यज्य कायमानसदुःखदान् ॥ २७ ॥

कुर्वन्तु भजनं शुद्धं समाधाय मनःसुखम् ।
शृण्वन्त्वेवं कथास्वन्तः कीर्तयन्तु तथा मुहुः ॥ २८ ॥

[1]अभिवादयन्तु शिरसा कुर्वन्तु पादसेवनम् ।
अर्चन्तु चोपचारौघैः स्मरन्तु नामरूपतः ॥ २९ ॥

तथा शरणीकुर्वन्तु मैत्रीं कुर्वन्तु चामुना ।
निवेदयन्तु चात्मानममुष्मिन्नेव दैवते ॥ ३० ॥

अङ्गीकरिष्यति परं युष्मानेष महाप्रभुः ।
ततस्तरिष्यथ जना दुस्तरं भवसागरम् ॥ ३१ ॥

न कालो ग्रसते कच्चिदेनमाश्रित्य तिष्ठताम् ।
कालस्यापि परं कालं श्रीमन्तं भवतारकम् ॥ ३२ ॥

इदानीं व्यक्ततां यात एतदर्थमयं जनाः ।
साधूनां च मुमुक्षूणां भक्तानां च विशेषतः ॥ ३३ ॥

सर्वदुःखप्रहारार्थं प्रकटः परमार्थतः ।
य एनं निर्गुणं मायारहितं सुनिरञ्जनम् ॥ ३४ ॥

वदन्ति वेदविद्वांसो विद्यागम्यस्वरूपकम् ।
अविद्यानाशद्वारेण स्वरूपेण प्रकाशितम् ॥ ३५ ॥

मुख्यं कार्यमिदं ह्यस्य प्राकट्ययुतवर्ष्मणः ।
अप्राकट्यं निजे धाम्नि कर्तृसंज्ञमगोचरम् ॥ ३६ ॥

तदा स्वेच्छैकमात्रेण ह्यवितर्केण मानवैः ।
जनं यमनुगृह्णीयात्तस्यैव सम्प्रकाशकः ॥ ३७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

अन्यस्य तु फलं राति प्रभुर्मर्यादमास्थितः ।
अनुग्रहस्य रीतिः स्यादमर्यादा यथा भवेत् ॥ ३८ ॥

मर्यादापोषणं चेति रीतिद्वयमुदाहृतम् ।
अप्राकट्ये भगवतः प्राकट्ये च परादरात् ॥ ३९ ॥

व्रजेदेनं स्ववाञ्छातस्तं गृह्णातीति निश्चितः ।
यथा सर्वं परित्यज्य प्राप्तः श्रीमान् विभीषणः ॥ ४० ॥

सकृदेव प्रपद्येत यस्तवास्मीति भाषया ।
तस्मै राघवशार्दूलो ददात्येवाभयं पदम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥



एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति सर्वे मतिं कृत्वा साकेतपुरवासिनः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव समंततः ।
ज्ञातस्वरूपाः सकला उपसेदुर्मुमुक्षवः ॥ १ ॥

जना ऊचुः

ज्ञातोऽसि राम परमार्थत आत्मनां त्वमात्मासि सर्वविषयाव्यभिचारिसत्त्वः ।
आकाशवद्भवसि नित्यममेयरूपस्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ २ ॥

एकोऽसि पूर्वमथ तद्बहुधासि जातः कल्पावसानसमये पुनरेक एव ।
स्वे नित्य एव महिमन्यसि संस्थितस्त्वं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३॥

भक्तोद्धृतिक्षममनेकमनन्तपारमाविर्भवत्स्वमतनो सततं भवेऽस्मिन् ।
मायागुणव्यतिकृतप्रचुरस्वरूपं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ४ ॥

आचार्यतां प्रतियुगं वितनोषि वेदं वाक्यार्थसारविनिरूपणलब्धदीक्षः ।
वैद्योऽसिभूरि भवरोगनिवारणाय तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ५ ॥

ब्रह्मादयोऽपि तव रूपमपारमेतत्त्वन्मायया विततयाप्रतिरुद्धबोधाः ।
जानन्ति नैव भुवनेश्वर मानिनस्ते तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ६ ॥

चेष्टात्मकस्तव विभो ननु काल एष ब्रह्माण्डकोटिघटनापटुरप्रमेयः ।
यस्मिन् गताः प्रलयमब्जभुवोऽविसंख्यास्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥७॥

ब्रह्माक्षरं तव विभो प्रवदन्ति लिङ्ग पूर्ति गता यदवधि श्रुतिवाक्समूहाः ।
त्वां न स्पृशन्ति पुरुषोत्तमभ्रनीलं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ८ ॥

हंहो विचित्ररचनाप्रविधानदक्षं कर्मेति यत्तव वपुः फलदायि नृणाम् ।
यज्ञैस्तदिज्यमिति प्रविदन्ति केचित्तत्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ९ ॥

भक्तेषु राम वितनोषि परानुकम्पामन्येषु कर्मसदृशं फलमादधानः ।
अप्यासुरान् हरसि ते च खलुस्वभावस्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥१०॥

अप्येधतां जगति कामलवापवेषामापाततः किमशुभं त्वदुपाश्रितानाम् ।
त्वद्दिव्यरूप करुणामृतसेचितानां तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ११ ॥

कालस्य सर्वकवलीकरणोग्रमूर्ते र्मूर्ध्निपदं च प्रविधाय निवृत्तशोकाः ।
क्रीडन्ति तावकदृशामृतसिक्तगात्रास्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १२ ॥

नेष्टेषु धर्म निवहेषु कलौ जनानां संतारणाय तव नाम परं समर्थम् ।
उच्चारणेन मखकोटिफलप्रदं यत्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १३ ॥

नाम्नैव यो बत समस्तजनाधिहन्ता वाच्यः स्वरूपमहिमा किमु तावकीनः ।
निर्विघ्नसाधनशताधिककीर्तनं च तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १४ ॥

संतारिताः कति न राघव सार्वभौमपापाजनाः खसकिरातपुलिन्दहूणाः ।
माहात्म्यबोधविमुखा अपि काननस्थास्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥१५॥

आनन्दसारमनवद्यमहोमहिम्ना लोकान्धकारविनिवर्तनसाधुशक्तिम् ।
स्वच्छन्दलोलममृतार्णवमिष्टदर्शं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १६ ॥

उज्जागरद्युतिमुदारमनोज्ञहासभासा पराजितशरद्विधुरश्मिवृन्दम् ।
कर्णस्फुरन्मकरकुण्डलदीपितास्यं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥

त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रतायाः साकेतपत्तनभुवो महिमाप्यवाच्यः ।
यज्जन्मिनां तु सुगमश्चतुरर्थलाभस्तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १८ ॥

दामोदराच्यूतमुकुन्दमुराररिराम श्रीराघवप्रभुजनार्दनबाणपाणे ।
श्रीरामराजकुलचन्द्ररघूत्तमेति तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ १९ ॥

प्रारब्धहारि भजनं तव राघवेन्द्र ज्ञानं च कर्म च भवेत् किमु तेन तुल्यम् ।
मायागुणव्यतिकृतैकविशुद्धभक्त्या तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ २० ॥

सत्त्वेन ते व्यवहितं तव रामरूपमेतच्चिदेकमयमद्भुतमद्वितीयम् ।
अन्यावतारतुलया न हि वर्णनीयं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ २१ ॥

दृष्टिप्रमोदमनुभूय जगत्यनन्यं त्वां तर्कयन्ति मनुजाः पुरुषप्रकाण्डम् ।
भक्त्योपयान्ति न मुमुक्षुतया प्रकामं तं त्वाममी शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥२२॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥



चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तत्र केचिज्जना धन्याः प्रमोदवनवासिनः ।
अयोध्यास्थं रामचन्द्रं भजमाना अनन्यवत् ॥ १ ॥

ऊचिरे वचनं तुष्ट्या तेषु नित्योपसत्तयः ।
कृतार्थं मन्यमानाः स्वं पुरुषोत्तमदर्शिनः ॥ २ ॥

जना ऊचुः

ईश प्रमोदविपिने नटवेषवेषी गोपाङ्गनावलयरासविलासकादीन् ।
यत्त्वं चकार मणिरत्नकिरीटशाली तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥३॥

यच्चित्रकूटगिरिकन्दरगह्वरेषु त्रैलोक्यराजनरदेवकुमारिकाभिः ।
त्वं भूरि दुष्करविलासभरैररंसीस्तत्किं मुहुः स्मरसिराघव राजसूनो ॥ ४ ॥

यत्त्वं मनोज्ञसरयूपुलिनाङ्गणेषु चान्द्रीः क्षपाः क्षपितसर्वजगत्तमिस्राः ।
साकं श्रिया विहरसे परयानुरक्त्यातत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥५॥

सामानि ऋग्यजुरथर्वऋचः स्ववश्याधेनूः शुभाः सुखकदम्बभृताः सवत्साः ।
यत्त्वं वने किमपि चारितवान् सजोष तत् किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥६॥

यत्त्वं प्रमोदवनमध्यगतो विशालप्रासाददिव्यशिखरे व्रजसुन्दरीभ्यः ।
हारान् ददौ मधुपुरी मथ कोसलां च तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो॥ ७ ॥

यद्राजसूनुपदवीमभिपद्य धन्या माभीरराजसुतभावकरीं चकार ।
स्वच्छन्दकेलिकलयातिसुखं चकार तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥ ८ ॥

साकेतधामवसतेर्महिषीं परांतां विज्ञाय पूर्णतमसर्वकलाधिराज्ञीम् ।
आनन्ददो व्रजवधूवलये समस्ते तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥ ९ ॥

यद्दिव्यसाधननिशासु निकुञ्जभूमौ यावद्व्रजाखिलरुचिराणि वपूंषि धृत्वा ।
योगीवयोगकलया सहितोऽतिरेमे तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥ १० ॥

यत्त्वं प्रमोदवनविघ्नकरम्बभूतान् दैत्यानजोघनदहो निशि लक्ष्मणेन ।
ब्रह्मायुषोऽपि परतो विचकार केलिं तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥११॥

कृत्वा व्रजे निमिषमात्रमितं स्वकालं चक्रे प्रमोदविपिने युगकोटिकेलीः ।
तद्वीक्ष्य विस्मितमना अभवद्विरंचि स्तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो॥१२॥

यत्त्वं वनेष्वनुदिनं खलु चारयन् गागोपाकृतः पशुविहङ्गगणाभिरामः ।
वेणुं क्वणन् जगदमोहयदात्ममूर्त्या तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥ १३ ॥

वेणुं करे दधदनङ्गपरार्द्धवेशो दिव्यः स कोऽपि नटराज इवातिमुग्धः ।
यत्त्वं पशूनपि खगान् वशयांश्चकार तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥१४॥

यत्ते वियोगभववह्निपरिप्रदीप्तं तापं वने विहरतो मिलतः प्रदोषे ।
गोपाङ्गनामुखविलोकनतो व्यमुञ्च तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥१५॥

यन्नोवियोगभयभुग्नहृदो निरीक्ष्य सम्मूर्छतः सुखितगोपपतिव्रजस्थान् ।
आनीतवानसि पणं कमपीह कृत्वा तत्किं मुहुः स्मरसि राघव राजसूनो ॥१६॥

नास्माकमत्रभवतः सविधे स्थितानांकश्चित्प्रमोदवनविश्लिषजोऽनुतापः ।
भूयः कदापि सुखितव्रजभूमिपालमाङ्गल्यकादृशिसुखं वितनिष्यसित्वम् ॥१७॥

ते ते सखाय उदयाद्विरहातुरास्ते तास्तेप्रिया विलुलितास्तव विप्रयोगात् ।
ते च प्रमोदवनपक्षिगणास्तमोन्धास्तान् किं मुहुर्नसुखयिष्यसि राघवेन्द्र ॥१८॥

त्वद्विप्रयोगदशया प्रमुदाटवीस्थानैव स्मरन्ति किमपि स्वमपि प्रभावम् ।
उन्मत्तवद्विनिगदन्ति चलन्ति भान्ति पश्यन्ति सन्ति विवलन्ति परिभ्रमन्ति॥१९॥

तेषां त्वमप्रतिमहृच्छयवेदनाग्निं स्वास्येन्दुदर्शनसुधारससेचनेन ।
भूयो हरिष्यसि कथं न परानुकम्पावश्यात्मनां त्वमसि यत्खलु सार्वभौमः ॥२०॥

[1]इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥



---

१. नास्ति–बड़ौ० ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा जनानां स्वाश्रितात्मनाम् ।
पूर्वं प्रभुरयोध्यास्थान् बभाषे रघुनन्दनः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

शृण्वन्तु भो अयोध्यास्थाः जनाः सर्वे हि मामकाः ।
अनायासेन वो मुक्तिर्भविता न च संशयः ॥ २ ॥

यूयं हि नित्यमुक्ताः स्थ मत्सान्निध्ययुजः सदा ।
मद्दर्शनकथालापश्रवणादिषु तत्पराः ॥ ३ ॥

दूरतोऽपि च ये मर्त्या मन्नामग्रहणे स्थिताः ।
तेषामप्यहमुद्धर्ता भवदुःखरयात्सदा ॥ ४ ॥

यूयं त्वयोध्यापुरवासमायात्सद्धृतान्तःकलुषाःपुनीताः ।
श्रीसारवाम्भःपरिपानपूताः किमिच्छथान्यां बत मुक्तिमुच्चैः ॥ ५ ॥

एतावज्जनिसाफल्यं जनानामत्र विद्यते ।
अयोध्यामण्डले वासः सरयूवातवीजिते ॥ ६ ॥

अमुष्मिन् मण्डले मर्त्या रवियोजनसम्मिते ।
पशुपक्षन्त्यजानामप्यतिमुक्तिः सनातनी ॥ ७ ॥

यत्र कश्चिद्द्वादशयोजनात्मके मन्मण्डले ये निवसन्ति मानवाः ।
तेषामहं देहावसानकाले ददामि पक्षीन्द्रसुवाहनत्वम् ॥ ८ ॥

मण्डलानामुत्तमेऽस्मिन् मण्डले देवपूजिते ।
प्रवेशो यमदूतानां न कदाचन विद्यते ॥ ९ ॥

पशवः पक्षिणश्चैव ह्यन्त्यजाः श्वपचादयः ।
चतुर्भुजत्वमापन्ना व्रजन्ति मम धामनि ॥ १० ॥

दुष्पीतिर्नाम चाण्डालः पुरास्मिन्मण्डले वसन् ।
मृगयाचारनिरतो दुर्दान्तो जीवहिंसकः ॥ ११ ॥

आजन्मपातकभृतः सर्वभक्षः स्वभावतः ।
अधमां योनिमापन्नस्तत्रापि बहुपातकी ॥ १२ ॥

तमन्तकाले सम्प्राप्ते निन्युर्दूता यमक्षयम् ।
तच्छ्रुत्वा दिवि चुक्रोध गरुडो मम वाहनः ॥ १३ ॥

ययौ संयमनीं क्रुद्धो यमस्य नगरीं प्रति ।
ज्वालाः सृजन् पक्षतिभ्यां दग्धुकामो यमालयम् ॥ १४ ॥

प्रबलानिलमुत्पाद्य स तां कम्पितवान् पुरीम् ।
कल्पान्तवह्निज्वालाभिर्यमालयमवेष्टयत् ॥ १५ ॥

ततो विनिर्गता दूता योद्धुकामा अनेन ते ।
खड्गशक्त्यृष्टिमुशलदण्डमुद्गरपाणयः ॥ १६ ॥

भूशुण्डीपरिघाशूलपाशहस्ताः समंततः ।
निपेतुर्गरुडस्योच्चैरङ्गमाच्छाद्य सत्वरम् ॥ १७ ॥

कृत्वा प्रचण्डनादं ते पिष्टान्तै रदनै रदान् ।
महाकिलकिलाशब्दं कुर्वन्तस्तेऽतिवेगिनः ॥ १८ ॥

स्वानि स्वान्यस्त्रवर्याणि मुमुचुर्गरुडोपरि ।
गरुडोऽपि तदस्त्राणि बभञ्ज क्षणमात्रतः ॥ १९ ॥

लीलामात्रेण तान् सर्वान् यमदूतानपोथयत् ।
पक्षतुण्डनखाघातैरहनद्विक्रमी स तान् ॥ २० ॥

रुधिराणि वमन्तस्ते पतिताः पृथिवीतले ।
परे च दुद्रुवुर्दूता यमस्य सर्वतो दिशम् ॥ २१ ॥

महाकालाग्निज्वालाभिर्वेष्टितां स्वपुरीं यमः ।
विलोक्य सर्वतो भीतः किमेतदिति चिन्तयन् ॥ २२ ॥

पक्षीन्द्राभिमुखं सद्य आजगाम ततः परम् ।
आः किमेतदिति क्रुद्धः उक्त्वा वचनमग्रतः ॥ २३ ॥

नानाविधैरस्त्रशस्त्रैर्गरुडं समयोधयत् ।
पराजितः स तेनासौ तुण्डाघातैर्नखक्षतैः ॥ २४ ॥

पक्षोद्भवैर्महावातैः स कृतान्तमभीषयत् ।
महावज्रसमैः पत्रैस्तदङ्गं किंचिदस्पृशत् ॥ २५ ॥

वित्रासितस्तेन ततो गरुडेन कृतान्तकः ।
पक्षाहतोऽस्य महिषो दुद्राव भयसंवृतः ॥ २६ ॥

ग्रैवेयकमहाघण्टानादघोषितदिङ्मुखः ।
कृत्वा घोरं महानादं पातयित्वा यमं भुवि ॥ २७ ॥

ततो दण्डे प्रभग्नेऽसौ तुण्डघातैः खगेशितुः ।
निःश्वसंञ्छनकैः प्राह खगेन्द्रं रणदुर्मदम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

यम उवाच

नागान्तक खगाधीश कथं क्रुद्धोऽसि मत्कृते।
महाकालानलज्वालाभिर्व्याप्तो हि समंततः ॥ १ ॥

संवेष्ठिता संयमिनी ह्यकस्मात्केन हेतुना।
तव पक्षानिलोद्धूता उड्डीयन्ते गृहा मम ॥ २ ॥

पृथिव्यां शेरते दूतास्तव तुण्डनखक्षताः।
पीडिताङ्गा वमन्तस्ते शोणितानि भुवि स्थिताः ॥ ३ ॥

निःश्वसन्तो ह्यतीवार्ताः कदर्थीकृतविग्रहाः।
केचित्पलायिता दिक्षु वेपमाना भयातुराः ॥ ४ ॥

कृतं संयमनीपुर्याः कदनं केन हेतुना।
भवान् हि सर्वदेवानामतीव प्रियकारकः ॥ ५ ॥

अहं च स्थापितो दण्डाधिकारित्वेन विष्णुना।
त्वं च तद्वाहनो नित्यं किमित्येवं चकार ह ॥ ६ ॥

एतत्तेऽनुचितं तार्क्ष्य यद्विष्णोरधिकारिणाम्।
उज्जासनं बलवता त्वया यत् कृतमेव तत् ॥
एतस्य करणं ब्रूहि प्रच्छामि त्वां खगाधिप ॥ ७ ॥

तार्क्ष्य उवाच

शृणु वैवस्वत यतो हेतोस्ते कदनं मया।
कृतं च तव दूतानमत्यर्थं परिपीडिनम् ॥ ८ ॥

पृथिव्यां भारते खण्डे भारते नामनिध्रुवम्।
आर्यावर्त्ते पुण्यभूमौ नानातीर्थगुणाश्रये ॥ ९ ॥

अस्त्ययोध्यानाम पुरी विस्तीर्णा रवियोजनैः।
सर्वर्त्तुगुणशोभाढ्या नानाकल्पद्रुमाकुला ॥ १० ॥

स्वर्णचिन्तामणिमयी यत्र भूमिर्विराजते।
सुवर्णरत्नसोपानमण्डिता यत्र वापिकाः ॥ ११ ॥

शोभिताः परितः फुल्लसुवर्णसरसीरुहैः।
मकरन्दरसस्रावाः स्वच्छशीतामृतोदकाः ॥ १२ ॥

गुञ्जद्भ्रमरपुञ्जाढ्याः कलहंसकलस्वनाः।
सरस्यो यत्र राजन्ते रत्नसोपानशोभिताः ॥ १३ ॥

कोककारण्डवध्वानमिश्रसारसनादिताः ।
राजहंसकलक्वाणमुखरीकृतदिङ्मुखाः ॥ १४ ॥

फुल्लत्कमलकह्लारहल्लका[1]मोदमेदुराः ।
उपकूलमहीरूढकुञ्जद्रुममनोहराः ॥ १५ ॥

मुक्ताशुक्तिपुटोद्भूतिनानारत्नगणोद्भवाः ।
यत्र रत्नाचलो नाम सीतारामविहारभूः ॥ १६ ॥

महारत्नमयानेकशिखरद्युतिदीपितः ।
नाशिताशेषदिक्कूलतमःपटलरात्रिकः ॥ १७ ॥

यत्र सा सरयू नाम सरित्पानीयनिर्मला ।
मणिबद्धोभय तटी दधती हेमवालुकाः ॥ १८ ॥

परमानन्ददा नित्यं निजकूलजुषां नृणाम् ।
तपस्विनां मुनीन्द्राणां विरक्तानां भवेत् पुनः ॥ १९ ॥

रिंगत्तरङ्गरुचिरा क्षालयन्ती तटावनीम् ।
पूज्यमाना सुरव्रातैः पारिजातभवैः सुमैः ॥ २० ॥

पुराणपुरुषप्रेमसमुद्भूताश्रुसम्भवा ।
क्वचिच्छनैः क्वचिद्वेगाद्गच्छन्ती मधुरस्वना ॥ २१ ॥

जनाश्चतुर्भुजा यत्र रामप्रेमावघूर्णिताः ।
जनकेन्द्रसुताकीर्तिगाननिर्धूतकल्मषाः ॥ २२ ॥

चतुराश्रमसंशुद्धाश्चतुर्वर्णक्रियाजुषः ।
प्रेमानन्दपरीपाकसुस्थिरीकृतमानसाः ॥ २३ ॥

अनादृतज्ञानकर्मोपासनासाधनान्तराः ।
श्रीरामचरणाम्भोजे सुविश्वस्ताः समंततः ॥ २४ ॥

प्रपत्तिमार्गशरणाः सर्वे विमलबुद्धयः ।
देवतायतनैर्यत्र सस्वर्णघटमस्तकैः ॥ २५ ॥

पताकाध्वजवस्त्राढ्यैस्तोरणाद्यैरलङ्कृतैः ।
स्थूलैः स्थूलैः कृता शोभा गगनस्पर्शिमूर्द्धभिः ॥ २६ ॥

प्रासादैर्भूभुजां यत्र शोभा चमत्कृतीकृता ।
विततश्चापणे यत्र विकीर्णमणिधोरणिः ॥ २७ ॥

नवभिर्निधिभिर्युक्ता मोदन्ते यत्र नैगमाः ।
उत्सवांश्च प्रतिगृहं प्रत्यहं यत्र बिभ्रति ॥ २८ ॥

---

१. 'हल्लकं रक्तसन्ध्यकम्' टि०—बड़ौ० ।

तूर्यत्रिकसमाघोषो यत्रास्ते प्रतिमन्दिरम् ।
ईदृग्विधगुणैर्युक्ता ह्ययोध्यानगरी भुवि ।। २९ ।।

यस्यां दशरथो राजा नित्यमेव विराजते ।
महाराजकुमारश्च यत्र श्रीरामसंज्ञकः ।। ३० ।।

चतुर्धामूर्त्तिसंयुक्तो नित्यं खलु विराजते ।
परब्रह्म परं धाम परमात्मा परात्परः ।। ३१ ।।

नित्यलीलारसानन्दी प्रमोदवनचन्द्रमाः ।
सहजानन्दिनीनामनित्यशक्तिविभूषितः ।। ३२ ।।

वनैर्यत्र द्वादशभिः प्रमोदवनमेधते ।
श्रिया परमया युक्तं परब्रह्मसुखालयम् ।। ३३ ।।

गवेन्द्रसुखिताख्यस्य यत्र गोष्ठं विभाति तत् ।
ऊधोभारविनम्राभिर्धेनुभिः समुपासितम् ।। ३४ ।।

कूर्दमानकुरङ्गाभवत्सवत्सतरीयुतम् ।
रामप्रेमवशीभूतगोपगोपीजनावृतम् ।। ३५ ।।

प्रत्यूषे दधिनिर्मन्थघोषमङ्गलपूरितम् ।
श्रीमद्रामगुणोद्गानपूर्वकं निर्वृतात्मना ।। ३६ ।।

मथ्नन्त्या दधिपाथोधिं श्रीमन्माङ्गल्यया युतम् ।
इति भव्यगुणोदीर्णमयोध्यामण्डलं महत् ।
साक्षात्परमधामैव श्रीरामस्थानमद्भुतम् ।। ३७ ।।

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४२ ।।



त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

अयोध्यामण्डले कश्चिद्दुष्पीतिर्नाम पातकी ।
जात्यापि खलु चाण्डालो वर्णानामधमोऽन्त्यजः ।। १ ।।

समृतः खलु पूर्वेद्युः सरयूपुलिनाङ्गणे ।
तत्तोयवातसंस्पृष्टं शरीरं तस्य जम्बुकैः ।। २ ।।

लुञ्चितं लुण्ठितं तावत्खण्डशः कुन्वितं मुहुः ।
तटान्ते प्रापितं चापि तरङ्गैर्लोलितं मुहुः ॥ ३ ॥

तं दण्डधर दूतास्ते निन्युः संयमिनीमिमाम् ।
तदानयनकार्यार्थमहमत्रागतो रुषा ॥ ४ ॥

कृतं प्रत्युत दूतैस्तै महद्युद्धं मया सह ।
दुष्पीतिर्नाम चाण्डालो न तु तैरुपढौकितः ॥ ५ ॥

इह नानेतुमर्होऽयमयोध्यामण्डले मृतः ।
अहं हि प्रभुणा पूर्वमुक्तोऽस्मि बहुधा यमः ॥ ६ ॥

य एतस्मिन् महापुर्या मण्डले म्रियते जनः ।
तस्य त्वं वाहनो भूत्वा प्रापयेथा मदन्तिके ॥ ७ ॥

प्रमोदविपिने तार्क्ष्य नित्यमेव वसाम्यहम् ।
महा[1] वैकुण्ठात्परमिदं विज्ञेयं धाम मामकम् ॥ ८ ॥

न यत्रकालः प्रभवत्यनन्तो मायाथवा तद्गुणसम्प्रवाहः ।
न चापि कर्म व्यभिचारिरूपं न चापि दैवं न मनःप्रवृतिः ॥ ९ ॥

अथैतन्मण्डलं नित्यं योजनद्वादशात्मकम् ।
अक्षरं ब्रह्मानन्दमत्प्रेमानन्दमयोर्जितम् ॥ १० ॥

न कालकर्ममर्यादाप्यत्र सम्बाधते नृणाम् ।
नानेन सदृशं तीर्थं नानेन सदृशं तपः ॥ ११ ॥

नानेन सदृशं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
नानेन सदृशी गङ्गा नानेन सदृशी गया ॥ १२ ॥

गङ्गाद्वारादितीर्थानि गङ्गासागरसङ्गमः ।
मुक्तिक्षेत्रं तथा काशी तथा चामरकण्टकम् ॥ १३ ॥

गोदावरी नर्मदा च व्यासगङ्गा सरस्वती ।
कृष्णा च यमुना चापि कावेरी भीमशाङ्करी ॥ १४ ॥

चन्द्रभागा शतद्रुश्च वृद्धचान्ये सुपावनाः ।
पुष्करादीनि तीर्थानि तीर्थराजस्तथैव च ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तमाख्यं क्षेत्रं क्षेत्राण्येतानि षोडशी ।
तीर्थानि च पवित्राणि यावन्ति धरणीतले ॥ १६ ॥

तानि सर्वाण्ययोध्यायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
प्रकटाश्चैव गुप्ताश्च यावन्तस्तीर्थराशयः ॥ १७ ॥

---

१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

तावन्तः सर्वं एवैतन्मण्डलं समुपासते ।
जले चैव स्थले चैव नास्ति भेदोऽत्र कश्चन ॥ १८ ॥

स्नानाद्दानाद्विधानाच्च वपनात्पिण्डदानतः ।
होमाज्जपाद्दीक्षणाच्च यत्नाद्देवतार्चनात् ॥ १९ ॥

विवाहाद्व्रतबन्धाच्च यात्रया च प्रदक्षिणात् ।
निवासाद्दर्शनाच्चैव स्मरणाच्चाभिवन्दनात् ॥ २० ॥

कथनात्स्तवनाच्चैव मरणाद्दाहनात्तथा ।
इत्येवं द्वाविंशतिधा ह्ययोध्यामण्डलं नृणाम् ॥ २१ ॥

मोचयत्युग्रपापेभ्यो मुक्तिं चापि प्रयच्छति ।
यद्यद्वाञ्छति तत्सर्वं ददात्यत्र न संशयः ॥ २२ ॥

प्रतितीर्थमयोध्यायां धनुर्मात्रमिते स्थले ।
विद्यन्ते कोटितीर्थानि पुष्करादयानि संततम् ॥ २३ ॥

वक्त्रकोटिशतेनापि जिह्वाकोटिशतेन च ।
अयोध्यायास्तु माहात्म्यं क्षमो वक्तुं नरः कथम् ॥ २४ ॥

तस्मादत्र प्रजातानामागन्तूनां तथान्यतः ।
मृतानां चापि गरुड सद्यस्त्वं वाहनो भव ॥ २५ ॥

इत्येवं भगवान् रामो मां प्रबोधितवान् पुरा ।
ततश्च मामनादृत्य दूतास्ते रविनन्दन ॥ २६ ॥

आनिन्युस्तं किमिति च मृतं दुष्पीतिमन्त्यजम् ।
अपि चेत्पातकी दुष्टो यावज्जन्मविहिंसकः ॥ २७ ॥

दुराचारः क्रूरकर्मा रोऽप्ययोध्यापुरे मृतः ।
सद्यो मत्पृष्ठमारुह्य रामधाम व्रजेन्नरः ॥ २८ ॥

तस्मादेनं विमुञ्च त्वं नाम्ना दुष्पीतिमन्त्यजम् ।
स्मरन् प्रतिज्ञां रामस्य स्वाधिकारं यदीच्छसि ॥ २९ ॥
न रामो द्विर्वचो ब्रूते नाभयं द्विर्ददाति च ।
द्विशरं नाभिसंधत्ते न द्विरङ्गीकरोति च ॥ ३० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥



चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

यम उवाच

नागान्तक खगाधीश सुपर्ण हरिवाहन।
अजानद्भिः प्रमादेन कृतं कार्यमिदं खलु ॥ १ ॥

मम दूतैस्तस्य फलं प्राप्तमेतावदाततम्।
अतः परं क्षमस्वेनमपराधं मम प्रभो ॥ २ ॥

अयोध्यामण्डलस्थोऽयं यदानीतो विजानता।
अतः परं पुनरपि न कार्यं कृत्यमीदृशम् ॥ ३ ॥

गृह्यतामेष भगवन् साकेतं नियतां पुनः।
अयोध्यामण्डले तस्मिन् रवियोजनसम्मिते ॥ ४ ॥

यः कश्चिन्म्रियतां नाम पशुपक्ष्यन्त्यजोऽपि वा।
स दूतैर्मम नानेयः प्रतिजानेऽस्मि सत्यतः ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा सन्निवेदयोच्चैर्गरुडाय तमान्त्यजम्।
कृताञ्जलिर्नमस्कृत्य गरुत्मन्तं व्यसर्जयत् ॥ ६ ॥
गरुडः पृष्ठमारोप्य मम धाम निनाय तम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवमेतन्मया प्रोक्तमयोध्यावैभवंजनाः।
इह संवसतां नृणां सर्वथा मत्फलं भवेत् ॥ ८ ॥

किं पुनः शुद्धचित्तानां शास्त्रमार्गानुयायिनाम्।
वर्णाश्रमाचारवतां मद्भक्तिकलितात्मनाम् ॥ ९ ॥

तस्मादत्रयं विमुक्ताः स्थ नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥



पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामि महात्म्यमिह सम्भवम्।
चैत्रे जन्मोत्सवं कुर्याद्विधिना मम यः सदा ॥ १ ॥

नित्यं पाप्नोति मत्पित्रोः प्रेमानन्दं स मानुषः ।
वैशाखे मासि यः कुर्याच्चन्दनैश्चार्चनं मम ॥ २ ॥
स लभेद्भवसंतापशान्तिं नैवात्र संशयः ।
ज्येष्ठे मासि च यः कुर्याच्चन्दनागुरुमिश्रितैः ॥ ३ ॥
जलयन्त्रोद्भवैस्तोयैर्ज्योत्स्नाभिर्मम तोषणम् ।
विषयेषु वितृष्णत्वं स लभेन्नियतं नरः ॥ ४ ॥
आषाढे मासि यः कुर्याच्छीतलान् व्यजनानिलान् ।
भवतापोद्भवा बाधा तस्य नो जायते क्वचित् ॥ ५ ॥
श्रावणे मासि कुर्वीत हिन्दोलैः परिदोलनम् ।
वामे श्रीसहजानन्दायुक्तस्य मम सर्वदा ॥ ६ ॥
विचित्रवस्त्राभरणैः पवित्रारोपणैस्तथा ।
शाद्वलैर्हरिते कुञ्जे हरिद्भूरुहमञ्जुले ॥ ७ ॥
इन्द्रगोपौघयुक्तायां भुवि वर्षति वारिदे ।
तस्याहं सर्वदा तुष्टः प्रयच्छामि परां मुदम् ॥ ८ ॥
भाद्रे मासि च यः कुर्यात्प्रमोदविपिनस्य मे ।
वनैर्द्वादशभिः साकं यात्रां चैव प्रदक्षिणाम् ॥ ९ ॥
तस्य किं नु फलं वाच्यमश्वमेधसहस्रकैः ।
वाजपेयमखैर्लक्षैः सोमकोटिभिरेव च ॥ १० ॥
न पुण्यं समतां याति जलस्थानावगाहनात् ।
आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां विजयोत्सवम् ॥ ११ ॥
यः कुर्यात्तु विधानेन स लभेद्विजयं भुवि ।
शमीपूजनवेलायां रथारूढं तु मां स्मरेत् ॥ १२ ॥
स्वस्तिवाचनमन्त्राद्यैर्जयघोषैश्च भूरिशः ।
प्रस्थापयेन्मां महत्या वेष्टितं कपिसेनया ॥ १३ ॥
भक्तैः प्रतिकृतिं कुर्यात् सर्वामन्यूनभावतः ।
कृत्वा च गोमयैर्लङ्कां ध्वंसयेद्गजवाजिभिः ॥ १४ ॥
संस्कुर्याच्च ध्वजपटानुत्तुङ्गास्तरणादिभिः ।
इदं कृत्यं महोपानामावश्यकमुदाहृतम् ॥ १५ ॥
कार्तिके दीपमालाभिरन्नकूटोत्सवेन वा ।
कृत्वा मत्तोषणं मर्त्यः कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ १६ ॥
नित्यं रासविलासाद्यै रमयेच्चन्द्रिकामये ।
देवोत्थानविधानेन तत उत्थापयेच्च माम् ॥ १७ ॥

कृत्वैवं शारदीं पूजां मत्प्रेम लभते नरः ।
हेमन्ते शिशिरे चैव तूलवस्त्रैर्विशेषतः ॥ १८ ॥

गर्भालयसमावेशैर्हसन्तीभिश्च भूरिशः ।
उष्णोदकैरुष्णभोज्यैर्नानाभोगविधानतः ॥ १९ ॥

कालागुरुप्रधूपैश्च ताम्बूलीवीटिकार्पणैः ।
सेवते मां सदा भक्त्या तस्य पुण्यं न गण्यते ॥ २० ॥

अथ प्राप्ते वसन्ते च वसन्तोत्सवरीतिभिः ।
सेवयेन्मां सदाभक्त्या दोलादिपरिदोलनैः ॥ २१ ॥

एष वों विधिरुद्दिष्ट ऋतुसेवनपूर्वकम् ।
अनेन विधिना नित्यं तोषयेन्मां समाहितः ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसम्वादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥



षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीराम उवाच

अथ यूथमयोध्यास्थाः सर्वे वै मामका जनाः ।
मम लीलायां नित्यायां [1]यूयं प्राप्ताः सदैव हि[1] ॥ १ ॥

प्रारब्धध्वंसमागत्य नेष्ये वः स्वान् स्वधामनि ।
तस्मिन् काले परिप्राप्ते आगमिष्यन्ति मद्गिरा ॥ २ ॥

दिव्यानि चैव भास्वन्ति विमानानि सहस्रशः ।
लक्षशः कोटिशश्चैव ह्यनेकानि समंततः ॥ ३ ॥

तेष्वास्थाय प्रयास्यन्ति मदीये नित्यधामनि ।
पशवः पक्षिणश्चापि तथान्ये नीचजातयः ॥ ४ ॥

कुविन्दकुम्भकाराद्या आचाण्डालमथान्त्यजाः ।
किं पुनर्यूयमात्मस्था वर्णाश्रमसुसंस्थिताः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्त्रीयोनिसम्भवाः ।
सर्वथैव परिप्राप्ताः परमे मम धामनि ॥ ६ ॥

---

१. नास्ति – बड़ौ० ।

यूयं रंस्यथ केलीभिः सुखरूपाभिरुच्चकैः ॥ ७ ॥

जना ऊचुः

अयोध्यापि परं धाम तव चेत्यनुशुश्रुम ।
किमर्थमेनां संत्यज्य भवान् यास्यसि तत्पदम् ॥ ८ ॥

श्रीराम उवाच

अहो जना अत्र सदा मम स्थितौ युगप्रवृत्तिर्न भवेदितोऽन्यथा ।
सर्वेऽपि जीवा भुवि मुक्तिभाजो भवेयुरुत्सीदति[1] चैव लोकः ॥ ९ ॥

ततोऽहमव्यक्तमशेषलोकैः स्वं नित्यधामाद्वयचित्सुखैकम् ।
अविद्यया सर्वजनानुभूतेरगोचरं सम्प्रति सम्प्रयास्ये ॥ १० ॥

चतुष्पथस्थितं वस्तु यथा गृह्णन्ति पामराः ।
अपामराश्च सर्वेऽपि प्रतिबन्धो भवेत् कथम् ॥ ११ ॥

तेन तद्गोपनीयं चेत्सज्जनैरधिकारिभिः ।
केवलं खलु गृह्येत नेतरैः पामरैरपि ॥ १२ ॥

एवं ममाविर्भावस्य काले सर्वजगद्दृशाम् ।
गोचरत्वं भवत्येवेत्यन्तर्धानं करोम्यहम् ॥ १३ ॥

अनायासाद्विमुच्येत य एवोपव्रजेत माम् ।
प्रकटं हि मदैश्वर्यं कस्य नो भाति दृग्वतः ॥ १४ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु यूयं सर्वेमपि स्थिताः ।
सदा मया सह परं धाम रमण मज्जनाः ॥ १५ ॥

निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
मायासम्बद्धरहितं निर्मलं निष्कलं तथा ॥ १६ ॥

आत्मानन्दाकारयुक्तं सर्वतः पादपाणिकम् ।
सर्वतोऽक्षिश्रुतिघ्राणं सर्वतोमङ्गलालयम् ॥ १७ ॥

सर्वतो भासमानंतद्विरजाया परे तटे ।
त्रिपाद्ब्रह्मासनी कृत्य संस्थितं मत्परं पदम् ॥ १८ ॥

तस्यापि सारभूतं यद् बृहतोऽपि बृहत्तमम् ।
गणितागणितानन्दभेदेन सुनिरूपितम् ॥ १९ ॥

अवशा मे परा लीला तथा क्रीडामि नित्यशः ।
भवन्तोऽपि मया साकं क्रीडिस्यन्ति तदन्तरे ॥ २० ॥

इति नैश्चिन्त्यमालम्ब्य तिष्ठध्वं मामका जनाः ।
तावत्पूर्वोक्तविधिना मम सेवां करिष्यथ ॥ २१ ॥

---

१. 'रिक्तोभवेत्' टि०–बड़ौ० ।

इत्युक्तास्ते जनाः सर्वे पादावस्याभिवाद्य च ।
नमस्कृत्य च संतुष्टास्तद्विसृष्टा गृहान् ययुः ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोध षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥



सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु लोकेषु प्रमोदवनवासिनः ।
कांश्चिज्जनान् स्वपार्श्वस्थानब्रवीद्गोपरूपिणः ॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

हंहो गोपाः सर्वमहं स्मरामि तत् पुरा कृतम् ।
यत् प्रमोदवने जातं दिव्यं मे केलिकौतुकम् ॥ २ ॥

को विस्मरेत्तादृशमद्भुतं सुखं माङ्गल्यकायाः सदनेऽनुभूतम् ।
तद्वात्सल्यं सुखितगवेन्द्रश्रीमन्माङ्गल्यानिरुपमसौख्यदापि ॥ ३ ॥

कथं गोपाः प्राप्य गृहं दाशरथ्यं साम्राज्यलक्ष्मीमपि विस्मरेयम् ।
त्रैलोक्यराज्यं यत्र निर्मञ्छनं स्यात् साम्राज्यलक्ष्मीर्नातदर्हापि स्यात् ॥ ४ ॥

कथं गोपास्तादृशीं प्रेमवृद्धिं तदानन्दं वाप्यहं विस्मरेयम् ।
तेते विलासा वनवीथीषु शश्वत् केलीकुञ्जाभ्यन्तरेषु प्रसंगाः ॥ ५ ॥

तत्तत्पयोदधिहैयंगवीनैर्मिष्टं स्वेष्टं प्राशनं काननेषु ।
स्वैरं स्वैरं तांश्चकेलीविलासान् भ्रामं भ्रामं तानि चौद्धत्यकानि ।
गायं गायं ते च रसौघास्वादाः स्मारं स्मारं यानहं मूर्छितोऽस्मि ॥ ६ ॥

अहो अत्यद्भुतं तत्तत्प्रमोदवनवीथिषु ।
खेलनं वेल्लनं नृत्यं चलनं वलनं तथा ॥ ७ ॥

तद्वै प्रमोदविपिनं ता रम्याः कुञ्जभूमयः ।
गुंफनं गुञ्जाहाराणां सा पुष्पाभरणक्रिया ॥ ८ ॥

संगे गोपालबालानां तत्तत्क्रीडनमद्भुतम् ।
क्रीडने च रसोल्लासे मधुरं वेणुवादनम् ॥ ९ ॥

नर्तनं तन्मयूराणां मदङ्गमुदितात्मनाम् ।
प्रमोदवटमूले तद्गानं चापि कलैः स्वरैः ॥ १० ॥

इत्येवमनिशं गोपाश्चित्ते भावयतो मम ।
दृशोरायाति तत्साक्षात् सर्वं विहरशां मम ॥ ११ ॥
तत्रापि कांचित्परमां सहजानन्दिनीश्रियम् ।
स्मारं स्मारं केवलं मे हृदयं न विदीर्यते ॥ १२ ॥
[1]तत्कारणं प्रायशोमन्ये एकमेव सुनिश्चितम् ।
अदय श्वस्तत्र यास्यामीन्याशाबन्धेन रक्षणम् ॥ १३ ॥
तावद्गोपालबाला वः समाश्वास्य समागतः ।
पणं कृत्वा झटित्येव यास्यामि प्रमुदाटवीम् ॥ १४ ॥
अधुना खलु जानीत सैष कालः समागतः ।
सर्वंशः कृतमत्रैत्यावतारार्थंप्रयोजनम् ॥ १५ ॥
तथा हि रक्षिता देवा यज्ञाश्चापि सुरक्षिताः ।
त्रयी च रक्षिता नूनं पापेभ्यो धर्मरक्षणात् ॥ १६ ॥
साधवो रक्षिता नूनं भक्ताः स्वानन्यरक्षणाः ।
ब्राह्मणानां परो धर्मश्चालितश्चैव पालितः ॥ १७ ॥
हृता देवद्रुहोऽशेषा भूमिर्निष्कण्टका कृता ।
पित्रोर्भक्तिमतोश्चित्ते बहुजन्मावधिस्फुटः ॥ १८ ॥
अभिलाषः सफलतां नीतः संगमताचिरम् ।
अयोध्यास्थः परिकरः सकलश्च प्रमोदितः ॥ १९ ॥
एतावदेव सकलमत्रागमनकारणम् ।
जातप्रायं तु तत्सर्वंमयोध्यास्थजनान् प्रति ॥ २० ॥
अतः परं प्रयास्यामि प्रमोदवनमेवतत् ।
असंशयं स सफलो भवत्सु मामकः पणः ॥ २१ ॥
भवद्भिरपि दृष्टेयमयोध्या नाम मे पुरी ।
अनन्तकौतुकं दृष्टं तत्र यास्याम्यतः परम् ।
धैर्यमालव्य तिष्ठध्वं सत्यवाग् जनितोऽस्म्यहम् ॥ २२ ॥
अव्यक्तां गतिमापन्नो गत्वा प्रमुदकानने ।
भवद्भिः सह क्रोडिष्येऽव्यक्तां च गतिमागतौः ॥ २३ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे सर्वप्रबोधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥



१. पादेऽस्मिन्नक्षराधिक्यमार्षः ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं समाधाय मनः सतां प्रियः[1]श्रीमत्प्रमोदाटविवासिनां नृणाम् ।
शुश्राव दूरात्स्तुतिमातुरस्य खिगस्य नाम्नाघट्ट जनस्य ॥ १ ॥

ततो विसृज्य भक्तास्तान् प्रमोदवनवासिनः ।
करुणादग्धहृदयस्तमुद्धर्तुमधावत ॥ २ ॥

स वै ऋजीषाख्य ऋषिस्तपस्वी भक्तापराधादन्त्यजत्वं प्रयातः ।
तत्रापि चान्धो विषयानुसेवया प्रमत्तचित्तैर्वितथं नीतकालः ॥ ३ ॥

अन्यां गतिमदृष्ट्वा स विना श्रीरामसंश्रयम् ।
प्रपन्नः शरणं तं वै प्रभुं कारुण्यसागरम् ॥ ४ ॥

भुशुण्ड उवाच

कोऽयं विप्र ऋजीषाख्यः कथं वै चान्त्यजोऽभवत् ।
कथं च शरणं यातो रामं करुणयाप्लुतम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रमोदवनपार्श्वस्थ ऋजीषो नाम वै मुनिः ।
निन्दया व्रजभक्तानामन्तकत्वमुपेयिवान् ॥ ६ ॥

ततो ब्रजसरःस्नानाद्विहाय शौकरं वपुः ।
अन्त्यजत्वमवाप्यैष स्तुतवान् राघवोत्तमम् ॥ ७ ॥

नारदस्योपदेशेन ज्ञात्वैनं पुरुषं परम् ।
अपि नाम तपस्वी वा ज्ञानी वा सुकृती च वा ॥ ८ ॥

अहंकारं यः कुरुते स प्राप्नोत्यधमां गतिम् ।
पूर्वं चेदुत्तमः कश्चित्संस्कारो यदि वर्तते ॥ ९ ॥

तदा लभेत् पुनरपि ज्ञानं नो चेद्गतो हि सः ।
ततोऽस्य प्राग्भवं ज्ञानं संस्कारेण स्मृतिं गतम् ॥ १० ॥

त्यक्त्वा यच्छौकरं कायं मनाग् यातः कृतार्थताम् ।
तस्मादेवं नरः कुर्याद्यथा संस्कारवान् भवेत् ॥ ११ ॥

ऋजीषः स्खलितोद्योगाद्भुक्त्वा पशुमयीं गतिम् ।
अन्त्यजानां कुलेभाग्यान्मानवीं योनिमाप सः ॥ १२ ॥

भुञ्जानो भूरिविषयान् कुटुम्बासक्तमानसः ।
उत्तरोत्तरभोगेऽपि वैतृष्ण्यं नाप दुर्मतिः ॥ १३ ॥

---

१. नास्ति—बड़ौ० ।

जायारतः पुत्ररतो धनसंचयतत्परः ।
ततः कालेन महता जाया तस्य मृतिं गता ॥ १४ ॥

कुटुम्बं सकलं चास्य पुत्रपौत्रादिकं महत् ।
विनष्टं चोरितं स्तेनैर्वसुधान्यगवादिकम् ॥ १५ ॥

ततोऽसौ वसुभिर्हीनो मृतपुत्रबधूसुहृत् ।
तत एष स्वतोजातविषयाभावहेतुना ॥ १६ ॥

भूत्वा वितृष्णहृदयो विवेश विपुलं वनम् ।
तत्र द्वित्रैर्दिनैरेष कंचित्प्राश्य वनस्पतिम् ॥ १७ ॥

अन्धत्वं प्राप झटिति ततोऽभूद्बहुदुःखितः ।
स तस्मिन्निर्जनेऽरण्ये विलपन् करुणागिरा ॥ १८ ॥

किमप्यशक्नुवन् कर्तुं देहकृत्येऽपि चाक्षमः ।
सस्मार प्रभुमेकं तं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १९ ॥

करुणासागरं देवं दीनानां बन्धुमीश्वरम् ।
श्रद्धयावनतो भूत्वा तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २० ॥

अन्त्यज उवाच

श्रीराम राम सुखद प्रतिबोधमूर्ते प्रत्यङ्गरङ्गमयमङ्गलवृन्दमूर्त्ते ।
चञ्चन्महामधुरिमामृतसारमूर्त्ते मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥२१॥

त्रैलोक्यरक्षणकलैकलसत्कृपाढ्य भक्तश्रुतिद्विजवराभयदानदक्ष ।
भूभारहारमिषदिव्यनवाव तारिन् मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥२२॥

ब्रह्माण्डकोटिघटनोद्घटनस्वतन्त्र शक्तिप्रसारनिरवध्यमितात्मलील ।
अत्यद्भुतप्रचुरमानुषभावनाढ्य मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ २३ ॥

कालात्मना सृजसि पालयसि प्रभोऽन्ते तेनैव संहरसि सर्वमिमं प्रपञ्चम् ।
दृङ्मात्रशेषपरिदृश्यनिधान नित्यं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥२४॥

मायात्मना प्रकटमप्यखिलात्मसाक्षिन् सम्मोहयस्यविरतं प्रतिरुद्धबोधान् ।
तेनैव संततनिगूढनिजात्मभावं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ २५ ॥

सूर्यो यथोदयगिरिं समुपेत्य सर्व लोकान्धकारशमने प्रगृहीतदीक्षः ।
देवस्तथा रघुकुलं त्वमपि प्रतीतो मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ २६ ॥

जीवस्य कृत्यमियदेव यदुत्तमाङ्गं त्वत्पादपद्मसविधे प्रमुदावनाम्यम् ।
तन्मात्रभक्तिगुणवश्यतमो भवांस्तु मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥२७॥

रामेति नाम तव योगकलाधिकं स्याद्यत्कष्टसंततिमृते कलयेद्विमुक्तिम् ।
किं नाम नात्मसुखलाभकृते गृणीते मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥२८॥

भीता भवाब्धिविततोर्मिभिरत्यनल्पैर्नान्यत्र सुस्थमनसो मनुजा भवन्ति ।
एकं विहाय भगवन्तमृते भवन्तं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ २९ ॥

कालोऽयमुग्रकलनः कलयत्यनल्पां शक्तिं जगत्सु खलु भूरिभयातुरेषु ।
न त्वाश्रितेषु भवतश्चिरमङ्घ्रिपद्मं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥३०॥

त्वामाश्रिता गतभयाः शरणागतैक श्रीवज्रपंजरविभो करुणैककन्द ।
खेलन्ति कालशिरसि स्वपदं निधाय मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥३१॥

मुग्धा भवन्ति बहुजल्पितमागमं ये संलब्धये तव मुहुर्मृगयन्ति विप्राः ।
न त्वां स्पृशन्ति निजभक्ति कलैकलाभम् मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥३२॥

दीनं तथातुरमनेकभवोर्मिनष्टप्रज्ञं व्यतीतकुशलं बहुदुःखमग्नम् ।
मूढं विशालविषयावलिकृष्टचित्तं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ ३३ ॥

स्तब्धंकदाप्यकृतसत्परिचर्यमुग्रबुद्धिं निजात्महृतिजातकदर्थनं च ।
व्यर्थव्यतीतजनुरायुषमात्रदोषं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ ३४ ॥

उच्चैरबद्धबहु जल्पनशीलमन्तः कामावसन्नमनुदीरितनामजाप्यम् ।
पापं समस्तविपरीतकरं कुशीलं मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥ ३५ ॥

नामोद्धृताखिलजगज्जनसौख्यदायी स्वानन्दसिन्धुलहरीपरियोजितस्वः ।
अत्युन्नतस्वविभवोचित भव्यकारी मां पाहि सम्प्रति गतं चरणाब्जमूले ॥३६॥

आयुः प्रयाति विफलं सकलेष्टदायिं स्तत्ते स्मृतिं विद्धतो मनुजस्य नित्यम् ।
साफल्यमेति जगतीति विचिन्त्य सन्तं मां पाहि सम्प्रपि गतं चरणाब्जमूले ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवं कृत्वा स्तुतिं भूयः खिंगो नामान्त्यजः प्रभोः ।
तस्थौ कृताञ्जलिर्दीनो विफलीभूतलोचनः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डेऽन्त्यजस्तुतिर्नामाष्ट-
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥



एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ततः स लोचनं लेभे रामभक्तिप्रभावतः ।
संजातलोचनोऽथाग्रे ददर्श पुरुषं परम् ॥ १ ॥

निविडाम्बुधरं श्यामं श्रीमद्राजीवलोचनम् ।
आकाशनीलवपुषं तुङ्गनासाविराजितम् ॥ २ ॥

केयूरिणं प्रविलसत्कटकं मणिमालिनम् ।
माणिक्यरत्नमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥

करुणाचपलापाङ्गं पीताम्बरविराजितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भूरिगम्भीरावर्तनाभिकम् ॥ ४ ॥

सुन्दरं सिंह विक्रान्तं मृगराजोदरद्युतिम् ।
रत्नकाञ्चीसमाबद्धपीताम्बरसुवासिनम् ॥ ५ ॥

श्रीरत्नपादुकान्यस्तचरणाम्बुरुहद्वयम् ।
चरणाब्जनखद्योतिविजितादित्यवर्चसम् ॥ ६ ॥

मन्दस्मितामितरुचिरञ्जिताधरबिम्बकम् ।
चन्द्राननं चमत्कारिमाधुर्यरसवारिधिम् ॥ ७ ॥

खिगो नामान्त्यजो दृष्ट्वा मुहुरूचे कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥

खिग उवाच

अहो अत्यद्भुतं रूपं रामस्य करुणानिधेः ।
विषयासक्तचित्तेन मया नीताश्च वासराः ॥ ९ ॥

नैतावद्यातमतुलं रूपमेतन्मनोहरम् ।
प्रायो लक्ष्मीरिदं दृष्ट्वा रूपमत्यद्भुतं प्रभोः ॥
अभूच्चरणदासीति वयं समनुशुश्रुम ॥ १० ॥

व्रजाङ्गनाश्च प्रमुदाटवीस्था माधुर्यमत्यद्भुतमेतदेव ।
दृष्ट्वा वशीभूतहृदो निपेतुः पदाब्जयोरस्य सुपूरुषस्य ॥ ११ ॥

विहायलोकं त्रपितं गुरूणां कुटुम्बभीतिं प्रणयावकृष्टाः ।
भेजुर्भवन्तं भगवन्त मद्धा प्रत्यर्प्यचित्तं विषयांस्तनूश्च ॥ १२ ॥

एतावदासीन्मम भाग्यमेव स्फुटं यदन्तर्विषयावसन्तम् ।
सम्मूढधीः को विषमत्ति जानन् विहाय पीयूषनदीमनर्घ्याम् ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रसभं खिगः पपात पदयोः प्रभोः ।
स्रवल्लोचनधाराभिः सेचयानो मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

श्रीराम उवाच

उत्तिष्ठ खिग जातोऽसि मम सेवकसत्तमः ।
निर्भयः कालमायादेर्विमुक्तोस्त्यधुना भवान् ॥ १५ ॥

ये मामुपगता दीना जना निष्किचना अपि ।
तेषामहमभीत्यर्थं भवामि प्रकटः स्वयम् ॥ १६ ॥

खिग उवाच

जन्मान्तरे परं पुण्यं जनैर्यैर्वा सुसत्कृतम् ।
तेषां त्वं गोचरो भूत्वा हरसे भवसंततिम् ॥ १७ ॥

अहं तु जनुरारभ्य पापाचारः सुनिन्दितः ।
विषयाकृष्टहृदयो भ्रष्टो ज्ञानविवर्जितः ॥ १८ ॥

न कर्म कृतवान् किंचिन्न ज्ञानेन च निर्मलः ।
नोपासनापरः शश्वच्चरणाब्जबहिर्मुखः ॥ १९ ॥

तत्केन सुकृतेनाहं लब्धवाञ्छुभमीदृशम् ।
साक्षात्तव रमेशस्य यदेतत् खलु दर्शनम् ॥ २० ॥

अवितर्क्याथ वा राम करुणैव तव प्रभो ।
मुनीनां योगनिष्ठानां नित्यं निर्मलचेतसाम् ॥ २१ ॥

ज्ञानिनां तत्त्वनिष्ठानां सततोपासनावताम् ।
जन्मान्तरसहस्रैश्च निभृतं साधितात्मनाम् ॥ २२ ॥

अलभ्यं मङ्गलमिदं यत्स्वरूपप्रकाशनम् ।
तन्मया लब्धमेवाद्धा न पश्यामि च कारणम् ॥ २३ ॥

श्रीराम उवाच

ऋजीषो नाम योगीन्द्रो भवांस्तपसि निष्ठितः ।
प्रमोदवनपार्श्वस्थो मम भक्तिविवर्जितः ॥ २४ ॥

श्रुत्वा गोपीः कामवतीर्मत्स्वरूपं मनोहरम् ।
लोकोक्त्या कृतवान्निन्दां लोकवेदपराङ्मुखः ॥ २५ ॥

ऋजीष उवाच

अहो एताः काममत्ताः कस्मिंश्चित्पुरुषे रताः ।
लोकवेदौ परित्यज्य रताः किमिति दुर्मदाः ॥ २६ ॥

कुटुम्बं वर्जयन्त्यासां स्वतन्त्राणां मनोगतिम् ।
नैताश्च खलु मन्यन्ते मोहिता विष्णुमायया ॥ २७ ॥

गतिरासां तु भविता केति जानामि न क्वचित् ।
इति मे विप्रियं जातं त्वया खलु सुयोगिना ॥ २८ ॥

विफलं ते तपो जातं मद्भक्तानां विनिन्दया ।
भक्तेष्वपि च ता मुख्या आभीर्यो मम वल्लभाः ॥ २९ ॥

प्रमोदवनवासिन्यो यासां पादभवं रजः ।
ब्रह्मादयः कामयन्ते विद्वांसस्ते त्रयीविदः ॥ ३० ॥

ततस्त्वं शूकरो जातः प्रमोदवनसन्निधौ।
क्रूरो विपिनसंचारी तामसीं योनिमागतः ॥ ३१ ॥

प्रमोदवनमध्ये तु कासारः कोऽपि निर्मलः।
तत्र दैववशादेत्य मज्जनं कृतवांस्तुवै ॥ ३२ ॥

तत्र व्रजजना केचित्स्नाताः पूर्वं मम प्रियाः।
तेषां पादरजो लग्नं तवाङ्गे मज्जतो मुहुः ॥ ३३ ॥

अङ्गसंगि च तत्तोयं लग्नं तेषां तवाङ्गके।
मुक्तस्तेन प्रभावेण महाशूकरयोनितः ॥ ३४ ॥

तत्क्षणं स्मृतिमापन्नः स्मृतवान् पूर्वजन्म च।
अहो अहं तपस्वी स ऋजीषो नाम वै मुनिः ॥ ३५ ॥

केन दुष्कृतयोगेन प्राप्तवाञ्छौकरीं गतिम्।
अनर्हं ईदृशीं योनिं तपस्विकुलजो मुनिः ॥ ३६ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य नारदो मुनिरागतः ॥ ३७ ॥

नारद उवाच

अये मुनिकुलोत्पन्न मुने तापससत्तम।
दिष्ट्या निर्मुक्तवानद्य भवाञ्छूकरयोनितः।
महतां खलु पापानामिदं फलमभूत्तव ॥ ३८ ॥

ऋजीष उवाच

किं मया दुष्कृतं पूर्वं कृतं देवर्षिसत्तम।
तपस्यता योगनिष्ठमानसेन सुचेतसा ॥ ३९ ॥

नारद उवाच

भवान् निन्दितवान् पूर्वं गोपीः श्रीरामवल्लभाः।
कृतोऽसह्यापराधोऽयं रामस्य त्रिजगत्पतेः ॥ ४० ॥

स्वस्यापराधं भगवान् कदाचित्क्षमते प्रभुः।
न तु स्वीयापराधस्य क्षान्तिर्भगवतः क्वचित् ॥ ४१ ॥

तेन दोषेण हि भवाञ्छौकरीं योनिमागतः।
तासां चरणपद्मोत्थधूलिधोरणिसंगमात् ॥ ४२ ॥

व्रजकासारसंस्नानान्मुक्तवान् योनिमेतकाम्।
अतः परं पुनरपि नैव कर्तव्यमीदृशम् ॥ ४३ ॥

असह्यं रामदेवस्य नितरामपराधनम्।
एता हि भगवद्रूपा भगवत्प्रियकारिकाः ॥ ४४ ॥

न ह्यासां सदृशो ब्रह्मा न शेषो नापि चेन्दिरा ।
अतः परं भजस्व त्वं ता गोपीरेव भक्तितः ॥ ४५ ॥

तासां चरणपद्मोत्थधूलिधूसरविग्रहः ।
प्राप्स्यसे त्वं पुनरपि रामसायुज्यमद्भुतम् ॥ ४६ ॥

एकं तु जन्म भविता तदसह्यापराधतः ।
अन्त्यजेषु जनुः प्राप्य पुनर्मुक्तो भविष्यसि ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा नारदो नाम देवर्षिरगमद्दिवि ।
भवांश्चैव पुनर्जातः साकेतनगरेऽत्र च ॥ ४८ ॥

विषयानन्दसम्मग्नः पूर्वजन्मापराधतः ।
नारदस्य मुनेः संगात्कासारस्नानतोऽपि च ॥ ४९ ॥

रामाङ्गनापदाम्भोजरजोमहात्म्यतोऽपि च ।
पुनर्मद्भक्तियोगेन स्तुत्वा मां भक्तवत्सलम् ॥ ५० ॥

अन्धत्वं समतिक्रम्य प्राप्तवान् मम दर्शनम् ।
अतः परं पुनर्जन्म न भविष्यति संसृतौ ॥ ५१ ॥

सम्प्राप्तो मत्पदाम्भोजे निर्भयोऽद्य निराकुलः ।
तपसां कर्मणां चैव ज्ञानानां चापि सर्वशः ।
फलं प्राप्तोऽस्येकदैव कृतार्थोऽसि विशेषतः ॥ ५२ ॥

मन्नामसंस्मरणकृन्मम भक्तियुक्तो मल्लोकसंगतिपरो मदुपासनस्थः ।
मत्स्थानमेष्यसि विमुक्तसमस्तमोहो भूयोऽप्यृजीषमुनिरेव भविष्यसि त्वम् ॥५३॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥



पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

पुत्रौ कुशलवौ नाम रामो रघुकुलेश्वरः ।
कुशावत्यामवन्त्यां च स्थापयामास पार्थिवौ ॥ १ ॥

उर्मिलाकुक्षिसम्भूतौ तनयौ शुभलक्षणौ ।
कारापथनृपौ चक्रे लक्ष्मणो रामशासनात् ॥ २ ॥

तथा पुष्करनामानौ माण्डवीकुक्षिसम्भवौ ।
तनयौ भरतश्चक्रे तदाख्यविषयेश्वरौ ॥ ३ ॥

श्रुतिकीर्तेः समुद्भूतः सुबाहुश्च बहुश्रुतः ।
उभौ चकार शत्रुघ्नो मथुराविदिशेश्वरौ ॥ ४ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतैः सह वासिभिः ।
चिरं सम्प्रीणिताः कृत्स्नाः साकेतनगरीप्रजाः ॥ ५ ॥

दिने दिने गवां पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ।
दानानि यज्ञाः स्वाध्याया व्रतानि विविधानि च ॥ ६ ॥

सम्बभूवुरयोध्यायां रामे शासति मेदिनीम् ।
श्रुतिगोद्विजधर्माणां स्वयं संरक्षके प्रभौ ॥ ७ ॥

अतिथीन् पूजयानस्य रामस्य करपङ्कजात् ।
पाद्यार्घजलवाहिन्यः सरय्वा सह संगताः ॥ ८ ॥

यज्ञहोमभवो धूमः श्रीरामस्य निकेतनात् ।
उद्बभूव विमानस्थानन्धीकुर्वन् सुपर्वणः ॥ ९ ॥

शुभाशिषः प्रयुञ्जानाद्विजन्मानो मुदान्विताः ।
पूजिता रघुनाथेन स्वानि स्वानि गृहाण्यगुः ॥ १० ॥

प्रावर्त्तततरां धर्मश्चतुष्पादिव मूर्त्तिमान् ।
चतुर्भ्यस्तत्र भ्रातृभ्यो लब्धसम्पद्दिवानिशम् ॥ ११ ॥

अश्वमेधाः कृतास्तेन महाधार्मिकमौलिना ।
प्राग्वंशवर्त्तिना हैम्या जनकाङ्गजया समम् ॥ १२ ॥

अजस्रं वासितः शक्रस्त्याजयित्वा सुरालयम् ।
इन्द्राणीविरहोत्तापतान्तनन्दनभूरुहम् ॥ १३ ॥

अर्चिते प्रतिभूपालमौलिरत्नमरीचिभिः ।
रामस्य चरणाम्भोजे वाञ्छाधिकफलप्रदे ॥ १४ ॥

केषांचिद्दर्शयन् स्वस्य मैथिल्या सह संततम् ।
संयोगं सर्वकालीनं सुखभोगसमन्वितम् ॥ १५ ॥

केषांचिद्दर्शयन् दृष्ट्या बहिरङ्गदृशां पुनः ।
वियोगं सर्वकालीनयोगसेवनतत्परः ॥ १६ ॥

केषांचिद्दर्शयन् देव एकपत्नीमहाव्रतम् ।
आनुकूल्यं दृढं नाम यत्रनान्यवधूरतिः ॥ १७ ॥

केषांचिद्दर्शयन् पद्मां विशालाक्षीं रतिं पराम् ।
सहजानन्दिनीं रामां निर्भरासक्तिमेव च ॥ १८ ॥

वनेष्वन्यां पुरे चान्यां लीलां सम्भावयन् मुहुः ।
यया कया च रीत्या वै भक्तानानन्दयन् विभुः ॥ १९ ॥

लीलाधिष्ठानमितरं सर्वलोकविलक्षणम् ।
देशं कालं तथा द्रव्यं कृत्स्नं परिकरं तथा ॥ २० ॥

अन्तरङ्गदृशां लोके केषांचिद्विदितात्मनाम् ।
नित्यं संदर्शयन् मोहसमुच्छित्यै कृपावशात् ॥ २१ ॥

आसुराणां पुनर्नित्यमधोगतिनिनीषया ।
लोकानुगतमात्मानं दर्शयन् विश्वमोहनः ॥ २२ ॥

चिरं तस्थौ रघुपतिर्योगमायामुपाश्रितः ।
रञ्जयन् प्रकृतीः सर्वा नृत्यन् नट इवाद्भुतः ॥ २३ ॥

भुवो भारं हरन् कृत्स्नं धर्मं संस्थापयन् विभुः ।
भक्तिं प्रवर्तयंल्लोके द्विधाभावविभावनीम् ॥ २४ ॥

स्वरूपं च प्रकटयंश्चिदानन्दाद्वयात्मकम् ।
लीलां च तादृशीं कृत्स्नां लोके संदर्शयन् विभुः ॥ २५ ॥

रेमे चिराय भगवान् प्रवरो रघूणामक्लिष्टकर्मकरणैकपटुर्महात्मा ।
लोकेषु मौलिमुकुटाग्रमणीन्द्ररोचिर्नीराज्यमानचरणाम्बुजदिव्यपीठः ॥ २६ ॥

ऐश्वर्यमद्भुतमखण्डमजस्रमेव वीर्यंयशः श्रियमनन्तगुणप्रतिष्ठः ।
ज्ञानं विरक्तिमपि विश्वविलक्षणात्मा संदर्शयंश्चिरमरञ्जयदात्मभृत्यान् ॥ २७ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥



एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ स्वशक्त्या रममाण एवं स्वांशैः स्वभक्तैरपि सेव्यमानः ।
प्राकट्यकार्यं निखिलं विधाय रामोऽखिलाव्यक्तपदं जगाम ॥ १ ॥

भुशुण्ड उवाच

कथमव्यक्ततां यातः प्रमोदवनचन्द्रमाः ।
एतन्मे ब्रूहि सर्वज्ञ तस्य लीलान्तरं महत् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

विधिना प्रेषितः कालः प्रार्थयामास यत्प्रभोः ।
तद्विधित्सुः स्वयं रामो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह ॥ ३ ॥

मयाऽऽज्ञप्तोऽसि सौमित्रे गच्छ त्वं सरयूवनम् ।
अनन्तरमहं चापि गन्तास्मि स्वपदं महत् ॥ ४ ॥

लक्ष्मण उवाच

कीदृशं ते पदं दिव्यं यत्र त्वं नित्यविग्रहः ।
नित्यलीलाविनोदेन क्रीडस्यनिशमीश्वर ॥ ५ ॥

श्रीराम उवाच

एतदेव मम स्थानं यत्राहं नित्यविग्रहः ।
प्रमोदविपिनं नाम क्रीड़ास्थानमनुत्तमम् ॥ ६ ॥

अष्टचत्वारिंशदेव योजनान्यष्टकोणवत् ।
मध्येप्रमुद्वनं यत्र सहजाया निकेतनम् ॥ ७ ॥

अशोककलिकावेश्मगुञ्जद्भ्रमरमण्डितैः ।
भूरुहैर्विविधैर्भाति सौरभ्यकुसुमाकरम् ॥ ८ ॥

सदा मञ्जरितैराम्रैरशोकैश्च समाकुलम् ।
कूजत्कोकिलसंदोहकाकलीललितस्वनम् ॥ ९ ॥

परितस्तस्य गोपानां मम लीलाविनोदिनाम् ।
स्थानानि सुबहून्येव साक्षाद्वै रत्नकुञ्जवत् ॥ १० ॥

धाम यत्सुखितेन्द्रस्य नन्दनस्य महात्मनः ।
माङ्गल्यकाराजिनीभ्यां शोभमानं मनोरमम् ॥ ११ ॥

तत्र रासविलासादिलीलालोलुपमानसः ।
अहं क्रीडामि सततं कामिनीकोटिमण्डले ॥ १२ ॥

तन्मण्डलेश्वरी नित्या सहजानन्दिनी प्रिया ।
चिदानन्दमयी शक्तिः सर्वत्र सर्वरूपिणी ॥ १३ ॥

अत्रैवाव्यक्ततामेत्य स्थास्यामि सततं त्वहम् ।
धैर्यमालम्ब्य वर्त्तस्व तद्ध्यानज्ञानतत्परः ॥ १४ ॥

न पुनर्मद्वियोगात्ति भवान् यास्यति कुत्रचित् ।
सिद्धोऽसि कृतकृत्योऽसि मत्प्रसादेन लक्ष्मणा ॥ १५ ॥

इत्युक्तः प्रभुणा सद्यो लक्ष्मणस्तच्चिकीर्षितम् ।
विद्वान् प्रणम्य तत्पादपद्मयोधीरमानसः ॥ १६ ॥

जगाम सरयूतीरं वहत्त्रिविधमारुतम् ।
आरामकुञ्जशोभाढ्यं हेमरत्नमयावनिम् ॥ १७ ॥

तत्र गत्वा चिरं दध्यौ मायातीतं परं महः ।
स तन्महसि चाद्राक्षीरयोध्यां भुवनोत्तराम् ॥ १८ ॥

वनोपवनशोभाढ्यां सरयूतीरभूमिगाम् ।
गोपलीलाराजलीलालीलाद्वयमनोरमाम् ॥ १९ ॥

अपश्यदुभयत्रापि राममानन्दविग्रहम् ।
सहजानन्दिनीसीताशक्तिद्वयविराजितम् ॥ २० ॥

सेवितं प्रेममर्यादाभक्तिभ्यां च निरन्तरम् ।
सर्वलीलारसोपेतं सर्वैः परिकरैर्युतम् ॥ २१ ॥

स्वात्मादीन् पार्षदांश्चापि तत्रापश्यद्यथास्थितान् ।
तद्ध्यानपरमानन्दलहरीमग्नमानसः ॥ २२ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे लक्ष्मणपरोभावो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥



द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ लोकजनैः सार्द्धं यातुकामः प्रमुद्वनम् ।
भगवान् घोषयामास दुन्दुभिं कोसलापुरे ॥ १ ॥

अद्य गन्तास्म्यहं स्वीयं प्रमोदविपिनं परम् ।
आयान्तु ये जनास्तत्र यातुकामा मया सह ॥ २ ॥

स्नात्वा सरय्वाः सलिले दत्त्वा दानानि भूरिशः ।
प्रविशन्तु परं रन्ध्रं सरयूतीरभूमिगम् ॥ ३ ॥

गच्छन्तु सर्वे प्रमोदविपिनं धाम मामकम् ।
न यत्र कालमायाद्याः कुतोऽन्यद्वस्तु तद्वशम् ॥ ४ ॥

तत्र नित्यं मया सार्द्धं मोदन्तां नित्यलीलया ।
अमन्दानन्दसंदोहभूजो भूरिसुमङ्गलाः ॥ ५ ॥

इति दुन्दुभिनिर्घोषमाकर्ण्य पुरवास्तवः ।
दारापत्यसुहृद्बन्धुमित्रभृत्यादिभिः सह ॥ ६ ॥

आगोपमा च श्वपचमापण्डितवरद्विजम् ।
आकीटपशुपक्ष्यादि गृहीतधिषणा जनाः ॥ ७ ॥

सद्यः समुद्भूतबोधाः स्वरूपबलतो हरेः ।
संजातात्मप्रकाशाश्च स्वाराज्यपदगन्तुकाः ॥ ८ ॥

आययुः सरयूं नाम नदीं विश्वविमोक्षिणीम् ।
हंससारसचक्राह्वकादम्बकुलकेलिनीम् ॥ ९ ॥

हेमरत्नसमाबद्धकान्तोभयतटान्विताम् ।
मन्दारपारिजातादितरुमालोपवीतिनीम् ॥ १० ॥

मन्दानिलसमुत्क्षिप्ततरङ्गशतसंकुलाम् ;
पूजितां सुरगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ११ ॥

पीयूषोज्ज्वलपानीयां राजहंसनिषेविताम् ।
तत्रैत्य ददृशुः सर्वे रामंरघुकुलोद्वहम् ॥ १२ ॥

विश्वग्घनूमत्सुग्रीवनलनीलाङ्गदादिभिः ।
कपीन्द्रैः सेवकश्रेष्ठैः सेव्यमानं मुदान्वितम् ॥ १३ ॥

युतं सौमित्रिभरतशत्रुघ्नैर्भ्रातृभिर्निजैः ।
श्रीमज्जनकपुत्र्या च विस्फुरद्वामविग्रहम् ॥ १४ ॥

अपि पद्माविशालाभ्यां वीजितोभयचामरम् ।
पुरस्ताच्चापि भारत्या स्तुतं वीणाढ्यहस्तया ॥ १५ ॥

गीयमानं च गन्धर्वैर्वेदमूर्तिधरैरिव ।
सर्वतो जयशब्देन संवर्द्धितयशोभरम् ॥ १६ ॥

तार्क्ष्यविष्वक्सेनमुखैः पार्षदैरपि सेवितम् ।
शेषादिभिः स्तूयमानं वाचस्पतिभिरुन्मुखैः ॥ १७ ॥

तत्र वाद्यत्सु वाद्येषु जयनिर्घोषशालिषु ।
भेरीमृदङ्गनिस्स्वानझर्झरीपटहादिषु ॥ १८ ॥

मुखरीक्रियमाणेषु दिङ्मुखेषु समंततः ।
तौर्यत्रिकनिनादेन नभस्याकुलिते सति ॥ १९ ॥

वर्षत्सु देववर्येषु कल्पद्रुकुसुमोत्करम् ।
उत्साहसंयुतेष्वद्धास्तुवत्सु प्रवर्षिषु ॥ २० ॥

नत्वा नत्वा विभुं रामं सम्प्रयुक्तास्तदाज्ञया ।
ममज्जुर्मानवाः सर्वे सरयूसलिलेऽमले ॥ २१ ॥

अथ प्रविविशुः शुद्धा राममकुञ्जमनुत्तमम् ।
सदारापत्यसुहृदः सभृत्यसखिबन्धवः ॥ २२ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा अवरयोनिजाः ।
वर्णसंकरजाश्चापि चाण्डालाः श्वपचादयः ॥ २३ ॥

भिल्लाः खसाः पुलिन्दाश्च हूणाश्चान्ध्राः सहस्रशः ।
वधिका यवनाश्चापि नानाजात्याधमा अपि ॥ २४ ॥

पशवः पक्षिणः कीटा यूकादंशघुणादयः ।
जन्तवोऽनेकजातीया एकद्वित्रीन्द्रिया अपि ॥ २५ ॥

ते सर्वे दिव्यवपुषो भूत्वा सपदि तत्क्षणात् ।
पश्यतामेव देवानां भासयन्तो दिशोऽखिलाः ॥ २६ ॥

आरुह्य देवयानानि गीयमानाश्च किन्नरैः ।
प्रययुः प्रमोदवनं दिव्यं तत्तमसः परम् ॥ २७ ॥

न यत्र मायाखिललोकमोहिनी न कालशक्तिः कलनात्मिका तथा ।
न कर्मजन्यैश्च फलैः प्रसंजनं यदेकरूपं सदसत्परं जगुः ॥ २८ ॥

यत्सच्चिदानन्दमशेषमद्भुतं विशेषहीनं तमसः परं पदम् ।
प्रभावतः श्रीरघुवल्लभस्य तद्गता अनर्हा अपि साधनैर्विना ॥ २९ ॥

एवं विधाय सकलानपि तान् पुरस्ताज्जीवान् पुरीपरिसरेऽपि वसन्ति येऽन्ये ।
पश्चात्स्वयं स भगवानखिलात्मभूतः सीतापतिः परिकरैः सहितो जगाम ॥३०॥

आसीद्यावद्दिनं तत्सकलमपि रवः काहलः श्रीसरय्वा-
स्तोयेसम्मज्जतां श्रीरघुपतिमयतां गच्छतां रामकुञ्जम् ।
शश्वतेषां जनानामपि सकलदिशो भासितास्तद्विमानै-
र्नक्षत्रैर्व्याप्यमाना इव किमपि बभुर्विश्वतो ध्वान्तवर्जाः ॥ ३१ ॥

रामस्तेषां वास्तवे दिव्यरूपां विश्वस्योच्चैर्निर्ममौ स्वां पुरीं ताम् ।
या वै साक्षादियमेवास्त्ययोध्या सुप्राकारा परिखाश्रेणियुक्ता ॥ ३२ ॥

तस्या ईशः स्वयमानन्दमूर्तिर्नित्यं लीलारससंदोहमग्नः ।
नीत्वा तस्यामखिलान् जीवसंधान् दत्वाऽऽनन्दं वासयामास नित्यम् ॥ ३३ ॥

अन्तर्हिते कोसलायां चराचरपतौ तदा ।
तेनैवपरमाज्ञप्ता ज्ञाततत्त्वाः स्वरूपतः ॥ ३४ ॥

व्रजमाजग्मुरुदारचित्ताः सुन्दरनन्दननीलललामाः ।
राजकुमारवराः सुकुमारा ददृशुर्गोपीगोपसमूहम् ॥ ३५ ॥

तत्र गोपीजनगिरा सद्यः संत्यक्तसंशयाः ।
विचेरुर्धरणीं कृत्स्नां कृतकृत्यात्मयोगिनः ॥ ३६ ॥

जनानुपदिशन्तस्ते रामभक्तिं रसोत्तराम् ।
जगत्कृतार्थयामासुर्लीलारसविशारदाः ॥ ३७ ॥

भुशुण्ड उवाच

अन्तर्हिते कोसलायां रामे रमणशालिनि ।
गोपिकाः किं विधा आसन् गोपाश्च गुणवत्तमाः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच

यर्हि वाव तेजोमयान् विशिखान् धनुषि संधाय तत्र च स्वात्मज्योतिरारोप्य भगवानपीच्यतमश्रीविग्रहः सानुजः सभार्यो दक्षिणां दिशमगात्ततश्च विराधादि वधं कृत्वा पुनः साकेतोपगमराज्यशासनान्तां राजलीलां तेनैव श्रीविग्रहेणावतारप्रयोजन मूलभूतेनाकार्षीत् ॥ ३९ ॥

तर्ह्येव दिवसमारभ्य रमणीय कलाकलापपेशलो मधुरस्मितमंजिममण्डित-मुखचन्द्रचन्द्रिका प्रकाशधोरणीवशिताखिलस्वीयजनमानसोऽनुदिनवर्द्धमानलीलारसम-जुषद्व्रजवासिजननितम्बिनीषु ॥ ४० ॥

ततश्चेतरजननयनागोचरतया चित्रकूटाचलाखेटककालीनकपटविरहसत्यतानुसं-धानलक्षणनिजमायाकार्यं प्रकटयन्नतिशयविषम वेदनासमुद्भूतसंतापसंततिं स्वाप्निकीमि-वानुभाव यन्नपि तदसत्यतानुसंधान लक्षणनिरुपधिनिजकृपाकार्यं स्वरूपानन्दसंदोहमनु-भावयामास तासाम् ॥ ४१ ॥

ततश्च समाप्ते निजाविर्भावप्रयोजनेऽन्तर्कुभूषुर्भगवान् कमलबन्धुकुल कमलबा-न्धवो मान्धातृसगरभगीरथदिलीपरघुप्रमुखभूमीधवल कीर्तिकौमुदीकुमुदबन्धुर्जानकी-कल्पलतालिङ्गितकल्पतरुश्रीविग्रहो भक्तजननयनानन्ददानायैव चिरं तस्थौ ॥ ४२ ॥

अथ सर्वतः स्वांशान् स्वस्मिन् समावेश्यनिखिलपरिकरसहित एव प्रमोदवन-मिथाय कोसलेन्द्रः। राघवेन्द्रनन्दनो वै तथैव केलिकलाकौशलशाली माङ्गल्यादि भालभागधेयपुञ्जः श्रीनन्दन श्रीराजिनीपरमान्यो निखिलगोप सीमन्तिनीसमाजसुख-समूहसंतानकः सहजेश्वरीनयनसर्वस्वभूतः प्रमोदवनविहरणाविश्रान्तमति रेवं चिरं जयति ॥ ४३ ॥

जयति जयति रामो राघवेन्द्रः स नित्यं प्रमुदवनविलासी भक्तसर्वस्वराशिः ।
अवतरति निजांशैर्यो महीभारहारी द्विजनिगमनिजार्थान् साधयन् पूरुषाग्र्याः ॥४४॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे लीलाविस्तारणोनाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥



त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

इति ते सर्वमाख्यातं भुशुण्ड क्रमतो मया।
आदिरामायणं नाम श्रीरामचरितं शुभम् ॥ १ ॥

एतत्कल्पभवं चापि कल्पान्तरभवं तथा।
समाधावुपलब्धं यत्सारं सारं विमृश्य च ॥ २ ॥

इदं ते गुप्तवद्धार्यं न प्रकाश्यं कथंचन।
प्रभोरेवाज्ञया प्रोक्तं रामस्य करुणाम्बुधेः ॥ ३ ॥

रामेण कथितं पूर्वं स्वप्रियायै प्रमुद्वने।
तया सौमित्रये प्रोक्तं तेन प्रोक्तं निजानुजे ॥ ४ ॥

कचिद्धनूमता लब्धं श्रीरामस्य मुखाम्बुजात्।
तत एव मया लब्धं हयग्रीवाच्च योगिना ॥ ५ ॥

लब्धं कुम्भोद्भवेनापि मुनिभ्यस्तेन कीर्तितम्।
तदेव ते मयाऽऽख्यातं रहस्यं चरितं प्रभोः ॥ ६ ॥

पठनीयं सदैवैतत् पवित्रं चित्तशोधनम्।
मङ्गलं विघ्नकोटिघ्नं सुखदं भक्तिवर्द्धनम् ॥ ७ ॥

आयुष्यमारोग्यकरं धनसम्पद्विवर्द्धनम्।
संकटेषु च कृच्छ्रेषु सर्वापद्विनिवारणम् ॥ ८ ॥

श्रावणीयं च भक्तेभ्य एकान्तिभ्यो विशेषतः।
रसज्ञेभ्यः प्रेमवद्भ्यो रासलीलाविशेषितम् ॥ ९ ॥

यानि यनि चरित्राणि पवित्राणि सीतापतेः।
रासलीलागोपलीलाभेदवित्तानि भूरिशः ॥ १० ॥

तेषां श्रवणमात्रेण दृढाभक्तिः प्रजायते।
यावन्न विश्वामित्रेण नीतौ स्वाध्वरगुप्तये ॥ ११ ॥

सुखितस्य गृहे तावदूषतू रामलक्ष्मणौ।
चक्राते कुतुकोपेतौ गोपलीलां रसोत्तराम् ॥ १२ ॥

चक्रे रासविलासाद्याः सर्वालीलाः शुभान्विताः।
धात्रीपतिरपि प्रायः पुत्रवच्चान्ववर्त्तत ॥ १३ ॥

तौ चापि लीलारसिकौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
माङ्गल्यां सुखितं चैव मेनाते जनकौ निजौ ॥ १४ ॥

तयोश्चरितमत्रैव गोपलीलानुकारिणोः।
प्रतिश्लोकं चोपबद्धं श्रोतव्यं भक्तिभावतः ॥ १५ ॥

मोचनं भवबन्धेभ्यो रोचनं मनसः परम् ।
गोचरं सद्विशेषाणां सामान्यानामगोचरम् ॥ १६ ॥

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु प्रतिपद्दिवसादितः ।
यावज्जन्मदिनं श्राव्यं रामस्य रसिकेशितुः ॥ १७ ॥

दिने दिने महत्पुण्यमश्वमेधशतोद्भवम् ।
तुष्यत्याशु रमाकान्तां रामो राजीवलोचनः ॥ १८ ॥

भूमौ स्वस्तिकमालिख्य सर्वतोभद्रमेव वा ।
मण्डलं विपुलं तत्र स्थापयेज्जानकीपतिम् ॥ १९ ॥

दीपराजं च संस्थाप्य विधिवत्तस्य संनिधौ ।
मण्डपं कारयेत्तत्र चतुर्द्वारं मनोहरम् ॥ २० ॥

वाचयेत्तत्र विधिवद्ग्रन्थमेनं समाहितः ।
अनन्यभक्त्या श्रोतव्यं सर्वदा रामसेवकैः ॥ २१ ॥

गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तथाश्वरथकुञ्जरैः ।
यथाशक्त्या च वसुभिस्तोषयेद्वाचकं द्विजम् ॥ २२ ॥

लिखित्वा पुस्तकं चेतद्दक्षिणाहेमसंयुतम् ।
रामभक्ताय योदद्याद् ब्राह्मणाय सुयज्वने ॥ २३ ॥

तस्य पुण्यफलं चापि वक्तुं नो शक्यते मया ।
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥ २४ ॥

लभते भक्तिमान् मर्त्यः कथाश्रवणमात्रतः ।
असंख्यं लभते पुण्यं कीर्तनाच्च दिने दिने ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच

इति मत्तः समाश्रुत्य भुशुण्डो रामसेवकः ।
प्रोद्भूतपूर्वसंस्कार इदमूचे स मां सुराः ॥ २६ ॥

भुशुण्ड उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्यश्च त्वत्प्रसादाद् विधो मम ।
सद्यो विगलितो मोहः संजाता पूर्वजन्मधीः ॥ २७ ॥

अहं हि रामभक्तोऽस्मि धातर्जन्मनि जन्मनि ।
इदानीं ते प्रसादेन भक्तिर्मेऽभूद्दृढीयसी ॥ २८ ॥

द्वीपेऽस्मिन् पर्वते चात्र निवत्स्यामि शुभान्वितः ।
रामभक्तिसुधां पीत्वा सदा मत्तः प्रसन्नधीः ॥ २९ ॥

इदं श्रुतं ते वदनारविन्दादयशोऽमलं श्रीरघुपुङ्गवस्य ।
सदैव पदद्योद्भव कीर्त्तनीयं मया पुरो भक्तिमतां सुराणाम् ॥ ३० ॥

रहः स्मरिष्यामि च सद्रहस्यं निधेयमन्तर्निधिसारभूतम् ।
स्वस्त्यस्तु ते गच्छ विधे स्वलोकं लोकेश लोकाधिकृर्ति प्रशाधि ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा मां स वै देवाः पूजयित्वा यथाविधि ।
विससर्ज स्वलोकाय भक्तिनम्रः कृताञ्जलिः ॥ ३२ ॥

एतत्सुरगणाः कृत्स्नं गुणग्रथनमीशितुः ।
आकर्ण्य कृतकृत्याः स्थ न श्रोतव्यान्तरं च वः ॥ ३३ ॥

श्रुतं यशश्चेद्रघुपुङ्गवस्य किमन्यकीर्त्या श्रुतया जनस्य ।
गीता गुणाश्चेद्रघुनन्दनस्य पीतापि सा तर्हि सुधा मुधा स्यात् ॥ ३४ ॥

स जयति राजवेषरमणीय उदारगुणः
प्रमुदवनावनीन्दुरखिलप्रमुद्वासिहितः ।

स्मितसहजेश्वरीवदन चन्द्रचकोरयुगं नयन-
युगं निजेषु निदधद् राघवेन्द्रसूनुः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदादिरामायणे ब्रह्मभुशुण्डसंवादे उत्तरखण्डे ग्रन्थमाहात्म्यादि-निरूपणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

समाप्तमिदमादिरामायणम् ॥

१ संवत् १८९९ के श्रावण सुदि १४ मङ्गलेकः लिखा सारदादीन मिश्र
मुकाम पुरवामध्ये विश्वनार्थसिंह राज्ये ।

संवत् १७१९ वर्षे आश्विनशुक्ल त्रयोदश्यां लिखापितमिदं रामर्षिणा
श्रीस्वामि बालकृष्णानुजीविना विदुषा ।
(श्रीरामगोपालो जयति)



परिशिष्ट

नामानुक्रमणी

भुशुण्डि रामायण का प्रकाशन तीन भागों में हुआ है। प्रथम भाग में पूर्वखंड द्वितीय भाग में दक्षिण खंड और तृतीय भाग में पश्चिम तथा उत्तर खंड समाहित हैं। पाठकों की सुविधा के लिए ग्रंथ के उपर्युक्त चारों खण्डों में आये हुए व्यक्ति तथा स्थानवाचक शब्दों की अनुक्रमणिका इस तृतीय तथा अंतिम भाग के परिशिष्ट में दी जा रही है। राम, सीता तथा भाइयों के बहुउद्धृत नाम कलेवर वृद्धि के भय से छोड़ दिये गये हैं, प्रत्येक शब्द के सामने संदर्भित भाग को संख्यानिर्देश के साथ ही उसकी स्थिति का पृष्ठांक दे दिया गया है।

अ

